

प्रेमचंद का सम्पूर्ण संग्रह

डाउनलोड करें मुंशी प्रेमचंद का सम्पूर्ण संग्रह पीडीऍफ़ में | इस संग्रह को मैं तीन या चार भागों में प्रस्तुत करूँगा | यह दूसरा भाग है जिसमे उनकी कहानियां आपके सामने प्रस्तुत कि जायेंगी |

पहले भाग में उनकी कहानियां प्रस्तुत की गयीं थी तथा तीसरे भाग में उनके उपन्यास व जो भी साहित्य मेरे पास उपलब्ध है सब कुछ पीडीऍफ़ में उपलब्ध कराया जाएगा |

प्रेमचन्द का सम्पूर्ण संग्रह भाग १ (प्रेमचंद की कहानियाँ) [यहाँ से डाउनलोड करें](#)

प्रेमचन्द का सम्पूर्ण संग्रह भाग २ (प्रेमचंद की कहानियाँ) आपके सामने है

इस संग्रह में निम्न कहानियां प्रस्तुत कि गयी हैं :-

स्नेह पर कर्तव्य की विजय

कमला के नाम ...

मझगांव

प्रतापचन्द्र और कमलाचरण

दुख्दशा

मन का प्राबल्य

विदुषी वृजरानी

माधवी

काशी में आगमन

प्रेम का स्वप्न

विदाई

मतवाली योगिनी

त्रिया - चरित्र

मिलाप

मनावन

अंधेर

सिर्फ एक आवाज

आखिरी मंजिल

आल्हा

नसीहतों का दफ्तर

राजहठ

नेकी

बांका जर्मीदार

अनाथ लड़की

कर्मों का फल

सभ्यता का रहस्य

समस्या

दो सखियाँ

सोहाग का शव

आत्म संगीत

एक्ट्रेस

ईश्वरीय न्याय

ममता

मन्त्र

प्रायश्चित

कप्तान साहब

इस्तीफ़ा

अलग्गोझा

ईदगाह

माँ

बेटों वाली विधवा

बड़े भाई साहब

शांति

नशा

स्नेह पर कर्तव्य की विजय

रोगी जब तक बीमार रहता है उसे सुध नहीं रहती कि कौन मेरी औषधि करता है, कौन मुझे देखने के लिए आता है। वह अपने ही कष्ट में इतना ग्रस्त रहता है कि किसी दूसरे के बात का ध्यान ही उसके हृदय में उत्पन्न नहीं होता; पर जब वह आरोग्य हो जाता है, तब उसे अपनी शुश्रूष करनेवालों का ध्यान और उनके उद्योग तथा परिश्रम का अनुमान होने लगता है और उसके हृदय में उनका प्रेम तथा आदर बढ़ जाता है। ठीक यही श वृजरानी की थी। जब तक वह स्वयं अपने कष्ट में मग्न थी, कमलाचरण की व्याकुलता और कष्टों का अनुभव न कर सकती थी। निस्सन्देह वह उसकी खातिरदारी में कोई अंश शेष न रखती थी, परन्तु यह व्यवहार-पालन के विचार से होती थी, न कि सच्चे प्रेम से। परन्तु जब उसके हृदय से वह व्यथा मिट गयी तो उसे कमला का परिश्रम और उद्योग स्मरण हुआ, और यह चिन्ता हुई कि इस अपार उपकार का प्रति-उत्तर क्या दूँ? मेरा धर्म था सेवा-सत्कार से उन्हें सुख देती, पर सुख देना कैसा उलटे उनके प्राण ही की गाहक हुई हूँ! वे तो ऐसे सच्चे दिल से मेरा प्रेम करें और मैं अपना कर्तव्य ही न पालन कर सकूँ! ईश्वर को क्या मुँह दिखाऊँगी? सच्चे प्रेम का कमल बहुधा कृपा के भाव से खिल जाया करता है। जहाँ, रूप यौवन, सम्पत्ति और प्रभुता तथा स्वाभाविक सौजन्य प्रेम के बीच बोलने में अकृतकार्य रहते हैं, वहाँ, प्रायः उपकार का जादू चल जाता है। कोई हृदय ऐसा वज्र और कठोर नहीं हो सकता, जो सत्य सेवा से द्रवीभूत न हो जाय।

कमला और वृजरानी में दिनोंदिन प्रीति बढ़ने लगी। एक प्रेम का दास था, दूसरी कर्तव्य की दासी। सम्भव न था कि वृजरानी के मुख से कोई बात निकले और कमलाचरण उसको पूरा न करे। अब उसकी तत्परता और योग्यता उन्हीं प्रयत्नों में व्यय होती थी। पढ़ना केवल माता-पिता को धोखा देना था। वह सदा रुख देख करता और इस आशा पर कि यह काम उसकी प्रसन्नता का कारण होगा, सब कुछ करने पर कटिबद्ध रहता। एक दिन उसने माधवी को फुलवाड़ी से फूल चुनते देखा। यह छोटा-सा उद्यान घर के पीछे था। पर कुटुम्ब के किसी व्यक्ति को उसे प्रेम न था, अतएव बारहों मास उस पर उदासी छाई रहती थी। वृजरानी को फूलों से हार्दिक प्रेम था। फुलवाड़ी की यह दुर्गति देखी तो माधवी से कहा कि कभी-कभी इसमें पानी दे दिया कर। धीरे-धीरे वाटिका की दशा कुछ सुधर चली और पौधों में फूल लगने लगे। कमलाचरण के लिए इशारा बहुत था। तन-मन से वाटिका को सुसज्जित करने पर उतारु हो गया। दो चतुर माली नौकर रख लिये। विविध प्रकार के सुन्दर-सुन्दर पुष्प और पौधे लगाये जाने लगे। भाँति-भाँतिकी घासों और पत्तियों गमलों में सजायी जाने लगी, क्यारियाँ और रविशे ठीक की जाने लगीं। ठौर-ठौर पर लताएँ चढ़ायी गयीं। कमलाचरण सारे दिन हाथ में पुस्तक लिये फुलवाड़ी में टहलता रहता था और मालियों को वाटिका की सजावट और बनावट की ताकीद किया करता था, केवल इसीलिए कि विरजन प्रसन्न होगी। ऐसे स्नेह-भक्त का जादू किस पर न चल जायगा। एक दिन कमला ने कहा-आओ, तुम्हें वाटिका की सैर कराऊँ। वृजरानी उसके साथ चली।

चौद निकल आया था। उसके उज्ज्वल प्रकाश में पुष्प और पत्ते परम शोभायमान थे। मन्द-मन्द वायु चल रहा था। मोतियों और बेले की सुगन्धि मस्तिष्क को सुरभित कर रही थीं। ऐसे समय में विरजन एक रेशमी साड़ी और एक सुन्दर स्लीपर पहिने रविशों में टहलती दीख पड़ी। उसके बदन का विकास फूलों को लज्जित करता था, जान पड़ता था कि फूलों की देवी है। कमलाचरण बोला-आज परिश्रम सफल हो गया।

जैसे कुमकुमे में गुलाब भरा होता है, उसी प्रकार वृजरानी के नयनों में प्रेम रस भरा हुआ था। वह मुसकायी, परन्तु कुछ न बोली।

कमला-मुझ जैसा भाग्यवान मुनष्य संसा में न होगा।

विरजन-क्या मुझसे भी अधिक?

कमला मतवाला हो रहा था। विरजन को प्यार से गले लगा दिया।

कुछ दिनों तक प्रतिदिन का यही नियम रहा। इसी बीच में मनोरंजन की नयी सामग्री उपस्थित हो गयी। राधाचरण ने चित्रों का एक सुन्दर अलबम विरजन के पास भेजा। इसमें कई चित्र चंद्रा के भी थे। कहीं वह बैठी श्यामा को पढ़ा रही है कहीं बैठी पत्र लिख रही है। उसका एक चित्र पुरुष वेष में था। राधाचरण फोटोग्राफी की कला में कुशल थे। विरजन को यह अलबम बहुत भाया। फिर क्या था ? फिर क्या था? कमला को धुन लगी कि मैं भी चित्र खींचूँ। भाई के पास पत्र लिख भेजा कि केमरा और अन्य

आवश्यक सामान मेरे पास भेज दीजिये और अभ्यास आरंभ कर दिया। घर से चलते कि स्कूल जा रहा हूँ पर बीच ही में एक पारसी फोटोग्राफर की दूकान पर आ बैठते। तीन-चार मास के परिश्रम और उद्योग से इस कला में प्रवीण हो गये। पर अभी घर में किसी को यह बात मालूम न थी। कई बार विरजन ने पूछा भी; आजकल दिनभर कहाँ रहते हो। छुट्टी के दिन भी नहीं दिख पड़ते। पर कमलाचरण ने हूँ-हां करके टाल दिया।

एक दिन कमलाचरण कहीं बाहर गये हुए थे। विरजन के जी में आया कि लाओ प्रतापचन्द्र को एक पत्र लिख डालूँ; पर बक्सखेला तो चिट्ठी का कागज न था माधवी से कहा कि जाकर अपने भैया के डेस्क में से कागज निकाल ला। माधवी दौड़ी हुई गयी तो उसे डेस्क पर चित्रों का अलबम खुला हुआ मिला। उसने अलबम उठा लिया और भीतर लाकर विरजन से कहा-बहिन! दखों, यह चित्र मिला।

विरजन ने उसे चाव से हाथ में ले लिया और पहिला ही पन्ना उलटा था कि अचम्भा-सा हो गया। वह उसी का चित्र था। वह अपने पलंग पर चाउर ओढ़े निद्रा में पड़ी हुई थी, बाल ललाट पर बिखरे हुए थे, अधरों पर एक मोहनी मुस्कान की झलक थी मानों कोई मन-भावना स्वप्न देख रही है। चित्र के नीचे लख हुआ था- 'प्रेम-स्वप्न'। विरजन चकित थी, मेरा चित्र उन्होंने कैसे खिचवाया और किससे खिचवाया। क्या किसी फोटोग्राफर को भीतर लाये होंगे? नहीं ऐसा वे क्या करेंगे। क्या आश्चर्य है, स्वयं ही खींच लिया हो। इधर महीनों से बहुत परिश्रम भी तो करते हैं। यदि स्वयं ऐसा चित्र खींचा है तो वस्तुतः प्रशंसनीय कार्य किया है। दूसरा पन्ना उलटा तो उसमें भी अपना चित्र पाया। वह एक साड़ी पहने, आधे सिर पर आँचल डाले वाटिका में भ्रमण कर रही थी। इस चित्र के नीचे लख हुआ था- 'वाटिका-भ्रमण'। तीसरा पन्ना उलटा तो वह भी अपना ही चित्र था। वह वाटिका में पृथ्वी पर बैठी हार गूँथ रही थी। यह चित्र तीनों में सबसे सुन्दर था, क्योंकि चित्रकार ने इसमें बड़ी कुशलता से प्राकृतिक रंग भरे थे। इस चित्र के नीचे लिखा हुआ था- 'अलबेली मालिन'। अब विरजन को ध्याना आया कि एक दिन जब मैं हार गूँथ रही थी तो कमलाचरण नील के काँटे की झाड़ी मुस्कराते हुए निकले थे। अवश्य उसी दिन का यह चित्र होगा। चौथा पन्ना उलटा तो एक परम मनोहर और सुहावना दृश्य दिखयी दिया। निर्मल जल से लहराता हुआ एक सरोवर था और उसके दोनों तीरों पर जहाँ तक दृष्टि पहुँचती थी, गुलाबों की छटा दिखयी देती थी। उनके कोमल पुष्प वायु के झोकां से लचके जात थे। इसका ज्ञात होता था, मानों प्रकृति ने हरे आकाश में लाल तारे टाँक दिये हैं। किसी अंग्रेजी चित्र का अनुकरण प्रतीत होता था। अलबम के और पन्ने अभी कोरे थे।

विरजन ने अपने चित्रों को फिर देखा और साभिमान आनन्द से, जो प्रत्येक रमणी को अपनी सुन्दरता पर होता है, अलबम को छिपा कर रख दिया। संध्या को कमलाचरण ने आकर देखा, तो अलबम का पता नहीं। हाथों तो तोते उड़ गये। चित्र उसके कई मास के कठिन परिश्रम के फल थे और उसे आशा थी कि यही अलबम उधार देकर विरजन के हृदय में और भी घर कर लूँगा। बहुत व्याकुल हुआ। भीतर जाकर विरजन से पूछा तो उसने साफ इन्कार किया। बेचारा घबराया हुआ अपने मित्रों के घर गया कि कोई उनमें से उठा ले गया हो। पह वहां भी फबतियों के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा। निदान जब महाशय पूरे निराश हो गये तोशम को विरजन ने अलबम का पता बतलाया। इसी प्रकार दिवस सानन्द व्यतीत हो रहे थे। दोनों यही चाहते थे कि प्रेम-क्षेत्र में मैं आगे निकल जाऊँ! पर दोनों के प्रेम में अन्तर था। कमलाचरण प्रेमोन्माद में अपने को भूल गया। पर इसके विरुद्ध विरजन का प्रेम कर्तव्य की नींव पर स्थित था। हाँ, यह आनन्दमय कर्तव्य था।

तीन वर्ष व्यतीत हो गये। वह उनके जीवन के तीन शुभ वर्ष थे। चौथे वर्ष का आरम्भ आपत्तियों का आरम्भ था। कितने ही प्राणियों को सांसार की सुख-सामग्रियाँ इस परिमाण से मिलती हैं कि उनके लिए दिन सदा होली और रात्रि सदा दिवाली रहती है। पर कितने ही ऐसे हतभाग्य जीव हैं, जिनके आनन्द के दिन एक बार बिजली की भाँति चमककर सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं। वृजरानी उन्हीं अभागों में थी। वसन्त की ऋतु थी। सीरी-सीरी वायु चल रही थी। सरदी ऐसे कड़ाके की पड़ती थी कि कुओं का पानी जम जाता था। उस समय नगरों में प्लेग का प्रकोप हुआ। सहस्रों मनुष्य उसकी भेंट होने लगे। एक दिन बहुत कड़ा ज्वर आया, एक गिल्टी निकली और चल बसा। गिल्टी का निकलना मानो मृत्यु का संदश था। क्या वैद्य, क्या डाक्टर किसी की कुछ न चलती थी। सैकड़ों घरों के दीपक बुझ गये। सहस्रों बालक अनाथ और सहस्रों विधवा हो गयी। जिसको जिधर गली मिली भाग निकला। प्रत्येक मनुष्य को अपनी-अपनी पड़ी हुई थी। कोई किसी का सहायक और हितैषी न था। माता-पिता बच्चों को छोड़कर भागे। स्त्रीयों ने पुरुषों से सम्बन्ध परित्याग किया। गलियों में, सड़को पर, घरों में जिधर देखिये मृतकों को ढेर लगे हुए थे। दुकाने बन्द हो

गयी। द्वारों पर ताले बन्द हो गया। चतुर्दिक धूल उड़ती थी। कठिनाता से कोई जीवधारी चलता-फिरता दिखायी देता था और यदि कोई कार्यवश घर से निकला पड़ता तो ऐसे शीघ्रता से पाँव उठाता मानों मृत्यु का दूत उसका पीछा करता आ रहा है। सारी बस्ती उजड़ गयी। यदि आबाद थे तो कब्रिस्तान या श्मशान। चोरों और डाकुओं की बन आयी। दिन-दोपहर तोल टूटते थे और सूर्य के प्रकाश में सेंधें पड़ती थीं। उस दारुण दुःख का वर्णन नहीं हो सकता।

बाबू श्यामचरण परम दृढ़चित्त मनुष्य थे। गृह के चारों ओर महल्ले-के महल्ले शून्य हो गये थे पर वे अभी तक अपने घर में निर्भय जमे हुए थे लेकिन जब उनका साहस मर गया तो सारे घर में खलबली मच गयी। गाँव में जाने की तैयारियाँ होने लगी। मुंशीजी ने उस जिले के कुछ गाँव मोल ले लिये थे और मझगाँव नामी ग्राम में एक अच्छा-सा घर भी बनवा रख था। उनकी इच्छा थी कि पेंशन पाने पर यहीं रहूँगा काशी छोड़कर आगरे में कौन मरने जाय! विरजन ने यह सुना तो बहुत प्रसन्न हुई। ग्राम्य-जीवन के मनोहर दृश्य उसके नेत्रों में फिर रहे थे हरे-भरे वृक्ष और लहलहाते हुए खेत हरिणों की क्रीडा और पक्षियों का कलरव। यह छटा देखने के लिए उसका चित्त लालायित हो रहा था। कमलाचरण शिकार खेलने के लिए अस्त्र-शस्त्र ठीक करने लगे। पर अचानक मुंशीजी ने उसे बुलाकर कहा कि तम प्रयाग जाने के लिए तैयार हो जाओ। प्रताप चन्द्र वहाँ तुम्हारी सहायता करेगा। गाँवों में व्यर्थ समय बिताने से क्या लाभ? इतना सुनना था कि कमलाचरण की नानी मर गयी। प्रयाग जाने से इन्कार कर दिया। बहुत देर तक मुंशीजी उसे समझाते रहे पर वह जाने के लिए राजी न हुआ। निदान उनके इन अंतिम शब्दों ने यह निपटारा कर दिया- तुम्हारे भाग्य में विद्या लिखी ही नहीं है। मेरा मूर्खता है कि उससे लड़ता हूँ!

वृजरानी ने जब यह बात सुनी तो उसे बहुत दुःख हुआ। वृजरानी यद्यपि समझती थी कि कमला का ध्यान पढ़ने में नहीं लगता; पर जब-तब यह अरुचि उसे बुरी न लगती थी, बल्कि कभी-कभी उसका जी चाहता कि आज कमला का स्कूल न जाना अच्छा था। उनकी प्रेममय वाणी उसके कानों का बहुत प्यारी मालूम होती थी। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि कमला ने प्रयाग जाना अस्वीकार किया है और लालाजी बहुत समझ रहे हैं, तो उसे और भी दुःख हुआ क्योंकि उसे कुछ दिनों अकेले रहना सह्य था, कमला पिता को आज्ञाज्ञेल्लघन करे, यह सह्य न था। माधवी को भेजा कि अपने भैया को बुला ला। पर कमला ने जगह से हिलने की शपथ खा ली थी। सोचता कि भीतर जाऊँगा, तो वह अवश्य प्रयाग जाने के लिए कहेगी। वह क्या जाने कि यहाँ हृदय पर क्या बीत रही है। बातें तो ऐसी मीठी-मीठी करती है, पर जब कभी प्रेम-परीक्षा का समय आ जाता है तो कर्तव्य और नीति की ओट में मुख छिपाने लगती है। सत्य है कि स्त्रीयों में प्रेम की गंध ही नहीं होती।

जब बहुत देर हो गयी और कमला कमरे से न निकला तब वृजरानी स्वयं आयी और बोली-क्या आज घर में आने की शपथ खा ली है। राह देखते-देखते आँखें पथरा गयीं।

कमला- भीतर जाते भय लगता है।

विरजन- अच्छा चलो मैं संग-संग चलती हूँ, अब तो नहीं डरोगे?

कमला- मुझे प्रयाग जाने की आज्ञा मिली है।

विरजन- मैं भी तुम्हारे संग चलूँगी!

यह कहकर विरजन ने कमलाचरण की ओर आँखें उठायीं उनमें अंगूर के दोन लगे हुए थे। कमला हार गया। इन मोहनी आँखों में आँसू देखकर किसका हृदय था, कि अपने हठ पर दृढ़ रहता? कमला ने उसे अपने कंठ से लगा लिया और कहा-मैं जानता था कि तुम जीत जाओगी। इसीलिए भीतर न जाता था। रात-भर प्रेम-वियोग की बातें होती रहीं! बार-बार आँखें परस्पर मिलती मानो वे फिर कभी न मिलेगी! शोक किसे मालूम था कि यह अंतिम भेंट है। विरजन को फिर कमला से मिलना नसीब न हुआ।

‘प्रियतम,

प्रेम पत्र आया। सिर पर चढ़ाकर नेत्रों से लगाया। ऐसे पत्र तुम न लख करो ! हृदय विदीर्ण हो जाता है। मैं लिखूँ तो असंगत नहीं। यहाँ चित्त अति व्याकुल हो रहा है। क्या सुनती थी और क्या देखती हैं ? टूटे-फूटे फूस के झोंपड़े, मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े-करकट के बड़े-बड़े ढेर, कीचड़ में लिपटी हुई भैंसे, दुर्बल गायें, ये सब दृश्य देखकर जी चाहता है कि कहीं चली जाऊँ। मनुष्यों को देखों, तो उनकी सोचनीय दशा है। हड्डियाँ निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है और कैसे भाग्यहीन कि रात-दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलतीं। हमारे घर के पिछवाड़े एक गड़ढा है। माधवी खेलती थी। पाँव फिसला तो पानी में गिर पड़ी। यहाँ किम्वदन्ती है कि गड़ढे में चुड़ैल नहाने आया करती है और वे अकारण यह चलनेवालों से छेड़-छाड़ किया करती है। इसी प्रकार द्वार पर एक पीपल का पेड़ है। वह भूतों का आवास है। गड़ढे का तो भय नहीं है, परन्तु इस पीपल का वास सारे-सारे गाँव के हृदय पर ऐसा छाया हुआ है। कि सूर्यास्त ही से मार्ग बन्द हो जाता है। बालक और स्त्रीयाँ तो उधर पैर ही नहीं रखते! हाँ, अकेले-दुकेले पुरुष कभी-कभी चले जाते हैं, पर पे भी घबराये हुए। ये दो स्थान मानो उस निकृष्ट जीवों के केन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों भूत-चुड़ैल भिन्न-भिन्न स्थानों के निवासी पाये जाते हैं। इन लोगों को चुड़ैलें दीख पड़ती हैं। लोगों ने इनके स्वभाव पहचान किये हैं। किसी भूत के विषय में कहा जाता है कि वह सिर पर चढ़ता है तो महीनों नहीं उतरता और कोई दो-एक पूजा लेकर अलग हो जाता है। गाँव वालों में इन विषयों पर इस प्रकार वार्तालाप होता है, मानों ये प्रत्यक्ष घटनाएँ हैं। यहाँ तक सुना गया है कि चुड़ैल भोजन-पानी माँगने भी आया करती हैं। उनकी साड़ियाँ प्रायः बगुले के पंख की भाँति उज्ज्वल होती हैं और वे बातें कुछ-कुछ नाक से करती हैं। हाँ, गहनों को प्रचार उनकी जाति में कम है। उन्हीं स्त्रीयों पर उनके आक्रमणका भय रहता है, जो बनाव श्रृंगार किये रंगीन वस्त्र पहिने, अकेली उनकी दृष्टि में पड़ जायें। फूलों की बास उनको बहुत भाती है। सम्भव नहीं कि कोई स्त्री या बालक रात को अपने पास फूल रखकर सोये।

भूतों के मान और प्रतिष्ठा का अनुमान बड़ी चतुराई से किया गया है। जोगी बाबा आधी रात को काली कमरिया ओढ़े, खड़ाऊँ पर सवार, गाँव के चारों आर भ्रमण करते हैं और भूले-भटके पथिकों को मार्ग बताते हैं। साल-भर में एक बार उनकी पूजा होती है। वह अब भूतों में नहीं वरन् देवताओं में गिने जाते हैं। वह किसी भी आपत्ति को यथाशक्ति गाँव के भीतर पग नहीं रखने देते। इनके विरुद्ध धोबी बाबा से गाँव-भर थर्राता है। जिस वृक्ष पर उसका वास है, उधर से यदि कोई दीपक जलने के पश्चात् निकल जाए, तो उसके प्राणों की कुशलता नहीं। उन्हें भगाने के लिए दो बोलत मदिरा काफी है। उनका पुजारी मंगल के दिन उस वृक्षतले गाँजा और चरस रख आता है। लाला साहब भी भूत बन बैठे हैं। यह महाशय मटवारी थे। उन्हें कई पंडित असमियों ने मार डाला था। उनकी पकड़ ऐसी गहरी है कि प्राण लिये बिना नहीं छोड़ती। कोई पटवारी यहाँ एक वर्ष से अधिक नहीं जीता। गाँव से थोड़ी दूर पर एक पेड़ है। उस पर मौलवी साहब निवास करते हैं। वह बेचारे किसी को नहीं छेड़ते। हाँ, वृहस्पति के दिन पूजा न पहुँचायी जाए, तो बच्चों को छेड़ते हैं।

कैसी मूर्खता है! कैसी मिथ्या भक्ति है! ये भावनाएँ हृदय पर वज्रलीक हो गयी हैं। बालक बीमार हुआ कि भूत की पूजा होने लगी। खेत-खलिहान में भूत का भोग जहाँ देखिये, भूत-ही-भूत दीखते हैं। यहाँ न देवी है, न देवता। भूतों का ही साम्राज्य है। यमराज यहाँ चरण नहीं रखते, भूत ही जीव-हरण करते हैं। इन भावों का किस प्रकार सुधार हो ? किमधिकम

तुम्हारी
विरजन

मझगाँव

प्यारे,

बहुत दिनों को पश्चात् आपकी पेरम-पत्री प्राप्त हुई। क्या सचमुच पत्र लिखने का अवकाश नहीं ? पत्र क्या लिखा है, मानो बेगार टाली है। तुम्हारी तो यह आदत न थी। क्या वहाँ जाकर कुछ और हो गये ? तुम्हें

यहाँ से गये दो मास से अधिक होते हैं। इस बीच मं कई छोटी-बड़ी छुट्टियाँ पड़ी, पर तुम न आये। तुमसे कर बाँधकर कहती हूँ- होली की छुट्टी में अवश्य आना। यदि अब की बार तरसाया तो मुझे सदा उलाहना रहेगा।

यहाँ आकर ऐसी प्रतीत होता है, मानो किसी दूसरे संसार में आ गयी हूँ। रात को शयन कर रही थी कि अचानक हा-हा, हू-हू का कोलाहल सुनायी दिया। चौंककर उठा बैठी! पूछा तो ज्ञात हुआ कि लड़के घर-घर से उपले और लकड़ी जमा कर रहे थे। होली माता का यही आहार था। यह बेढंगा उपद्रव जहाँ पहुँच गया, ईंधन का दिवाला हो गया। किसी की शक्ति नहीं जो इस सेना को रोक सके। एक नम्बरदार की मड़िया लोप हो गयी। उसमें दस-बारह बैल सुगमतापूर्वक बाँधे जा सकते थे। होली वाले कई दिन घात में थे। अवसर पाकर उड़ा ले गये। एक कुरमी का झोंपड़ा उड़ गया। कितने उपले बेपता हो गये। लोग अपनी लकड़ियाँ घरों में भर लेते हैं। लालाजी ने एक पेड़ ईंधन के लिए मोल लिया था। आज रात को वह भी होली माता के पेट में चला गया। दो-तील घरों को किवाड़ उतर गये। पटवारी साहब द्वार पर सो रहे थे। उन्हें भूमि पर ढकेलकर लोगे चारपाई ले भागे। चतुर्दिक ईंधन की लूट मची है। जो वस्तु एक बार होली माता के मुख में चली गयी, उसे लाना बड़ा भारी पाप है। पटवारी साहब ने बड़ी धमकियां दी। मैं जमाबन्दी बिगाड़ दूँगा, खसरा झूठाकर दूँगा, पर कुछ प्रभाव न हुआ! यहाँ की प्रथा ही है कि इन दिनों वाले जो वस्तु पा जायें, निर्विघ्न उठा ले जायें। कौन किसकी पुकार करे ? नवयुवक पुत्र अपने पिता की आंख बाकर अपनी ही वस्तु उठवा देता है। यदि वह ऐसा न करे, तो अपने समाज में अपमानित समझा जा जाए।

खेत पक गये हैं, पर काटने में दो सप्ताह का विलम्ब है। मेरे द्वार पर से मीलों का दृश्य दिखाई देता है। गेहूँ और जौ के सुथरे खेतों के किनारे-किनारे कुसुम के अरुण और केसर-वर्ण पुष्पों की पंक्ति परम सुहावनी लगती है। तोते चतुर्दिक मँडलाया करते हैं।

माधवी ने यहाँ कई सखियाँ बना रखी हैं। पड़ोस में एक अहीर रहता है। राधा नाम है। गत वर्ष माता-पिता प्लेग के ग्रास हो गये थे। गृहस्थी का कुल भार उसी के सिर पर है। उसकी स्त्री तुलसा प्रायः हमारे यहाँ आती हैं। नख से शिख तक सुन्दरता भरी हुई है। इतनी भोली है कि जो चाहता है कि घण्टों बातें सुना करूँ। माधवी ने इससे बहिनापा कर रखा है। कल उसकी गुड़ियों का विवाह हैं। तुलसी की गुड़िया है और माधवी का गुड़डा। सुनती हूँ, बेचारी बहुत निधन है। पर मैंने उसके मुख पर कभी उदासीनता नहीं देखी। कहती थी कि उपले बेचकर दो रुपये जमा कर लिये हैं। एक रुपया दायज दूँगी और एक रुपये में बरातियों का खाना-पीना होगा। गुड़ियों के वस्त्राभूषण का भार राधा के सिर हैं! कैसा सरल संतोषमय जीवन है!

लो, अब विदा होती हूँ। तुम्हारा समय निरर्थक बातों में नष्ट हुआ। क्षमा करना। तुम्हें पत्र लिखने बैठती हूँ, तो लेखनी रुकती ही नहीं। अभी बहुतेरी बातें लिखने को पड़ी हैं। प्रतापचन्द्र से मेरी पालागन कह देना।

तुम्हारी
विरजन

(3)

मझगाँव

प्यारे,

तुम्हारी, प्रेम पत्रिका मिली। छाती से लगायी। वाह! चोरी और मुँहजोरी। अपने न आने का दोष मेरे सिर धरते हो ? मेरे मन से कोई पूछे कि तुम्हारे दर्शन की उसे कितनी अभिलाषा प्रतिदिन व्याकुलता के रूप में परिणत होती है। कभी-कभी बेसुध हो जाती हूँ। मेरी यह दशा थोड़ी ही दिनों से होने लगी है। जिस समय यहाँ से गये हो, मुझे ज्ञान न था कि वहाँ जाकर मेरी दलेल करोगे। खैर, तुम्हीं सच और मैं ही झूठ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुमने मेरे दोनों पत्र पसन्द किये। पर प्रतापचन्द्र को व्यर्थ दिखाये। वे पत्र बड़ी असावधानी से लिखे गये हैं। सम्भव है कि अशुद्धियाँ रह गयी हों। मझे विश्वास नहीं आता कि प्रताप ने उन्हें मूल्यवान समझा हो। यदि वे मेरे पत्रों का इतना आदर करते हैं कि उनके सहार से हमारे ग्राम्य-जीवन पर कोई रोचक निबन्ध लिख सकें, तो मैं अपने को परम भाग्यवान् समझती हूँ।

कल यहाँ देवीजी की पूजा थी। हल, चक्की, पुर चूल्हे सब बन्द थे। देवीजी की ऐसी ही आज्ञा है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन कौन करे ? हुक्का-पानी बन्द हो जाए। साल-भर मं यही एक दिन है, जिस गाँवाले भी छुट्टी का समझते हैं। अन्यथा होली-दिवाली भी प्रति दिन के आवश्यक कामों को नहीं रोक सकती। बकरा चढा। हवन हुआ। सत्तू खिलाया गया। अब गाँव के बच्चे-बच्चे को पूर्ण विश्वास है कि प्लेग का आगमन यहाँ

न हो सकेगा। ये सब कौतुक देखकर सोयी थी। लगभग बारह बजे होंगे कि सैंकड़ों मनुष्य हाथ में मशालें लिये कोलाहल मचाते निकले और सारे गाँव का फेरा किया। इसका यह अर्थ था कि इस सीमा के भीतर बीमारी पैर न रख सकेगी। फेरे के सप्ताह होने पर कई मनुष्य अन्य ग्राम की सीमा में घुस गये और थोड़े फूल, पान, चावल, लौंग आदि पदार्थ पृथ्वी पर रख आये। अर्थात् अपने ग्राम की बला दूसरे गाँव के सिर डाल आये। जब ये लोग अपना कार्य समाप्त करके वहाँ से चलने लगे तो उस गाँववालों को सुनगुन मिल गयी। सैंकड़ों मनुष्य लाठियाँ लेकर चढ़ दौड़े। दोनों पक्षवालों में खूब मारपीट हुई। इस समय गाँव के कई मनुष्य हल्दी पी रहे हैं।

आज प्रातःकाल बची-बचायी रस्में पूरी हुई, जिनको यहाँ कढ़ाई देना कहते हैं। मेरे द्वार पर एक भट्टा खोदा गया और उस पर एक कड़ाह दूध से भरा हुआ रखा गया। काशी नाम का एक भर है। वह शरीर में भभूत रमाये आया। गाँव के आदमी टाट पर बैठे। शंख बजने लगा। कड़ाह के चतुर्दिक माला-फूल बिखेर दिये गये। जब कहाड़ में खूब उबाल आया तो काशी झट उठा और जय कालीजी की कहकर कड़ाह में कूद पड़ा। मैं तो समझी अब यह जीवित न निकलेगा। पर पाँच मिनट पश्चात् काशी ने फिर छलाँग मारी और कड़ाह के बाहर था। उसका बाल भी बाँका न हुआ। लोगों ने उसे माला पहनायी। वे कर बाँधकर पूछने लगे- महाराज! अबके वर्ष खेती की उपज कैसी होगी? बीमारी अवेगी या नहीं? गाँव के लोग कुशल से रहेंगे? गुड़ का भाव कैसा रहेगा? आदि। काशी ने इन सब प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट पर किंचित् रहस्यपूर्ण शब्दों में दिये। इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई। सुनती हूँ ऐसी क्रिया प्रतिवर्ष होती है। काशी की भविष्यवाणियाँ यब सत्य सिद्ध होती हैं। और कभी एकाध असत्य भी निकल जाय तो काशी उना समाधान भी बड़ी योग्यता से कर देता है। काशी बड़ी पहुँच का आदमी है। गाँव में कहीं चोरी हो, काशी उसका पता देता है। जो काम पुलिस के भेदियों से पूरा न हो, उसे वह पूरा कर देता है। यद्यपि वह जाति का भर है तथापि गाँव में उसका बड़ा आदर है। इन सब भक्तियों का पुरस्कार वह मदिरा के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेता। नाम निकलवाड़ये, पर एक बोतल उसको भेंट कीजिये। आपका अभियोग न्यायालय में हैं; काशी उसके विजय का अनुष्ठान कर रहा है। बस, आप उसे एक बोतल लाल जल दीजिये।

होली का समय अति निकट है! एक सप्ताह से अधिक नहीं। अहा! मेरा हृदय इस समय कैसा खिल रहा है? मन में आनन्दप्रद गुदगुदी हो रही है। आँखें तुम्हें देखने के लिए अकुला रही हैं। यह सप्ताह बड़ी कठिनाई से कटेगा। तब मैं अपने पिया के दर्शन पाऊँगी।

तुम्हारी
विरजन

(4)

मझगाँव

प्यारे

तुम पाषाणहृदय हो, कट्टर हो, स्नेह-हीन हो, निर्दय हो, अकरुण हो झूठो हो! मैं तुम्हें और क्या गालियाँ दूँ और क्या कोसूँ? यदि तुम इस क्षण मेरे सम्मुख होते, तो इस वज्रहृदयता का उत्तर देती। मैं कह रही हूँ, तुम दगाबाज हो। मेरा क्या कर लोगे? नहीं आते तो मत आओ। मेरा प्रण लेना चाहते हो, ले लो। रुलाने की इच्छा है, रुलाओ। पर मैं क्यों रौऊ! मेरी बला रोवे। जब आपको इतना ध्यान नहीं कि दो घण्टे की यात्रा है, तनिक उसकी सुधि लेता आँऊ, तो मुझे क्या पड़ी है कि रौऊ और प्राण खौऊ?

ऐसा क्रोध आ रहा है कि पत्र फाड़कर फेंक दूँ और फिर तुमसे बात न करूँ। हाँ! तुमने मेरी सारी अभिलाषाएँ, कैसे धूल में मिलायी हैं? होली! होली! किसी के मुख से यह शब्द निकला और मेरे हृदय में गुदगुदी होने लगी, पर शोक! होली बीत गयी और मैं निराश रह गयी। पहिले यह शब्द सुनकर आनन्द होता था। अब दुःख होता है। अपना-अपना भाग्य है। गाँव के भूखे-नंगे लँगोटी में फाग खेलें, आनन्द मनावें, रंग उड़ावें और मैं अभागिनी अपनी चारपाइर पर सफेद साड़ी पहिने पड़ी रहूँ। शपथ लो जो उस पर एक लाल धब्बा भी पड़ा हो। शपथ लें लो जो मैंने अबीर और गुलाल हाथ से छुई भी हो। मेरी इत्र से बनी हुई अबीर, केवड़े में घोली गुलाल, रचकर बनाये हुए पान सब तुम्हारी अकृपा का रोना रो रहे हैं। माधवी ने जब बहुत हठ की, तो मैंने एक लाल टीका लगवा लिया। पर आज से इन दोषारोपणों का अन्त होता है। यदि फिर कोई शब्द दोषारोपण का मुख से निकला तो जबान काट लूँगी।

परसों सायंकाल ही से गाँव में चहल-पहल मचने लगी। नवयुवकों का एक दल हाथ में डफ लिये, अश्लील शब्द बकते द्वार-द्वार फेरी लगाने लगा। मुझे ज्ञान न था कि आज यहाँ इतनी गालियाँ खानी

पड़ेंगी। लज्जाहीन शब्द उनके मुख से इस प्रकार बेधड़क निकलते थे जैसे फूल झड़ते हों। लज्जा और संकोच का नाम न था। पिता, पुत्र के सम्मुख और पुत्र, पिता के सम्मुख गालियाँ बक रहे थे। पिता ललकार कर पुत्र-वधू से कहता है- आज होली है! वधू घर में सिर नीचा किये हुए सुनती है और मुस्करा देती है। हमारे पटवारी साहब तो एक ही महात्म निकले। आप मदिरा में मस्त, एक मैली-सी टोपी सिर पर रखे इस दल के नायक थे। उनकी बहू-बेटियाँ उनकी अश्लीलता के वेग से न बच सकीं। गालियाँ खाओ और हँसो। यदि बदन पर तनिक भी मैल आये, तो लोग समझेंगे कि इसका मुहर्रम का जन्म हैं भली प्रथा है।

लगभग तीन बजे रात्रि के झुण्ड होली माता के पास पहुँचा। लड़के अग्नि-क्रीड़ा में तत्पर थे। मैं भी कई स्त्रीयों के पास गयी, वहाँ स्त्रीयाँ एक ओर होलियाँ गा रही थीं। निदान होली में आग लगाने का समय आया। अग्नि लगते ही ज्वाला भड़की और सारा आकाश स्वर्ण-वर्ण हो गया। दूर-दूर तक के पेड़-पत्ते प्रकाशित हो गए। अब इस अग्नि-राशि के चारों ओर 'होली माता की जय!' चिल्ला कर दौड़ने लगे। सबे हाथों में गेहूँ और जौ कि बालियाँ थीं, जिसको वे इस अग्नि में फेंकते जाते थे।

जब ज्वाला बहुत उत्तेजित हुई, तो लग एक किनारे खड़े होकर 'कबीर' कहने लगे। छः घण्टे तक यही दशा रही। लकड़ी के कुन्दों से चटाकपटाक के शब्द निकल रहे थे। पशुगण अपने-अपने खूँटों पर भय से चिल्ला रहे थे। तुलसा ने मुझसे कहा- अब की होली की ज्वाला टेढ़ी जा रही है। कुशल नहीं। जब ज्वाला सीधी जाती है, गाँव में साल-भर आनन्द की बधाई बजती है। परन्तु ज्वाला का टेढ़ी होना अशुभ है निदान लपट कम होने लगी। आँच की प्रखरता मन्द हुई। तब कुछ लोग होली के निकट आकर ध्यानपूर्वक देखने लगे। जैसे कोई वस्तु ढूँढ़ रहे हों। तुलसा ने बतलाया कि जब बसन्त के दिन होली नीवं पड़ती है, तो पहिले एक एरण्ड गाड़ देते हैं। उसी पर लकड़ी और उपलों का ढेर लगाया जाता है। इस समय लोग उस एरण्ड के पौधे का ढूँढ़ रहे हैं। उस मनुष्य की गणना वीरों में होती है जो सबसे पहले उस पौधे पर ऐसा लक्ष्य करे कि वह टूट कर दूज जा गिर। प्रथम पटवारी साहब पैंतरे बदलते आये, पर दस गज की दूरी से झाँककर चल दिये। तब राधा हाथ में एक छोटा-सा सोंटा लिये साहस और दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ा और आग में घुस कर वह भरपूर हाथ लगाया कि पौधा अलग जा गिरा। लोग उन टुकड़ों को लूटने लगे। माथे पर उसका टीका लगाते हैं और उसे शुभ समझते हैं।

यहाँ से अवकाश पाकर पुरुष-मण्डली देवीजी के चबूतरे की ओर बढ़ी। पर यह न समझना, यहाँ देवीजी की प्रतिष्ठा की गई होगी। आज वे भी गजियाँ सुनना पसन्द करती है। छोटे-बड़े सब उन्हें अश्लील गालियाँ सुना रहे थे। अभी थोड़े दिन हुए उन्हीं देवीजी की पूजा हुई थी। सच तो यह है कि गाँवों में आजकल ईश्वर को गाली देना भी क्षम्य है। माता-बहिनों की तो कोई गणना नहीं।

प्रभात होते ही लाला ने महाराज से कहा- आज कोई दो सेर भंग पिसवा लो। दो प्रकार की अलग-अलग बनवा लो। सलोनी आ मीठी। महाराज निकले और कई मनुष्यों को पकड़ लाये। भांग पीसी जाने लगी। बहुत से कुल्हड़ मँगाकर क्रमपूर्वक रखे गये। दो घड़ों में दोनो प्रकार की भांग रखी गयी। फिर क्या था, तीन-चार घण्टों तक पियक्कड़ों का ताँता लगा रहा। लोग खूब बखान करते थे और गर्दन हिला- हिलाकर महाराज की कुशलता की प्रशंसा करते थे। जहाँ किसी ने बखान किया कि महाराज ने दूसरा कुल्हड़ भरा बोले-ये सलोनी है। इसका भी स्वाद चखलो। अजी पी भी लो। क्या दिन-दिन होली आयेगी कि सब दिन हमारे हाथ की बूटी मिलेगी ? इसके उत्तर में किसान ऐसी दृष्टि से ताकता था, मानो किसी ने उसे संजीवन रस दे दिया और एक की जगह तीन-तीन कुल्हड़ चट कर जाता। पटवारी कक जामाता मुन्शी जगदम्बा प्रसाद साहब का शुभागमन हुआ है। आप कचहरी में अरायजनवीस हैं। उन्हें महाराज ने इतनी पिला दी कि आपसे बाहर हो गये और नाचने-कूदने लगे। सारा गाँव उनसे पोदरी करता था। एक किसान आता है और उनकी ओर मुस्कराकर कहता है- तुम यहाँ ठाढ़ी हो, घर जाके भोजन बनाओ, हम आवत हैं। इस पर बड़े जोर की हँसी होती है, काशी भर मद में माता लट्ठा कन्धे पर रखे आता और सभास्थित जनों की ओर बनावटी क्रोध से देखकर गरजता है- महाराज, अच्छी बात नहीं है कि तुम हमारी नयी बहुरिया से मजा लूटते हो। यह कहकर मुन्शीजी को छाती से लगा लेता है।

मुन्शीजी बेचारे छोटे कद के मनुष्य, इधर-उधर फड़फड़ाते हैं, पर नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है ? कोई उन्हें प्यार करता है और गले लगाता है। दोपहर तक यही छेड़-छाड़ हुआ की। तुलसा अभी तक बैठी हुई थी। मैंने उससे कहा- आज हमारे यहाँ तुम्हारा न्योता है। हम तुम संग खायेंगी। यह सुनते ही महाराजिन दो थालियों में भोजन परोसकर लायी। तुलसा इस समय खिड़की की ओर मुँह करके खड़ी थी। मैंने जो उसको हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा तो उसे अपनी प्यारी-प्यारी आँखों से मोती के सोने बिखेरते

हुए पाया। मैं उसे गले लगाकर बोली- सखी सच-सच बतला दो, क्यों रोती हो? हमसे कोई दुराव मत रखो। इस पर वह और भी सिसकने लगी। जब मैंने बहुत हठ की, उसने सिर घुमाकर कहा-बहिन! आज प्रातःकाल उन पर निशान पड़ गया। न जाने उन पर क्या बीत रही होगी। यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। ज्ञात हुआ कि राधा के पिता ने कुछ ऋण लिया था। वह अभी तक चुका न सका था। महाजन ने सोचा कि इसे हवालात ले चलूँ तो रुपये वसूल हो जायें। राधा कन्नी काटता फिरता था। आज द्वेषियों को अवसर मिल गया और वे अपना काम कर गये। शोक! मूल धन रुपये से अधिक न था। प्रथम मुझ ज्ञात होता तो बेचारे पर त्योहार के दिन यह आपत्ति न आने पाती। मैंने चुपके से महाराज को बुलाया और उन्हें बीस रुपये देकर राधा को छुड़ाने के लिये भेजा।

उस समय मेरे द्वार पर एक टाट बिछा दिया गया था। लालाजी मध्य में कालीन पर बैठे थे। किसान लोग घुटने तक धोतियाँ बाँधे, कोई कुर्ती पहिने कोई नग्न देह, कोई सिर पर पगड़ी बाँधे और नंगे सिर, मुख पर अबीर लगाये- जो उनके काले वर्ण पर विशेष छटा दिखा रही थी- आने लगे। जो आता, लालाजी के पैरों पर थोड़ी-सी अबीर रख देते। लालाली भी अपने तश्तरी में से थोड़ी-सी अबीर निकालकर उसके माथे पर लगा देते और मुस्कुराकर कोई दिल्लगी की बात कर देते थे। वह निहाल हो जाता, सादर प्रणाम करता और ऐसा प्रसन्न होकर आ बैठता, मानो किसी रंक ने रत्न- राशि पायी है। मुझे स्पष्ट में भी ध्यान न था कि लालाजी इन उजड़ देहातियों के साथ बैठकर ऐसे आनन्द से वर्तालाप कर सकते हैं। इसी बीच में काशी भर आया। उसके हाथ में एक छोटी-सी कटोरी थी। वह उसमें अबीर लिए हुए था। उसने अन्य लोगों की भाँति लालाजी के चरणों पर अबीर नहीं रखी, किंतु बड़ी धृष्टता से मुट्ठी-भर लेकर उनके मुख पर भली-भाँति मल दी। मैं तो डरी, कहीं लालाजी रुष्ट न हो जायँ। पर वह बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं उन्होंने भी एक टीका लगाने के स्थान पर दोनों हाथों से उसके मुख पर अबीर मली। उसके सी उसकी ओर इस दृष्टि से देखते थे कि निस्संदेह तू वीर है और इस योग्य है कि हमारा नायक बने। इसी प्रकार एक-एक करके दो-ढाई सौ मनुष्य एकत्र हुए! अचानक उन्होंने कहा-आज कहीं राधा नहीं दीख पड़ता, क्या बात है? कोई उसके घर जाके देखा तो। मुंशी जगदम्बा प्रसाद अपनी योग्यता प्रकाशित करने का अच्छा अवसर देखकर बोले उठे-हज़ूर वह दफा 13 नं. अलिफ ऐक्ट (अ) में गिरफ्तार हो गया। रामदीन पांडे ने वारण्ट जारी करा दिया। हरीच्छा से रामदीन पांडे भी वहाँ बैठे हुए थे। लाला सने उनकी ओर परम तिरस्कार दृष्टि से देखा और कहा- क्यों पांडेजी, इस दीन को बन्दीगृह में बन्द करने से तुम्हारा घर भर जायगा? यही मनुष्यता और शिष्टता अब रह गयी है। तुम्हें तनिक भी दया न आयी कि आज होली के दिन उसे स्त्री और बच्चों से अलग किया। मैं तो सत्य कहता हूँ कि यदि मैं राधा होता, तो बन्दीगृह से लौटकर मेरा प्रथम उद्योग यही होता कि जिसने मुझे यह दिन दिखाया है, उसे मैं भी कुछ दिनों हलदी पिलवा दूँ। तुम्हें लाज नहीं आती कि इतने बड़े महाजन होकर तुमने बीस रुपये के लिए एक दीन मनुष्य को इस प्रकार कष्ट में डाला। डूब मरना था ऐसे लोभ पर! लालाजी को वस्तुतः क्रोध आ गया था। रामदीन ऐसा लज्जित हुआ कि सब सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। मुख से बात न निकली। चुपके से न्यायालय की ओर चला। सब-के-सब कृषक उसकी ओर क्रोध-पूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। यदि लालाजी का भय न होता तो पांडेजी की हड्डी-पसली वहीं चूर हो जाती।

इसके पश्चात् लोगों ने गाना आरम्भ किया। मद में तो सब-के-सब गाते ही थे, इस पर लालजी के भ्रातृ-भाव के सम्मान से उनके मन और भी उत्साहित हो गये। खूब जी तोड़कर गाया। डफें तो इतने जोर से बजती थीं कि अब फटी और तब फटीं। जगदम्बाप्रसाद ने दुहरा नशा चढ़ाया था। कुछ तो उनके मन में स्वतः उमंग उत्पन्न हुई, कुछ दूसरों ने उत्तेजना दी। आप मध्य सभा में खड़ा होकर नाचने लगे; विश्वास मानो, नाचने लग। मैंने अचकन, टोपी, धोती और मूँछोंवाले पुरुष को नाचते न देखा था। आध घण्टे तक वे बन्दरों की भाँति उछलते-कूदते रहे। निदान मद ने उन्हें पृथ्वी पर लिटा दिया। तत्पश्चात् एक और अहीर उठा एक अहीरिन भी मण्डली से निकली और दोनों चौक में जाकर नाचने लगे। दोनों नवयुवक फुर्तीले थे। उनकी कमर और पीठ की लचक विलक्षण थी। उनके हाव-भाव, कमर का लचकना, रोम-रोम का फड़कना, गर्दन का मोड़, अंगों का मरोड़ देखकर विस्मय होता था बहुत अभ्यास और परिश्रम का कार्य है।

अभी यहाँ नाच हो ही रहा था कि सामने बहुत-से मनुष्य लंबी-लंबी लाठियाँ कन्धों पर रखे आते दिखायी दिये। उनके संग डफ भी था। कई मनुष्य हाथों से झाँझ और मजीरे लिये हुए थे। वे गाते-बजाते आये और हमारे द्वार पर रुके। अकस्मात् तीन- चार मनुष्यों ने मिलकर ऐसे आकाशभेदी शब्दों में 'अररर...कबीर' की ध्वनि लगायी कि घर काँप उठा। लालाजी निकले। ये लोग उसी गाँव के थे, जहाँ निकासी के दिन लाठियाँ चली थीं। लालजी को देखते ही कई पुरुषों ने उनके मुख पर अबीर मला। लालाजी ने भी

प्रत्युत्तर दिया। फिर लोग फर्श पर बैठे। इलायची और पान से उनका सम्मान किया। फिर गाना हुआ। इस गाँववालों ने भी अबीर मलीं और मलवायी। जब ये लेग बिदा होने लगे, तो यह होली गायी:

‘सदा आनन्द रहे हि द्वारे मोहन खेलें होरी।’

कितना सुहावना गीत है! मुझे तो इसमें रस और भाव कूट-कूटकर भरा हुआ प्रतीत होता है। होली का भाव कैसे साधारण और संक्षिप्त शब्दों में प्रकट कर दिया गया है। मैं बारम्बार यह प्यारा गीत गाती हूँ, आनन्द लूटती हूँ। होली का त्योहार परस्पर प्रेम और मेल बढ़ाने के लिए है। सम्भव सन था कि वे लोग, जिनसे कुछ दिन पहले लाठियाँ चली थीं, इस गाँव में इस प्रकार बेधड़क चले आते। पर यह होली का दिन है। आज किसी को किसी से द्वेष नहीं है। आज प्रेम और आनन्द का स्वराज्य है। आज के दिन यदि दुखी हो तो परदेशी बालम की अबला। रोवे तो युवती विधवा! इनके अतिरिक्त और सबके लिए आनन्द की बधाई है।

सन्ध्या-समय गाँव की सब स्त्रीयाँ हमारे यहाँ खेलने आयीं। मातजी ने उन्हें बड़े आदर से बैठाया। रंग खेला, पान बाँटा। मैं मारे भय के बाहर न निकली। इस प्रकार छुट्टी मिली। अब मुझे ध्यान आया कि माधवी दोपहर से गायब है। मैंने सोचा था शायद गाँव में होली खेलने गयी हो। परन्तु इन स्त्रीयों के संग न थी। तुलसा अभी तक चुपचाप खिड़की की ओर मुँह किये बैठी थी। दीपक में बत्ती पड़ी रही थी कि वह अकस्मात् उठी, मेरे चरणों पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। मैंने खिड़की की ओर झाँका तो देखती हूँ कि आगे-आगे महाराज, उसके पीछे राधा और सबसे पीछे रामदीन पांडे चल रहे हैं। गाँव के बहुत से आदमी उनके संग हैं। राधा का बदन कुम्हलाया हुआ है। लालाजी ने ज्योंही सुना कि राधा आ गया, चट बाहर निकल आये और बड़े स्नेह से उसको कण्ठ से लगा लिया, जैसे कोई अपने पुत्र का गले से लगाता है। राधा चिल्ला-चिल्लाकर के चरणों में गिर पड़ी। लालाजी ने उसे भी बड़े प्रेम से उठाया। मेरी आँखों में भी उस समय आँसू न रुक सके। गाँव के बहुत से मनुष्य रो रहे थे। बड़ा करुणापूर्ण दृश्य था। लालाजी के नेत्रों में मैंने कभी आँसू न देखे थे। वे इस समय देखे। रामदीन पाण्डेय मस्तक झुकाये ऐसा खड़ा था, माना गौ-हत्या की हो। उसने कहा-मरे रुपये मिल गये, पर इच्छा है, इनसे तुलसा के लिए एक गाय ले दूँ।

राधा और तुलसा दोनों अपने घर गये। परन्तु थोड़ी देर में तुलसा माधवी का हाथ पकड़े हँसती हुई मरे घर आयी बोली- इनसे पूछो, ये अब तक कहाँ थीं?

मैं- कहाँ थी ? दोपहर से गायब हो ?

माधवी-यहीं तो थी।

मैं- यहाँ कहाँ थीं ? मैंने तो दोपहर से नहीं देखा। सच-सख् बता दो मैं रुष्ट न होंगी।

माधवी- तुलसा के घर तो चली गयी थी।

मैं- तुलसा तो यहाँ बैठी है, वहाँ अकेली क्या सोती रहीं ?

तुलसा- (हँसकर) सोती काहे को जागती रह। भोजन बनाती रही, बरतन चौका करती रही।

माधवी- हाँ, चौका-बरतन करती रही। कोई तुम्हारे नौकर लगा हुआ है न!

ज्ञात हुआ कि जब मैंने महाराज को राधा को छुड़ाने के लिए भेजा था, तब से माधवी तुलसा के घर भोजन बनाने में लीन रही। उसके किवाड़

खोले। यहाँ से आटा, घी, शक्कर सब ले गयी। आग जलायी और पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, गुलगुले और मीठे समोसे सब बनाये। उसने सोचा था कि मैं यह सब बताकर चुपके से चली जाऊँगी। जब राधा और तुलसा जायेंगे, तो विस्मित होंगे कि कौन बना गया! पर स्यात् विलम्ब अधिक हो गया और अपराधी पकड़ लिया गया। देखा, कैसी सुशीला बाला है।

अब विदा होती हूँ। अपराध क्षमा करना। तुम्हारी चेरी हूँ जैसे रखोगे वैसे रहूँगी। यह अबीर और गुलाल भेजती हूँ। यह तुम्हारी दासी का उपहार है। तुम्हें हमारी शपथ मिथ्या सभ्यता के उमंग में आकर इसे फेंक न देना, नहीं तो मेरा हृदय दुखी होगा।

तुम्हारी,
विरजन

तुम्हारे पत्र ने बहुत रुलाया। अब नहीं रहा जाता। मुझे बुला लो। एक बार देखकर चली आऊंगी। सच बताओ, यदि मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ, तो हँसी तो न उड़ाओगे? न जाने मन में क्या समझोगे? पर कैसे आऊँ? तुम लालाजी को लिखो खूब! कहेंगे यह नयी धुन समायी है।

कल चारपाई पर पड़ी थी। भोर हो गया था, शीतल मन्द पवन चल रहा था कि स्त्रीयाँ गाने का शब्द सुनायी पड़ा। स्त्रीयाँ अनाज का खेत काटने जा रही थीं। झाँककर देखा तो दस-दस बारह-बारह स्त्रीयाँ का एक-एक गोल था। सबके हाथों में हंसिया, कन्धों पर गाठियाँ बाँधने की रस्स और सिर पर भुने हुए मटर की छबड़ी थी। ये इस समय जाती हैं, कहीं बारह बजे लौटेंगी। आपस में गाती, चुहलें करती चली जाती थीं।

दोपहर तक बड़ी कुशलता रही। अचानक आकश मेघाच्छन्न हो गया। आँधी आ गयी और ओले गिरने लगे। मैंने इतने बड़े ओले गिरते न देखे थे। आलू से बड़े और ऐसी तेजी से गिरे जैसे बन्दूक से गोली। क्षण-भर में पृथ्वी पर एक फुट ऊँचा बिछावन बिछ गया। चारों तरफ से कृषक भागने लगे। गायें, बकियाँ, भेड़ें सब चिल्लाती हुई पेड़ों की छाया ढूँढ़ती, फिरती थीं। मैं डरी कि न-जाने तुलसा पर क्या बीती। आंखे फैलाकर देखा तो खुले मैदान में तुलसा, राधा और मोहिनी गाय दीख पड़ीं। तीनों घमासान ओले की मार में पड़े थे! तुलसा के सिर पर एक छोटी-सी टोकरी थी और राधा के सिर पर एक बड़ा-सा गट्ठा। मेरे नेत्रों में आंसू भर आये कि न जाने इन बेचारों की क्या गति होगी। अकस्मात् एक प्रखर झोंके ने राधा के सिर से गट्ठा गिरा दिया। गट्ठा का गिरना था कि चट तुलसा ने अपनी टोकरी उसके सिर पर ओँधा दी। न-जाने उस पुष्प ऐसे सिर पर कितने ओले पड़े। उसके हाथ कभी पीठ पर जाते, कभी सिर सुहलाते। अभी एक सेकेण्ड से अधिक यह दशा न रही होगी कि राधा ने बिजली की भाँति जपककर गट्ठा उठा लिया और टोकरी तुलसा को दे दी। कैसा घना प्रेम है!

अनर्थकारी दुर्देव ने सारा खेल बिगाड़ दिया! प्रातःकाल स्त्रीयाँ गाती हुई जा रही थीं। सन्ध्या को घर-घर शोक छाया हुआ था। कितना के सिर लहू-लुहान हो गये, कितने हल्दी पी रहे हैं। खेती सत्यानाश हो गयी। अनाज बर्फ के तले दब गया। ज्वर का प्रकोप है सारा गाँव अस्पताल बना हुआ है। काशी भर का भविष्य प्रवचन प्रमाणित हुआ। होली की ज्वाला का भेद प्रकट हो गया। खेती की यह दशा और लगान उगाहा जा रहा है। बड़ी विपत्ति का सामना है। मार-पीट, गाली, अपशब्द सभी साधनों से काम लिया जा रहा है। दोनों पर यह दैवी कोप!

तुम्हारी
विरजन

(6)

मझगाँव

मेरे प्राणधिक प्रियतम,

पूरे पन्द्रह दिन के पश्चात् तुमने विरजन की सुधि ली। पत्र को बारम्बार पढ़ा। तुम्हारा पत्र रुलाये बिना नहीं मानता। मैं यों भी बहुत रोया करती हूँ। तुमको किन-किन बातों की सुधि दिलाऊँ? मेरा हृदय निर्बल है कि जब कभी इन बातों की ओर ध्यान जाता है तो विचित्र दशा हो जाती है। गर्मी-सी लगती है। एक बड़ी व्यग्र करने वाली, बड़ी स्वादिष्ट, बहुत रुलानेवाली, बहुत दुराशापूर्ण वेदना उत्पन्न होती है। जानती हूँ कि तुम नहीं आ रहे और नहीं आओगे; पर बार-बार जाकर खड़ी हो जाती हूँ कि आ तो नहीं गये।

कल सायंकाल यहाँ एक चित्ताकर्षक प्रहसन देखने में आया। यह धोबियों का नाच था। पन्द्रह-बीस मनुष्यों का एक समुदाय था। उसमें एक नवयुवक श्वेत पेशवाज पहिने, कमर में असंख्य घंटियाँ बाँधे, पाँव में घुघरू पहिने, सिर पर लाल टोपी रखे नाच रहा था। जब पुरुष नाचता था तो मृदंग बजने लगती थी। ज्ञात हुआ कि ये लोग होली का पुरस्कार माँगने आये हैं। यह जाति पुरस्कार खूब लेती है। आपके यहाँ कोई काम-काज पड़े उन्हें पुरस्कार दीजिये; और उनके यहाँ कोई काम-काज पड़े, तो भी उन्हें पारितोषिक मिलना चाहिए। ये लोग नाचते समय गीत नहीं गाते। इनका गाना इनकी कविता है। पेशवाजवाला पुरुष मृदंग पर हाथ रखकर एक विरहा कहता है। दूसरा पुरुष सामने से आकर उसका प्रत्युत्तर देता है और दोनों तत्क्षण वह विरहा रचते हैं। इस जाति में कवित्व-शक्ति अत्यधिक है। इन विरहों को ध्यान से सुनो तो उनमें बहुधा उत्तम कवित्व भाव प्रकट किये जाते हैं। पेशवाजवाले पुरुषों ने प्रथम जो विरहा कहा था, उसका यह अर्थ कि ऐ धोबी के बच्चों! तुम किसके द्वार पर आकर खड़े हो? दूसरे ने उत्तर दिया-अब न अकबर शाह है न राजा भोज, अब जो हैं हमारे मालिक हैं उन्हीं से माँगो। तीसरे विरहा का अर्थ यह है कि याचकों की प्रतिष्ठा कम होती है अतएव कुछ मत माँगो, गा-बाजकर चले चलो, देनेवाला बिन माँगे ही देगा। घण्टे-भर से ये लोग विरहे

कहते रहे। तुम्हें प्रतति न होगी, उनके मुख से विरहे इस प्रकार बेधड़क निकलते थे कि आश्चर्य प्रकट होता था। स्यात इतनी सुगमता से वे बातें भी न कर सकते हों। यह जाति बड़ी पियक्कड़ है। मदिरा पानी की भाँति पीती है। विवाह में मदिरा गौने में मदिरा, पूजा-पाठ में मदिरा। पुरस्कार माँगेंगे तो पीने के लिए। धुलाई माँगेंगे तो यह कहकर कि आज पीने के लिए पैसे नहीं हैं। विदा होते समय बेचू धोबी ने जो विरहा कहा था, वह काव्यालंकार से भरा हुआ है। तुम्हारा परिवार इस प्रकार बड़े जैसे गंगा जी का जल। लड़के फूले-फूले, जैसे आम का बौर। मालकिन को सोहाग सदा बना रहे, जैसे दूब की हरियाली। कैसी अनोखी कविता है।

तुम्हारी
विरजन

(7)

मझगाँव

प्यारे,

एक सप्ताह तक चुप रहने की क्षमा चाहती हूँ। मुझे इस सप्ताह में तनिक भी अवकाश न मिला। माधवी बीमार हो गयी थी। पहले तो कुनैन को कई पुड़ियाँ खिलायी गयीं पर जब लाभ न हुआ और उसकी दशा और भी बुरी होने लगी तो, दिहलूराय वैद्य बुलाये गये। कोई पचास वर्ष की आयु होगी। नंगे पाँव सिर पर एक पगड़ो बाँधे, कन्धे पर अंगोछा रखे, हाथ में मोटा-सा सोटा लिये द्वार पर आकर बैठ गये। घर के जमींदार हैं, पर किसी ने उनके शरीर में मिजई तक नहीं देखी। उन्हें इतना अवकाश ही नहीं कि अपने शरीर-पालन की ओर ध्यान दे। इस मंडल में आठ-दस कोस तक के लोग उन पर विश्वास करते हैं। न वे हकीम को लाने, न डाक्टर को। उनके हकीम-डाक्टर जो कुछ हैं वे दिहलूराय हैं। सन्देशा सुनते ही आकर द्वार पर बैठ गये। डाक्टरों की भाँति नहीं की प्रथम सवारी माँगेंगे- वह भी तेज जिसमें उनका समय नष्ट न हो। आपके घर ऐसे बैठे रहेंगे, मानों गूँगे का गुड़ खा गये हैं। रोगी को देखने जायेंगे तो इस प्रकार भागेंगे मानो कमरे की वायु में विष भरा हुआ है। रोग परिचय और औषधि का उपचार केवल दो मिनट में समाप्त। दिहलूराय डाक्टर नहीं हैं- पर जितने मनुष्यों को उनसे लाभ पहुँचता है, उनकी संख्या का अनुमान करना कठिन है। वह सहानुभूति की मूर्ति है। उन्हें देखते ही रेगी का आधा रोग दूर हो जाता है। उनकी औषधियाँ ऐसी सुगम और साधारण होती हैं कि बिना पैसा-कौड़ी मनो बटोर लाइए। तीन ही दिन में माधवी चलने-फिरने लगी। वस्तुतः उस वैद्य की औषधि में चमत्कार है।

यहाँ इन दिनों मुगलिये ऊधम मचा रहे हैं। ये लोग जाड़े में कपड़े उधार दे देते हैं और चैत में दाम वसूल करते हैं। उस समय कोई बहाना नहीं सुनते। गाली-गलौज मार-पीट सभी बातों पर उतरा आते हैं। दो-तीन मनुष्यों को बहुत मारा। राधा ने भी कुछ कपड़े लिये थे। उनके द्वार पर जाक सब-के-सब गालियाँ देने लगे। तुलसा ने भीतर से किवाड़ बन्द कर दिये। जब इस प्रकार बस न चला, तो एक मोहनी गाय को खूँटे से खोलकर खींचते हुए ले चला। इतने में राधा दूर से आता दिखाई दिया। आते ही आते उसने लाठी का वह हाथ मारा कि एक मुगलिये की कलाई लटक पड़ी। तब तो मुगलिये कुपित हुए, पैंतरे बदलने लगे। राधा भी जान पर खेन गया और तीन दुष्टों को बेकार कर दिया। इतने काशी भर ने आकर एक मुगलिये की खबर ली। दिहलूराय को मुगालियों से चिढ़ है। साभिमान कहा करते हैं कि मैंने इनके इतने रुपये डुबा दिये इतनों को पिटवा दिया कि जिसका हिसाब नहीं। यह कोलाहल सुनते ही वे भी पहुँच गये। फिर तो सैकड़ों मनुष्य लाठियाँ ले-लेकर दौड़ पड़े। उन्होंने मुगलियों की भली-भाँति सेवा की। आशा है कि इधर आने का अब साहस न होगा।

अब तो मझ का मास भी बीत गया। क्यों अभी छुट्टी नहीं हुई ? रात-दिन तुम्हारे आने की प्रतीक्षा है। नगर में बीमारी कम हो गई है। हम लोग बहुत शीघ्र यहाँ से चले जायेंगे। शोक ! तुम इस गाँव की सैर न कर सकोगे।

तुम्हारी
विरजन

प्रतापचन्द्र और कमलाचरण

प्रतापचन्द्र को प्रयाग कालेज में पढ़ते तीन साल हो चुके थे। इतने काल में उसने अपने सहपाठियों और गुरुजनों की दृष्टि में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। कालेज के जीवन का कोई ऐसा अंग न था जहाँ उनकी प्रतिभा न प्रदर्शित हुई हो। प्रोफेसर उस पर अभिमान करते और छात्रगण उसे अपना नेता समझते हैं। जिस प्रकार क्रीड़ा-क्षेत्र में उसका हस्तलाघव प्रशंसनीय था, उसी प्रकार व्याख्यान-भवन में उसकी योग्यता और सूक्ष्मदर्शिता प्रमाणित थी। कालेज से सम्बद्ध एक मित्र-सभा स्थापित की गयी थी। नगर के साधारण सभ्य जन, कालेज के प्रोफेसर और छात्रगण सब उसके सभासद थे। प्रताप इस सभा का उज्ज्वल चन्द्र था। यहां देशिक और सामाजिक विषयों पर विचार हुआ करते थे। प्रताप की वक्तृताएँ ऐसी ओजस्विनी और तर्क-पूर्ण होती थीं की प्रोफेसरों को भी उसके विचार और विषयान्वेषण पर आश्चर्य होता था। उसकी वक्तृता और उसके खेल दोनों ही प्रभाव-पूर्ण होते थे। जिस समय वह अपने साधारण वस्त्र पहिने हुए प्लेटफार्म पर जाता, उस समय सभास्थित लोगों की आँखें उसकी ओर एकटक देखने लगती और चित्त में उत्सुकता और उत्साह की तरंगें उठने लगती। उसका वाक्चातुर्य उसका संकेत और मृदुल उच्चारण, उसके अंगों-पांग की गति, सभी ऐसे प्रभाव-पूरित होते थे मानो शारदा स्वयं उसकी सहायता करती है। जब तक वह प्लेटफार्म पर रहता सभासदों पर एक मोहिनी-सी छाया रहती। उसका एक-एक वाक्य हृदय में भिद जाता और मुख से सहसा 'वाह-वाह!' के शब्द निकल जाते। इसी विचार से उसकी वक्तृताएँ प्रायः अन्त में हुआ करती थी क्योंकि बहुधा श्रोतागण उसी की वाक्तीक्ष्णता का आस्वादन करने के लिए आया करते थे। उनके शब्दों और उच्चारणों में स्वाभाविक प्रभाव था। साहित्य और इतिहास उसका अन्वेषण और अध्ययन के विशेष थे। जातियों की उन्नति और अवनति तथा उसके कारण और गति पर वह प्रायः विचार किया करता था। इस समय उसके इस परिश्रम और उद्योग के प्ररेक तथा वर्द्वक विशेषकर श्रोताओं के साधुवाद ही होते थे और उन्हीं को वह अपने कठिन परिश्रम का पुरस्कार समझता था। हाँ, उसके उत्साह की यह गति देखकर यह अनुमान किया जा सकता था कि वह होनहार बिरवा आगे चलकर कैसे फूल-फूल लायेगा और कैसे रंग-रूप निकालेगा। अभी तक उसने क्षण भी के लिए भी इस पर ध्यान नहीं दिया था कि मेरे अगामी जीवन का क्या स्वरूप होगा। कभी सोचता कि प्रोफेसर हो जाऊँगा और खूब पुस्तकें लिखूँगा। कभी वकील बनने की भावना करता। कभी सोचता, यदि छात्रवृत्ति प्राप्त होगी तो सिविल सर्विस का उद्योग करूँगा। किसी एक ओर मन नहीं टिकता था।

परन्तु प्रतापचन्द्र उन विद्यार्थियों में से न था, जिनका सारा उद्योग वक्तृता और पुस्तकों ही तक परिमित रहता है। उसके संयम और योग्यता का एक छोटा भाग जनता के लाभार्थ भी व्यय होता था। उसने प्रकृति से उदार और दयालु हृदय पाया था और सर्वसाधारण से मिलन-जुलने और काम करने की योग्यता उसे पिता से मिली थी। इन्हीं कार्यों में उसका सदुत्साह पूर्ण रीति से प्रमाणित होता था। बहुधा सन्ध्या समय वह कीटगंज और कटरा की दुर्गन्धपूर्ण गलियों में घूमता दिखायी देता जहाँ विशेषकर नीची जाति के लोग बसते हैं। जिन लोगों की परछाई से उच्चवर्ण का हिन्दू भागता है, उनके साथ प्रताप टूटी खाट पर बैठ कर घंटों बातें करता और यही कारण था कि इन मुहल्लों के निवासी उस पर प्राण देते थे। प्रेमाद और शारीरिक सुख-प्रलोभ ये दो अवगुण प्रतापचन्द्र में नाममात्र को भी न थे। कोई अनाथ मनुष्य हो प्रताप उसकी सहायता के लिए तैयार था। कितनी रातें उसने झोपड़ों में कराहते हुए रोगियों के सिरहाने खड़े रहकर काटी थीं। इसी अभिप्राय से उसने जनता का लाभार्थ एक सभा भी स्थापित कर रखी थी और ढाई वर्ष के अल्प समय में ही इस सभा ने जनता की सेवा में इतनी सफलता प्राप्त की थी कि प्रयागवासियों को उससे प्रेम हो गया था।

कमलाचरण जिस समय प्रयाग पहुँचा, प्रतापचन्द्र ने उसका बड़ा आदर किया। समय ने उसके चित्त के द्वेष की ज्वाला शांत कर दी थी। जिस समय वह विरजन की बीमारी का समाचार पाकर बनारस पहुँचा था और उससे भेंट होते ही विरजन की दशा सुधर चली थी, उसी समय प्रताप चन्द्र को विश्वास हो गया था कि कमलाचरण ने उसके हृदय में वह स्थान नहीं पाया है जो मेरे लिए सुरक्षित है। यह विचार द्वेषाग्नि को शान्त करने के लिए काफी था। इससे अतिरिक्त उसे प्रायः यह विचार भी उद्विग्न किया करता था कि मैं ही सुशीला का प्राणघातक हूँ। मेरी ही कठोर वाणियों ने उस बेचारी का प्राणघात किया और उसी समय से जब कि सुशील ने मरते समय रो-रोकर उससे अपने अपराधों की क्षमा माँगी थी, प्रताप ने मन में ठान लिया

था। कि अवसर मिलेगा तो मैं इस पाप का प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा। कमलाचरण का आदर-सत्कार तथा शिक्षा-सुधार में उसे किसी अंश में प्रायश्चित्त को पूर्ण करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। वह उससे इस प्रकार व्यवहार रखता, जैसे छोटा भाई के साथ अपने समय का कुछ भाग उसकी सहायता करने में व्यय करता और ऐसी सुगमता से शिक्षक का कर्तव्य पालन करता कि शिक्षा एक रोचक कथा का रूप धारण कर लेती।

परन्तु प्रतापचन्द्र के इन प्रयत्नों के होते हुए भी कमलाचरण का जी यहाँ बहुत घबराता। सारे छात्रवास में उसके स्वाभावानुकूल एक मनुष्य भी न था, जिससे वह अपने मन का दुःख कहता। वह प्रताप से निस्संकोच रहते हुए भी चित्त की बहुत-सी बातें न कहता था। जब निर्जनता से जी अधिक घबराता तो विरजन को कोसने लगता कि मेरे सिर पर यह सब आपतियाँ उसी की लादी हुई हैं। उसे मुझसे प्रेम नहीं। मुख और लेखनी का प्रेम भी कोई प्रेम है ? मैं चाहे उस पर प्राण ही क्यों न वारुं, पर उसका प्रेम वाणी और लेखनी से बाहर न निकलेगा। ऐसी मूर्ति के आगे, जो पसीजना जानती ही नहीं, सिर पटकने से क्या लाभ। इन विचारों ने यहाँ तक जोर पकड़ा कि उसने विरजन को पत्र लिखना भी त्याग दिया। वह बेचारी अपने पत्रों में कलेजा निकलाकर रख देती, पर कमला उत्तर तक न देता। यदि देता भी तो रुखा और हृदयविदारक। इस समय विरजन की एक-एक बात, उसकी एक-एक चाल उसके प्रेम की शिथिलता का परिचय देती हुई प्रतीत होती थी। हाँ, यदि विस्मरण हो गयी थी तो विरजन की स्नेहमयी बातें, वे मतवाली आँखें जो वियोग के समय डबडबा गयी थीं और कोमल हाथ जिन्होंने उससे विनती की थी कि पत्र बराबर भेजते रहना। यदि वे उसे स्मरण हो आते, तो सम्भव था कि उसे कुछ संतोष होता। परन्तु ऐसे अवसरों पर मनुष्य की स्मरणशक्ति धोखा दे दिया करती है।

निदान, कमलाचरण ने अपने मन-बहलाव का एक ढंग सोच ही निकाला। जिस समय से उसे कुछ ज्ञान हुआ, तभी से उसे सौन्दर्य-वाटिका में भ्रमण करने की चाट पड़ी थी, सौन्दर्योपासना उसका स्वभाव हो गया था। वह उसके लिए ऐसी ही अनिवार्य थी, जैसे शरीर रक्षा के लिए भोजन। बोर्डिंग हाउस से मिली हुई एक सेठ की वाटिका थी और उसकी देखभाल के लिए माली नौकर था। उस माली के सरयूदेवी नाम की एक कुंवारी लड़की थी। यद्यपि वह परम सुन्दरी न थी, तथापि कमला सौन्दर्य का इतना इच्छुक न था, जितना किसी विनोद की सामग्री का। कोई भी स्त्री, जिसके शरीर पर यौवन की झलक हो, उसका मन बहलाने के लिए समुचित थी। कमला इस लड़की पर डोरे डालने लगा। सन्ध्या समय निरन्तर वाटिका की पटरियों पर टहलता हुआ दिखायी देता। और लड़के तो मैदान में कसरत करते, पर कमलाचरण वाटिका में आकर ताक-झाँक किया करता। धीरे-धीरे सरयूदेवी से परिचय हो गया। वह उससे गजरे मोल लेता और चौगुना मूल्य देता। माली को त्योहार के समय सबसे अधिक त्योहारी कमलाचरण ही से मिलती। यहाँ तक कि सरयूदेवी उसके प्रीति-रूपी जाल का आखेट हो गयी और एक-दो बार अन्धकार के पर्दे में परस्पर संभोग भी हो गया।

एक दिन सन्ध्या का समय था, सब विद्यार्थी सैर को गये हुए थे, कमला अकेला वाटिका में टहलता था और रह-रहकर माली के झोपड़ों की ओर झाँकता था। अचानक झोपड़े में से सरयूदेवी ने उसे संकेत द्वारा बुलाया। कमला बड़ी शीघ्रता से भीतर घुस गया। आज सरयूदेवी ने मलमल की साड़ी पहनी थी, जो कमलाबाबू का उपहार थी। सिर में सुगंधित तेल डाला था, जो कमला बाबू बनारस से लाये थे और एक छींट का सलूका पहने हुई थी, जो बाबू साहब ने उसके लिए बनवा दिया था। आज वह अपनी दृष्टि में परम सुन्दरी प्रतीत होती थी, नहीं तो कमला जैसा धनी मनुष्य उस पर क्यों पाण देता ? कमला खटोले पर बैठा हुआ सरयूदेवी के हाव-भाव को मतवाली दृष्टि से देख रहा था। उसे उस समय सरयूदेवी वृजरानी से किसी प्रकार कम सुन्दरी नहीं दीख पड़ती थी। वर्ण में तनिक सा अन्तर था, पर यह ऐसा कोई बड़ा अंतर नहीं। उसे सरयूदेवी का प्रेम सच्चा और उत्साहपूर्ण जान पड़ता था, क्योंकि वह जब कभी बनारस जाने की चर्चा करता, तो सरयूदेवी फूट-फूटकर रोने लगती और कहती कि मुझे भी लेते चलना। मैं तुम्हारा संग न छोड़ूँगी। कहाँ यह प्रेम की तीव्रता व उत्साह का बाहुल्य और कहाँ विरजन की उदासीन सेवा और निर्दयतापूर्ण अभ्यर्थना !

कमला अभी भलीभाँति आँखों को सँकने भी न पाया था कि अकस्मात् माली ने आकर द्वार खटखटाया। अब काटो तो शरीर में रुधिर नहीं। चेहरे का रंग उड़ गया। सरयूदेवी से गिड़गिड़ाकर बोला- मैं कहाँ जाऊँ? सरयूदेवी का ज्ञान आप ही शून्य हो गया, घबराहट में मुख से शब्द तक न निकला। इतने में

माली ने फिर किवाड़ खटखटाया। बेचारी सरयूदेवी विवश थी। उसने डरते-डरते किवाड़ खोल दिया। कमलाचरण एक कोने में श्वास रोककर खड़ा हो गया।

जिस प्रकार बलिदान का बकरा कटार के तले तड़पता है उसी प्रकार कोने में खड़े हुए कमला का कलेजा धड़क रहा था। वह अपने जीवन से निराश था और ईश्वर को सच्चे हृदय से स्मरण कर रहा था और कह रहा था कि इस बार इस आपत्ति से मुक्त हो जाऊंगा तो फिर कभी ऐसा काम न करूंगा।

इतने में माली की दृष्टि उस पर पड़ी, पहिले तो घबराया, फिर निकट आकर बोला- यह कौन खड़ा है? यह कौन है ?

इतना सुनना था कि कमलाचरण झपटकर बाहर निकला और फाटक की ओर जी छोड़कर भागा। माली एक डंडा हाथ में लिये 'लेना-लेना, भागने न पाये?' कहता हुआ पीछे-पीछे दौड़ा। यह वह कमला है जो माली को पुरस्कार व पारितोषिक दिया करता था, जिससे माली सरकार और हुजूर कहकर बातें करता था। वही कमला आज उसी माली सम्मुख इस प्रकार जान लेकर भागा जाता है। पाप अग्नि का वह कुण्ड है जो आदर और मान, साहस और धैर्य को क्षण-भर में जलाकर भस्म कर देता है।

कमलाचरण वृक्षों और लताओं की ओट में दौड़ता हुआ फाटक से बाहर निकला। सड़क पर ताँगा जा रहा था, जो बैठा और हाँफते-हाँफते अशक्त होकर गाड़ी के पटरे पर गिर पड़ा। यद्यपि माली ने फाटक भी पीछा न किया था, तथापि कमला प्रत्येक आने-जाने वाले पर चौंक-चौंककर दृष्टि डालता था, मानों सारा संसार शत्रु हो गया है। दुर्भाग्य ने एक और गुल खिलाया। स्टेशन पर पहुँचते ही घबराहट का मारा गाड़ी में जाकर बैठ गया, परन्तु उसे टिकट लेने की सुधि ही न रही और न उसे यह खबर थी कि मैं किधर जा रहा हूँ। वह इस समय इस नगर से भागना चाहता था, चाहे कहीं हो। कुछ दूर चला था कि अंग्रेज अफसर लालटेन लिये आता दिखाई दिया। उसके संग एक सिपाही भी था। वह यात्रियों का टिकट देखता चला आता था; परन्तु कमला ने जान कि कोई पुलिस अफसर है। भय के मारे हाथ-पाँव सनसनाने लगे, कलेजा धड़कने लगा। जब अंग्रेज दूसरी गड़ियों में जाँच करता रहा, तब तक तो वह कलेजा कड़ा किये प्रकार बैठा रहा, परन्तु ज्यों उसके डिब्बे का फाटक खुला कमला के हाथ-पाँव फूल गये, नेत्रों के सामने अंधेरा छा गया। उतावलेपन से दूसरी ओर का किवाड़ खोलकर चलती हुई रेलगाड़ी पर से नीचे कूद पड़ा। सिपाही और रेलवाले साहब ने उसे इस प्रकार कूदते देखा तो समझा कि कोई अभ्यस्त डाकू है, मारे हर्ष के फूले न समाये कि पारितोषिक अलग मिलेगा और वेतनोन्नति अलग होगी, झट लाल बत्ती दिखायी। तनिक देर में गाड़ी रुक गयी। अब गार्ड, सिपाही और टिकट वाले साहब कुछ अन्य मनुष्यों के सहित गाड़ी उतर गयी। अब गार्ड, सिपाही और टिकट वाले साहब कुछ अन्य मनुष्यों के सहित गाड़ी से उतर पड़े और लालटेन ले-लेकर इधर-उधर देखने लगे। किसी ने कहा-अब उसकी धून भी न मिलेगी, पक्का डकैत था। कोई बोला- इन लोगों को कालीजी का इष्ट रहता है, जो कुछ न कर दिखायें, थोड़ा हैं परन्तु गार्ड आगे ही बढ़ता गया। वेतन वृद्धि की आशा उसे आगे ही लिये जाती थी। यहाँ तक कि वह उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ कमला गाड़ी से कूदा था। इतने में सिपाही ने खड़के की ओर सकंकेत करके कहा- देखो, वह श्वेत रंग की क्या वस्तु है ? मुझे तो कोई मनुष्य-सा प्रतीत होता है और लोगों ने देखा और विश्वास हो गया कि अवश्य ही दुष्ट डाकू यहाँ छिपा हुआ है, चलकेर उसको घेर लो ताकि कहीं निकलने न पावे, तनिक सावधान रहना डाकू प्राणपर खेल जाते हैं। गार्ड साहब ने पिस्तौल सँभाली, मियाँ सिपाही ने लाठी तानी। कई स्त्रीयों ने जूते उतार कर हाथ में ले लिये कि कहीं आक्रमण कर बैठा तो भागने में सुभीता होगा। दो मनुष्यों ने ढले उठा लिये कि दूर ही से लक्ष्य करेंगे। डाकू के निकट कौन जाय, किसे जी भारी है? परन्तु जब लोगों ने समीप जाकर देखा तो न डाकू था, न डाकू भाई; किन्तु एक सभ्य-स्वरूप, सुन्दर वर्ण, छरहरे शरीर का नवयुवक पृथ्वी पर औंधे मुख पड़ा है और उसके नाक और कान से धीरे-धीरे रुधिर बह रहा है।

कमला ने इधर साँस तोड़ी और विरजन एक भयानक स्वप्न देखकर चौंक पड़ी। सरयूदेवी ने विरजन का सोहाग लूट लिया।

सौभाग्यवती स्त्री के लिए उसक पति संसार की सबसे प्यारी वस्तु होती है। वह उसी के लिए जीती और मारती है। उसका हँसना-बोलना उसी के प्रसन्न करने के लिए और उसका बनाव-श्रृंगार उसी को लुभाने के लिए होता है। उसका सोहाग जीवन है और सोहाग का उठ जाना उसके जीवन का अन्त है।

कमलाचरण की अकाल-मृत्यु वृजरानी के लिए मृत्यु से कम न थी। उसके जीवन की आशाएँ और उमंगें सब मिट्टी में मिल गयीं। क्या-क्या अभिलाषाएँ थीं और क्या हो गया? प्रति-क्षण मृत कमलाचरण का चित्र उसके नेत्रों में भ्रमण करता रहता। यदि थोड़ी देर के लिए उसकी आँखें झपक जातीं, तो उसका स्वरूप साक्षात् नेत्रों के सम्मुख आ जाता।

किसी-किसी समय में भौतिक त्रय-तापों को किसी विशेष व्यक्ति या कुटुम्ब से प्रेम-सा हो जाता है। कमला का शोक शान्त भी न हुआ था बाबू श्यामाचरण की बारी आयी। शाखा-भेदन से वृक्ष को मुरझाया हुआ न देखकर इस बार दुर्देव ने मूल ही काट डाला। रामदीन पाँडे बड़ा दंभी मनुष्य था। जब तक डिप्टी साहब मझगाँव में थे, दबका बैठा रहा, परन्तु ज्योंही वे नगर को लौटे, उसी दिन से उसने उत्पात करना आरम्भ किया। सारा गाँव-का-गाँव उसका शत्रु था। जिस दृष्टि से मझगाँव वालों ने होली के दिन उसे देखा, वह दृष्टि उसके हृदय में काँटे की भाँति खटक रही थी। जिस मण्डल में मझगाँव स्थित था, उसके थानेदार साहब एक बड़े घाघ और कुशल रिश्वती थे। सहस्रों की रकम पचा जायें, पर डकार तक न लें। अभियोग बनाने और प्रमाण गढ़ने में ऐसे अभ्यस्त थे कि बाट चलते मनुष्य को फाँस लें और वह फिर किसी के छुड़ाये न छूटे। अधिकार वर्ग उसक हथकण्डों से विज्ञ था, पर उनकी चतुराई और कार्यक्षमता के आगे किसी का कुछ बस न चलता था। रामदीन थानेदार साहब से मिला और अपने हद्दोग की औषधि माँगी। उसक एक सप्ताह पश्चात् मझगाँव में डाका पड़ गया। एक महाजन नगर से आ रहा था। रात को नम्बरदार के यहाँ ठहरा। डाकुओं ने उसे लौटकर घर न जाने दिया। प्रातःकाल थानेदार साहब तहकीकात करने आये और एक ही रस्सी में सारे गाँव को बाँधकर ले गये।

दैवात् मुकदमा बाबू श्यामाचरण की इजलास में पेश हुआ। उन्हें पहले से सारा कच्चा-चिट्ठा विदित था और ये थानेदार साहब बहुत दिनों से उनकी आँखों पर चढ़े हुए थे। उन्होंने ऐसी बाल की खाल निकाली की थानेदार साहब की पोल खुल गयी। छः मास तक अभियोग चला और धूम से चला। सरकारी वकीलों ने बड़े-बड़े उपाय किये परन्तु घर के भेदी से क्या छिप सकता था? फल यह हुआ कि डिप्टी साहब ने सब अभियुक्तों को बेदाग छोड़ दिया और उसी दिन सायंकाल को थानेदार साहब मुअत्तल कर दिये गये।

जब डिप्टी साहब फैसला सुनाकर लौटे, एक हितचिन्तक कर्मचारी ने कहा- हुजूर, थानेदार साहब से सावधान रहियेगा। आज बहुत झल्लाया हुआ था। पहले भी दो-तीन अफसरों को धोखा दे चुका है। आप पर अवश्य वार करेगा। डिप्टी साहब ने सुना और मुस्कराकर उस मनुष्य को धन्यवाद दिया; परन्तु अपनी रक्षा के लिए कोई विशेष यत्न न किया। उन्हें इसमें अपनी भीरुता जान पड़ती थी। राधा अहीर बड़ा अनुरोध करता रहा कि मैं। आपके संग रहूँगा, काशी भर भी बहुत पीछे पड़ा रहा ; परन्तु उन्होंने किसी को संग न रखा। पहिले ही की तरह अपना काम करते रहे।

जालिम खाँ बात का धनी था, वह जीवन से हाथ धोकर बाबू श्यामाचरण के पीछे पड़ गया। एक दिन वे सैर करके शिवपुर से कुछ रात गये लौट रहे थे पागलखाने के निकट कुछ फिटिन का घोड़ा बिदकां गाड़ी रुक गयी और पलभर में जालिम खाँ ने एक वृक्ष की आड़ से पिस्तौल चलायी। पड़ाके का शब्द हुआ और बाबू श्यामाचरण के वक्षस्थल से गोली पार हो गयी। पागलखाने के सिपाही दौड़े। जालिम खाँ पकड़ लिया गया, साइस ने उसे भागने न दिया था।

इस दुर्घटनाओं ने उसके स्वभाव और व्यवहार में अकस्मात् बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया। बात-बात पर विरजन से चिढ़ जाती और कटूक्तियों से उसे जलाती। उसे यह भ्रम हो गया कि ये सब आपातियाँ इसी बहू की लायी हुई हैं। यही अभागिन जब से घर आयी, घर का सत्यानाश हो गया। इसका पौरा बहुत निकृष्ट है। कई बार उसने खुलकर विरजन से कह भी दिया कि-तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। मैं क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ हैं ! विरजन ये बातें सुनती और कलेजा थामकर रह जाती। जब दिन ही बुरे आ गये, तो भली बातें क्योंकर सुनने में आयें। यह आठों पहर का ताप उसे दुःख के आंसू भी न

बहाने देता। आँसू तब निकलते हैं। जब कोई हितैषी हा और दुख को सुने। ताने और व्यंग्य की अग्नि से आँसू जल जाते हैं।

एक दिन विरजन का चित्त बैठे-बैठे घर में ऐसा घबराया कि वह तनिक देर के लिए वाटिका में चली आयी। आह ! इस वाटिका में कैसे-कैसे आनन्द के दिन बीते थे ! इसका एक-एक पथ मरने वाले के असीम प्रेम का स्मारक था। कभी वे दिन भी थे कि इन फूलों और पत्तियों को देखकर चित्त प्रफुल्लित होता था और सुरभित वायु चित्त को प्रमोदित कर देती थी। यही वह स्थल है, जहाँ अनेक सन्ध्याएँ प्रेमालाप में व्यतीत हुई थीं। उस समय पुष्पों की कलियाँ अपने कोमल अधरों से उसका स्वागत करती थीं। पर शोक! आज उनके मस्तक झुके हुए और अधर बन्द थे। क्या यह वही स्थान न था जहाँ 'अलबेली मालिन' फूलों के हार गूँथती थी? पर भोली मालिन को क्या मालूम था कि इसी स्थान पर उसे अपने नेतरों से निकले हुए मोतियों को हार गूँथने पड़ेगें। इन्हीं विचारों में विरजन की दृष्टि उस कुंज की ओर उठ गयी जहाँ से एक बार कमलाचरण मुस्कराता हुआ निकला था, मानो वह पत्तियों का हिलना और उसके वस्त्रों की झलक देख रही है। उससे मुख पर उसे समय मन्द-मन्द मुस्कान-सी प्रकट होती थी, जैसे गंगा में डूबते हुश्र्य की पीली और मलिन किणों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। आचानक प्रेमवती ने आकर कर्णकटु शब्दों में कहा- अब आपका सैर करने का शौक हुआ है !

विरजन खड़ी हो गई और रोती हुई बोली-माता ! जिसे नारायण ने कुचला, उसे आप क्यों कुचलती हैं !

निदान प्रेमवती का चित्त वहाँ से ऐसा उचाट हुआ कि एक मास के भीतर सब सामान औने-पौने बेचकर मझगाँव चली गयी। वृजरानी को संग न लिया। उसका मुख देखने से उसे घृणा हो गयी थी। विरजन इस विस्तृत भवन में अकेली रह गयी। माधवी के अतिरिक्त अब उसका कोई हितैषी न रहा। सुवामा को अपनी मुँहबोली बेटी की विपत्तियों का ऐसा हीशोक हुआ, जितना अपनी बेटी का होता। कई दिन तक रोती रही और कई दिन बराबर उसे सझाने के लिए आती रही। जब विरजन अकेली रह गयी तो सुवामा ने चाहा हहक यह मेरे यहाँ उठ आये और सुख से रहे। स्वयं कई बार बुलाने गयी, पर विरजन किसी प्रकार जाने को राजी न हुई। वह सोचती थी कि ससुर को संसार से सिधारे भी तीन मास भी नहीं हुए, इतनी जल्दी यह घर सूना हो जायेगा, तो लोग कहेंगे कि उनके मरते ही सास और बेहु लड़ मरीं। यहाँ तक कि उसके इस हठ से सुवामा का मन मोटा हो गया।

मझगाँव में प्रेमवती ने एक अंधेर मचा रखी थी। असामियों को कटु वजन कहती। कारिन्दा के सिर पर जूती पटक दी। पटवारी को कोसा। राधा अहीर की गाय बलात् छीन ली। यहाँ कि गाँव वाले घबरा गये ! उन्होंने बाबू राधाचरण से शिकायत की। राधाचरण ने यह समाचार सुना तो विश्वास हो गया कि अवश्य इन दुर्घटनाओं ने अम्माँ की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। इस समय किसी प्रकार इनका मन बहलाना चाहिए। सेवती को लिखा कि तुम माताजी के पास चली जाओ और उनके संग कुछ दिन रहो। सेवती की गोद में उन दिनों एक चाँद-सा बालक खेल रहा था और प्राणनाथ दो मास की छुट्टी लेकर दरभंगा से आये थे। राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये थे। ऐसे अवसर पर सेवती कैस आ सकती थी? तैयारियाँ करते-करते महीनों गुजर गये। कभी बच्चा बीमार पड़ गया, कभी सास रुष्ट हो गयी कभी साइत न बनी। निदान छठे महीने उसे अवकाश मिला। वह भी बड़े विपत्तियों से।

परन्तु प्रेमवती पर उसका आने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह उसके गले मिलकर रोयी भी नहीं, उसके बच्चे की ओर आँख उठाकर भी न देखा। उसका हृदय में अब ममता और प्रेम नाम-मात्र को भी न रह गया। जैसे ईख से रस निकाल लेने पर केवल सीठी रह जाती है, उसकी प्रकार जिस मनुष्य के हृदय से प्रेम निकल गया, वह अस्थि-चर्म का एक ढेर रह जाता है। देवी-देवता का नाम मुख पर आते ही उसके तेवर बदल जाते थे। मझगाँव में जन्माष्टमी हुई। लोगों ने ठाकुरजी का व्रत रख और चन्दे से नाम कराने की तैयारियाँ करने लगे। परन्तु प्रेमवती ने ठीक जन्म के अवसर पर अपने घर की मूर्ति खेत से फिकवा दी। एकादशी व्रत टूटा, देवताओं की पूजा छूटी। वह प्रेमवती अब प्रेमवती ही न थी।

सेवती ने ज्यों-त्यों करके यहाँ दो महीने काटे। उसका चित्त बहुत घबराता। कोई सखी-सहेली भी न थी, जिसके संग बैठकर दिन काटती। विरजन ने तुलसा को अपनी सखी बना लिया था। परन्तु सेवती का स्भव सरल न था। ऐसी स्त्रीयों से मेल-जोल करने में वह अपनी मानहानि समझती थी। तुलसा बेचारी कई बार आयी, परन्तु जब दख कि यह मन खोलकर नहीं मिलती तो आना-जाना छोड़ दिया।

तीन मास व्यतीत हो चुके थे। एक दिन सेवती दिन चढ़े तक सोती रही। प्राणनाथ ने रात को बहुत रुलाया था। जब नींद उचटी तो क्या देखती है कि प्रेमवती उसके बच्चे को गोद में लिय चूम रही है। कभी

आखें से लगाती है, कभी छाती से चिपटाती है। सामने अंगीठी पर हलुवा पक रहा है। बच्चा उसकी ओर उंगली से संकेत करके उछलता है कि कटोरे में जा बैठूँ और गरम-गरम हलुवा चखूँ। आज उसक मुखमण्डल कमल की भाँति खिला हुआ है। शायद उसकी तीव्र दृष्टि ने यह जान लिया है कि प्रेमवती के शुष्क हृदय में प्रेमे ने आज फिर से निवास किया है। सेवती को विश्वास न हुआ। वह चारपाई पर पुलकित लोचनों से ताक रही थी मानों स्वप्न देख रही थी। इतने में प्रेमवती प्यार से बोली- उठो बेटी ! उठो ! दिन बहुत चढ़ आया है।

सेवती के रोंगटे खड़े हो गओ और आंखें भर आयी। आज बहुत दिनों के पश्चात माता के मुख से प्रेममय बचन सुने। झट उठ बैठी और माता के गले लिपट कर रोने लगी। प्रेमवती की खें से भी आंसू की झड़ी लग गयीय, सूखा वृक्ष हरा हुआ। जब दोनों के आँसू थमे तो प्रेमवती बोली-सितो ! तुम्हें आज यह बातें अचरज प्रतीत होती है ; हाँ बेटी, अचरज ही न। मैं कैसे रोऊँ, जब आंखों में आंसू ही रहे? प्यार कहाँ से लाऊँ जब कलेजा सूखकर पत्थर हो गया? ये सब दिनों के फेर हैं। आँसू उनके साथ गये और कमला के साथ। अज न जाने ये दो बूँद कहाँ से निकल आये? बेटी ! मेरे सब अपराध क्षमा करना।

यह कहते-कहते उसकी आँखें झपकने लगीं। सेवती घबरा गयी। माता हो बिस्तर पर लेटा दिया और पख झलने लगी। उस दिन से प्रेमवती की यह दशा हो गयी कि जब देखों रो रही है। बच्चे को एक क्षण लिए भी पास से दूर नहीं करती। महरियों से बोलती तो मुख से फूल झड़ते। फिर वही पहिले की सुशील प्रेमवती हो गयी। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसक हृदय पर से एक पर्दा-सा उठ गया है ! जब कड़ाके का जाड़ा पड़ता है, तो प्रायः नदियाँ बर्फ से ढँक जाती है। उसमें बसनेवाले जलचर बर्फ में पर्दे के पीछे छिप जाते हैं, नौकाएँ फँस जाती है और मंदगति, रजतवर्ण प्राण-संजीवन जल-स्रोत का स्वरूप कुछ भी दिखायी नहीं देता है। यद्यपि बर्फ की चद्दर की ओट में वह मधुर निद्रा में अलसित पड़ा रहता था, तथापि जब गरमी का साम्राज्य होता है, तो बर्फ पिघल जाती है और रजतवर्ण नदी अपनी बर्फ का चद्दर उठा लेती है, फिर मछलियाँ और जलजन्तु आ बहते हैं, नौकाओं के पाल लहराने लगते हैं और तट पर मनुष्यों और पक्षियों का जमघट हो जाता है।

परन्तु प्रेमवती की यह दशा बहुत दिनों तक स्थिर न रही। यह चेतनता मानो मृत्यु का सन्देश थी। इस चित्तोद्विग्नता ने उसे अब तक जीवन-कारावास में रखा था, अन्था प्रेमवती जैसी कोमल-हृदय स्त्री विपत्तियों के ऐसे झोंके कदापि न सह सकती।

सेवती ने चारों ओर तार दिलवाये कि आकर माताजी को देख जाओ पर कहीं से कोई न आया। प्राणनाथ को छुट्टी न मिली, विरजन बीमार थी, रहे राधाचरण। वह नैनीताल वायु-परिवर्तन करने गये हुए थे। प्रेमवती को पुत्र ही को देखने की लालसा थी, पर जब उनका पत्र आ गया कि इस समय मैं नहीं आ सकता, तो उसने एक लम्बी साँस लेकर आँखे मूँद ली, और ऐसी सोयी कि फिर उठना नसीब न हुआ !

मानव हृदय एक रहस्यमय वस्तु है। कभी तो वह लाखों की ओर आँख उठाकर नहीं देखता और कभी कौड़ियों पर फिसल पड़ता है। कभी सैकड़ों निर्दोषों की हत्या पर आह 'तक' नहीं करता और कभी एक बच्चे को देखकर रो देता है। प्रतापचन्द्र और कमलाचरण में यद्यपि सहोदर भाइयों का-सा प्रेम था, तथापि कमला की आकस्मिक मृत्यु का जो शोक चाहिये वह न हुआ। सुनकर वह चौंक अवश्य पड़ा और थोड़ी देर के लिए उदास भी हुआ, पर शोक जो किसी सच्चे मित्र की मृत्यु से होता है उसे न हुआ। निस्संदेह वह विवाह के पूर्व ही से विरजन को अपनी समझता था तथापि इस विचार में उसे पूर्ण सफलता कभी प्राप्त न हुई। समय-समय पर उसका विचार इस पवित्र सम्बन्ध की सीमा का उल्लंघन कर जाता था। कमलाचरण से उसे स्वतः कोई प्रेम न था। उसका जो कुछ आदर, मान और प्रेम वह करता था, कुछ तो इस विचार से कि विरजन सुनकर प्रसन्न होगी और इस विचार से कि सुशील की मृत्यु का प्रायश्चित्त इसी प्रकार हो सकता है। जब विरजन ससुराल चली आयी, तो अवश्य कुछ दिनों प्रताप ने उसे अपने ध्यान में न आने दिया, परन्तु जब से वह उसकी बीमारी का समाचार पाकर बनारस गया था और उसकी भेंट ने विरजन पर संजीवनी बूटी का काम किया था, उसी दिन से प्रताप को विश्वास हो गया था कि विरजन के हृदय में कमला ने वह स्थान नहीं पाया जो मेरे लिए नियत था।

प्रताप ने विरजन को परम करणापूर्ण शोक-पत्र लिखा पर पत्र लिखता जाता था और सोचता जाता था कि इसका उस पर क्या प्रभाव होगा? सामान्यतः समवेदना प्रेम को प्रौढ़ करती है। क्या आश्चर्य है जो यह पत्र कुछ काम कर जाय? इसके अतिरिक्त उसकी धार्मिक प्रवृत्ति ने विकृत रूप धारण करके उसके मन में यह मिथ्या विचार उत्पन्न किया कि ईश्वर ने मेरे प्रेम की प्रतिष्ठा की और कमलाचरण को मेरे मार्ग से हटा दिया, मानो यह आकाश से आदेश मिला है कि अब मैं विरजन से अपने प्रेम का पुरस्कार लूँ। प्रताप यह जो जानता था कि विरजन से किसी ऐसी बात की आशा करना, जो सदाचार और सभ्यता से बाल बराबर भी हटी हुई हो, मूर्खता है। परन्तु उसे विश्वास था कि सदाचार और सतीत्व के सीमान्तर्गत यदि मेरी कामनाएँ पूरी हो सकें, तो विरजन अधिक समय तक मेरे साथ निर्दयता नहीं कर सकती।

एक मास तक ये विचार उसे उद्विग्न करते रहे। यहाँ तक कि उसके मन में विरजन से एक बार गुप्त भेंट करने की प्रबल इच्छा भी उत्पन्न हुई। वह यह जानता था कि अभी विरजन के हृदय पर तात्कालिकघव है और यदि मेरी किसी बात या किसी व्यवहार से मेरे मन की दुश्चेष्टा की गन्ध निकली, तो मैं विरजन की दृष्टि से हमेशा के लिए गिर जाऊँगा। परन्तु जिस प्रकार कोई चोर रुपयों की राशि देखकर धैर्य नहीं रख सकता है, उसकी प्रकार प्रताप अपने मन को न रोक सका। मनुष्य का प्रारब्ध बहुत कुछ अवसर के हाथ से रहता है। अवसर उसे भला नहीं मानता है और बुरा भी। जब तक कमलाचरण जीवित था, प्रताप के मन में कभी इतना सिर उठाने को साहस न हुआ था। उसकी मृत्यु ने मानो उसे यह अवसर दे दिया। यह स्वार्थपता का मद यहाँ तक बढ़ा कि एक दिन उसे ऐसाभस होने लगा, मानों विरजन मुझे स्मरण कर रही है। अपनी व्यग्रता से वह विरजन का अनुमान करने लगा। बनारस जाने का इरादा पक्का हो गया।

दो बजे थे। रात्रि का समय था। भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। निद्रा ने सारे नगर पर एक घटाटोप चादर फैला रखी थी। कभी-कभी वृक्षों की सनसनाहट सुनायी दे जाती थी। धुआँ और वृक्षों पर एक काली चद्दर की भाँति लिपटा हुआ था और सड़क पर लालटेनें धुएँ की कालिमा में ऐसी दृष्टि गत होती थीं जैसे बादल में छिपे हुए तारे। प्रतापचन्द्र रेलगाड़ी पर से उतरा। उसका कलेजा बाँसों उछल रहा था और हाथ-पाँव काँप रहे थे। वह जीवन में पहला ही अवसर था कि उसे पाप का अनुभव हुआ! शोक है कि हृदय की यह दशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। वह दुर्गन्ध-मार्ग को पूरा कर लेती है। जिस मनुष्य ने कभी मदिरा नहीं पी, उसे उसकी दुर्गन्ध से घृणा होती है। जब प्रथम बार पीता है, तो घण्टे उसका मुख कड़वा रहता है और वह आश्चर्य करता है कि क्यों लोग ऐसी विषैली और कड़वी वस्तु पर आसक्त हैं। पर थोड़े ही दिनों में उसकी घृणा दूर हो जाती है और वह भी लाल रस का दास बन जाता है। पाप का स्वाद मदिरा से कहीं अधिक भयंकर होता है।

प्रतापचन्द्र अंधेरे में धीरे-धीरे जा रहा था। उसके पाँव पेग से नहीं उठते थे क्योंकि पाप ने उनमें बेड़ियाँ डाल दी थी। उस आह्लाद का, जो ऐसे अवसर पर गति को तीव्र कर देता है, उसके मुख पर कोई लक्षण न था। वह चलते-चलते रुक जाता और कुछ सोचकर आगे बढ़ता था। प्रेत उसे पास के खड्डे में कैसा लिये जाता है?

प्रताप का सिर धम-धम कर रहा था और भय से उसकी पिंडलियाँ काँप रही थीं। सोचता-विचारता घण्टे भर में मुन्शी श्यामाचरण के विशाल भवन के सामने जा पहुँचा। आज अन्धकार में यह भवन बहुत ही भयावह प्रतीत होता था, मानो पाप का पिशाच सामने खड़ा है। प्रताप दीवार की ओट में खड़ा हो गया, मानो किसी ने उसका पाँव बाँध दिये हैं। आध घण्टे तक वह यही सोचता रहा कि लौट चलूँ या भीतर जाऊँ? यदि किसी ने देख लिया बड़ा ही अनर्थ होगा। विरजन मुझे देखकर मन में क्या सोचेगी? कहीं ऐसा न हो कि मेरा यह व्यवहार मुझे सदा के लिए उसकी दृष्टि से गिरा दे। परन्तु इन सब सन्देहों पर पिशाच का आकर्षण प्रबल हुआ। इन्द्रियों के वश में होकर मनुष्य को भले-बुरे का ध्यान नहीं रह जाता। उसने चित्त को दृढ़ किया। वह इस कायरता पर अपने को धिक्कार देने लगा, तदन्तर घर में पीछे की ओर जाकर वाटिका की चहारदीवारी से फाँद गया। वाटिका से घर जाने के लिए एक छोटा-सा द्वार था। दैवयोग से वह इस समय खुला हुआ था। प्रताप को यह शकुन-सा प्रतीत हुआ। परन्तु वस्तुतः यह अधर्म का द्वार था। भीतर जाते हुए प्रताप के हाथ थराने लगे। हृदय इस वेग से धड़कता था; मानो वह छाती से बाहर निकल पड़ेगा। उसका दम घुट रहा था। धर्म ने अपना सारा बल लगा दिया। पर मन का प्रबल वेग न रुक सका। प्रताप द्वार के भीतर प्रविष्ट हुआ। आंगन में तुलसी के चबूतरे के पास चोरों की भाँति खड़ा सोचने लगा कि विरजन से क्योंकर भेंट होगी? घर के सब किवाड़ बन्द हैं? क्या विरजन भी यहाँ से चली गयी? अचानक उसे एक बन्द दरवाजे की दरारों से प्रकाश की झलक दिखाई दी। दबे पाँव उसी दरार में आँखें लगाकर भीतर का दृश्य देखने लगा।

विरजन एक सफेद साड़ी पहले, बाल खोले, हाथ में लेखनी लिये भूमि पर बैठी थी और दीवार की ओर देख-देखकर कागज पर लिखती जाती थी, मानो कोई कवि विचार के समुद्र से मोती निकाल रहा है। लेखनी दाँतों तले दबाती, कुछ सोचती और लिखती फिर थोड़ी देर के पश्चात् दीवार की ओर ताकने लगती। प्रताप बहुत देर तक श्वास रोके हुए यह विचित्र दृश्य देखता रहा। मन उसे बार-बार ठोकर देता, पर यह धर्म का अन्तिम गढ़ था। इस बार धर्म का पराजित होना मानो हृदय में पिशाच का स्थान पाना था। धर्म ने इस समय प्रताप को उस खड्डे में गिरने से बचा लिया, जहाँ से आमरण उसे निकलने का सौभाग्य न होता। वरन् यह कहना उचित होगा कि पाप के खड्डे से बचानेवाला इस समय धर्म न था, वरन् दुष्परिणाम और लज्जा का भय ही था। किसी-किसी समय जब हमारे सदभाव पराजित हो जाते हैं, तब दुष्परिणाम का भय ही हमें कर्तव्यच्युत होने से बचा लेता है। विरजन को पीले बदन पर एक ऐसा तेज था, जो उसके हृदय की स्वच्छता और विचार की उच्चता का परिचय दे रहा था। उसके मुखमण्डल की उज्ज्वलता और दृष्टि की पवित्रता में वह अग्नि थी; जिसने प्रताप की दुश्चेष्टाओं को क्षणमात्र में भस्म कर दिया! उसे ज्ञान हो गया और अपने आत्मिक पतन पर ऐसी लज्जा उत्पन्न हुई कि वहीं खड़ा रोने लगा।

इन्द्रियों ने जितने निकृष्ट विकार उसके हृदय में उत्पन्न कर दिये थे, वे सब इस दृश्य ने इस प्रकार लोप कर दिये, जैसे उजाला अंधेरे को दूर कर देता है। इस समय उसे यह इच्छा हुई कि विरजन के चरणों पर गिरकर अपने अपराधों की क्षमा माँगे। जैसे किसी महात्मा संन्यासी के सम्मुख जाकर हमारे चित्त की दशा हो जाती है, उसकी प्रकार प्रताप के हृदय में स्वतः प्रायश्चित्त के विचार उत्पन्न हुए। पिशाच यहाँ तक लाया, पर आगे न ले जा सका। वह उलटे पाँवों फिरा और ऐसी तीव्रता से वाटिका में आया और चहारदीवारी से कूछा, मानो उसका कोई पीछा करता है।

अरूणोदय का समय हो गया था, आकाश में तारे झिलमिल रहे थे और चक्की का घुर-घुर शब्द कर्णगोचर हो रहा था। प्रताप पाँव दबाता, मनुष्यों की आँखें बचाता गंगाजी की ओर चला। अचानक उसने सिर पर हाथ रखा तो टोपी का पता न था और जेब जेब में घड़ी ही दिखाई दी। उसका कलेजा सन्न-से हो गया। मुँह से एक हृदय-वेधक आह निकल पड़ी।

कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो क्षणमात्र में मनुष्य का रूप पलट देती हैं। कभी माता-पिता की एक तिरछी चितवन पुत्र को सुयश के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है और कभी स्त्री की एक शिक्षा पति के ज्ञान-चक्षुओं को खोल देती है। गर्वशील पुरुष अपने सगों की दृष्टियों में अपमानित होकर संसार का भार बनना नहीं चाहते। मनुष्य जीवन में ऐसे अवसर ईश्वरदत्त होते हैं। प्रतापचन्द्र के जीवन में भी वह शुभ अवसर था, जब वह संकीर्ण गलियों में होता हुआ गंगा किनारे आकर बैठा और शोक तथा लज्जा के अश्रु प्रवाहित करने लगा। मनोविकार की प्रेरणाओं ने उसकी अधोगति में कोई कसर उठा न रखी थी परन्तु उसके लिए यह कठोर कृपालु गुरु की ताड़ना प्रमाणित हुई। क्या यह अनुभवसिद्ध नहीं है कि विष भी समयानुसार अमृत का काम करता है ?

जिस प्रकार वायु का झोंका सुलगती हुई अग्नि को दहका देता है, उसी प्रकार बहुधा हृदय में दबे हुए उत्साह को भड़काने के लिए किसी बाह्य उद्योग की आवश्यकता होती है। अपने दुखों का अनुभव और दूसरों की आपत्ति का दृश्य बहुधा वह वैराग्य उत्पन्न करता है जो सत्संग, अध्ययन और मन की प्रवृत्ति से भी संभव नहीं। यद्यपि प्रतापचन्द्र के मन में उत्तम और निस्वार्थ जीवन व्यतीत करने का विचार पूर्व ही से था, तथापि मनोविकार के धक्के ने वह काम एक ही क्षण में पूरा कर दिया, जिसके पूरा होने में वर्ष लगते। साधारण दशाओं में जाति-सेवा उसके जीवन का एक गौण कार्य होता, परन्तु इस चेतावनी ने सेवा को उसके जीवन का प्रधान उद्देश्य बना दिया। सुवामा की हार्दिक अभिलाषा पूर्ण होने के सामान पैदा हो गये। क्या इन घटनाओं के अन्तर्गत कोई अज्ञात प्रेरक शक्ति थी? कौन कह सकता है?

विदुषी वृजरानी

जब से मुंशी संजीवनलाल तीर्थ यात्रा को निकले और प्रतापचन्द्र प्रयाग चला गया उस समय से सुवामा के जीवन में बड़ा अन्तर हो गया था। वह ठेके के कार्य को उन्नत करने लगी। मुंशी संजीवनलाल के समय में भी व्यापार में इतनी उन्नति नहीं हुई थी। सुवामा रात-रात भर बैठी ईंट-पत्थरों से माथा लड़ाया करती और गारे-चूने की चिंता में व्याकुल रहती। पाई-पाई का हिसाब समझती और कभी-कभी स्वयं कुलियों के कार्य की देखभाल करती। इन कार्यों में उसकी ऐसी प्रवृत्ति हुई कि दान और व्रत से भी वह पहले का-सा प्रेम न रहा। प्रतिदिन आय वृद्धि होने पर भी सुवामा ने व्यय किसी प्रकार का न बढ़ाया। कौड़ी-कौड़ी दाँतो से पकड़ती और यह सब इसलिए कि प्रतापचन्द्र धनवान हो जाए और अपने जीवन-पर्यन्त सान्न्द रहे।

सुवामा को अपने होनहार पुत्र पर अभिमान था। उसके जीवन की गति देखकर उसे विश्वास हो गया था कि मन में जो अभिलाषा रखकर मैंने पुत्र माँगा था, वह अवश्य पूर्ण होगी। वह कालेज के प्रिंसिपल और प्रोफेसरों से प्रताप का समाचार गुप्त रीति से लिया करती थी और उनकी सूचनाओं का अध्ययन उसके लिए एक रसेचक कहानी के तुल्य था। ऐसी दशा में प्रयाग से प्रतापचन्द्र को लोप हो जाने का तार पहुँचा मानों उसके हृदय पर वज्र का गिरना था। सुवामा एक ठण्डी साँसे ले, मस्तक पर हाथ रख बैठ गयी। तीसरे दिन प्रतापचन्द्र की पुस्त, कपड़े और सामग्रियाँ भी आ पहुँची, यह घाव पर नमक का छिड़काव था।

प्रेमवती के मरे का समाचार पाते ही प्राणनाथ पटना से और राधाचरण नैनीताल से चले। उसके जीते-जी आते तो भेंट हो जाती, मरने पर आये तो उसके शव को भी देखने को सौभाग्य न हुआ। मृतक-संस्कार बड़ी धूम से किया गया। दो सप्ताह गाँव में बड़ी धूम-धाम रही। तत्पश्चात् मुरादाबाद चले गये और प्राणनाथ ने पटना जाने की तैयारी प्रारम्भ कर दी। उनकी इच्छा थी कि स्त्रीको प्रयाग पहुँचाते हुए पटना जायँ। पर सेवती ने हठ किया कि जब यहाँ तक आये हैं, तो विरजन के पास भी अवश्य चलना चाहिए नहीं तो उसे बड़ा दुःख होगा। समझेगी कि मुझे असहाय जानकर इन लोगों ने भी त्याग दिया।

सेवती का इस उचाट भवन में आना मानो पुष्पों में सुगन्ध में आना था। सप्ताह भर के लिए सुदिन का शुभागमन हो गया। विरजन बहुत प्रसन्न हुई और खूब रोयी। माधवी ने मुन्नू को अंक में लेकर बहुत प्यार किया।

प्रेमवती के चले जाने पर विरजन उस गृह में अकेली रह गई थी। केवल माधवी उसके पास थी। हृदय-ताप और मानसिक दुःख ने उसका वह गुण प्रकट कर दिया, जो अब तक गुप्त था। वह काव्य और पद्य-रचना का अभ्यास करने लगी। कविता सच्ची भावनाओं का चित्र है और सच्ची भावनाएँ चाहे वे दुःख हों या सुख की, उसी समय सम्पन्न होती हैं जब हम दुःख या सुख का अनुभव करते हैं। विरजन इन दिनों रात-रात बैठी भाष में अपने मनोभावों के मोतियों की माला गुँथा करती। उसका एक-एक शब्द करुणा और वैराग्य से परिवर्ण होता था अन्य कवियों के मनो में मित्रों की वहा-वाह और काव्य-प्रेतियों के साधुवाद से उत्साह पैदा होता है, पर विरजन अपनी दुःख कथा अपने ही मन को सुनाती थी।

सेवती को आये दो-तीन दिन बीते थे। एक दिन विरजन से कहा- मैं तुम्हें बहुधा किसी ध्यान में मग्न देखती हूँ और कुछ लिखते भी पाती हूँ। मुझे न बताओगी? विरजन लज्जित हो गयी। बहाना करने लगी कि कुछ नहीं, यों ही जी कुछ उदास रहता है। सेवती ने कहा-मैंन मानूँगी। फिर वह विरजनका बाक्स उठा लायी, जिसमें कविता के दिव्य मोती रखे हुए थे। विवश होकर विरजन ने अपने नय पद्य सुनाने शुरू किये। मुख से प्रथम पद्य का निकलना था कि सेवती के रोएँ खड़े हो गये और जब तक सारा पद्य समाप्त न हुआ, वह तन्मय होकर सुनती रही। प्राणनाथ की संगति ने उसे काव्य का रसिक बना दिया था। बार-बार

उसके नेत्र भर आते। जब विरजन चुप हो गयी तो एक समाँ बँधा हुआ था मानों को कोई मनोहर राग अभी थम गया है। सेवती ने विरजन को कण्ठ से लिपटा लिया, फिर उसे छोड़कर दौड़ी हुई प्राणनाथ के पास गयी, जैसे कोई नया बच्चा नया खिलोना पाकर हर्ष से दौड़ता हुआ अपने साथियों को दिखाने जाता है। प्राणनाथ अपने अफसर को प्रार्थना-पत्र लिख रहे थे कि मेरी माता अति पीड़िता हो गयी है, अतएव सेवा में प्रस्तुत होने में विलम्ब हुआ। आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का आकस्मिक अवकाश प्रदान किया जायगा। सेवती को देखकर चट अपना प्रार्थना-पत्र छिपा लिया और मुस्कराये। मनुष्य कैसा धूर्त है! वह अपने आपको भी धोखे देने से नहीं चूकता।

सेवती- तनिक भीतर चलो, तुम्हें विरजन की कविता सुनवाऊँ, फड़क उठोगे।

प्राण0- अच्छा, अब उन्हें कविता की चाट हुई है? उनकी भाभी तो गाया करती थी – तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

सेवती- तनिक चलकर सुनो, तो पीछे हँसना। मुझे तो उसकी कविता पर आश्चर्य हो रहा है।

प्राण0- चलो, एक पत्र लिखकर अभी आता हूँ।

सेवती- अब यही मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं आपके पत्र नोच डालूंगी।

सेवती प्राणनाथ को घसीट ले आयी। वे अभी तक यही जानते थे कि विरजन ने कोई सामान्य भजन बनाया होगा। उसी को सुनाने के लिए व्याकुल हो रही होगी। पर जब भीतर आकर बैठे और विरजन ने लजाते हुए अपनी भावपूर्ण कविता 'प्रेम की मतवाली' पढ़नी आरम्भ की तो महाशय के नेत्र खुल गये। पद्य क्या था, हृदय के दुख की एक धारा और प्रेम –रहस्य की एक कथा थी। वह सुनते थे और मुग्ध होकर झुमते थे। शब्दों की एक-एक योजना पर, भावों के एक-एक उदगार पर लहालोट हुए जाते थे। उन्होंने बहुतेरे कवियों के काव्य देखे थे, पर यह उच्च विचार, यह नूतनता, यह भावोत्कर्ष कहीं दीख न पड़ा था। वह समय चित्रित हो रहा था जब अरुणोदय के पूर्व मलयानिल लहराता हुआ चलता है, कलियाँ विकसित होती हैं, फूल महकते हैं और आकाश पर हल्की लालिमा छा जाती है। एक –एक शब्द में नवविकसित पुष्पों की शोभा और हिमकिरणों की शीतलता विद्यमान थी। उस पर विरजन का सुरीलापन और ध्वनि की मधुरता सोने में सुगन्ध थी। ये छन्द थे, जिन पर विरजन ने हृदय को दीपक की भाँति जलाया था। प्राणनाथ प्रहसन के उद्देश्य से आये थे। पर जब वे उठे तो वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता था, मानो छाती से हृदय निकल गया है। एक दिन उन्होंने विरजन से कहा- यदि तुम्हारी कविताएँ छपें, तो उनका बहुत आदर हो।

विरजन ने सिर नीचा करके कहा- मुझे विश्वास नहीं कि कोई इनको पसन्द करेगा।

प्राणनाथ- ऐसा संभव ही नहीं। यदि हृदयों में कुछ भी रसिकता है तो तुम्हारे काव्य की अवश्य प्रतिष्ठा होगी। यदि ऐसे लोग विद्यमान हैं, जो पुष्पों की सुगन्ध से आनन्दित हो जाते हैं, जो पक्षियों के कलरव और चाँदनी की मनोहारिणी छटा का आनन्द उठा सकते हैं, तो वे तुम्हारी कविता को अवश्य हृदय में स्थान देंगे। विरजन के हृदय में वह गुदगुदी उत्पन्न हुई जो प्रत्येक कवि को अपने काव्यचिन्तन की प्रशंसा मिलने पर, कविता के मुद्रित होने के विचार से होती है। यद्यपि वह नहीं-नहीं करती रही, पर वह, 'नहीं', 'हाँ' के समान थी। प्रयाग से उन दिनों 'कमला' नाम की अच्छी पत्रिका निकलती थी। प्राणनाथ ने 'प्रेम की मतवाली' को वहाँ भेज दिया। सम्पादक एक काव्य-रसिक महानुभाव थे कविता पर हार्दिक धन्यवाद दिया और जब यह कविता प्रकाशित हुई, तो साहित्य-संसार में धूम मच गयी। कदाचित ही किसी कवि को प्रथम ही बार ऐसी ख्याति मिली हो। लोग पढ़ते और विस्मय से एक-दूसरे का मुँह ताकते थे। काव्य-प्रेमियों में कई सप्ताह तक मतवाली बाला के चर्चे रहे। किसी को विश्वास ही न आता था कि यह एक नवजात कवि की रचना है। अब प्रति मास 'कमला' के पृष्ठ विरजन की कविता से सुशोभित होने लगे और 'भारत महिला' को लोकमत ने कवियों के सम्मानित पद पर पहुँचा दिया। 'भारत महिला' का नाम बच्चे-बच्चे की जिहवा पर चढ़ गया। को इस समाचार-पत्र या पत्रिका 'भारत महिला' को ढूँढने लगते। हाँ, उसकी दिव्य शक्तियाँ अब किसी को विस्मय में न डालती उसने स्वयं कविता का आदर्श उच्च कर दिया था।

तीन वर्ष तक किसी को कुछ भी पता न लगा कि 'भारत महिला' कौन है। निदान प्राण नाथ से न रहा गया। उन्हें विरजन पर भक्ति हो गयी थी। वे कई मांस से उसका जीवन –चरित्र लिखने की धुन में थे। सेवती के द्वारा धीरे-धीरे उन्होंने उसका सब जीवन चरित्र ज्ञात कर दिया और 'भारत महिला' के शीर्षक से एक प्रभाव-पूरित लेख लिखा। प्राणनाथ ने पहिले लेख न लिखा था, परन्तु श्रद्धा ने अभ्यास की कमी पूरी कर दी थी। लेख अतयन्त रोचक, समालोचनात्मक और भावपूर्ण था।

इस लेख का मुद्रित होना था कि विरजन को चारों तरफ से प्रतिष्ठा के उपहार मिलने लगे। राधाचरण मुरादाबाद से उसकी भेंट को आये। कमला, उमादेवी, चन्द्रकुवंर और सखिया जिन्होंने उसे विस्मरण कर दिया था प्रतिदिन विरजन के दर्शनों को आने लगी। बड़े बड़े गणमान्य सज्जन जो ममता के अभीमान से हकिमों के सम्मुख सिर न झुकाते, विरजन के द्वार पर दर्शन को आते थे। चन्द्रा स्वयं तो न आ सकी, परन्तु पत्र में लिखा – जो चाहता है कि तुम्हारे चरणों पर सिर रखकर घंटों रोऊँ।

कभी-कभी वन के फूलों में वह सुगन्धित और रंग-रूप मिल जाता है जो सजी हुई वाटिकाओं को कभी प्राप्त नहीं हो सकता। माधवी थी तो एक मूर्ख और दरिद्र मनुष्य की लड़की, परन्तु विधाता ने उसे नारियों के सभी उत्तम गुणों से सुशोभित कर दिया था। उसमें शिक्षा सुधार को ग्रहण करने की विशेष योग्यता थी। माधवी और विरजन का मिलाप उस समय हुआ जब विरजन ससुराल आयी। इस भोली-भाली कन्या ने उसी समय से विरजन के संग असधारण प्रीति प्रकट करनी आरम्भ की। ज्ञात नहीं, वह उसे देवी समझती थी या क्या? परन्तु कभी उसने विरजन के विरुद्ध एक शब्द भी मुख से न निकाला। विरजन भी उसे अपने संग सुलाती और अच्छी-अच्छी रेशमी वस्त्र पहिनाती इससे अधिक प्रीति वह अपनी छोटी भगिनी से भी नहीं कर सकती थी। चित्त का चित्त से सम्बन्ध होता है। यदि प्रताप को वृजरानी से हार्दिक सम्बन्ध था तो वृजरानी भी प्रताप के प्रेम में पगी हुई थी। जब कमलाचरण से उसके विवाह की बात पक्की हुई जो वह प्रतापचन्द्र से कम दुखी न हुई। हां लज्जावश उसके हृदय के भाव कभी प्रकट न होते थे। विवाह हो जाने के पश्चात् उसे नित्य चिन्ता रहती थी कि प्रतापचन्द्र के पीडित हृदय को कैसे तसल्ली दूं? मेरा जीवन तो इस भांति आनन्द से बीतता है। बेचारे प्रताप के ऊपर न जाने कैसी बीतती होगी। माधवी उन दिनों ग्यारहवें वर्ष में थी। उसके रंग-रूप की सुन्दरता, स्वभाव और गुण देख-देखकर आश्चर्य होता था। विरजन को अचानक यह ध्यान आया कि क्या मेरी माधवी इस योग्य नहीं कि प्रताप उसे अपने कण्ठ का हार बनाये? उस दिन से वह माधवी के सुधार और प्यार में और भी अधिक प्रवृत्त हो गयी थी वह सोच-सोचकर मन-ही मन-फूली न समाती कि जब माधवी सोलह-सत्रह वर्ष की हो जायेगी, तब मैं प्रताप के पास जाऊंगी और उससे हाथ जोड़कर कहूंगी कि माधवी मेरी बहिन है। उसे आज से तुम अपनी चेरी समझो क्या प्रताप मेरी बात टाल देंगे? नहीं- वे ऐसा नहीं कर सकते। आनन्द तो तब है जब कि चाची स्वयं माधवी को अपनी बहू बनाने की मुझसे इच्छा करें। इसी विचार से विरजन ने प्रतापचन्द्र के प्रशसनीय गुणों का चित्र माधवी के हृदय में खींचना आरम्भ कर दिया था, जिससे कि उसका रोम-रोम प्रताप के प्रेम में पग जाय। वह जब प्रतापचन्द्र का वर्णन करने लगती तो स्वतः उसके शब्द असामान्य रीति से मधुर और सरस हो जाते। शनैः-शनैः माधवी का कामल हृदय प्रेम-रस का आस्वादन करने लगा। दर्पण में बाल पड़ गया।

भोली माधवी सोचने लगी, मैं कैसी भाग्यवती हूं। मुझे ऐसे स्वामी मिलेंगे जिनके चरण धोने के योग्य भी मैं नहीं हूं, परन्तु क्या वे मुझे अपनी चेरी बनायेंगे? कुछ तो, मैं अवश्य उनकी दासी बनूंगी और यदि प्रेम में कुछ आकर्षण है, तो मैं उन्हें अवश्य अपना बना लूंगी। परन्तु उस बेचारी को क्या मालूम था कि ये आशाएं शोक बनकर नेत्रों के मार्ग से बह जायेगी? उसको पन्द्रहवां पूरा भी न हुआ था कि विरजन पर गृह-विनाश की आपत्तियां आ पड़ी। उस आंधी के झोंकें ने माधवी की इस कल्पित पुष्प वाटिका का सत्यानाश कर दिया। इसी बीच में प्रताप चन्द्र के लोप होने का समाचार मिला। आंधी ने जो कुछ अवशिष्ट रखा था वह भी इस अग्नि ने जलाकर भस्म कर दिया।

परन्तु मानस कोई वस्तु है, तो माधवी प्रतापचन्द्र की स्त्री बन चुकी थी। उसने अपना तन और मन उन्हें समर्पण कर दिया। प्रताप को ज्ञान नहीं। परन्तु उन्हें ऐसी अमूल्य वस्तु मिली, जिसके बराबर संसार में कोई वस्तु नहीं तुल सकती। माधवी ने केवल एक बार प्रताप को देखा था और केवल एक ही बार उनके अमृत-वचन सुने थे। पर इसने उस चित्र को और भी उज्ज्वल कर दिया था, जो उसके हृदय पर पहले ही विरजन ने खींच रखा था। प्रताप को पता नहीं था, पर माधवी उसकी प्रेमाग्नि में दिन-प्रतिदिन घुलती जाती है। उस दिन से कोई ऐसा व्रत नहीं था, जो माधवी न रखती हो, कोई ऐसा देवता नहीं था, जिसकी वह पूजा न करती हो और वह सब इसलिए कि ईश्वर प्रताप को जहां कहीं वे हों कुशल से रखें। इन प्रेम-कल्पनाओं ने उस बालिका को और अधिक दृढ़ सुशील और कोमल बना दिया। शायद उसके चित्त ने यह निणर्य कर लिया था कि मेरा विवाह प्रतापचन्द्र से हो चुका। विरजन उसकी यह दशा देखती और रोती कि यह आग मेरी ही लगाई हुई है। यह नवकुसुम किसके कण्ठ का हार बनेगा? यह किसकी होकर रहेगी? हाय रे जिस चीज को मैंने इतने परिश्रम से अंकुरित किया और मधुक्षीर से सींचा, उसका फूल इस प्रकार शाखा पर ही कुम्हलाया जाता है। विरजन तो भला कविता करने में उलझी रहती, किन्तु माधवी को यह सन्तोष भी न था उसके प्रेमी और साथी उसके प्रियतम का ध्यान मात्र था-उस प्रियतम का जो उसके लिए सर्वथा अपरिचित था पर प्रताप के चले जाने के कई मास पीछे एक दिन माधवी ने स्वप्न देखा कि वे सतयासी हो गये हैं। आज माधवी का अपार प्रेम प्रकट हुआ है। आकाशवाणी सी हो गयी कि प्रताप ने

अवश्य संन्यास ले लिया। आज से वह भी तपस्वनी बन गयी उसने सुख और विलास की लालसा हृदय से निकाल दी।

जब कभी बैठे-बैठे माधवी का जी बहुत आकुल होता तो वह प्रतापचन्द्र के घर चली जाती। वहां उसके चित्त की थोड़ी देर के लिए शांति मिल जाती थी। परन्तु जब अन्त में विरजन के पवित्र और आदर्श जीवन ने यह गाठ खोल दी वे गंगा यमुना की भांति परस्पर गले मिल गयीं, तो माधवी का आवागमन भी बढ़ गया। सुवामा के पास दिन-दिन भर बैठी रह जाती, इस भवन की, एक-एक अंगुल पृथ्वी प्रताप का स्मारक थी। इसी आँगन में प्रताप ने काठ के घोड़े दौड़ाये और इसी कुण्ड में कागज की नावें चलायी थीं। नौकरी तो स्यात काल के भंवर में पड़कर डूब गयीं, परन्तु घोड़ा अब भी विद्वमान था। माधवी ने उसकी जर्जरित असिथियों में प्राण डाल दिया और उसे वाटिका में कुण्ड के किनारे एक पाटलवृक्ष की छाया में बांध दिया। यहीं भवन प्रतापचन्द्र का शयनागार था। माधवी अब उसे अपने देवता का मन्दिर समझती है। इस पलंग ने प्रताप को बहुत दिनों तक अपने अंक में थपक-थपककर सुलाया था। माधवी अब उसे पुष्पों से सुसज्जित करती है। माधवी ने इस कमरे को ऐसा सुसज्जित कर दिया, जैसे वह कभी न था। चित्रों के मुख पर से धूल का यवनिका उठ गयी। लैम्प का भाग्य पुनः चमक उठा। माधवी की इस अननत प्रेम-भाक्ति से सुवामा का दुःख भी दूर हो गया। चिरकाल से उसके मुख पर प्रतापचन्द्र का नाम अभी न आया था। विरजन से मेल-मिलाप हो गया, परन्तु दोनों स्त्रियों में कभी प्रतापचन्द्र की चर्चा भी न होती थी। विरजन लज्जा की संकुचित थी और सुवामा क्रोध से। किन्तु माधवी के प्रेमानल से पत्थर भी पिघल गया। अब वह प्रेमविह्वल होकर प्रताप के बालपन की बातें पूछने लगती तो सुवामा से न रहा जाता। उसकी आँखों से जल भर आता। तब दोनों रोती और दिन-दिन भर प्रताप की बातें समाप्त न होती। क्या अब माधवी के चित्त की दशा सुवामा से छिप सकती थी? वह बहुधा सोचती कि क्या तपस्विनी इसी प्रकार प्रेमग्नि में जलती रहेगी और वह भी बिना किसी आशा के? एक दिन वृजरानी ने 'कमला' का पैकेट खोला, तो पहले ही पृष्ठ पर एक परम प्रतिभा-पूर्ण चित्र विविध रंगों में दिखायी पड़ा। यह किसी महात्म का चित्र था। उसे ध्यान आया कि मैंने इन महात्मा को कहीं अवश्य देखा है। सोचते-सोचते अकस्मात् उसका ध्यान प्रतापचन्द्र तक जा पहुँचा। आनन्द के उमंग में उछल पड़ी और बोली – माधवी, तनिक यहां आना।

माधवी फूलों की क्यारियां सींच रहीं थी। उसके चित्त-विनोद का आजकल वहीं कार्य था। वह साड़ी पानी में लथपथ, सिर के बाल बिखरे माथे पर पसीने के बिन्दु और नत्रों में प्रेम का रस भरे हुए आकर खड़ी हो गयी। विरजन ने कहा – आ तूझे एक चित्र दिखाऊं।

माधवी ने कहा – किसका चित्र है, देखूं।

माधवी ने चित्र को ध्यानपूर्वक देखा। उसकी आंखों में आंसू आ गये।

विरजन – पहचान गयी ?

माधवी - क्यों? यह स्वरूप तो कई बार स्वप्न में देख चुकी हूं? बदन से कांति बरस रही है।

विरजन – देखो वृत्तान्त भी लिखा है।

माधवी ने दूसरा पन्ना उल्टा तो 'स्वामी बालाजी' शीर्षक लेख मिला थोड़ी देर तक दोनों तन्मय होकर यह लेख पढ़ती रहीं, तब बातचीत होने लगी।

विरजन – मैं तो प्रथम ही जान गयी थी कि उन्होंने अवश्य संन्यास ले लिया होगा।

माधवी पृथ्वी की ओर देख रही थी, मुख से कुछ न बोली।

विरजन – तब मैं और अब मैं कितना अन्तर है। मुखमण्डल से कांति झलक रही है। तब ऐसे सुन्दर न थे।

माधवी – हूं।

विरजन – इश्वर उनकी सहायता करे। बड़ी तपस्या की है। (नेत्रों में जल भरकर) कैसा संयोग है। हम और वे संग-संग खेले, संग-संग रहे, आज वे संन्यासी हैं और मैं वियोगिनी। न जाने उन्हें हम लोगों की कुछ सुध भी है या नहीं। जिसने संन्यास ले लिया, उसे किसी से क्या मतलब? जब चाची के पास पत्र न लिखा तो भला हमारी सुधि क्या होगी? माधवी बालकपन में वे कभी योगी-योगी खेलते तो मैं मिठाइयां कि भिक्षा दिया करती थी।

माधवी ने रोते हुए 'न जाने कब दर्शन होंगे' कहकर लज्जा से सिर झुका लिया।

विरजन – शीघ्र ही आयंगें। प्राणनाथ ने यह लेख बहुत सुन्दर लिखा है।

माधवी – एक-एक शब्द से भाक्ति टपकती है।

विरजन -वक्तृता की कैसी प्रशंसा की है! उनकी वाणी में तो पहले ही जादू था, अब क्या पूछना! प्राणनाथ केचित पर जिसकी वाणी का ऐसा प्रभाव हुआ, वह समस्त पृथ्वी पर अपना जादू फैला सकता है।

माधवी – चलो चाची के यहाँ चलें।

विरजन- हाँ उनको तो ध्यान ही नहीं रहा देखें, क्या कहती है। प्रसन्न तो क्या होगी।

माधवी- उनको तो अभिलाषा ही यह थी, प्रसन्न क्यों न होगी?

उनकी तो अभिलाषा ही यह थी, प्रसन्न क्यों न होंगी?

विरजन- चल? माता ऐसा समाचार सुनकर कभी प्रसन्न नहीं हो सकती। दोनों स्त्रीयाँ घर से बाहर निकलीं। विरजन का मुखकमल मुरझाया हुआ था, पर माधवी का अंग-अंग हर्ष सिला जाता था। कोई उससे पूछे –तेरे चरण अब पृथ्वी पर क्यों नहीं पहले? तेरे पीले बदन पर क्यों प्रसन्नता की लाली झलक रही है? तुझे कौन-सी सम्पत्ति मिल गयी? तू अब शोकान्वित और उदास क्यों न दिखायी पड़ती? तुझे अपने प्रियतम से मिलने की अब कोई आशा नहीं, तुझ पर प्रेम की दृष्टि कभी नहीं पहुँची फिर तू क्यों फूली नहीं समाती? इसका उत्तर माधवी देगी? कुछ नहीं। वह सिर झुका लेगी, उसकी आँखें नीचे झुक जायेंगी, जैसे डलियाँ फूलों के भार से झुक जाती हैं। कदाचित् उनसे कुछ अश्रुबिन्दु भी टपक पड़े; किन्तु उसकी जिह्वा से एक शब्द भी न निकलेगा।

माधवी प्रेम के मद से मतवाली है। उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त है। उसका प्रेम, हाट का सौदा नहीं। उसका प्रेम किसी वस्तु का भूखा सनहीं है। वह प्रेम के बदले प्रेम नहीं चाहती। उसे अभीमान है कि ऐसे पवीत्रता पुरुष की मूर्ति मेरे हृदय में प्रकाशमान है। यह अभीमान उसकी उन्मत्ता का कारण है, उसके प्रेम का पुरस्कार है।

दूसरे मास में वृजरानी ने, बालाजी के स्वागत में एक प्रभावशाली कविता लिखी यह एक विलक्षण रचना थी। जब वह मुद्रित हुई तो विद्या जगत् विरजन की काव्य-प्रतिभा से परिचित होते हुए भी चमत्कृत हो गया। वह कल्पना-रूपी पक्षी, जो काव्य-गगन में वायुमण्डल से भी आगे निकल जाता था, अबकी तारा बनकर चमका। एक-एक शब्द आकाशवाणी की ज्योति से प्रकाशित था जिन लोगों ने यह कविता पढ़ी वे बालाजी के भक्त हो गये। कवि वह संपेरा है जिसकी पिटारी में साँपों के स्थान में हृदय बन्द होते हैं।

काशी में आगमन

जब से वृजरानी का काव्य-चन्द्र उदय हुआ, तभी से उसके यहां सदैव महिलाओं का जमघट लगा रहता था। नगर में स्त्रीयों की कई सभाएं थीं उनके प्रबंध का सारा भार उसी को उठाना पड़ता था। उसके अतिरिक्त अन्य नगरों से भी बहुधा स्त्रीयों उससे भेंट करने को आती रहती थी जो तीर्थयात्रा करने के लिए काशी आता, वह विरजन से अवरश्य मिलता। राज धर्मसिंह ने उसकी कविताओं का सर्वांग-सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया था। उस संग्रह ने उसके काव्य-चमत्कार का डंका, बजा दिया था। भारतवर्ष की कौन कहे, यूरोप और अमेरिका के प्रतिष्ठित कवियों ने उसे उनकी काव्य मनोहरता पर धन्यवाद दिया था। भारतवर्ष में एकाध ही कोई रसिक मनुष्य रहा होगा जिसका पुस्तकालय उसकी पुस्तक से सुशोभित न होगा। विरजन की कविताओं को प्रतिष्ठा करने वालों में बालाजी का पद सबसे ऊंचा था। वे अपनी प्रभावशालिनी वक्तृताओं और लेखों में बहुधा उसी के वाक्यों का प्रमाण दिया करते थे। उन्होंने 'सरस्वती' में एक बार उसके संग्रह की सविस्तार समालोचना भी लिखी थी।

एक दिन प्रातः काल ही सीता, चन्द्रकुंवरी, रुकमणी और रानी विरजन के घर आयीं। चन्द्रा ने इन सित्रियों को फर्श पर बिठाया और आदर सत्कार किया। विरजन वहां नहीं थी क्योंकि उसने प्रभात का समय काव्य चिन्तन के लिए नियत कर लिया था। उस समय यह किसी आवश्यक कार्य के अतिरिक्त सखियों से मिलती-जुलती नहीं थी। वाटिका में एक रमणीक कुंज था। गुलाब की सगन्धित से सुरभित वायु चलती थी। वहीं विरजन एक शिलायन पर बैठी हुई काव्य-रचना किया करती थी। वह काव्य रूपी समुद्र से जिन मोतियों को निकालती, उन्हें माधवी लेखनी की माला में पिरो लिया करती थी। आज बहुत दिनों के बाद नगरवासियों के अनुरोध करने पर विरजन ने बालाजी की काशी आने का निमंत्रण देने के लिए लेखनी को उठाया था। बनारस ही वह नगर था, जिसका स्मरण कभी-कभी बालाजी को व्यग्र कर दिया करता था। किन्तु काशी वालों के निरंतर आग्रह करने पर भी उन्हें काशी आने का अवकाश न मिलता था। वे सिंहल और रंगून तक गये, परन्तु उन्होंने काशी की ओर मुख न फेरा इस नगर को वे अपना परीक्षा भवन समझते थे। इसलिए आज विरजन उन्हें काशी आने का निमंत्रण दे रही हैं। लोगों का विचार आ जाता है, तो विरजन का चन्द्रानन चमक उठता है, परन्तु इस समय जो विकास और छटा इन दोनों पुष्पों पर है, उसे देख-देखकर दूर से फूल लज्जित हुए जाते हैं।

नौ बजते-बजते विरजन घर में आयी। सेवती ने कहा- आज बड़ी देर लगायी।

विरजन - कुन्ती ने सूर्य को बुलाने के लिए कितनी तपस्या की थी।

सीता - बाला जी बड़े निष्ठूर हैं। मैं तो ऐसे मनुष्य से कभी न बोलूं।

रुकमिणी- जिसने संन्यास ले लिया, उसे घर-बार से क्या नाता?

चन्द्रकुंवरी- यहां आयेगें तो मैं मुख पर कह दूंगी कि महाशय, यह नखरे कहां सीखें ?

रुकमणी - महारानी। ऋषि-महात्माओं का तो शिष्टाचार किया करें जिह्वा क्या है कतरनी है।

चन्द्रकुंवरी- और क्या, कब तक सन्तोष करें जी। सब जगह जाते हैं, यहीं आते पैर थकते हैं।

विरजन- (मुस्कराकर) अब बहुत शीघ्र दर्शन पाओगें। मुझे विश्वास है कि इस मास में वे अवश्य आयेगें।

सीता- धन्य भाग्य कि दर्शन मिलेगें। मैं तो जब उनका वृत्तांत पढ़ती हूं यही जी चाहता हूं कि पाऊं तो चरण पकड़कर घण्टों रोऊं।

रुकमणी - ईश्वर ने उनके हाथों में बड़ा यश दिया। दारानगर की रानी साहिबा मर चुकी थी सांस टूट रही थी कि बालाजी को सूचना हुई। झट आ पहुंचे और क्षण-मात्र में उठाकर बैठा दिया। हमारे मुंशीजी (पति) उन दिनों वहीं थे। कहते थे कि रानीजी ने कोश की कुंजी बालाजी के चरणों पर रख दी ओर कहा- 'आप इसके स्वामी हैं'। बालाजी ने कहा- 'मुझे धन की आवश्यकता नहीं अपने राज्य में तीन सौ गौशलाएं खुलवा दीजियें'। मुख से निकलने की देर थी। आज दारानगर में दूध की नदी बहती है। ऐसा महात्मा कौन होगा।

चन्द्रकुंवरी - राजा नवलखा का तपेदिक उन्हीं की बूटियों से छूटा। सारे वैद्य डाक्टर जवाब दे चुके थे। जब बालाजी चलने लगे, तो महारानी जी ने नौ लाख का मोतियों का हार उनके चरणों पर रख दिया। बालाजी ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

रानी - कैसे रुखे मनुष्य हैं।

रुक्मणी - हाँ, और क्या, उन्हें उचित था कि हार ले लेते- नहीं -नहीं कण्ठ में डाल लेते।

विरजन - नहीं, लेकर रानी को पहिना देते। क्यों सखी?

रानी - हां मैं उस हार के लिए गुलामी लिख देती।

चन्द्रकुंवरि - हमारे यहाँ (पति) तो भारत-सभा के सभ्य बैठे हैं ढाई सौ रुपये लाख यत्न करके रख छोड़े थे, उन्हें यह कहकर उठा ले गये कि घोड़ा लेंगे। क्या भारत-सभावाले बिना घोड़े के नहीं चलते?

रानी-कल ये लोग श्रेणी बांधकर मेरे घर के सामने से जा रहे थे, बड़े भले मालूम होते थे।

इतने ही मैं सेवती नवीन समाचार-पत्र ले आयी।

विरजन ने पूछा - कोई ताजा समाचार है?

सेवती-हां, बालाजी मानिकपुर आये हैं। एक अहीर ने अपनी पुत्र के विवाह का निमंत्रण भेजा था। उस पर प्रयाग से भारतसभा के सभ्यों हित रात को चलकर मानिकपुर पहुंचे। अहीरों ने बड़े उत्साह और समारोह के साथ उनका स्वागत किया है और सबने मिलकर पांच सौ गाएं भेंट दी हैं बालाजी ने वधू को आशीर्वाद दिया और दुल्हे को हृदय से लगाया। पांच अहीर भारत सभा के सदस्य नियत हुए।

विरजन-बड़े अच्छे समाचार हैं। माधवी, इसे काट के रख लेना। और कुछ?

सेवती- पटना के पासियों ने एक ठाकुरद्वारा बनवाया है वहाँ की भारतसभा ने बड़ी धूमधाम से उत्स्व किया।

विरजन - पटना के लोग बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

चन्द्रकुंवरि- गड़रियां भी अब सिन्दूर लगायेंगी। पासी लोग ठाकुर द्वारे बनवायेंगे ?

रुक्मणी-क्यों, वे मनुष्य नहीं हैं ? ईश्वर ने उन्हें नहीं बनाया। आप ही अपने स्वामी की पूजा करना जानती हैं ?

चन्द्रकुंवरि- चलो, हटो, मुझे पासियों से मिलाती हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

रुक्मिणी - हाँ, तुम्हारा रंग गोरा है न? और वस्त्र-आभूषणों से सजी बहुत हो। बस इतना ही अन्तर है कि और कुछ?

चन्द्रकुंवरि- इतना ही अन्तर क्यों हैं? पृथ्वी आकाश से मिलाती हो? यह मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे कछवाहों वंश में हूँ, कुछ खबर है?

रुक्मिणी- हाँ, जानती हूँ और नहीं जानती थी तो अब जान गयी। तुम्हारे ठाकुर साहब (पति) किसी पासी से बढकर मल्ल -युद्ध करेंगे? यह सिर्फ टेढ़ी पाग रखना जानते हैं? मैं जानती हूँ कि कोई छोटा -सा पासी भी उन्हें काँख -तले दबा लेगा।

विरजन - अच्छा अब इस विवाद को जाने तो। तुम दोनों जब आती हो, लडती हो आती हो।

सेवती- पिता और पुत्र का कैसा संयोग हुआ है? ऐसा मालुम होता है कि मुंशी शलिग्राम ने प्रतापचन्द्र ही के लिए संन्यास लिया था। यह सब उन्हीं कर शिक्षा का फल है।

रुक्मिणी - हां और क्या? मुन्शी शलिग्राम तो अब स्वामी ब्रह्मानन्द कहलाते हैं। प्रताप को देखकर पहचान गये होंगे ।

सेवती - आनन्द से फूले न समाये होंगे।

रुक्मिणी-यह भी ईश्वर की प्रेरणा थी, नहीं तो प्रतापचन्द्र मानसरोवर क्या करने जाते?

सेवती-ईश्वर की इच्छा के बिना कोई बात होती है?

विरजन-तुम लोग मेरे लालाजी को तो भूल ही गयी। ऋषीकेश में पहले लालाजी ही से प्रतापचन्द्र की भेंट हुई थी। प्रताप उनके साथ साल-भर तक रहे। तब दोनों आदमी मानसरोवर की ओर चले।

रुक्मिणी-हां, प्राणनाथ के लेख में तो यह वृत्तान्त था। बालाजी तो यही कहते हैं कि मुंशी संजीवनलाल से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त न होता तो मैं भी मांगने-खानेवाले साधुओं में ही होता।

चन्द्रकुंवरि-इतनी आत्मोन्नति के लिए विधाता ने पहले ही से सब सामान कर दिये थे।

सेवती-तभी इतनी-सी अवस्था में भारत के सूर्य बने हुए हैं। अभी पचीसवें वर्ष में होंगे?

विरजन - नहीं, तीसवां वर्ष है। मुझसे साल भर के जेठे हैं।

रुक्मिणी -मैंने तो उन्हें जब देखा, उदास ही देखा।

चन्द्रकुंवरि - उनके सारे जीवन की अभिलाषाओं पर ओंस पड़ गयी। उदास क्यों न होंगी?

रुक्मिणी - उन्होंने तो देवीजी से यही वरदान मांगा था।

चन्द्रकुंवरि - तो क्या जाति की सेवा गृहस्थ बनकर नहीं हो सकती?

रुक्मिणी – जाति ही क्या, कोई भी सेवा गृहस्थ बनकर नहीं हो सकती। गृहस्थ केवल अपने बाल-बच्चों की सेवा कर सकता है।

चन्द्रकुंवरि – करनेवाले सब कुछ कर सकते हैं, न करनेवालों के लिए सौ बहाने हैं।

एक मास और बीता। विरजन की नई कविता स्वागत का सन्देश लेकर बालाजी के पास पहुची परन्तु यह न प्रकट हुआ कि उन्होंने निमंत्रण स्वीकार किया या नहीं। काशीवासी प्रतीक्षा करते-करते थक गये। बालाजी प्रतिदिन दक्षिण की ओर बढ़ते चले जाते थे। निदान लोग निराश हो गये और सबसे अधिक निराशा विरजन को हुई।

एक दिन जब किसी को ध्यान भी न था कि बालाजी आयेंगे, प्राणनाथ ने आकर कहा-बहिन। लो प्रसन्न हो जाओ, आज बालाजी आ रहे हैं।

विरजन कुछ लिख रही थी, हाथों से लेखनी छूट पड़ी। माधवी उठकर द्वार की ओर लपकी। प्राणनाथ ने हंसकर कहा – क्या अभी आ थोड़े ही गये हैं कि इतनी उद्विग्न हुई जाती हो।

माधवी – कब आयेंगे इधर से हीहोकर जायेंगे नए?

प्राणनाथ – यह तो नहीं ज्ञात है कि किधर से आयेंगे – उन्हें आडम्बर और धूमधाम से बड़ी घृणा है। इसलिए पहले से आने की तिथि नहीं नियत की। राजा साहब के पास आज प्रातःकाल एक मनुष्य ने आकर सूचना दी कि बालाजी आ रहे हैं और कहा है कि मेरी आगवानी के लिए धूमधाम न हो, किन्तु यहां के लोग कब मानते हैं? अगवानी होगी, समारोह के साथ सवारी निकलेगी, और ऐसी कि इस नगर के इतिहास में स्मरणीय हो। चारों ओर आदमी छूटे हुए हैं। ज्योंही उन्हें आते देखेंगे, लोग प्रत्येक मुहल्ले में टेलीफोन द्वारा सूचना दे देंगे। कालेज और स्कूलों के विद्यार्थी वर्दियां पहने और झण्डियां लिये इन्तजार में खड़े हैं घर-घर पुष्प-वर्षा की तैयारियां हो रही हैं बाजार में दुकानें सजायी जा रही हैं। नगर में एक धूम सी मची हुई है।

माधवी - इधर से जायेंगे तो हम रोक लेंगी।

प्राणनाथ – हमने कोई तैयारी तो की नहीं, रोक क्या लेंगे? और यह भी तो नहीं ज्ञात है कि किधर से जायेंगे।

विरजन – (सोचकर) आरती उतारने का प्रबन्ध तो करना ही होगा।

प्राणनाथ – हाँ अब इतना भी न होगा? मैं बाहर बिछावन आदि बिछावाता हूँ।

प्राणनाथ बाहर की तैयारियों में लगे, माधवी फूल चुनने लगी, विरजन ने चांदी का थाल भी धोकर स्वच्छ किया। सेवती और चन्द्रा भीतर सारी वस्तुएं क्रमानुसार सजाने लगीं।

माधवी हर्ष के मारे फूली न समाती थी। बारम्बार चौक-चौककर द्वार की ओर देखती कि कहीं आ तो नहीं गये। बारम्बार कान लगाकर सुनती कि कहीं बाजे की ध्वनि तो नहीं आ रही है। हृदय हर्ष के मारे धड़क रहा था। फूल चुनती थी, किन्तु ध्यान दूसरी ओर था। हाथों में कितने ही कांटे चुभा लिए। फूलों के साथ कई शाखाएँ मरोड़ डालीं। कई बार शाखाओं में उलझकर गिरी। कई बार साड़ी कांटों में फंसा दीं उसस समय उसकी दशा बिल्कुल बच्चों की-सी थी।

किन्तु विरजन का बदन बहुत सी मलिन था। जैसे जलपूर्ण पात्र तनिक हिलने से भी छलक जाता है, उसी प्रकार ज्यों-ज्यों प्राचीन घटनाएँ स्मरण आती थी, त्यों-त्यों उसके नेत्रों से अश्रु छलक पड़ते थे। आह! कभी वे दिन थे कि हम और वह भाई-बहिन थे। साथ खेलते, साथ रहते थे। आज चौदह वर्ष व्यतीत हुए, उनकास मुख देखने का सौभाग्य भी न हुआ। तब मैं तनिक भी रोती वह मेरे आँसू पोछते और मेरा जी बहलाते। अब उन्हें क्या सुधि कि ये आँखें कितनी रोयी हैं और इस हृदय ने कैसे-कैसे कष्ट उठाये हैं। क्या खबर थी की हमारे भाग्य ऐसे दृश्य दिखायेंगे? एक वियोगिन हो जायेगी और दूसरा सन्यासी।

अकस्मात् माधवी को ध्यान आया कि सुवमस को कदाचित बालाजी के आने की सूचना न हुई हो। वह विरजन के पास आकर बोली- मैं तनिक चची के यहाँ जाती हूँ। न जाने किसी ने उनसे कहा या नहीं?

प्राणनाथ बाहर से आ रहे थे, यह सुनकर बोले- वहाँ सबसे पहले सूचना दी गयीं भली-भाँति तैयारियाँ हो रही हैं। बालाजी भी सीधे घर ही की ओर पधारेंगे। इधर से अब न आयेंगे।

विरजन- तो हम लोगों का चलना चाहिए। कहीं देर न हो जाए। माधवी- आरती का थाल लाऊँ?

विरजन- कौन ले चलेगा ? महरी को बुला लो (चौककर) अरे! तेरे हाथों में रुधिर कहाँ से आया?

माधवी- ऊँह! फूल चुनती थी, काँटे लग गये होंगे।

चन्द्रा- अभी नयी साड़ी आयी है। आज ही फाड़ के रख दी।

माधवी- तुम्हारी बला से!

माधवी ने कह तो दिया, किन्तु आँखें अश्रुपूर्ण हो गयीं। चन्द्रा साधारणतः बहुत भली स्त्री थी। किन्तु जब से बाबू राधाचरण ने जाति-सेवा के लिए नौकरी से इस्तीफा दे दिया था वह बालाजी के नाम से चिढ़ती थी। विरजन से तो कुछ न कह सकती थी, परन्तु माधवी को छेड़ती रहती थी। विरजन ने चन्द्रा की ओर घूरकर माधवी से कहा- जाओ, सन्दूक से दूसरी साड़ी निकाल लो। इसे रख आओ। राम-राम, मार हाथ छलनी कर डाले!

माधवी- देर हो जायेगी, मैं इसी भाँति चलूँगी।

विरजन- नहीं, अभी घण्टा भर से अधिक अवकाश है।

यह कहकर विरजन ने प्यार से माधवी के हाथ धोये। उसके बाल गूँथे, एक सुन्दर साड़ी पहिनायी, चादर ओढ़ायी और उसे हृदय से लगाकर सजल नेत्रों से देखते हुए कहा- बहिन! देखो, धीरज हाथ से न जाय।

माधवी मुस्कराकर बोली- तुम मेरे ही संग रहना, मुझे सभलती रहना। मुझे अपने हृदय पर भरोसा नहीं है।

विरजन ताड़ गई कि आज प्रेम ने उन्मत्ततास का पद ग्रहण किया है और कदाचित् यही उसकी पराकाष्ठा है। हाँ! यह बावली बालू की भीत उठा रही है।

माधवी थोड़ी देर के बाद विरजन, सेवती, चन्द्रा आदि कई स्त्रीयों के संग सुवाम के घर चली। वे वहाँ की तैयारियाँ देखकर चकित हो गयीं। द्वार पर एक बहुत बड़ा चँदोवा बिछावन, शीशे और भाँति-भाँति की सामग्रियों से सुसज्जित खड़ा था। बधाई बज रही थी! बड़े-बड़े टोकरों में मिठाइयाँ और मेवे रखे हुए थे। नगर के प्रतिष्ठित सभ्य उत्तमोत्तम वस्त्र पहिने हुए स्वागत करने को खड़े थे। एक भी फिटन या गाड़ी नहीं दिखायी देती थी, क्योंकि बालाजी सर्वदा पैदल चला करते थे। बहुत से लोग गले में झोलियाँ डालें हुए दिखाई देते थे, जिनमें बालाजी पर समर्पण करने के लिये रुपये-पैसे भरे हुए थे। राजा धर्मसिंह के पाँचों लड़के रंगीन वस्त्र पहिने, केसरिया पगड़ी बांधे, रेशमी झण्डियाँ कमरे से खोसों बिगुल बजा रहे थे। ज्योंही लोगों की दृष्टि विरजन पर पड़ी, सहस्रों मस्तक शिष्टाचार के लिए झुक गये। जब ये देवियाँ भीतर गयीं तो वहाँ भी आंगन और दालान नवागत वधू की भाँति सुसज्जित दिखे! सैकड़ों स्त्रीयाँ मंगल गाने के लिए बैठी थीं। पुष्पों की राशियाँ ठौर-ठौर पड़ी थी। सुवामा एक श्वेत साड़ी पहिने सन्तोष और शान्ति की मूर्ति बनी हुई द्वार पर खड़ी थी। विरजन और माधवी को देखते ही सजल नयन हो गयी। विरजन बोली- चची! आज इस घर के भाग्य जग गये।

सुवामा ने रोकर कहा- तुम्हारे कारण मुझे आज यह दिन देखने का सौभाग्य हुआ। ईश्वर तुम्हें इसका फल दे।

दुखिया माता के अन्तःकरण से यह आशीर्वाद निकला। एक माता के शाप ने राजा दशरथ को पुत्रशोक में मृत्यु का स्वाद चखाया था। क्या सुवामा का यह आशीर्वाद प्रभावहीन होगा?

दोनों अभी इसी प्रकार बातें कर रही थीं कि घण्टे और शंख की ध्वनि आने लगी। धूम मची की बालाजी आ पहुँचे। स्त्रीयों ने मंगलगान आरम्भ किया। माधवी ने आरती का थाल ले लिया मार्ग की ओर टकटकी बांधकर देखने लगी। कुछ ही काल में अद्वैताम्बरधारी नवयुवकों का समुदाय दखयी पड़ा। भारत सभा के सौ सभ्य घोड़ों पर सवार चले आते थे। उनके पीछे अगणित मनुष्यों का झुण्ड था। सारा नगर टूट पड़ा। कन्धे से कन्धा छिला जाता था मानो समुद्र की तरंगें बढ़ती चली आती हैं। इस भीड़ में बालाजी का मुखचन्द्र ऐसा दिखायी पड़ता था मानो मेघाच्छदित चन्द्र उदय हुआ है। ललाट पर अरुण चन्दन का तिलक था और कण्ठ में एक गेरुए रंग की चादर पड़ी हुई थी।

सुवामा द्वार पर खड़ी थी, ज्योंही बालाजी का स्वरूप उसे दिखायी दिया धीरज हाथ से जाता रहा। द्वार से बाहर निकल आयी और सिर झुकाये, नेत्रों से मुक्तहार गूँथती बालाजी के ओर चली। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। वह उसे हृदय से लगाने के लिए उद्विग्न है।

सुवामा को इस प्रकार आते देखकर सब लोग रुक गये। विदित होता था कि आकाश से कोई देवी उतर आयी है। चतुर्दिक सन्नाटा छा गया। बालाजी ने कई डग आगे बढ़कर मातीजी को प्रमाण किया और उनके चरणों पर गिर पड़े। सुवामा ने उनका मस्तक अपने अंक में लिया। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। उस पर आँखों से मोतियों की वृष्टि कर रही है।

इस उत्साहवर्द्धक दृश्य को देखकर लोगों के हृदय जातीयता के मद में मतवाले हो गये! पचास सहस्र स्वर से ध्वनि आयी-‘बालाजी की जय!’ मेघ गर्जा और चतुर्दिक से पुष्पवृष्टि होने लगी। फिर उसी प्रकार

दूसरी बार मेघ की गर्जना हुई। 'मुंशी शालिग्राम की जय' और सहस्रों मनुष्ये स्वदेश-प्रेम के मद से मतवाले होकर दौड़े और सुवामा के चरणों की रज माथे पर मलने लगे। इन ध्वनियों से सुवामा ऐसी प्रमुदित हो रही थी जैसे महार के सुनने से नागिन मतवाली हो जाती है। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। अमूल्य रत्न पाने से वह रानी हो गयी है। इस रत्न के कारण आज उसके चरणों की रज लोगों के नेत्रों का अंजन और माथे का चन्दन बन रही है।

अपूर्व दृश्य था। बारम्बार जय-जयकार की ध्वनि उठती थी और स्वर्ग के निवासियों को भातर की जागृति का शुभ-संवाद सुनाती थी। माता अपने पुत्र को कलेजे से लगाये हुए है। बहुत दिन के अनन्तर उसने अपना खोया हुआ लाल है, वह लाल जो उसकी जन्म-भर की कमाई था। फूल चारों ओर से निछावर हो रहे हैं। स्वर्ण और रत्नों की वर्षा हो रही है। माता और पुत्र कमर तक पुष्पों के समुद्र में डूबे हुए हैं। ऐसा प्रभावशाली दृश्य किसके नेत्रों ने देखा होगा।

सुवामा बालाजी का हाथ पकड़े हुए घरकी ओर चली। द्वार पर पहुँचते ही स्त्रीयों मंगल-गीत गाने लगीं और माधवी स्वर्ण रचित थाल दीप और पुष्पों से आरती करने लगी। विरजन ने फूलों की माला-जिसे माधवी ने अपने रक्त से रंजित किया था- उनके गले में डाल दी। बालाजी ने सजल नेत्रों से विरजन की ओर देखकर प्रणाम किया।

माधवी को बालाजी के दर्शन की कितनी अभिलाषा थी। किन्तु इस समय उसके नेत्र पृथ्वी की ओर झुके हुए हैं। वह बालाजी की ओर नहीं देख सकती। उसे भय है कि मेरे नेत्र पृथ्वी हृदय के भेद को खोल देंगे। उनमें प्रेम रस भरा हुआ है। अब तक उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह थी कि बालाजी का दर्शन पाऊँ। आज प्रथम बार माधवी के हृदय में नयी अभिलाषाएं उत्पन्न हुई, आज अभिलाषाओं ने सिर उठाया है, मगर पूर्ण होने के लिए नहीं, आज अभिलाषा-वाटिका में एक नवीन कली लगी है, मगर खिलने के लिए नहीं, वरन मुरझाने मिट्टी में मिल जाने के लिए। माधवी को कौन समझाये कि तू इन अभिलाषाओं को हृदय में उत्पन्न होने दे। ये अभिलाषाएं तुझे बहुत रुलायेंगी। तेरा प्रेम काल्पनिक है। तू उसके स्वाद से परिचित है। क्या अब वास्तविक प्रेम का स्वाद लिया चाहती है?

मनुष्य का हृदय अभिलाषाओं का क्रीड़ास्थल और कामनाओं का आवास है। कोई समय वह था जब कि माधवी माता के अंक में खेलती थी। उस समय हृदय अभिलाषा और चेष्टाहीन था। किन्तु जब मिट्टी के घरोंदे बनाने लगी उस समय मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी अपनी गुड़िया का विवाह करूँगी। सब लड़कियां अपनी गुड़ियां ब्याह रही हैं, क्या मेरी गुड़ियाँ कुँवारी रहेंगी? मैं अपनी गुड़ियाँ के लिए गहने बनवाऊँगी, उसे वस्त्र पहनाऊँगी, उसका विवाह रचाऊँगी। इस इच्छा ने उसे कई मास तक रुलाया। पर गुड़ियों के भाग्य में विवाह न बदा था। एक दिन मेघ घिर आये और मूसलाधार पानी बरसा। घरोंदा वृष्टि में बह गया और गुड़ियों के विवाह की अभिलाषा अपूर्ण हो रह गयी।

कुछ काल और बीता। वह माता के संग विरजन के यहाँ आने-जाने लगी। उसकी मीठी-मीठी बातें सुनती और प्रसन्न होती, उसके थाल में खाती और उसकी गोद में सोती। उस समय भी उसके हृदय में यह इच्छा थी कि मेरा भवन परम सुन्दर होता, उसमें चांदी के किवाड़ लगे होते, भूमि ऐसी स्वच्छ होती कि मक्खी बैठे और फिसल जाए ! मैं विरजन को अपने घर ले जाती, वहाँ अच्छे-अच्छे पकवान बनाती और खिलाती, उत्तम पलंग पर सुलाती और भली-भाँति उसकी सेवा करती। यह इच्छा वर्षों तक हृदय में चुटकियाँ लेती रही। किन्तु उसी घरोंदे की भाँति यह घर भी ढह गया और आशाएँ निराशा में परिवर्तित हो गयीं।

कुछ काल और बीता, जीवन-काल का उदय हुआ। विरजन ने उसके चित्त पर प्रतापचन्द्र का चित्त खींचना आरम्भ किया। उन दिनों इस चर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात अच्छी न लगती थी। निदान उसके हृदय में प्रतापचन्द्र की चेरी बनने की इच्छा उत्पन्न हुई। पड़े-पड़े हृदय से बातें किया करती। रात्र में जागरण करके मन का मोदक खाती। इन विचारों से चित्त पर एक उन्माद-सा छा जाता, किन्तु प्रतापचन्द्र इसी बीच में गुप्त हो गये और उसी मिट्टी के घरोंदे की भाँति ये हवाई किले ढह गये। आशा के स्थान पर हृदय में शोक रह गया।

अब निराशा ने उसक हृदय में आशा ही शेष न रखा। वह देवताओं की उपासना करने लगी, व्रत रखने लगी कि प्रतापचन्द्र पर समय की कुदृष्टि न पड़ने पाये। इस प्रकार अपने जीवन के कई वर्ष उसने तपस्विनी बनकर व्यतीत किये। कल्पित प्रेम के उल्लास में चूर होती। किन्तु आज तपस्विनी का व्रत टूट गया। मन में नूतन अभिलाषाओं ने सिर उठाया। दस वर्ष की तपस्या एक क्षण में भंग हो गयी। क्या यह इच्छा भी उसी मिट्टी के घरोंदे की भाँति पददलित हो जाएगी?

आज जब से माधवी ने बालाजी की आरती उतारी है, उसके आँसू नहीं रुके। सारा दिन बीत गया। एक-एक करके तार निकलने लगे। सूर्य थककर छिप गया और पक्षीगण घोंसलों में विश्राम करने लगे, किन्तु माधवी के नेत्र नहीं थके। वह सोचती है कि हाय! क्या मैं इसी प्रकार रोने के लिए बनायी गई हूँ? मैं कभी हँसी भी थी जिसके कारण इतना रोती हूँ? हाय! रोते-रोते आधी आयु बीत गयी, क्या शेष भी इसी प्रकार बीतेगी? क्या मेरे जीवन में एक दिन भी ऐसा न आयेगा, जिसे स्मरण करके सन्तोष हो कि मैंने भी कभी सुदिन देखे थे? आज के पहले माधवी कभी ऐसे नैराश्य-पीड़ित और छिन्नहृदया नहीं हुई थी। वह अपने कल्पित प्रेम में निमग्न थी। आज उसके हृदय में नवीन अभिलाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। अश्रु उन्हीं के प्रेरित हैं। जो हृदय सोलह वर्ष तक आशाओं का आवास रहा हो, वही इस समय माधवी की भावनाओं का अनुमान कर सकता है।

सुवामा के हृदय में नवीन इच्छाओं ने सिर उठाया है। जब तक बालाजी को न देखा था, तब तक उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह थी कि वह उन्हें आँखें भर कर देखती और हृदय-शीतल कर लेती। आज जब आँखें भर देख लिया तो कुछ और देखने की अच्छा उत्पन्न हुई। शोक ! वह इच्छा उत्पन्न हुई माधवी के घरोंदे की भाँति मिट्टी में मिल जाने के लिए।

आज सुवामा, विरजन और बालाजी में सांयकाल तक बातें होती रही। बालाजी ने अपने अनुभवों का वर्णन किया। सुवामा ने अपनी राम कहानी सुनायी और विरजन ने कहा थोड़ा, किन्तु सुना बहुत। मुंशी संजीवनलाल के सन्यास का समाचार पाकर दोनों रोयीं। जब दीपक जलने का समय आ पहुँचा, तो बालाजी गंगा की ओर संध्या करने चले और सुवामा भोजन बनाने बैठी। आज बहुत दिनों के पश्चात सुवामा मन लगाकर भोजन बना रही थी। दोनों बात करने लगीं।

सुवामा-बेटी! मेरी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरा लड़का संसार में प्रतिष्ठित हो और ईश्वर ने मेरी लालसा पूरी कर दी। प्रताप ने पिता और कुल का नाम उज्ज्वल कर दिया। आज जब प्रातःकाल मेरे

स्वामीजी की जय सुनायी जा रही थी तो मेरा हृदय उमड़-उमड़ आया था। मैं केवल इतना चाहती हूँ कि वे यह वैराग्य त्याग दें। देश का उपकार करने से मैं उन्हें नहीं राकती। मैंने तो देवीजी से यही वरदान माँगा था, परन्तु उन्हें संन्यासी के वेश में देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

विरजन सुवामा का अभिप्राय समझ गयी। बोली-चाची! यह बात तो मेरे चित्त में पहिले ही से जमी हुई है। अवसर पाते ही अवश्य छेड़ूँगी।

सुवामा-अवसर तो कदाचित ही मिले। इसका कौन ठिकान? अभी जी में आये, कहीं चल दें। सुनती हूँ सोटा हाथ में लिये अकेले वनों में घूमते हैं। मुझसे अब बेचारी माधवी की दशा नहीं देखी जाती। उसे देखती हूँ तो जैसे कोई मेरे हृदय को मसोसने लगता है। मैंने बहुतेरी स्त्रीयाँ देखीं और अनेक का वृत्तान्त पुस्तकों में पढ़ा ; किन्तु ऐसा प्रेम कहीं नहीं देखा। बेचारी ने आधी आयु रो-रोकर काट दी और कभी मुख न मैला किया। मैंने कभी उसे रोते नहीं देखा ; परन्तु रone वाले नेत्र और हँसने वाले मुख छिपे नहीं रहते। मुझे ऐसी ही पुत्रवधू की लालसा थी, सो भी ईश्वर ने पूर्ण कर दी। तुमसे सत्य कहती हूँ, मैं उसे पुत्रवधू समझती हूँ। आज से नहीं, वर्षों से।

वृजरानी- आज उसे सारे दिन रोते ही बीता। बहुत उदास दिखायी देती है।

सुवामा- तो आज ही इसकी चर्चा छोड़ो। ऐसा न हो कि कल किसी ओर प्रस्थान कर दे, तो फिर एक युग प्रतीक्षा करनी पड़े।

वृजरानी- (सोचकर) चर्चा करने को तो मैं करूँ, किन्तु माधवी स्वयं जिस उत्तमता के साथ यह कार्य कर सकती है, कोई दूसरा नहीं कर सकता।

सुवामा- वह बेचारी मुख से क्या कहेगी?

वृजरानी- उसके नेत्र सारी कथा कह देंगे?

सुवामा- लल्लू अपने मन में क्या कहेंगे?

वृजरानी- कहेंगे क्या ? यह तुम्हारा भ्रम है जो तुम उसे कुंवारी समझ रही हो। वह प्रतापचन्द्र की पत्नी बन चुकी। ईश्वर के यहाँ उसका विवाह उनसे हो चुका यदि ऐसा न होता तो क्या जगत् में पुरुष न थे? माधवी जैसी स्त्री को कौन नेत्रों में न स्थान देगा? उसने अपना आधा यौवन व्यर्थ रो-रोकर बिताया है। उसने आज तक ध्यान में भी किसी अन्य पुरुष को स्थान नहीं दिया। बारह वर्ष से तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही है। वह पलंग पर नहीं सोयी। कोई रंगीन वस्त्र नहीं पहना। केश तक नहीं गुँथाये। क्या इन व्यवहारों से नहीं सिद्ध होता कि माधवी का विवाह हो चुका? हृदय का मिलाप सच्चा विवाह है। सिन्दूर का टीका, ग्रन्थि-बन्धन और भाँवर- ये सब संसार के ढकोसले हैं।

सुवामा- अच्छा, जैसा उचित समझो करो। मैं केवल जग-हँसाई से डरती हूँ।

रात को नौ बजे थे। आकाश पर तारे छिटके हुए थे। माधवी वाटिका में अकेली किन्तु अति दूर हैं। क्या कोई वहाँ तक पहुँच सकता है? क्या मेरी आशाएँ भी उन्हीं नक्षत्रों की भाँति हैं? इतने में विरजन ने उसका हाथ पकड़कर हिलाया। माधवी चौंक पड़ी।

विरजन-अँधेरे में बैठी क्या कर रही है?

माधवी- कुछ नहीं, तो तारों को देख रही हूँ। वे कैसे सुहावने लगते हैं, किन्तु मिल नहीं सकते।

विरजन के कलेजे में बछी-सी लग गयी। धीरज धरकर बोली- यह तारे गिनने का समय नहीं है। जिस अतिथि के लिए आज भोर से ही फूली नहीं समाती थी, क्या इसी प्रकार उसकी अतिथि-सेवा करेगी?

माधवी- मैं ऐसे अतिथि की सेवा के योग्य कब हूँ?

विरजन- अच्छा, यहाँ से उठो तो मैं अतिथि-सेवा की रीति बताऊँ।

दोनों भीतर आयीं। सुवामा भोजन बना चुकी थी। बालाजी को माता के हाथ की रसोई बहुत दिनों में प्राप्त हुई। उन्होंने बड़े प्रेम से भोजन किया। सुवामा खिलाती जाती थी और रोती जाती थी। बालाजी खा पीकर लेटे, तो विरजन ने माधवी से कहा- अब यहाँ कोने में मुख बाँधकर क्यों बैठी हो?

माधवी- कुछ दो तो खाके सो रहूँ, अब यही जी चाहता है।

विरजन- माधवी! ऐसी निराश न हो। क्या इतने दिनों का व्रत एक दिन में भंग कर देगी?

माधवी उठी, परन्तु उसका मन बैठा जाता था। जैसे मेघों की काली-काली घटाएँ उठती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि अब जल-थल एक हो जाएगा, परन्तु अचानक पछवा वायु चलने के कारण सारी घटा काई की भाँति फट जाती है, उसी प्रकार इस समय माधवी की गति हो रही है।

वह शुभ दिन देखने की लालसा उसके मन में बहुत दिनों से थी। कभी वह दिन भी आयेगा जब कि मैं उसके दर्शन पाऊँगी? और उनकी अमृत-वाणी से श्रवण तृप्त करूँगी। इस दिन के लिए उसने मान्याएँ कैसी मानी थी? इस दिन के ध्यान से ही उसका हृदय कैसा खिला उठता था!

आज भोर ही से माधवी बहुत प्रसन्न थी। उसने बड़े उत्साह से फूलों का हार गूँथा था। सैकड़ों काँटे हाथ में चुभा लिये। उन्मत्त की भाँति गिर-गिर पड़ती थी। यह सब हर्ष और उमंग इसीलिए तो था कि आज वह शुभ दिन आ गया। आज वह दिन आ गया जिसकी ओर चिरकाल से आँखें लगी हुई थीं। वह समय भी अब स्मरण नहीं, जब यह अभिलाषा मन में नहीं, जब यह अभिलाषा मन में न रही हो। परन्तु इस समय माधवी के हृदय की वह गाते नहीं है। आनन्द की भी सीमा होती है। कदाचित् वह माधवी के आनन्द की सीमा थी, जब वह वाटिका में झूम-झूमकर फूलों से आँचल भर रही थी। जिसने कभी सुख का स्वाद ही न चखा हो, उसके लिए इतना ही आनन्द बहुत है। वह बेचारी इससे अधिक आनन्द का भार नहीं सँभाल सकती। जिन अधरों पर कभी हँसी आती ही नहीं, उनकी मुस्कान ही हँसी है। तुम ऐसों से अधिक हँसी की आशा क्यों करते हो? माधवी बालाजी की ओर परन्तु इस प्रकार इस प्रकार नहीं जैसे एक नवेली बहू आशाओं से भरी हुई श्रृंगार किये अपने पति के पास जाती है। वही घर था जिसे वह अपने देवता का मन्दिर समझती थी। जब वह मन्दिर शून्य था, तब वह आ-आकर आँसुओं के पुष्प चढ़ाती थी। आज जब देवता ने वास किया है, तो वह क्यों इस प्रकार मचल-मचल कर आ रही है?

रात्रि भली-भाँति आर्द्र हो चुकी थी। सड़क पर घंटों के शब्द सुनायी दे रहे थे। माधवी दबे पाँव बालाजी के कमरे के द्वार तक गयी। उसका हृदय धड़क रहा था। भीतर जाने का साहस न हुआ, मानो किसी ने पैर पकड़ लिए। उल्टे पाँव फिर आयी और पृथ्वी पर बैठकर रौने लगी। उसके चित्त ने कहा- माधवी! यह बड़ी लज्जा की बात है। बालाजी की चेरी सही, माना कि तुझे उनसे प्रेम है; किन्तु तू उसकी स्त्री नहीं है। तुझे इस समय उनका गृह में रहना उचित नहीं है। तेरा प्रेम तुझे उनकी पत्नी नहीं बना सकता। प्रेम और वस्तु है और सोहाग और वस्तु है। प्रेम चित्त की प्रवृत्ति है और ब्याह एक पवित्र धर्म है। तब माधवी को एक विवाह का स्मरण हो आया। वर ने भरी सभा में पत्नी की बाँह पकड़ी थी और कहा था कि इस स्त्री को मैं अपने गृह की स्वामिनी और अपने मन की देवी समझता रहूँगा। इस सभा के लोग, आकाश, अग्नि और देवता इसके साक्षी रहे। हा! ये कैसे शुभ शब्द हैं। मुझे कभी ऐसे शब्द सुनने का मौका प्राप्त न हुआ! मैं न अग्नि को अपना साक्षी बना सकती हूँ, न देवताओं को और न आकाश ही को; परन्तु है अग्नि! है आकाश के तारों! और हे देवलोक-वासियों! तुम साक्षी रहना कि माधवी ने बालाजी की पवित्र मूर्ति को हृदय में स्थान दिया, किन्तु किसी निकृष्ट विचार को हृदय में न आने दिया। यदि मैंने घर के भीतर पैर रखा हो तो है अग्नि! तुम मुझे अभी जलाकर भस्म कर दो। हे आकाश! यदि तुमने अपने अनेक नेत्रों से मुझे गृह में जाते देखा, तो इसी क्षण मेरे ऊपर इन्द्र का वज्र गिरा दो।

माधवी कुछ काल तक इसी विचार में मग्न बैठी रही। अचानक उसके कान में भक-भक की ध्वनि आयी। उसने चौंककर देखा तो बालाजी का कमरा अधिक प्रकाशित हो गया था और प्रकाश खिड़कियों से बाहर निकलकर आँगन में फैल रहा था। माधवी के पाँव तले से मिट्टी निकल गयी। ध्यान आया कि मेज पर लैम्प भभक उठा। वायु की भाँति वह बालाजी के कमरे में घुसी। देखा तो लैम्प फटक पृथ्वी पर गिर पड़ा है और भूतल के बिछावन में तेल फैल जाने के कारण आग लग गयी है। दूसरे किनारे पर बालाजी सुख से सो रहे थे। अभी तक उनकी निद्रा न खुली थी। उन्होंने कालीन समेटकर एक कोने में रख दिया था। विद्युत् की भाँति लपककर माधवी ने वह कालीन उठा लिया और भभकती हुई ज्वाला के ऊपर गिरा दिया। धमाके का शब्द हुआ तो बालाजी ने चौंककर आँखें खोली। घर में धुआँ भरा था और चतुर्दिक तेल की दुर्गन्ध फैली हुई थी। इसका कारण वह समझ गये। बोले- कुशल हुआ, नहीं तो कमरे में आग लग गयी थी।

माधवी- जी हाँ! यह लैम्प गिर पड़ा था।

बालाजी- तुम बड़े अवसर से आ पहुँची।

माधवी- मैं यहीं बाहर बैठी हुई थी।

बालाजी -तुमको बड़ा कष्ट हुआ। अब जाकर शयन करो। रात बहुत हा गयी है।

माधवी- चली जाऊँगी। शयन तो नित्य ही करना है। यअ अवसर न जाने फिर कब आये?

माधवी की बातों से अपूर्व करुणा भरी थी। बालाजी ने उसकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा। जब उन्होंने पहिले माधवी को देखा था, उसक समय वह एक खिलती हुई कली थी और आज वह एक मुरझाया हुआ पुष्प है। न मुख पर सौन्दर्य था, न नेत्रों में आनन्द की झलक, न माँग में सोहाग का संचार था, न माथे पर सिंदूर

का टीका। शरीर में आभूषणों का चिन्ह भी न था। बालाजी ने अनुमान से जाना कि विधाता से जान कि विधाता ने ठीक तरुणावस्था में इस दुखिया का सोहाग हरण किया है। परम उदास होकर बोले-क्यों माधवी! तुम्हारा तो विवाह हो गया है न?

माधवी के कलेज में कटारी चुभ गयी। सजल नेत्र होकर बोली- हाँ, हो गया है।

बालाजी- और तुम्हारा पति?

माधवी- उन्हें मेरी कुछ सुध ही नहीं। उनका विवाह मुझसे नहीं हुआ।

बालाजी विस्मित होकर बोले- तुम्हारा पति करता क्या है?

माधवी- देश की सेवा।

बालाजी की आँखों के सामने से एक पर्दा सा हट गया। वे माधवी का मनोरथ जान गये और बोले- माधवी इस विवाह को कितने दिन हुए?

बालाजी के नेत्र सजल हो गये और मुख पर जातीयता के मद का उन्माद- सा छा गया। भारत माता! आज इस पतितावस्था में भी तुम्हारे अंक में ऐसी-ऐसी देवियाँ खेल रही हैं, जो एक भावना पर अपने यौवन और जीवन की आशाएँ समर्पण कर सकती हैं। बोले- ऐसे पति को तुम त्याग क्यों नहीं देती?

माधवी ने बालाजी की ओर अभिमान से देखा और कहा- स्वामी जी! आप अपने मुख से ऐसे कहें! मैं आर्य-बाला हूँ। मैंने गान्धारी और सावित्री के कुल में जन्म लिया है। जिसे एक बार मन में अपना पति माना चुकी उसे नहीं त्याग सकती। यदि मेरी आयु इसी प्रकार रोते-रोते कट जाय, तो भी अपने पति की ओर से मुझे कुछ भी खेद न होगा। जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेगा मैं ईश्वर से उनका हित चाहती रहूँगी। मेरे लिए यही क्या कमक है, जो ऐसे महात्मा के प्रेम ने मेरे हृदय में निवास किया है? मैं इसी का अपना सौभाग्य समझती हूँ। मैंने एक बार अपने स्वामी को दूर से देखा था। वह चित्र एक क्षण के लिए भी आँखों से नहीं उतरा। जब कभी मैं बीमार हुई हूँ, तो उसी चित्र ने मेरी शुश्रूषा की है। जब कभी मैंने वियोग के आँसू बहाये हैं, तो उसी चित्र ने मुझे सान्त्वना दी है। उस चित्र वाले पति को मैं कैसे त्याग दूँ? मैं उसकी हूँ और सदैव उसी का रहूँगी। मेरा हृदय और मेरे प्राण सब उनकी भेंट हो चुके हैं। यदि वे कहें तो आज मैं अग्नि के अंक में ऐसे हर्षपूर्वक जा बैठूँ जैसे फूलों की शैय्या पर। यदि मेरे प्राण उनके किसी काम आयें तो मैं उसे ऐसी प्रसन्नता से दे दूँ जैसे कोई उपसाक अपने इष्टदेव को फूल चढ़ाता हो।

माधवी का मुखमण्डल प्रेम-ज्योति से अरुणा हो रहा था। बालाजी ने सब कुछ सुना और चुप हो गये। सोचने लगे- यह स्त्री है; जिसने केवल मेरे ध्यान पर अपना जीवन समर्पण कर दिया है। इस विचार से बालाजी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। जिस प्रेम ने एक स्त्री का जीवन जलाकर भस्म कर दिया हो उसके लिए एक मनुष्य के धैर्य को जला डालना कोई बात नहीं! प्रेम के सामने धैर्य कोई वस्तु नहीं है। वह बोले- माधवी तुम जैसी देवियाँ भारत की गौरव हैं। मैं बड़ा भाग्यवान हूँ कि तुम्हारे प्रेम-जैसी अनमोल वस्तु इस प्रकार मेरे हाथ आ रही है। यदि तुमने मेरे लिए योगिनी बनना स्वीकार किया है तो मैं भी तुम्हारे लिए इस सन्यास और वैराग्य का त्याग कर सकता हूँ। जिसके लिए तुमने अपने को मिटा दिया है, वह तुम्हारे लिए बड़ा-से-बड़ा बलिदान करने से भी नहीं हिचकिचायेगा।

माधवी इसके लिए पहले ही से प्रस्तुत थी, तुरन्त बोली- स्वामीजी! मैं परम अबला और बुद्धिहीन सत्री हूँ। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि निज विलास का ध्यान आज तक एक पल के लिए भी मेरे मन में नहीं आया। यदि आपने यह विचार किया कि मेरा प्रेम का उद्देश्य केवल यह है कि आपके चरणों में सांसारिक बन्धनों की बेड़ियाँ डाल दूँ, तो (हाथ जोड़कर) आपने इसका तत्व नहीं समझा। मेरे प्रेम का उद्देश्य वही था, जो आज मुझे प्राप्त हो गया। आज का दिन मेरे जीवन का सबसे शुभ दिन है। आज मैं अपने प्राणनाथ के सम्मुख खड़ी हूँ और अपने कानों से उनकी अमृतमयी वाणी सुन रही हूँ। स्वामीजी! मुझे आशा नहीं थी कि इस जीवन में मुझे यह दिन देखने का सौभाग्य होगा। यदि मेरे पास संसार का राज्य होता तो मैं इसी आनन्द से उसे आपके चरणों में समर्पण कर देती। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अब इन चरणों से अलग न कीजियेगा। मैं सन्यस ले लूँगी और आपके संग रहूँगी। वैरागिनी बनूँगी, भभूति रमाऊँगी; परन्तु आपका संग न छोड़ूँगी। प्राणनाथ! मैंने बहुत दुःख सहे हैं, अब यह जलन नहीं कर सकती।

यह कहते-कहते माधवी का कंठ रुँध गया और आँखों से प्रेम की धारा बहने लगी। उससे वहाँ न बैठा गया। उठकर प्रणाम किया और विरजन के पास आकर बैठ गयी। वृजरानी ने उसे गले लगा लिया और पूछा- क्या बातचीत हुई?

माधवी- जो तुम चाहती थीं।

वृजरानी- सच, क्या बोले?

माधवी- यह न बताऊँगी।

वृजरानी को मानो पड़ा हुआ धन मिल गया। बोली- ईश्वर ने बहुत दिनों में मेरा मनारेथ पूरा किया। मे अपने यहाँ से विवाह करूँगी।

माधवी नैराश्य भाव से मुस्करायी। विरजन ने कम्पित स्वर से कहा- हमको भूल तो न जायेगी? उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। फिर वह स्वर सँभालकर बोली- हमसे तू बिछुड़ जायेगी।

माधवी- मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगी।

विरजन- चल; बातें ने बना।

माधवी- देख लेना।

विरजन- देखा है। जोड़ा कैसा पहनेगी?

माधवी- उज्ज्वल, जैसे बगुले का पर।

विरजन- सोहाग का जोड़ा केसरिया रंग का होता है।

माधवी- मेरा श्वेत रहेगा।

विरजन- तुझे चन्द्रहार बहुत भाता था। मैं अपना दे दूँगी।

माधवी-हार के स्थान पर कंठी दे देना।

विरजन- कैसी बातें कर रही हैं?

माधवी- अपने श्रृंगार की!

विरजन- तेरी बातें समझ में नहीं आती। तू इस समय इतनी उदास क्यों है? तूने इस रत्न के लिए कैसी-कैसी तपस्याएँ की, कैसा-कैसा योग साधा, कैसे-कैसे व्रत किये और तुझे जब वह रत्न मिल गया तो हर्षित नहीं देख पड़ती!

माधवी- तुम विवाह की बातीचीत करती हो इससे मुझे दुःख होता है।

विरजन- यह तो प्रसन्न होने की बात है।

माधवी- बहिन! मेरे भाग्य में प्रसन्नता लिखी ही नहीं! जो पक्षी बादलों में घोंसला बनाना चाहता है वह सर्वदा डालियों पर रहता है। मैंने निर्णय कर लिया है कि जीवन की यह शेष समय इसी प्रकार प्रेम का सपना देखने में काट दूँगी।

दूसरे दिन बालाजी स्थान-स्थान से निवृत्त होकर राजा धर्मसिंह की प्रतीक्षा करने लगे। आज राजघाट पर एक विशाल गोशाला का शिलारोपण होने वाला था, नगर की हाट-बाट और वीथियाँ मुस्काराती हुई जान पड़ती थी। सड़क के दोनों पार्श्व में झण्डे और झणियाँ लहरा रही थीं। गृहद्वार फूलों की माला पहिने स्वागत के लिए तैयार थे, क्योंकि आज उस स्वदेश-प्रेमी का शुभगमन है, जिसने अपना सर्वस्व देश के हित बलिदान कर दिया है।

हर्ष की देवी अपनी सखी-सहेलियों के संग टहल रही थी। वायु झूमती थी। दुःख और विषाद का कहीं नाम न था। ठौर-ठौर पर बधाइयाँ बज रही थीं। पुरुष सुहावने वस्त्र पहने इठालते थे। स्त्रीयाँ सोलह श्रृंगार किये मंगल-गीत गाती थी। बालक-मण्डली केसरिया साफा धारण किये कलोलें करती थीं हर पुरुष-स्त्री के मुख से प्रसन्नता झलक रही थी, क्योंकि आज एक सच्चे जाति-हितैषी का शुभगमन है जिसेने अपना सर्वस्व जाति के हित में भेंट कर दिया है।

बालाजी अब अपने सुहदों के संग राजघाट की ओर चले तो सूर्य भगवान ने पूर्व दिशा से निकलकर उनका स्वागत किया। उनका तेजस्वी मुखमण्डल ज्यों ही लोगों ने देखा सहस्रो मुखों से 'भारत माता की जय' का घोर शब्द सुनायी दिया और वायुमंडल को चीरता हुआ आकाश-शिखर तक जा पहुंचा। घण्टों और शंखों की ध्वनि निनादित हुई और उत्सव का सरस राग वायु में गूँजने लगा। जिस प्रकार दीपक को देखते ही पतंग उसे घेर लेते हैं उसी प्रकार बालाजी को देखकर लोग बड़ी शीघ्रता से उनके चतुर्दिक एकत्र हो गये। भारत-सभा के सवा सौ सभ्यों ने आभिवादन किया। उनकी सुन्दर वार्दियाँ और मनचले घोड़ों नेत्रों में खूब जाते थे। इस सभा का एक-एक सभ्य जाति का सच्चा हितैषी था और उसके उमंग-भरे शब्द लोगों के चित्त को उत्साह से पूर्ण कर देते थे सड़क के दोनों ओर दर्शकों की श्रेणी थी। बधाइयाँ बज रही थीं। पुष्प और मेवों की वृष्टि हो रही थी। ठौर-ठौर नगर की ललनाएँ श्रृंगार किये, स्वर्ण के थाल में कपूर, फूल और चन्दन लिये आरती करती जाती थीं। और दूकाने नवागता वधू की भाँति सुसज्जित थीं। सारा नगर अपनी सजावट से वाटिका को लज्जित करता था और जिस प्रकार श्रावण मास में काली घटाएं उठती हैं और रह-रहकर वन की गरज हृदय को कँपा देती है और उसी प्रकार जनता की उमंगवर्दक ध्वनि (भारत माता की जय) हृदय में उत्साह और उत्तेजना उत्पन्न करती थी। जब बालाजी चौक में पहुँचे तो उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। बालक-वृन्द ऊँचे रंग के लेसदार कोट पहिने, केसरिया पगड़ी बाँधे हाथों में सुन्दर छड़ियाँ लिये मार्ग पर खड़े थे। बालाजी को देखते ही वे दस-दस की श्रेणियों में हो गये एवं अपने डण्डे बजाकर यह ओजस्वी गीत गाने लगे:-

बालाजी तेरा आना मुबारक होवे।

धनि-धनि भाग्य हैं इस नगरी के; धनि-धनि भाग्य हमारे।।

धनि-धनि इस नगरी के बासी जहाँ तब चरण पधारे।

बालाजी तेरा आना मुबारक होवे।।

कैसा चित्ताकर्षक दृश्य था। गीत यद्यपि साधारण था, परन्तु उनके और सधे हुए स्वरों ने मिलकर उसे ऐसा मनोहर और प्रभावशाली बना दिया कि पाँव रुक गये। चतुर्दिक सन्नाटा छा गया। सन्नाटे में यह राग ऐसा सुहावना प्रतीत होता था जैसे रात्रि के सन्नाटे में बुलबुल का चहकना। सारे दर्शक चित्त की भाँति खड़े थे। दीन भारतवासियों, तुमने ऐसे दृश्य कहाँ देखे? इस समय जी भरकर देख लो। तुम वेश्याओं के नृत्य-वाद्य से सन्तुष्ट हो गये। वारांगनाओं की काम-लीलाएँ बहुत देख चुके, खूब सैर सपाटे किये; परन्तु यह सच्चा आनन्द और यह सुखद उत्साह, जो इस समय तुम अनुभव कर रहे हो तुम्हें कभी और भी प्राप्त हुआ था? मनमोहनी वेश्याओं के संगीत और सुन्दरियों का काम-कौतुक तुम्हारी वैषयिक इच्छाओं को उत्तेजित करते हैं। किन्तु तुम्हारे उत्साहों को और निर्बल बना देते हैं और ऐसे दृश्य तुम्हारे हृदयों में जातीयता और जाति-अभिमान का संचार करते हैं। यदि तुमने अपने जीवन में एक बार भी यह दृश्य देखा है, तो उसका पवित्र चिह्न तुम्हारे हृदय से कभी नहीं मिटेगा।

बालाजी का दिव्य मुखमंडल आत्मिक आनन्द की ज्योति से प्रकाशित था और नेत्रों से जात्याभिमान की किरणें निकल रही थीं। जिस प्रकार कृषक अपने लहलहाते हुए खेत को देखकर आनन्दोन्मत्त हो जाता है, वही दशा इस समय बालाजी की थी। जब राग बन्द हो गया, तो उन्होंने कई डग आगे बढ़कर दो छोटे-छोटे बच्चों को उठा कर अपने कंधों पर बैठा लिया और बोले, 'भारत-माता की जय!'

इस प्रकार शनैः शनै लोग राजघाट पर एकत्र हुए। यहाँ गोशाला का एक गगनस्पर्शी विशाल भवन स्वागत के लिये खड़ा था। आँगन में मखमल का बिछावन बिछा हुआ था। गृहद्वार और स्तंभ फूल-पत्तियों से सुसज्जित खड़े थे। भवन के भीतर एक सहस्र गायें बंधी हुई थीं। बालाजी ने अपने हाथों से उनकी नाँदों में खली-भूसा डाला। उन्हें प्यार से थपकियाँ दी। एक विस्तृत गृह में संगमर का अष्टभुज कुण्ड बना हुआ था। वह दूध से परिवर्ण था। बालाजी ने एक चुल्लू दूध लेकर नेत्रों से लगाया और पान किया।

अभी आँगन में लोग शान्ति से बैठने भी न पाये थे कई मनुष्य दौड़े हुए आये और बोल-पण्डित बदलू शास्त्री, सेठ उत्तमचन्द्र और लाला माखनलाल बाहर खड़े कोलाहल मचा रहे हैं और कहते हैं। कि हमरा को बालाजी से दो-दो बातें कर लेने दो। बदलू शास्त्री काशी के विख्यात पण्डित थे। सुन्दर चन्द्र-तिलक लगाते, हरी बनात का अंगरखा परिधान करते औश्र बसन्ती पगड़ी बाँधत थे। उत्तमचन्द्र और माखनलाल दोनों नगर के धनी और लक्षाधीश मनुष्ये थे। उपाधि के लिए सहस्रों व्यय करते और मुख्य पदाधिकारियों का सम्मान और सत्कार करना अपना प्रधान कर्तव्य जानते थे। इन महापुरुषों का नगर के मनुष्यों पर बड़ा दबवा था। बदलू शास्त्री जब कभी शास्त्रीरथ करते, तो निःसंदेह प्रतिवादी की पराजय होती। विशेषकर काशी के पण्डे और प्राग्वाल तथा इसी पन्थ के अन्य धार्मिकगर्ज तो उनके पसीने की जगह रुधिर बहाने का उद्यत रहते थे। शास्त्री जी काशी में हिन्दू धर्म के रक्षक और महान् स्तम्भ प्रसिद्ध थे। उत्तमचन्द्र और माखनलाल भी धार्मिक उत्साह की मूर्ति थे। ये लोग बहुत दिनों से बालाजी से शास्त्रार्थ करने का अवसर ढूँढ रहे थे। आज उनका मनोरथ पूरा हुआ। पंडों और प्राग्वालों का एक दल लिये आ पहुँचे।

बालाजी ने इन महात्मा के आने का समाचार सुना तो बाहर निकल आये। परन्तु यहाँ की दशा विचित्र पायी। उभय पक्ष के लोग लाठियाँ सँभाले अंगरखे की बाँहें चढ़ाये गुथने का उद्यत थे। शास्त्रीजी प्राग्वालों को भिड़ने के लिये ललकार रहे थे और सेठजी उच्च स्वर से कह रहे थे कि इन शूद्रों की धज्जियाँ उड़ा दो अभियोग चलेगा तो देखा जाएगा। तुम्हारा बाल-बाँका न होने पायेगा। माखनलाल साहब गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते थे कि निकल आये जिसे कुछ अभिमान हो। प्रत्येक को सब्जबाग दिखा दूँगा। बालाजी ने जब यह रंग देखा तो राजा धर्मसिंह से बोले-आप बदलू शास्त्री को जाकर समझा दीजिये कि वह इस दुष्टता को त्याग दें, अन्यथा दोनों पक्षवालों की हानि होगी और जगत में उपहास होगा सो अलग।

राजा साहब के नेत्रों से अग्नि बरस रही थी। बोले- इस पुरुष से बातें करने में अपनी अप्रतिष्ठा समझता हूँ। उसे प्राग्वालों के समूहों का अभिमान है परन्तु मैं। आज उसका सारा मद चूर्ण कर देता हूँ। उनका अभिप्राय इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि वे आपके ऊपर वार करें। पर जब तक मैं। और मरे पाँच पुत्र जीवित हैं तब तक कोई आपकी ओर कुदृष्टि से नहीं देख सकता। आपके एक संकेत-मात्र की देर है। मैं पलक मारते उन्हें इस दुष्टता का सवाद चखा दूँगा।

बालाजी जान गये कि यह वीर उमंग में आ गया है। राजपूत जब उमंग में आता है तो उसे मरने-मारने का अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। बोले-राजा साहब, आप दूरदर्शी होकर ऐसे वचन कहते हैं? यह अवसर ऐसे वचनों का नहीं है। आगे बढ़कर अपने आदमियों को रोकिये, नहीं तो परिणाम बुरा होगा।

बालालजी यह कहते-कहते अचानक रुक गये। समुद्र की तरंगों का भाँति लोग इधर-उधर से उमड़ते चले आते थे। हाथों में लाठियाँ थी और नेत्रों में रुधिर की लाली, मुखमंडल क्रुद्ध, भृकुटी कुटिल। देखते-देखते यह जन-समुदाय प्राग्वालों के सिर पर पहुँच गया। समय सन्निकट था कि लाठियाँ सिर को चुमे कि बालाजी विद्युत की भाँति लपककर एक घोड़े पर सवार हो गये और अति उच्च स्वर में बोले:

‘भाइयो ! क्या अंधेरे हैं? यदि मुझे आपना मित्र समझते हो तो झटपट हाथ नीचे कर लो और पैरों को एक इंच भी आगे न बढ़ने दो। मुझे अभिमान है कि तुम्हारे हृदयों में वीरोचित क्रोध और उमंग तरंगित हो रहे हैं। क्रोध एक पवित्र उद्वोग और पवित्र उत्साह है। परन्तु आत्म-संवरण उससे भी अधिक पवित्र धर्म है। इस समय अपने क्रोध को दृढ़ता से रोको। क्या तुम अपनी जाति के साथ कुल का कर्तव्य पालन कर चुके कि इस प्रकार प्राण विसर्जन करने पर कटिबद्ध हो क्या तुम दीपक लेकर भी कूप में गिरना चाहते हो? ये उलोग तुम्हारे स्वदेश बान्धव और तुम्हारे ही रुधिर हैं। उन्हें अपना शत्रु मत समझो। यदि वे मूर्ख हैं तो उनकी मूर्खता का निवारण करना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि वे तुम्हें अपशब्द कहें तो तुम बुरा मत मानो। यदि ये तुमसे युद्ध करने को प्रस्तुत हो तुम नम्रता से स्वीकार कर तो और एक चतुर वैद्य की भाँति अपने विचारहीन रोगियों की औषधि करने में तल्लीन हो जाओ। मेरी इस आशा के प्रतिकूल यदि तुममें से किसी ने हाथ उठाया तो वह जाति का शत्रु होगा।

इन समुचित शब्दों से चतुर्दिक् शांति छा गयी। जो जहां था वह वहीं चित्र लिखित सा हो गया। इस मनुष्य के शब्दों में कहां का प्रभाव भरा था, जिसने पचास सहस्र मनुष्यों के उमड़ते हुए उद्वेग को इस प्रकार शीतल कर दिया, जिस प्रकार कोई चतुर सारथी दुष्ट घोड़ों को रोक लेता है, और यह शक्ति उसे किसने दी थी ? न उसके सिर पर राजमुकुट था, न वह किसी सेना का नायक था। यह केवल उस पवित्र और निःस्वार्थ जाति सेवा का प्रताप था, जो उसने की थी। स्वजति सेवक के मान और प्रतिष्ठा का कारण वे बलिदान होते हैं जो वह अपनी जति के लिए करता है। पण्डों और प्राग्वालों ने बालाजी का प्रतापवान रूप देखा और स्वर सुना, तो उनका क्रोध शान्त हो गया। जिस प्रकार सूर्य के निकलने से कुहरा आ जाता है उसी प्रकार बालाजी के आने से विरोधियों की सेना तितर बितर हो गयी। बहुत से मनुष्य – जो उपद्रव के उद्देश्य से आये थे – श्रद्धापूर्वक बालाजी के चरणों में मस्तक झुका उनके अनुयायियों के वर्ग में सम्मिलित हो गये। बदलू शास्त्री ने बहुत चाहा कि वह पण्डों के पक्षपात और मूर्खरता को उतेजित करें, किन्तु सफलता न हुई।

उस समय बालाजी ने एक परम प्रभावशाली वक्तृता दी जिसका एक-एक शब्द आज तक सुननेवालों के हृदय पर अंकित हैं और जो भारत-वासियों के लिए सदा दीप का काम करेगी। बालाजी की वक्तृताएं प्रायः सारगर्भित हैं। परन्तु वह प्रतिभा, वह ओज जिससे यह वक्तृता अलंकृत है, उनके किसी व्याख्यान में दीख नहीं पड़ते। उन्होंने अपने वाक्यों के जादू से थोड़ी ही देर में पण्डों को अहीरों और पासियों से गले मिला दिया। उस वक्तृता के अंतिम शब्द थे:

यदि आप दृढता से कार्य करते जाएंगे तो अवश्य एक दिन आपको अभीष्ट सिद्धि का स्वर्ण स्तम्भ दिखायी देगा। परन्तु धैर्य को कभी हाथ से न जाने देना। दृढता बड़ी प्रबल शक्ति है। दृढता पुरुष के सब गुणों का राजा है। दृढता वीरता का एक प्रधान अंग है। इसे कदापि हाथ से न जाने देना। तुम्हारी परीक्षाएं होंगी। ऐसी दशा में दृढता के अतिरिक्त कोई विश्वासपात्र पथ-प्रदर्शक नहीं मिलेगा। दृढता यदि सफल न भी हो सके, तो संसार में अपना नाम छोड़ जाती है।

बालाजी ने घर पहुंचकर समाचार-पत्र खोला, मुख पीला हो गया, और सकरुण हृदय से एक ठण्डी सांस निकल आयी। धर्मसिंह ने घबराकर पूछा- कुशल तो है ?

बालाजी-सदिया में नदी का बांध फट गया बस साहस मनुष्य गृहहीन हो गये।

धर्मसिंह- ओ हो।

बालाजी- सहस्रों मनुष्य प्रवाह की भेंट हो गये। सारा नगर नष्ट हो गया। घरों की छतों पर नावें चल रही हैं। भारत सभा के लोग पहुंच गये हैं और यथा शक्ति लोगों की रक्षा कर रहे हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

धर्मसिंह(सजलनयन होकर) हे इश्वर। तू ही इन अनाथों को नाथ है। गर्यीं। तीन घण्टे तक निरन्तर मूसलाधार पानी बरसता रहा। सोलह इंच पानी गिरा। नगर के उत्तरीय विभाग में सारा नगर एकत्र हैं। न रहने का गृह है, न खाने को अन्न। शव की राशियां लगी हुई हैं बहुत से लोग भूखे मर जाते हैं। लोगों के विलाप और करुणाक्रन्दन से कलेजा मुंह को आता है। सब उत्पात-पीडित मनुष्य बालाजी को बुलाने की रट लगा रह हैं। उनका विचार यह है कि मेरे पहुंचने से उनके दुःख दूर हो जायेंगे।

कुछ काल तक बालाजी ध्यान में मग्न रहें, तत्पश्चात् बोले-मेरा जाना आवश्यक है। मैं तुरंत जाऊंगा। आप सदियों की, 'भारत सभा' की तार दे दीजिये कि वह इस कार्य में मेरी सहायता करने को उद्यत रहें।

राजा साहब ने सविनय निवेदन किया – आज्ञा हो तो मैं चलूं ?

बालाजी – मैं पहुंचकर आपको सूचना दूंगा। मेरे विचार में आपके जाने की कोई आवश्यकता न होगी।

धर्मसिंह -उत्तम होता कि आप प्रातःकाल ही जाते।

बालाजी – नहीं। मुझे यहाँ एक क्षण भी ठहरना कठिन जान पड़ता है। अभी मुझे वहां तक पहुंचने में कई दिन लगेंगे।

पल – भर में नगर में ये समाचार फैल गये कि सदियों में बाढ़ आ गयी और बालाजी इस समय वहां आ रहे हैं। यह सुनते ही सहस्रों मनुष्य बालाजी को पहुंचाने के लिए निकल पड़े। नौ बजते-बजते द्वार पर पचीस सहस्र मनुष्यों का समुदाय एकत्र हो गया। सदिया की दुर्घटना प्रत्येक मनुष्य के मुख पर थी लोग उन आपत्ति-पीडित मनुष्यों की दशा पर सहानुभूति और चिन्ता प्रकाशित कर रहे थे। सैकड़ों मनुष्य बालाजी के संग जाने को कटिबद्ध हुए। सदियावालों की सहायता के लिए एक फण्ड खोलने का परामर्श होने लगा।

उधर धर्मसिंह के अन्तः पुर में नगर की मुख्य प्रतिष्ठित स्त्रियों ने आज सुवामा को धन्यावाद देने के लिए एक सभा एकत्र की थी। उस उच्च प्रसाद का एक-एक कौना स्त्रियों से भरा हुआ था। प्रथम वृजरानी ने कई स्त्रियों के साथ एक मंगलमय सुहावना गीत गाया। उसके पीछे सब स्त्रियां मण्डल बांध कर गाते – बजाते आरती का थाल लिये सुदामा के गृह पर आयीं। सेवती और चन्दा अतिथि-सत्कार करने के लिए पहले ही से प्रस्तुत थी सुवामा प्रत्येक महिला से गले मिली और उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे अंक में भी ऐसे ही सुपूत बच्चे खेलें। फिर रानीजी ने उसकी आरती की और गाना होने लगा। आज माधवी का मुखमंडल पुष्प की भांति खिला हुआ था। मात्र वह उदास और चिंतित न थी। आशाएं विष की गांठ हैं। उन्हीं आशाओं ने उसे कल रुलाया था। किन्तु आज उसका चित्र उन आशाओं से रिक्त हो गया हैं। इसलिए मुखमण्डल दिव्य और नेत्र विकसित है। निराशा रहकर उस देवी ने सारी आयु काट दी, परन्तु आशापूर्ण रह कर उससे एक दिन का दुःख भी न सहा गया।

सुहावने रागों के आलाप से भवन गूंज रहा था कि अचानक सदिया का समाचार वहां भी पहुंचा और राजा धर्मसिंह यह कहते यह सुनायी दिये – आप लोग बालाजी को विदा करने के लिए तैयार हो जायें वे अभी सदिया जाते हैं।

यह सुनते ही अर्धरात्रि का सन्नाटा छा गया। सुवामा घबडाकर उठी और द्वार की ओर लपकी, मानों वह बालाजी को रोक लेगी। उसके संग सब –की-सब स्त्रियां उठ खड़ी हुई और उसके पीछे –पीछे चली। वृजरानी ने कहा –चची। क्या उन्हें बरबस विदा करोगी ? अभी तो वे अपने कमरे में हैं।

‘मैं उन्हें न जाने दूंगी। विदा करना कैसा ?

वृजरानी- मैं क्या सदिया को लेकर चाटूंगी ? भाड़ में जाय। मैं भी तो कोई हूं? मेरा भी तो उन पर कोई अधिकार है ?

वृजरानी –तुम्हें मेरी शपथ, इस समय ऐसी बातें न करना। सहस्रों मनुष्य केवल उनके भरासे पर जी रहें हैं। यह न जायेंगे तो प्रलय हो जायेगा।

माता की ममता ने मनुष्यत्व और जातित्व को दबा लिया था, परन्तु वृजरानी ने समझा-बुझाकर उसे रोक लिया। सुवामा इस घटना को स्मरण करके सर्वदा पछताया करती थी। उसे आश्चर्य होता था कि मैं आपसे बाहर क्यों हो गयी। रानी जी ने पूछा-विरजन बालाजी को कौन जयमाल पहिनायेगा।

विरजन –आप।

रानीजी – और तुम क्या करोगी ?

विरजन –मैं उनके माथे पर तिलक लगाऊंगी।

रानीजी – माधवी कहाँ हैं ?

विरजन (धीरे-से) उसे न छोड़ों। बेचार, अपने ध्यान में मग्न हैं। सुवामा को देखा तो निकट आकर उसके चरण स्पर्श किये। सुवामा ने उन्हें उठाकर हृदय में लगाया। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु ममता से मुख न खोल सकी। रानी जी फूलों की जयमाल लेकर चली कि उसके कण्ठ में डाल दूं किन्तु चरण थर्राये और आगे न बढ़ सकीं। वृजरानी चन्दन का थाल लेकर चली, परन्तु नेत्र-श्रावण –धन की भक्ति बरसने लगे। तब माधव चली। उसके नेत्रों में प्रेम की झलक थी और मुंह पर प्रेम की लाली। अधरों पर महिनी मुस्कान झलक रही थी और मन प्रेमोन्माद में मग्न था। उसने बालाजी की ओर ऐसी चितवन से देखा जो अपार प्रेम से भरी हुई। तब सिर नीचा करके फूलों की जयमाला उसके गले में डाली। ललाट पर चन्दन का तिलक लगाया। लोक-संस्कारकी न्यूनता, वह भी पूरी हो गयी। उस समय बालाजी ने गम्भीर साँस ली। उन्हें प्रतीत हुआ कि मैं अपार प्रेम के समुद्र में वहां जा रहा हूं। धैर्य का लंगर उठ गया और उसे मनुष्य की भांति जो अकस्मात् जल में फिसल पड़ा हो, उन्होंने माधवी की बांह पकड़ ली। परन्तु हां :जिस तिनके का उन्होंने सहारा लिया वह स्वयं प्रेम की धार में तीव्र गति से बहा जा रहा था। उनका हाथ पकड़ते ही माधवी के रोम-रोम में बिजली दौड़ गयी। शरीर में स्वेद-बिन्दु झलकने लगे और जिस प्रकार वायु के झोंके से पुष्पदल पर पड़े हुए ओस के जलकण पृथ्वी पर गिर जाते हैं, उसी प्रकार माधवी के नेत्रों से अश्रु के बिन्दु बालाजी के हाथ पर टपक पड़े। प्रेम के मोती थे, जो उन मतवाली आंखों ने बालाजी को भेंट किये। आज से ये आँखें फिर न रोयेंगी।

आकाश पर तारे छिटके हुए थे और उनकी आड़ में बैठी हुई स्त्रियां यह दृश्य देख रही थी आज प्रातःकाल बालाजी के स्वागत में यह गीत गाया था :

बालाजी तेरा आना मुबारक होवे।

और इस समय स्त्रियां अपने मन-भावे स्वरों से गा रही हैं :

बालाजी तेरा आना मुबारक होवे।

आना भी मुबारक था और जाना भी मुबारक है। आने के समय भी लोगों की आंखों से आंसू निकले थे और जाने के समय भी निकल रहे हैं। कल वे नवागत के अतिथि स्वागत के लिए आये थे। आज उसकी विदाई कर रहे हैं उनके रंग – रूप सब पूर्ववत है :परन्तु उनमें कितना अन्तर है।

मतवाली योगिनी

माधवी प्रथम ही से मुरझायी हुई कली थी। निराशा ने उसे खाक में मिला दिया। बीस वर्ष की तपस्विनी योगिनी हो गयी। उस बेचारी का भी कैसा जीवन था कि या तो मन में कोई अभिलाषा ही उत्पन्न न हुई, या हुई दुर्दैव ने उसे कुसुमित न होने दिया। उसका प्रेम एक अपार समुद्र था। उसमें ऐसी बाढ़ आयी कि जीवन की आशाएं और अभिलाषाएं सब नष्ट हो गयीं। उसने योगिनी के से वस्त्र पहिन लिये। वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो गयी। संसार इन्ही इच्छाओं और आशाओं का दूसरा नाम हैं। जिसने उन्हें नैराश्य-नद में प्रवाहित कर दिया, उसे संसार में समझना भ्रम हैं।

इस प्रकार के मद से मतवाली योगिनी को एक स्थान पर शांति न मिलती थी। पुष्प की सुगंधि की भांति देश-देश भ्रमण करती और प्रेम के शब्द सुनाती फिरती थी। उसके प्रीत वर्ण पर गेरु रंग का वस्त्र परम शोभा देता था। इस प्रेम की मूर्ति को देखकर लोगों के नेत्रों से अश्रु टपक पड़ते थे। जब अपनी वीणा बजाकर कोई गीत गाने लगती तो वुनने वालों के चित अनुराग में पग जाते थे उसका एक-एक शब्द प्रेम-रस डूबा होता था।

मतवाली योगिनी को बालाजी के नाम से प्रेम था। वह अपने पदों में प्रायः उन्हीं की कीर्ति सुनाती थी। जिस दिन से उसने योगिनी का वेष धारण किया और लोक-लाज को प्रेम के लिए परित्याग कर दिया उसी दिन से उसकी जिह्वा पर माता सरस्वती बैठ गयी। उसके सरस पदों को सुनने के लिए लोग सैकड़ों कोस चले जाते थे। जिस प्रकार मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियां घरों से वयाकुल होकर निकल पड़ती थीं उसी प्रकार इस योगिनी की तान सुनते ही श्रोताजनों का नद उमड़ पड़ता था। उसके पद सुनना आनन्द के प्याले पीना था।

इस योगिनी को किसी ने हंसते या रोते नहीं देखा। उसे न किसी बात पर हर्ष था, न किसी बात का विषाद। जिस मन में कामनाएं न हों, वह क्यों हंसे और क्यों रोये ? उसका मुख-मण्डल आनन्द की मूर्ति था। उस पर दृष्टि पड़ते ही दर्शक के नेत्र पवित्र आनन्द से परिपूर्ण हो जाते थे।

त्रिया-चरित्र

सेठ लगनदास जी के जीवन की बगिया फलहीन थी। कोई ऐसा मानवीय, आध्यात्मिक या चिकित्सात्मक प्रयत्न न था जो उन्होंने न किया हो। यों शादी में एक पत्नीव्रत के कायल थे मगर जरूरत और आग्रह से विवश होकर एक-दो नहीं पाँच शादियाँ कीं, यहाँ तक कि उम्र के चालीस साल गुजए गए और अँधेरे घर में उजाला न हुआ। बेचारे बहुत रंजीदा रहते। यह धन-संपत्ति, यह ठाट-बाट, यह वैभव और यह ऐश्वर्य क्या होंगे। मेरे बाद इनका क्या होगा, कौन इनको भोगेगा। यह ख्याल बहुत अफसोसनाक था। आखिर यह सलाह हुई कि किसी लड़के को गोद लेना चाहिए। मगर यह मसला पारिवारिक झगड़ों के कारण के सालों तक स्थगित रहा। जब सेठ जी ने देखा कि बीवियों में अब तक बदस्तूर कशमकश हो रही है तो उन्होंने नैतिक साहस से काम लिया और होनहार अनाथ लड़के को गोद ले लिया। उसका नाम रखा गया मगनदास। उसकी उम्र पाँच-छः साल से ज्यादा न थी। बला का जहीन और तमीजदार। मगर औरतें सब कुछ कर सकती हैं, दूसरे के बच्चे को अपना नहीं समझ सकतीं। यहाँ तो पाँच औरतों का साझा था। अगर एक उसे प्यार करती तो बाकी चार औरतों का फज्र था कि उससे नफरत करें। हाँ, सेठ जी उसके साथ बिलकुल अपने लड़के की सी मुहब्बत करते थे। पढ़ाने को मास्टर रक्खें, सवारी के लिए घोड़े। रईसी ख्याल के आदमी थे। राग-रंग का सामान भी मुहैया था। गाना सीखने का लड़के ने शौक किया तो उसका भी इंतजाम हो गया। गरज जब मगनदास जवानी पर पहुँचा तो रईसाना दिलचास्पियों में उसे कमाल हासिल था। उसका गाना सुनकर उस्ताद लोग कानों पर हाथ रखते। शहसवार ऐसा कि दौड़ते हुए घोड़े पर सवार हो जाता। डील-डौल, शक्ल सूरत में उसका-सा अलबेला जवान दिल्ली में कम होगा। शादी का मसला पेश हुआ। नागपुर के करोड़पति सेठ मक्खनलाल बहुत लहराये हुए थे। उनकी लड़की से शादी हो गई। धूमधाम का जिक्र किया

जाए तो किस्सा वियोग की रात से भी लम्बा हो जाए। मक्खनलाल का उसी शादी में दीवाला निकल गया। इस वक्त मगनदास से ज्यादा ईर्ष्या के योग्य आदमी और कौन होगा? उसकी जिन्दगी की बहार उमंगों पर भी और मुरादों के फूल अपनी शबनमी ताजगी में खिल-खिलकर हुस्न और ताजगी का सम्राट दिखा रहे थे। मगर तकदीर की देवी कुछ और ही सामान कर रही थी। वह सैर-सपाटे के इरादे से जापान गया हुआ था कि दिल्ली से खबर आई कि ईश्वर ने तुम्हें एक भाई दिया है। मुझे इतनी खुशी है कि ज्यादा अर्से तक जिन्दा न रह सकूँ। तुम बहुत जल्द लौट आओ।

मगनदास के हाथ से तार का कागज छूट गया और सर में ऐसा चक्कर आया कि जैसे किसी ऊँचाई से गिर पड़ा है।

२

मगनदास का किताबी ज्ञान बहुत कम था। मगर स्वभाव की सज्जनता से वह खाली हाथ न था। हाथों की उदारता ने, जो समृद्धि का वरदान है, हृदय को भी उदार बना दिया था। उसे घटनाओं की इस कायापलट से दुख तो जरूर हुआ, आखिर इन्सान ही था, मगर उसने धीरज से काम लिया और एक आशा और भय की मिली-जुली हालत में देश को रवाना हुआ।

रात का वक्त था। जब अपने दरवाजे पर पहुँचा तो नाच-गाने की महफिल सजी देखी। उसके कदम आगे न बढ़े लौट पड़ा और एक दुकान के चबूतरे पर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिये। इतना तो उसे यकीन था कि सेठ जी उसका साथ भी भलमनसी और मुहब्बत से पेश आयेंगे बल्कि शायद अब और भी कृपा करने लगे। सेठानियाँ भी अब उसके साथ गैरों का-सा वर्ताव न करेंगी। मुमकिन है मझली बहू जो इस बच्चे की खुशनसीब माँ थीं, उससे दूर-दूर रहें मगर बाकी चारों सेठानियों की तरफ से सेवा-सत्कार में कोई शक नहीं था। उनकी डाह से वह फायदा उठा सकता था। ताहम उसके स्वाभिमान ने गवारा न किया कि जिस घर में मालिक की हैसियत से रहता था उसी घर में अब एक आश्रित की हैसियत से जिन्दगी बसर करे। उसने फैसला कर लिया कि सब यहाँ रहना न मुनासिब है, न मसलहत। मगर जाऊँ कहाँ? न कोई ऐसा फन सीखा, न कोई ऐसा इल्म हासिल किया जिससे रोजी कमाने की सूरत पैदा होती। रईसाना दिलचस्पियाँ उसी वक्त तक कद्र की निगाह से देखी जाती हैं जब तक कि वे रईसों के आभूषण रहें। जीविका बन कर वे सम्मान के पद से गिर जाती हैं। अपनी रोजी हासिल करना तो उसके लिए कोई ऐसा मुश्किल काम न था। किसी सेठ-साहूकार के यहाँ मुनीम बन सकता था, किसी कारखाने की तरफ से एजेंट हो सकता था, मगर उसके कन्धे पर एक भारी जुआ रक्खा हुआ था, उसे क्या करे। एक बड़े सेठ की लड़की जिसने लाड़-प्यार में परिवरिश पाई, उससे यह कंगाली की तकलीफें क्योंकर झेली जाएँगी क्या मक्खनलाल की लाइली बेटा एक ऐसे आदमी के साथ रहना पसन्द करेगी जिसे रात की रोटी का भी ठिकाना नहीं ! मगर इस फिक्र में अपनी जान क्यों खपाऊँ। मैंने अपनी मर्जी से शादी नहीं की मैं बराबर इनकार करता रहा। सेठ जी ने जबर्दस्ती मेरे पैरों में बेड़ी डाली है। अब वही इसके जिम्मेदार हैं। मुझ से कोई वास्ता नहीं। लेकिन जब उसने दुबारा ठंडे दिल से इस मसले पर गौर किया तो वचाव की कोई सूरत नजर न आई। आखिकार उसने यह फैसला किया कि पहले नागपुर चलूँ, जरा उन महारानी के तौर-तरीके को देखूँ, बाहर-ही-बाहर उनके स्वभाव की, मिजाज की जाँच करूँ। उस वक्त तय करूँगा कि मुझे क्या करके चाहिये। अगर रईसी की बू उनके दिमाग से निकल गई है और मेरे साथ रूखी रोटियाँ खाना उन्हें मंजूर है, तो इससे अच्छा फिर और क्या, लेकिन अगर वह अमीरी ठाट-बाट के हाथों बिकी हुई हैं तो मेरे लिए रास्ता साफ है। फिर मैं हूँ और दुनिया का गम। ऐसी जगह जाऊँ जहाँ किसी परिचित की सूरत सपने में भी न दिखाई दे। गरीबी की जिल्लत नहीं रहती, अगर अजनबियों में जिन्दगी बसरा की जाए। यह जानने-पहचानने वालों की कनखियाँ और कनबतियाँ हैं जो गरीबी को यन्त्रणा बना देती हैं। इस तरह दिल में जिन्दगी का नक्शा बनाकर मगनदास अपनी मर्दाना हिम्मत के भरोसे पर नागपुर की तरफ चला, उस मल्लाह की तरह जो किशती और पाल के बगैर नदी की उमड़ती हुई लहरों में अपने को डाल दे।

३

शाम के वक्त सेठ मक्खनलाल के सुंदर बगीचे में सूरज की पीली किरणें मुरझाये हुए फूलों से गले मिलकर विदा हो रही थीं। बाग के बीच में एक पक्का कुआँ था और एक मौलसिरी का पेड़। कुँए के मुँह पर अंधेरे की नीली-सी नकाब थी, पेड़ के सिर पर रोशनी की सुनहरी चादर। इसी पेड़ में एक नौजवान

थका-माँदा कुँ पर आया और लोटे से पानी भरकर पीने के बाद जगत पर बैठ गया। मालिन ने पूछा- कहाँ जाओगे? मगनदास ने जवाब दिया कि जाना तो था बहुत दूर, मगर यहीं रात हो गई। यहाँ कहीं ठहरने का ठिकाना मिल जाएगा?

मालिक- चले जाओ सेठ जी की धर्मशाला में, बड़े आराम की जगह है।

मगनदास-धर्मशाले में तो मुझे ठहरने का कभी संयोग नहीं हुआ। कोई हर्ज न हो तो यहीं पड़ा रहूँ। यहाँ कोई रात को रहता है?

मालिक- भाई, मैं यहाँ ठहरने को न कहूँगी। यह बाई जी की बैठक है। झरोखे में बैठकर सेर किया करती हैं। कहीं देख-भाल लें तो मेरे सिर में एक बाल भी न रहे।

मगनदास- बाई जी कौन?

मालिक- यही सेठ जी की बेटा। इन्दिरा बाई।

मगनदास- यह गजरे उन्हीं के लिए बना रही हो क्या?

मालिन- हाँ, और सेठ जी के यहाँ है ही कौन? फूलों के गहने बहुत पसन्द करती हैं।

मानदास- शौकीन औरत मालूम होती हैं?

मालिक- भाई, यही तो बड़े आदमियों की बातें हैं। वह शौक न करें तो हमारा-तुम्हारा निबाह कैसे हो। और धन है किस लिए। अकेली जान पर दस लौंडियाँ हैं। सुना करती थी कि भगवान आदमी का हल भूत जोतता है वह आँखों देखा। आप-ही-आप पंखा चलने लगे। आप-ही-आप सारे घर में दिन का-सा उजाला हो जाए। तुम झूठ समझते होगे, मगर मैं आँखों देखी बात कहती हूँ।

उस गर्व की चेतना के साथ जो किसी नादान आदमी के सामने अपनी जानकारी के बयान करने में होता है, बूढ़ी मालिन अपनी सर्वज्ञता का प्रदर्शन करने लगी। मगनदास ने उकसाया- होगा भाई, बड़े आदमी की बातें निराली होती हैं। लक्ष्मी के बस में सब कुछ है। मगर अकेली जान पर दस लौंडियाँ? समझ में नहीं आता।

मालिन ने बुढ़ापे के चिड़चिड़ेपन से जवाब दिया- तुम्हारी समझ मोटी हो तो कोई क्या करे ! कोई पान लगाती है, कोई पंखा झलती है, कोई कपड़े पहनाती है, दो हजार रुपये में तो सेजगाड़ी आयी थी, चाहो तो मुँह देख लो, उस पर हवा खाने जाती हैं। एक बंगालिन गाना-बजाना सिखाती है, मेम पढ़ाने आती है, शास्त्री जी संस्कृत पढ़ाते हैं, कागद पर ऐसी मूरत बनाती हैं कि अब बोली और अब बोली। दिल की रानी हैं, बेचारी के भाग फूट गए। दिल्ली के सेठ लगनदास के गोद लिये हुए लड़के से ब्याह हुआ था। मगर राम जी की लीला सत्तर बरस के मुर्दे को लड़का दिया, कौन पतियायेगा। जब से यह सुनावनी आई है, तब से बहुत उदास रहती है। एक दिन रोती थीं। मेरे सामने की बात है। बाप ने देख लिया। समझाने लगे। लड़की को बहुत चाहते हैं। सुनती हूँ दामाद को यहीं बुलाकर रखेंगे। नारायण करे, मेरी रानी दूधों नहाय पतों फले। माली मर गया था, उन्होंने आड़ न ली होती तो घर भर के टुकड़े माँगती।

मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली। बेहतर है, अब यहाँ से अपनी इज्जत-आबरू लिये हुए चल दो। यहाँ मेरा निबाह न होगा। इन्दिरा रईसजादी है। तुम इस काबिल नहीं हो कि उसके शौहर बन सको। मालिन से बोला-ता धर्मशाले में जाता हूँ। जाने वहाँ खाट-वाट मिल जाती है कि नहीं, मगर रात ही तो काटनी है किसी तरह कट ही जाएगी रईसों के लिए मखमली गद्दे चाहिए, हम मजदूरों के लिए पुआल ही बहुत है।

यह कहकर उसने लुटिया उठाई, डण्डा सम्हाला और दर्दभरे दिल से एक तरफ चल दिया।

उस वक्त इन्दिरा अपने झरोखे पर बैठी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। कैसा संयोग है कि स्त्री को स्वर्ग की सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं और उसका पति आवरों की तरह मारा-मारा फिर रहा है। उसे रात काटने का ठिकाना नहीं।

मगनदास निराश विचारों में डूबा हुआ शहर से बाहर निकल आया और एक सराय में ठहरा जो सिर्फ इसलिए मशहूर थी, कि वहाँ शराब की एक दुकान थी। यहाँ आस-पास से मजदूर लोग आ-आकर अपने दुख को भुलाया करते थे। जो भूले-भटके मुसाफिर यहाँ ठहरते, उन्हें होशियारी और चौकसी का व्यावहारिक पाठ मिल जाता था। मगनदास थका-माँदा ही, एक पेड़ के नीचे चादर बिछाकर सो रहा और जब सुबह को नींद खुली तो उसे किसी पीर-औलिया के ज्ञान की सजीव दीक्षा का चमत्कार दिखाई पड़ा जिसकी पहली मंजिल वैराग्य है। उसकी छोटी-सी पोटली, जिसमें दो-एक कपड़े और थोड़ा-सा रास्ते का खाना और लुटिया-डोर बंधी हुई थी, गायब हो गई। उन कपड़ों को छोड़कर जो उसके बदर पर थे अब उसके पास कुछ

भी न था और भूख, जो कंगाली में और भी तेज हो जाती है, उसे बेचैन कर रही थी। मगर दृढ़ स्वभाव का आदमी था, उसने किस्मत का रोना रोया किसी तरह गुजर करने की तदबीरें सोचने लगा। लिखने और गणित में उसे अच्छा अभ्यास था मगर इस हैसियत में उससे फायदा उठाना असम्भव था। उसने संगीत का बहुत अभ्यास किया था। किसी रसिक रईस के दरबार में उसकी कद्र हो सकती थी। मगर उसके पुरुषोचित अभिमान ने इस पेशे को अखियतार करने इजाजत न दी। हाँ, वह आला दर्जे का घुड़सवार था और यह फन मजे में पूरी शान के साथ उसकी रोजी का साधन बन सकता था यह पक्का इरादा करके उसने हिम्मत से कदम आगे बढ़ाये। ऊपर से देखने पर यह बात यकीन के काबिल नहीं मालूम होती मगर वह अपना बोझ हलका हो जाने से इस वक्त बहुत उदास नहीं था। मर्दाना हिम्मत का आदमी ऐसी मुसीबतों को उसी निगाह से देखता है, जिसमें एक होशियार विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नों को देखता है उसे अपनी हिम्मत आजमाने का, एक मुश्किल से जूझने का मौका मिल जाता है उसकी हिम्मत अजनाने ही मजबूत हो जाती है। अकसर ऐसे मार्के मर्दाना हौसले के लिए प्रेरणा का काम देते हैं। मगनदास इस जोश से कदम बढ़ाता चला जाता था कि जैसे कायमाबी की मंजिल सामने नजर आ रही है। मगर शायद वहाँ के घोड़ों ने शरारत और बिगड़ैलपन से तौबा कर ली थी या वे स्वाभाविक रूप बहुत मजे में धीमे- धीमे चलने वाले थे। वह जिस गांव में जाता निराशा को उकसाने वाला जवाब पाता आखिरकार शाम के वक्त जब सूरज अपनी आखिरी मंजिल पर जा पहुँचा था, उसकी कठिन मंजिल तमाम हुई। नागरघाट के ठाकुर अटलसिंह ने उसकी चिन्ता मो समाप्त किया।

यह एक बड़ा गाँव था। पक्के मकान बहुत थे। मगर उनमें प्रेतात्माएँ आबाद थीं। कई साल पहले प्लेग ने आबादी के बड़े हिस्से का इस क्षणभंगुर संसार से उठाकर स्वर्ग में पहुँच दिया था। इस वक्त प्लेग के बचे-खुचे वे लोग गाँव के नौजवान और शौकीन जमींदार साहब और हल्के के कारगुजार ओर रोबीले थानेदार साहब थे। उनकी मिली-जुली कोशिशों से गाँव में सतयुग का राज था। धन दौलत को लोग जान का अजाब समझते थे। उसे गुनाह की तरह छुपाते थे। घर-घर में रुपये रहते हुए लोग कर्ज ले-लेकर खाते और फटेहालों रहते थे। इसी में निबाह था। काजल की कोठरी थी, सफेद कपड़े पहनना उन पर धब्बा लगाना था। हुकूमत और जबरदस्ती का बाजार गर्म था। अहीरों को यहाँ आँजन के लिए भी दूध न था। थाने में दूध की नदी बहती थी। मवेशीखाने के मुहर्रिर दूध की कुल्लियाँ करते थे। इसी अंधेरनगरी को मगनदास ने अपना घर बनाया। ठाकुर साहब ने असाधारण उदारता से काम लेकर उसे रहने के लिए एक माकन भी दे दिया। जो केवल बहुत व्यापक अर्थों में मकान कहा जा सकता था। इसी झोंपड़ी में वह एक हफ्ते से जिन्दगी के दिन काट रहा है। उसका चेहरा जर्द है। और कपड़े मैले हो रहे हैं। मगर ऐसा मालूम होता है कि उस अब इन बातों की अनुभूति ही नहीं रही। जिन्दा है मगर जिन्दगी रुखसत हो गई है। हिम्मत और हौसला मुश्किल को आसान कर सकते हैं आँधी और तुफान से बचा सकते हैं मगर चेहरे को खिला सकना उनके सामर्थ्य से बाहर है टूटी हुई नाव पर बैठकरी मल्हार गाना हिम्मत काम नहीं हिमाकत का काम है।

एक रोज जब शाम के वक्त वह अंधरे में खाट पर पड़ा हुआ था। एक औरत उसके दरवारजे पर आकर भीख मांगने लगी। मगनदास का आवाज पिरचित जान पड़ी। बहार आकर देखा तो वही चम्पा मालिन थी। कपड़े तार-तार, मुसीबत की रोती हुई तसबीर। बोला-मालिन ? तुम्हारी यह क्या हालत है। मुझे पहचानती हो।?

मालिन ने चौंकरक देखा और पहचान गई। रोकर बोली –बेटा, अब बताओ मेरा कहाँ ठिकाना लगे? तुमने मेरा बना बनाया घर उजाड़ दिया न उसे दिन तुमसे बात करती ने मुझे पर यह बिपत पड़ती। बाई ने तुम्हें बैठे देख लिया, बातें भी सुनी सुबह होते ही मुझे बुलाया और बरस पड़ी नाक कटवा लूँगी, मुंह में कालिख लगवा दूँगी, चुड़ैल, कुटनी, तू मेरी बात किसी गैर आदमी से क्यों चलाये? तू दूसरों से मेरी चर्चा करे? वह क्या तेरा दामाद था, जो तू उससे मेरा दुखड़ा रोती थी? जो कुछ मुंह में आया बकती रही मुझसे भी न सहा गया। रानी रुठेगी अपना सुहाग लेंगी! बोली-बाई जी, मुझसे कसूर हुआ, लीजिए अब जाती हूँ छींकते नाक कटती है तो मेरा निबाह यहाँ न होगा। ईश्वर ने मुंह दिया है तो आहार भी देगा चार घर से माँगूँगी तो मेरे पेट को हो जाएगा। उस छोकरी ने मुझे खड़े खड़े निकलवा दिया। बताओ मैंने तुमसे उसकी कौन सी शिकायत की थी? उसकी क्या चर्चा की थी? मैं तो उसका बखान कर रही थी। मगर बड़े आदमियों का गुस्सा भी बड़ा होता है। अब बताओ मैं किसकी होकर रहूँ? आठ दिन इसी दिन तरह टुकड़े माँगते हो गये हैं। एक भतीजी उन्हीं के यहाँ लौंडियों में नौकर थी, उसी दिन उसे भी निकाल दिया।

तुम्हारी बदौलत, जो कभी न किया था, वह करना पड़ा तुम्हें कहो का दोष लगाऊं किस्मत में जो कुछ लिखा था, देखना पड़ा।

मगनदास सन्नाटे में जो कुछ लिखा था। आह मिजाज का यह हाल है, यह घमण्ड, यह शान! मालिन का इत्मीनन दिलाया उसके पास अगर दौलत होती तो उसे मालामाल कर देता सेठ मक्खनलाल की बेटी को भी मालूम हो जाता कि रोजी की कुंजी उसी के हाथ में नहीं है। बोला-तुम फिर न करो, मेरे घर में आराम से रहो अकेले मेरा जी भी नहीं लगता। सच कहो तो मुझे तुम्हारी तरह एक औरत की तलाशा थी, अच्छा हुआ तुम आ गयीं।

मालिन ने आंचल फैलाकर असीम दिया— बेटा तुम जुग-जुग जियो बड़ी उम्र हो यहाँ कोई घर मिले तो मुझे दिलवा दो। मैं यही रहूँगी तो मेरी भतीजी कहाँ जाएगी। वह बेचारी शहर में किसके आसरे रहेगी।

मगनलाल के खून में जोश आया। उसके स्वाभिमान को चोट लगी। उन पर यह आफत मेरी लायी हुई है। उनकी इस आवारागर्दी को जिम्मेदार मैं हूँ। बोला—कोई हर्ज न हो तो उसे भी यहीं ले आओ। मैं दिन को यहाँ बहुत कम रहता हूँ। रात को बाहर चारपाई डालकर पड़ रहा करूँगा। मेरी वहज से तुम लोगों को कोई तकलीफ न होगी। यहाँ दूसरा मकान मिलना मुश्किल है यही झोपड़ा बड़ी मुश्किल से मिला है। यह अंधेरनगरी है जब तुम्हारी सुभीता कहीं लग जाय तो चली जाना।

मगनदास को क्या मालूम था कि हजरते इश्क उसकी जबान पर बैठे हुए उससे यह बात कहला रहे हैं। क्या यह ठीक है कि इश्क पहले माशूक के दिल में पैदा होता है?

५

नागपुर इस गाँव से बीस मील की दूरी पर था। चम्मा उसी दिन चली गई और तीसरे दिन रम्भा के साथ लौट आई। यह उसकी भतीजी का नाम था। उसका आने से झोंपड़े में जान सी पड़ गई। मगनदास के दिमाग में मालिन की लड़की की जो तस्वीर थी उसका रम्भा से कोई मेल न था वह सौंदर्य नाम की चीज का अनुभवी जौहरी था मगर ऐसी सूरत जिसपर जवानी की ऐसी मस्ती और दिल का चैन छीन लेनेवाला ऐसा आकर्षण हो उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसकी जवानी का चाँद अपनी सुनहरी और गम्भीर शान के साथ चमक रहा था। सुबह का वक्त था मगनदास दरवाजे पर पड़ा ठण्डी-ठण्डी हवा का मजा उठा रहा था। रम्भा सिर पर घड़ा रखे पानी भरने को निकली मगनदास ने उसे देखा और एक लम्बी साँस खींचकर उठ बैठा। चेहरा-मोहरा बहुत ही मोहम। ताजे फूल की तरह खिला हुआ चेहरा आँखों में गम्भीर सरलता मगनदास को उसने भी देखा। चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गई। प्रेम ने पहला वार किया।

मगनदास सोचने लगा—क्या तकदीर यहाँ कोई और गुल खिलाने वाली है! क्या दिल मुझे यहां भी चैन न लेने देगा। रम्भा, तू यहाँ नाहक आयी, नाहक एक गरीब का खून तेरे सर पर होगा। मैं तो अब तेरे हाथों बिक चुका, मगर क्या तू भी मेरी हो सकती है? लेकिन नहीं, इतनी जल्दबाजी ठीक नहीं दिल का सौदा सोच-समझकर करना चाहिए। तुमको अभी जब्त करना होगा। रम्भा सुन्दरी है मगर झूठे मोती की आब और ताब उसे सच्चा नहीं बना सकती। तुम्हें क्या खबर कि उस भोली लड़की के कान प्रेम के शब्द से परिचित नहीं हो चुके हैं? कौन कह सकता है कि उसके सौन्दर्य की वाटिका पर किसी फूल चुननेवाले के हाथ नहीं पड़ चुके हैं? अगर कुछ दिनों की दिलबस्तगी के लिए कुछ चाहिए तो तुम आजाद हो मगर यह नाजुक मामला है, जरा सम्हल के कदम रखना। पेशेवर जातों में दिखाई पड़नेवाला सौन्दर्य अकसर नैतिक बन्धनों से मुक्त होता है।

तीन महीने गुजर गये। मगनदास रम्भा को ज्यों ज्यों बारीक से बारीक निगाहों से देखता त्यों-त्यों उस पर प्रेम का रंग गाढ़ा होता जाता था। वह रोज उसे कुँए से पानी निकालते देखता वह रोज घर में झाडु देती, रोज खाना पकाती आह मगनदास को उन ज्वार की रोटियाँ में मजा आता था, वह अच्छे से अच्छे व्यंजनो में, भी न आया था। उसे अपनी कोठरी हमेशा साफ सुधरी मिलती न जाने कौन उसके बिस्तर बिछा देता। क्या यह रम्भा की कृपा थी? उसकी निगाहें शर्मीली थी उसने उसे कभी अपनी तरफ चंचल आँखों से ताकते नहीं देखा। आवाज कैसी मीठी उसकी हंसी की आवाज कभी उसके कान में नहीं आई। अगर मगनदास उसके प्रेम में मतवाला हो रहा था तो कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। उसकी भूखी निगाहें बेचैनी और लालसा में डुबी हुई हमेशा रम्भा को ढुंढा करतीं। वह जब किसी गाँव को जाता तो मीलों तक उसकी जिद्दी और बेताब आँखें मुड़-मुड़कर झोंपड़े के दरवाजे की तरफ आतीं। उसकी ख्याति आस पास फैल गई थी मगर उसके स्वभाव की मुसीबत और उदारहयता से अकसर लोग अनुचित लाभ उठाते थे

इन्साफपसन्द लोग तो स्वागत सत्कार से काम निकाल लेते और जो लोग ज्यादा समझदार थे वे लगातार तकाजों का इन्तजार करते चूंकि मगनदास इस फन को बिलकुल नहीं जानता था। बावजूद दिन रात की दौड़ धूप के गरीबी से उसका गला न छुटता। जब वह रम्भा को चक्की पीसते हुए देखता तो गेहूँ के साथ उसका दिल भी पिस जाता था। वह कुँ से पानी निकालती तो उसका कलेजा निकल आता। जब वह पड़ोस की औरत के कपड़े सीती तो कपड़ों के साथ मगनदास का दिल छिद जाता। मगर कुछ बस था न काबू। मगनदास की हृदयभेदी दृष्टि को इसमें तो कोई संदेह नहीं था कि उसके प्रेम का आकर्षण बिलकुल बेअसर नहीं है वरना रम्भा की उन वफा से भरी हुई खातिरदारियों की तुक कैसा बिठाता वफा ही वह जादू है रुप के गर्व का सिर नीचा कर सकता है। मगर। प्रेमिका के दिल में बैठने का माददा उसमें बहुत कम था। कोई दूसरा मनचला प्रेमी अब तक अपने वशीकरण में कामयाब हो चुका होता लेकिन मगनदास ने दिल आशकि का पाया था और जबान माशूक की।

एक रोज शाम के वक्त चम्पा किसी काम से बाजार गई हुई थी और मगनदास हमेशा की तरह चारपाई पर पड़ा सपने देख रहा था। रम्भा अदभूत छटा के साथ आकर उसके समने खड़ी हो गई। उसका भोला चेहरा कमल की तरह खिला हुआ था। और आखों से सहानुभूति का भाव झलक रहा था। मगनदास ने उसकी तरफ पहले आश्चर्य और फिर प्रेम की निगाहों से देखा और दिल पर जोर डालकर बोला-आओ रम्भा, तुम्हें देखने को बहुत दिन से आँखें तरस रही थीं।

रम्भा ने भोलेपन से कहा-मैं यहां न आती तो तुम मुझसे कभी न बोलेते।

मगनदास का हौसला बढ़ा, बोला-बिना मर्जी पाये तो कुत्ता भी नहीं आता।

रम्भा मुस्कराई, कली खेल गई-मैं तो आप ही चली आई।

मगनदास का कलेजा उछल पड़ा। उसने हिम्मत करके रम्भा का हाथ पकड़ लिया और भावावेश से काँपती हुई आवाज में बोला-नहीं रम्भा ऐसा नहीं है। यह मेरी महीनों की तपस्या का फल है।

मगनदास ने बेताब होकर उसे गले से लगा लिया। जब वह चलने लगी तो अपने प्रेमी की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखकर बोली-अब यह प्रीत हमको निभानी होगी।

पौ फटने के वक्त जब सूर्य देवता के आगमन की तैयारियाँ हो रही थी मगनदास की आँखें खुली रम्भा आटा पीस रही थी। उस शांतिपूर्ण सन्नाटे में चक्की की घुमर-घुमर बहुत सुहानी मालूम होती थी और उससे सूर मिलाकर आपने प्यारे ढंग से गाती थी।

झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी

मैं जानूँ पिया मौको मनैहैं

उलटी मनावन मोको पड़ी

झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी

साल भर गुजर गया। मगनदास की मुहब्बत और रम्भा के सलीके न मिलकर उस वीरान झोंपड़े को कुंज बाग बना दिया। अब वहां गायें थीं। फूलों की क्यारियाँ थीं और कई देहाती ढंग के मोढ़े थे। सुख-सुविधा की अनेक चीजे दिखाई पड़ती थीं।

एक रोज सुबह के वक्त मगनदास कही जाने के लिए तैयार हो रहा था कि एक सम्भ्रांत व्यक्ति अंग्रेजी पोशाक पहने उसे दूढ़ता हुआ आ पहुँचा और उसे देखते ही दौड़कर गले से लिपट गया। मगनदास और वह दोनो एक साथ पढ़ा करते थे। वह अब वकील हो गया। था। मगनदास ने भी अब पहचाना और कुछ झेंपता और कुछ झिझकता उससे गले लिपट गया। बड़ी देर तक दोनों दोस्त बातें करते रहे। बातें क्या थीं घटनाओं और संयोगों की एक लम्बी कहानी थी। कई महीने हुए सेठ लगन का छोटा बच्चा चेचक की नजर हो गया। सेठ जी ने दुख क मारे आत्महत्या कर ली और अब मगनदास सारी जायदाद, कोठी इलाके और मकानों का एकछत्र स्वामी था। सेठानियों में आपसी झगड़े हो रहे थे। कर्मचारियों ने गबन को अपना ढंग बना रक्खा था। बड़ी सेठानी उसे बुलाने के लिए खुद आने को तैयार थी, मगर वकील साहब ने उन्हे रोका था। जब मदनदास ने मुस्काराकर पुछा-तुम्हों क्योकर मालूम हुआ कि मै। यहाँ हूँ तो वकील साहब ने फरमाया-महीने भर से तुम्हारी टोह में हूँ। सेठ मकखलाल ने अता-पता बतलाया। तूम दिल्ली पहुँचें और मैंने अपना महीने भर का बिल पेश किया।

रम्भा अधीर हो रही थी। कि यह कौन है और इनमे क्या बातें हो रही हैं? दस बजते-बजते वकील साहब मगनदास से एक हफ्ते के अन्दर आने का वादा लेकर विदा हुए उसी वक्त रम्भा आ पहुँची और पूछने लगी-यह कौन थे। इनका तुमसे क्या काम था?

मगनदास ने जवाब दिया- यमराज का दूत।

रम्भा-क्या असगुन बकते हो!

मगन-नहीं नहीं रम्भा, यह असगुन नहीं है, यह सचमुच मेरी मौत का दूत था। मेरी खुशियों के बाग को रौंदने वाला मेरी हरी-भरी खेती को उजाड़ने वाला रम्भा मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, मैंने तुम्हें अपने फरेब क जाल में फाँसया है, मुझे माफ करो। मुहब्बत ने मुझसे यह सब करवाया मैं मगनसिंह ठाकूर नहीं हूँ। मैं सेठ लगनदास का बेटा और सेठ मक्खनलाल का दामाद हूँ।

मगनदास को डर था कि रम्भा यह सुनते ही चौक पड़ेगी ओर शायद उसे जालिम, दगाबाज कहने लगे। मगर उसका ख्याल गलत निकला! रम्भा ने आँखों में आँसू भरकर सिर्फ इतना कहा-तो क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे?

मगनदास ने उसे गले लगाकर कहा-हाँ।

रम्भा-क्यों?

मगन-इसलिए कि इन्दिरा बहुत होशियार सुन्दर और धनी है।

रम्भा-मैं तुम्हें न छोड़ूँगी। कभी इन्दिरा की लौंडी थी, अब उनकी सौत बनूँगी। तुम जितनी मेरी मुहब्बत करोगे। उतनी इन्दिरा की तो न करोगे, क्यों?

मगनदास इस भोलेपन पर मतवाला हो गया। मुस्कराकर बोला-अब इन्दिरा तुम्हारी लौंडी बनेगी, मगर सुनता हूँ वह बहुत सुन्दर है। कहीं मैं उसकी सूरत पर लुभा न जाऊँ। मर्दों का हाल तुम नहीं जानती मुझे अपने ही से डर लगता है।

रम्भा ने विश्वासभरी आँखों से देखकर कहा-क्या तुम भी ऐसा करोगे? उँह जो जी में आये करना, मैं तुम्हें न छोड़ूँगी। इन्दिरा रानी बने, मैं लौंडी हूँगी, क्या इतने पर भी मुझे छोड़ दोगें?

मगनदास की आँखें डबडबा गयीं, बोला-प्यारी, मैंने फैसला कर लिया है कि दिल्ली न जाऊँगा यह तो मैं कहने ही न पाया कि सेठ जी का स्वर्गवास हो गया। बच्चा उनसे पहले ही चल बसा था। अफसोस सेठ जी के आखिरी दर्शन भी न कर सका। अपना बाप भी इतनी मुहब्बत नहीं कर सकता। उन्होंने मुझे अपना वारिस बनाया हैं। वकील साहब कहते थे। कि सेठारियों में अनबन है। नौकर चाकर लूट मार-मचा रहे हैं। वहाँ का यह हाल है और मेरा दिल वहाँ जाने पर राजी नहीं होता दिल तो यहाँ है वहाँ कौन जाए।

रम्भा जरा देर तक सोचती रही, फिर बोली-तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगी इतने दिन तुम्हारे साथ रही। जिन्दगी का सुख लुटा अब जब तक जिऊँगी इस सूख का ध्यान करती रहूँगी। मगर तुम मुझे भूल तो न जाओगे? साल में एक बार देख लिया करना और इसी झोपड़े में।

मगनदास ने बहुत रोका मगर आँसू न रुक सके बोले-रम्भा, यह बातें ने करो, कलेजा बैठ जाता है। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता इसलिए नहीं कि तुम्हारे उपर कोई एहसान है। तुम्हारी खातिर नहीं, अपनी खातिर वह शांति वह प्रेम, वह आनन्द जो मुझे यहाँ मिलता है और कहीं नहीं मिल सकता। खुशी के साथ जिन्दगी बसर हो, यही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। मुझे ईश्वर ने यह खुशी यहाँ दे रखी है तो मैं उसे क्यों छोड़ूँ? धन-दौलत को मेरा सलाम है मुझे उसकी हवस नहीं है।

रम्भा फिर गम्भीर स्वर में बोली-मैं तुम्हारे पाँव की बेड़ी न बनूँगी। चाहे तुम अभी मुझे न छोड़ो लेकिन थोड़े दिनों में तुम्हारी यह मुहब्बत न रहेगी।

मगनदास को कोड़ा लगा। जोश से बोला-तुम्हारे सिवा इस दिल में अब कोई और जगह नहीं पा सकता।

रात ज्यादा आ गई थी। अष्टमी का चाँद सोने जा चुका था। दोपहर के कमल की तरह साफ आसमन में सितारे खिले हुए थे। किसी खेत के रखवाले की बासुरी की आवाज, जिसे दूरी ने तासीर, सन्नाटे न सुरीलापन और अँधेरे ने आत्मिकता का आकर्षण दे दिया। था। कानों में आ जा रही थी कि जैसे कोई पवित्र आत्मा नदी के किनारे बैठी हुई पानी की लहरों से या दूसरे किनारे के खामोश और अपनी तरफ खींचनेवाले पेड़ों से अपनी जिन्दगी की गम की कहानी सुना रही है।

मगनदास सो गया मगर रम्भा की आँखों में नींद न आई।

सुबह हुई तो मगनदास उठा और रम्भा पुकारने लगा। मगर रम्भा रात ही को अपनी चाची के साथ वहाँ से कहीं चली गयी मगनदास को उसे मकान के दरो दीवार पर एक हसरत-सी छापी हुई

मालूम हुई कि जैसे घर की जान निकल गई हो। वह घबराकर उस कोठरी में गया जहां रम्भा रोज चक्की पीसती थी, मगर अफसोस आज चक्की एकदम निश्चल थी। फिर वह कुँए की तरह दौड़ा गया लेकिन ऐसा मालूम हुआ कि कुँए ने उसे निगल जाने के लिए अपना मुँह खोल दिया है। तब वह बच्चो की तरह चीख उठा रोता हुआ फिर उसी झोपड़ी में आया। जहाँ कल रात तक प्रेम का वास था। मगर आह, उस वक्त वह शोक का घर बना हुआ था। जब जरा आँसू थमे तो उसने घर में चारों तरफ निगाह दौड़ाई। रम्भा की साड़ी अरगनी पर पड़ी हुई थी। एक पिटारी में वह कंगन रक्खा हुआ था। जो मगनदास ने उसे दिया था। बर्तन सब रक्खे हुए थे, साफ और सुधरे। मगनदास सोचने लगा-रम्भा तूने रात को कहा था-मैं तुम्हे छोड़ दुर्गी। क्या तूने वह बात दिल से कही थी।? मैंने तो समझा था, तू दिल्लगी कर रही हैं। नहीं तो मुझे कलेजे में छिपा लेता। मैं तो तेरे लिए सब कुछ छोड़े बैठा था। तेरा प्रेम मेरे लिए सक कुछ था, आह, मैं यों बेचैन हूँ, क्या तू बेचैन नहीं है? हाय तू रो रही है। मुझे यकीन है कि तू अब भी लौट आएगी। फिर सजीव कल्पनाओं का एक जमघट उसक सामने आया- वह नाजुक अदाएँ वह मतवाली आँखें वह भोली भाली बातें, वह अपने को भूली हुई-सी मेहरबानियाँ वह जीवन दायी। मुस्कान वह आशिकों जैसी दिलजोड़ियाँ वह प्रेम का नाश, वह हमेशा खिला रहने वाला चेहरा, वह लचक-लचककर कुँए से पानी लाना, वह इन्ताजार की सूरत वह मस्ती से भरी हुई बेचैनी-यह सब तस्वीरें उसकी निगाहों के सामने हमरतनाक बेताबी के साथ फिरने लगी। मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली और आसुओं और दर्द की उमड़ती हुई नदी को मर्दाना जब्त से रोककर उठ खड़ा हुआ। नागपुर जाने का पक्का फैसला हो गया। तकिये के नीच से सन्दूक की कुँजी उठायी तो कागज का एक टुकड़ा निकल आया यह रम्भा की विदा की चिट्ठी थी-

प्यारे,

मैं बहुत रो रही हूँ मेरे पैर नहीं उठते मगर मेरा जाना जरूरी है। तुम्हे जागाऊँगी। तो तुम जाने न दोगे। आह कैसे जाऊँ अपने प्यारे पति को कैसे छोड़ूँ! किस्मत मुझसे यह आनन्द का घर छुड़वा रही है। मुझे बेवफा न कहना, मैं तुमसे फिर कभी मिलूँगी। मैं जानती हूँ। कि तुमने मेरे लिए यह सब कुछ त्याग दिया है। मगर तुम्हारे लिए जिन्दगी में। बहुत कुछ उम्मीदे हैं मैं अपनी मुहब्बत की धुन में तुम्हें उन उम्मीदों से क्यों दूर रखूँ! अब तुमसे जुदा होती हूँ। मेरी सुध मत भूलना। मैं तुम्हें हमेशा याद रखूँगी। यह आनन्द के लिए कभी न भूलेंगे। क्या तूम मुझे भूल सकोगे?

तुम्हारी प्यारी

रम्भा

७

मगनदास को दिल्ली आए हुए तीन महीने गुजर चुके हैं। इस बीच उसे सबसे बड़ा जो निजी अनुभव हुआ वह यह था कि रोजी की फिक्र और धन्धों की बहुतायत से उमड़ती हुई भावनाओं का जोर कम किया जा सकता है। डेढ़ साल पहले का बफिक्र नौजवान अब एक समझदार और सूझ-बूझ रखने वाला आदमी बन गया था। सागर घाट के उस कुछ दिनों के रहने से उसे रियाया की इन तकलीफों का निजी ज्ञान हो गया, था जो कारिन्दों और मुख्तारों की सख्तियों की बदौलत उन्हें उठानी पड़ती है। उसने उसे रियासत के इन्तजाम में बहुत मदद दी और गो कर्मचारी दबी जबान से उसकी शिकायत करते थे। और अपनी किस्मतों और जमाने के उलट फेर को कोसने थे मगर रियाया खुश थी। हाँ, जब वह सब धंधों से फुरसत पाता तो एक भोली भाली सूरतवाली लड़की उसके खयाल के पहलू में आ बैठती और थोड़ी देर के लिए सागर घाट का वह हरा भरा झोपड़ा और उसकी मस्तिया आँखें के सामने आ जातीं। सारी बातें एक सुहाने सपने की तरह याद आ आकर उसके दिल को मसोसने लगती लेकिन कभी कभी खूद बखुद-उसका खयाल इन्दिरा की तरफ भी जा पहुँचता गो उसके दिल में रम्भा की वही जगह थी मगर किसी तरह उसमें इन्दिरा के लिए भी एक कोना निकल आया था। जिन हालातों और आफतों ने उसे इन्दिरा से बेजार कर दिया था वह अब रुखसत हो गयी थीं। अब उसे इन्दिरा से कुछ हमदर्दी हो गयी। अगर उसके मिजाज में घमण्ड है, हुकूमत है तकल्लूफ है शान है तो यह उसका कसूर नहीं यह रईसजादों की आम कमजोरियाँ हैं यही उनकी शिक्षा है। वे बिल्कुल बेबस और मजबूर हैं। इन बदले हुए और संतुलित भावों के साथ जहाँ वह बेचैनी के साथ रम्भा की याद को ताजा किया करता था वहाँ इन्दिरा का स्वागत करने और उसे अपने दिल में जगह देने के लिए तैयार था। वह दिन दूर नहीं था जब उसे उस आजमाइश का सामना करना पड़ेगा। उसके कई आत्मीय अमीराना शान-शौकत के साथ इन्दिरा को विदा कराने के लिए नागपुर गए हुए थे।

मगनदास की बतियत आज तरह तरह के भावों के कारण, जिनमें प्रतीक्षा और मिलन की उत्कंठा विशेष थी, उचाट सी हो रही थी। जब कोई नौकर आता तो वह सम्मल बैठता कि शायद इन्दिरा आ पहुँची आखिर शाम के वक्त जब दिन और रात गले मिले रहे थे, जनानखाने में जोर शारे के गाने की आवाजों ने बहू के पहुँचने की सूचना दी।

सुहाग की सुहानी रात थी। दस बज गये थे। खुले हुए हवादार सहन में चाँदनी छिटकी हुई थी, वह चाँदनी जिसमें नशा है। आरजू है। और खिंचाव है। गमलों में खिले हुए गुलाब और चम्पा के फूल चाँद की सुनहरी रोशनी में ज्यादा गम्भीर और खामोश नजर आते थे। मगनदास इन्दिरा से मिलने के लिए चला। उसके दिल से लालसाएँ जरूर थी मगर एक पीड़ा भी थी। दर्शन की उत्कण्ठा थी मगर प्यास से खोली। मुहब्बत नहीं प्राणों को खिंचाव था जो उसे खींचे लिए जाता था। उसके दिल में बैठी हुई रम्भा शायद बार-बार बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। इसीलिए दिल में धड़कन हो रही थी। वह सोने के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था। उसने पर्दा उठा दिया अन्दर एक औरत सफेद साड़ी पहने खड़ी थी। हाथ में चन्द खूबसूरत चूड़ियों के सिवा उसके बदन पर एक जेवर भी न था। ज्योही पर्दा उठा और मगनदास ने अन्दरी हम रक्खा वह मुस्काराती हुई उसकी तरफ बढ़ी मगनदास ने उसे देखा और चकित होकर बोला। “रम्भा!” और दोनों प्रेमावेश से लिपट गये। दिल में बैठी हुई रम्भा बाहर निकल आई थी। साल भर गुजरने के बाद एक दिन इन्दिरा ने अपने पति से कहा। क्या रम्भा को बिल्कुल भूल गये? कैसे बेवफा हो! कुछ याद है, उसने चलते वक्त तुमसे या बिनती की थी?

मगनदास ने कहा- खूब याद है। वह आवाज भी कानों में गूँज रही है। मैं रम्भा को भोली-भाली लड़की समझता था। यह नहीं जानता था कि यह त्रिया चरित्र का जादू है। मैं अपनी रम्भा का अब भी इन्दिरा से ज्यादा प्यार करता हूँ। तुम्हें डाह तो नहीं होती?

इन्दिरा ने हंसकर जवाब दिया डाह क्यों हो। तूम्हारी रम्भा है तो क्या मेरा गनसिंह नहीं है। मैं अब भी उस पर मरती हूँ।

दूसरे दिन दोनों दिल्ली से एक राष्ट्रीय समारोह में शरीक होने का बहाना करके रवाना हो गए और सागर घाट जा पहुँचे। वह झोपड़ा वह मुहब्बत का मन्दिर वह प्रेम भवन फूल और हिरयाली से लहरा रहा था चम्पा मालिन उन्हें वहाँ मिली। गाँव के जमींदार उनसे मिलने के लिए आये। कई दिन तक फिर मगनसिंह को घोड़े निकालना पड़े। रम्भा कुएँ से पानी लाती खाना पकाती। फिर चक्की पीसती और गाती। गाँव की औरते फिर उससे अपने कुर्ते और बच्चों की लेसदार टोपियाँ सिलाती हैं। हा, इतना जरूर कहती कि उसका रंग कैसा निखर आया है, हाथ पाँव कैसे मुलायम यह पड़ गये हैं किसी बड़े घर की रानी मालूम होती है। मगर स्वभाव वही है, वही मीठी बोली है। वही मुरौवत, वही हँसमुख चेहरा।

इस तरह एक हफ्ते इस सरल और पवित्र जीवन का आनन्द उठाने के बाद दोनों दिल्ली वापस आये और अब दस साल गुजरने पर भी साल में एक बार उस झोपड़े के नसीब जागते हैं। वह मुहब्बत की दीवार अभी तक उन दोनों प्रेमियों को अपनी छाया में आराम देने के लिए खड़ी है।

-- जमाना , जनवरी 1913

लाला ज्ञानचन्द बैठे हुए हिसाब-किताब जाँच रहे थे कि उनके सुपुत्र बाबू नानकचन्द आये और बोले- दादा, अब यहां पड़े-पड़े जी उसता गया, आपकी आज्ञा हो तो मौ सैर को निकल जाऊं दो एक महीने में लौट आऊंगा।

नानकचन्द बहुत सुशील और नवयुवक था। रंग पीला आंखों के गिर्द हलके स्याह धब्बे कंधे झुके हुए। ज्ञानचन्द ने उसकी तरफ तीखी निगाह से देखा और व्यंगपूर्ण स्वर में बोले -क्यों क्या यहां तुम्हारे लिए कुछ कम दिलचस्पियाँ हैं?

ज्ञानचन्द ने बेटे को सीधे रास्ते पर लोने की बहुत कोशिश की थी मगर सफल न हुए। उनकी डॉट-फटकार और समझाना-बुझाना बेकार हुआ। उसकी संगति अच्छी न थी। पीने पिलाने और राग-रंग में डूबा रहता था। उन्हें यह नया प्रस्ताव क्यों पसन्द आने लगा, लेकिन नानकचन्द उसके स्वभाव से परिचित था। बेधड़क बोला- अब यहाँ जी नहीं लगता। कश्मीर की बहुत तारीफ सुनी है, अब वहीं जाने की सोचना हूँ।

ज्ञानचन्द- बेहरत है, तशरीफ ले जाइए।

नानकचन्द- (हंसकर) रुपये को दिलवाइए। इस वक्त पाँच सौ रुपये की सख्त जरूरत है।

ज्ञानचन्द- ऐसी फिजूल बातों का मझसे जिक्र न किया करो, मैं तुमको बार-बार समझा चुका।

नानकचन्द ने हठ करना शुरू किया और बूढ़े लाला इनकार करते रहे, यहाँ तक कि नानकचन्द झूँझलाकर बोला- अच्छा कुछ मत दीजिए, मैं यों ही चला जाऊँगा।

ज्ञानचन्द ने कलेजा मजबूत करके कहा- बेशक, तुम ऐसे ही हिम्मतवर हो। वहाँ भी तुम्हारे भाई-बन्द बैठे हुए हैं न!

नानकचन्द- मुझे किसी की परवाह नहीं। आपका रुपया आपको मुबारक रहे।

नानकचन्द की यह चाल कभी पट नहीं पड़ती थी। अकेला लड़का था, बूढ़े लाला साहब ढीले पड़ गए। रुपया दिया, खुशामद की और उसी दिन नानकचन्द कश्मीर की सैर के लिए रवाना हुआ।

२

मगर नानकचन्द यहाँ से अकेला न चला। उसकी प्रेम की बातें आज सफल हो गयी थीं। पड़ोस में बाबू रामदास रहते थे। बेचारे सीधे-सादे आदमी थे, सुबह दफ्तर जाते और शाम को आते और इस बीच नानकचन्द अपने कोठे पर बैठा हुआ उनकी बेवा लड़की से मुहब्बत के इशारे किया करता। यहाँ तक कि अभागी ललिता उसके जाल में आ फँसी। भाग जाने के मंसूबे हुए।

आधी रात का वक्त था, ललिता एक साड़ी पहने अपनी चारपाई पर करवटें बदल रही थी। जेवरों को उतारकर उसने एक सन्दूकचे में रख दिया था। उसके दिल में इस वक्त तरह-तरह के खयाल दौड़ रहे थे और कलेजा जोर-जोर से धड़क रहा था। मगर चाहे और कुछ न हो, नानकचन्द की तरफ से उसे बेवफाई का जरा भी गुमान न था। जवानी की सबसे बड़ी नेमत मुहब्बत है और इस नेमत को पाकर ललिता अपने को खुशनसीब समझ रही थी। रामदास बेसुध सो रहे थे कि इतने में कुण्डी खटकी। ललिता चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने जेवरों का सन्दूकचा उठा लिया एक बार इधर-उधर हसरत-भरी निगाहों से देखा और दबे पाँव चौंक-चौंककर कदम उठाती देहलीज में आयी और कुण्डी खोल दी। नानकचन्द ने उसे गले से लगा लिया। बग़्घी तैयार थी, दोनों उस पर जा बैठे।

सुबह को बाबू रामदास उठे, ललित न दिखायी दी। घबराये, सारा घर छान मारा कुछ पता न चला। बाहर की कुण्डी खुली देखी। बग़्घी के निशान नजर आये। सर पीटकर बैठ गये। मगर अपने दिल का दर्द किससे कहते। हँसी और बदनामी का डर जबान पर मोहर हो गया। मशहूर किया कि वह अपने ननिहाल और गयी मगर लाला ज्ञानचन्द सुनते ही भौंप गये कि कश्मीर की सैर के कुछ और ही माने थे। धीरे-धीरे यह बात सारे मुहल्ले में फैल गई। यहाँ तक कि बाबू रामदास ने शर्म के मारे आत्महत्या कर ली।

मुहब्बत की सरगर्मियां नतीजे की तरफ से बिलकुल बेखबर होती हैं। नानकचन्द जिस वक्त बग्घी में ललित के साथ बैठा तो उसे इसके सिवाय और कोई खयाल ने था कि एक युवती मेरे बगल में बैठी है, जिसके दिल का मैं मालिक हूँ। उसी धुन में वह मस्त था बदनामी का डर, कानून का खटका, जीविका के साधन, उन समस्याओं पर विचार करने की उसे उस वक्त फुरसत न थी। हाँ, उसने कश्मीर का इरादा छोड़ दिया। कलकत्ते जा पहुँचा। किफायतशारी का सबक न पढ़ा था। जो कुछ जमा-जथा थी, दो महीनों में खर्च हो गयी। ललिता के गहनों पर नौबत आयी। लेकिन नानकचन्द में इतनी शराफत बाकी थी। दिल मजबूत करके बाप को खत लिखा, मुहब्बत को गालियाँ दीं और विश्वास दिलाया कि अब आपके पैर चूमने के लिए जी बेकरार है, कुछ खर्च भेजिए। लाला साहब ने खत पढ़ा, तसकीन हो गयी कि चलो जिन्दा है खैरियत से है। धूम-धाम से सत्यनारायण की कथा सुनी। रुपया रवाना कर दिया, लेकिन जवाब में लिखा-खैर, जो कुछ तुम्हारी किस्मत में था वह हुआ। अभी इधर आने का इरादा मत करो। बहुत बदनाम हो रहे हो। तुम्हारी वजह से मुझे भी बिरादरी से नाता तोड़ना पड़ेगा। इस तूफान को उतर जाने दो। तुमहें खर्च की तकलीफ न होगी। मगर इस औरत की बांह पकड़ी है तो उसका निबाह करना, उसे अपनी ब्याहता स्त्री समझो।

नानकचन्द दिल पर से चिन्ता का बोझ उतर गया। बनारस से माहवार वजीफा मिलने लगा। इधर ललिता की कोशिश ने भी कुछ दिल को खींचा और गो शराब की लत न टूटी और हफ्ते में दो दिन जरूर थियेटर देखने जाता, तो भी तबियत में स्थिरता और कुछ संयम आ चला था। इस तरह कलकत्ते में उसने तीन साल काटे। इसी बीच एक प्यारी लड़की के बाप बनने का सौभाग्य हुआ, जिसका नाम उसने कमला रक्खा।

४

तीसरा साल गुजरा था कि नानकचन्द के उस शान्तिमय जीवन में हलचल पैदा हुई। लाला नानकचन्द का पचासवाँ साल था जो हिन्दोस्तानी रईसों की प्राकृतिक आयु है। उनका स्वर्गवास हो गया और ज्योंही यह खबर नानकचन्द को मिली वह ललिता के पास जाकर चीखें मार-मारकर रोने लगा। जिन्दगी के नये-नये मसले अब उसके सामने आए। इस तीन साल की सँभली हुई जिन्दगी ने उसके दिल शोहदेपन और नशेबाजी का खयाल बहुत कुछ दूर कर दिये थे। उसे अब यह फिक्र सवार हुई कि चलकर बनारस में अपनी जायदाद का कुछ इन्तजाम करना चाहिए, वरना सारा कारोबार में अपनी जायदाद का कुछ इन्तजाम करना चाहिए, वरना सारा कारोबार धूल में मिल जाएगा। लेकिन ललिता को क्या करूँ। अगर इसे वहाँ लिये चलता हूँ तो तीन साल की पुरानी घटनाएं ताजी हो जायेगी और फिर एक हलचल पैदा होगी जो मुझे हूक्काम और हमजोहलयाँ में जलील कर देगी। इसके अलावा उसे अब कानूनी औलाद की जरूरत भी नजर आने लगी यह हो सकता था कि वह ललिता को अपनी ब्याहता स्त्री मशहूर कर देता लेकिन इस आम खयाल को दूर करना असम्भव था कि उसने उसे भगाया हैं ललिता से नानकचन्द को अब वह मुहब्बत न थी जिसमें दर्द होता है और बेचैनी होती है। वह अब एक साधारण पति था जो गले में पड़े हुए ढोल को पीटना ही अपना धर्म समझता है, जिसे बीबी की मुहब्बत उसी वक्त याद आती है, जब वह बीमार होती है। और इसमें अचरज की कोई बात नहीं है अगर जिंदगी की नयी नयी उमंगों ने उसे उकसाना शुरू किया। मसूबे पैदा होने लगे जिनका दौलत और बड़े लोगों के मेल जोल से संबंध है मानव भावनाओं की यही साधारण दशा है। नानकचन्द अब मजबूत इराई के साथ सोचने लगा कि यहां से क्योंकर भागूँ। अगर लजाजत लेकर जाता हूँ तो दो चार दिन में सारा पर्दा फाश हो जाएगा। अगर हीला किये जाता हूँ तो आज के तीसरे दिन ललिता बनारस में मेरे सर पर सवार होगी कोई ऐसी तरकीब निकालूँ कि इन सम्भावनाओं से मुक्ति मिले। सोचते-सोचते उसे आखिर एक तदबीर सुझी। वह एक दिन शाम को दरिया की सैर का बाहाना करके चला और रात को घर पर न आया। दूसरे दिन सुबह को एक चौकीदार ललिता के पास आया और उसे थाने में ले गया। ललिता हैरान थी कि क्या माजरा है। दिल में तरह-तरह की दुश्चिन्तायें पैदा हो रही थी वहाँ जाकर जो कैफियत देखी तो दूनिया आंखों में अंधरी हो गई नानकचन्द के कपड़े खून में तर-ब-तर पड़े थे उसकी वही सुनहरी घड़ी वही खूबसूरत छतरी, वही रेशमी साफा सब वहाँ मौजूद था। जेब में उसके नाम के छपे हुए कार्ड थे। कोई संदेश न रहा कि नानकचन्द को किसी ने कत्ल कर डाला दो तीन हफ्ते तक थाने में तककीकातें होती रही और, आखिर कार खूनी का पता चल गया पुलिस के अफसरा को बड़े बड़े इनाम मिले। इसको जासूसी का एक बड़ा आश्चर्य समझा गया। खूनी नेप्रेम की प्रतिद्वन्द्विता के जोश में यह

काम किया। मगर इधर तो गरीब बेगुनाह खूनी सूली पर चढ़ा हुआ था। और वहाँ बनारस में नानक चन्द की शादी रचायी जा रही थी।

5

लाला नानकचन्द की शादी एक रईस घराने में हुई और तब धीरे धीरे फिर वही पुराने उठने बैठनेवाले आने शुरू हुए फिर वही मजलिसे जमीं और फिर वही सागर-ओ-मीना के दौर चलने लगे। सयंम का कमजोर अहाता इन विषय-वासना के बटमारो को न रोक सका। हाँ, अब इस पीने पिलाने में कुछ परदा रखा जाता है। और ऊपर से थोड़ी सी गम्भीरता बनाये रखी जाती है साल भर इसी बहार में गुजरा नवेली बहूघर में कुढ़ कुढ़कर मर गई। तपेदिक ने उसका काम तमाम कर दिया। तब दूसरी शादी हुई। मगर इस स्त्री में नानकचन्द की सौन्दर्य प्रेमी आंखों के लिए कोई आकर्षण न था। इसका भी वही हाल हुआ। कभी बिना रोये कौर मुंह में नहीं दिया। तीन साल में चल बसी। तब तीसरी शादी हुई। यह औरत बहुत सुन्दर थी अच्छी आभूषणों से सुसज्जित उसने नानकचन्द के दिल में जगह कर ली एक बच्चा भी पैदा हुआ था और नानकचन्द गार्हस्थिक आनंदों से परिचित होने लगा। दुनिया के नाते रिशते अपनी तरफ खींचने लगे मगर प्लेग के लिए ही सारे मंसूबे धूल में मिला दिये। पतिप्राणा स्त्री मरी, तीन बरस का प्यारा लड़का हाथ से गया। और दिल पर ऐसा दाग छोड़ गया जिसका कोई मरहम न था। उच्छ्वस्रंखलता भी चली गई ऐयाशी का भी खात्मा हुआ। दिल पर रंजोगम छागया और तबियत संसार से विरक्त हो गयी।

6

जीवन की दुर्घटनाओं में अकसर बड़े महत्व के नैतिक पहलू छिपे हुआ करते हैं। इन सड़मों ने नानकचन्द के दिल में मरे हुए इन्सान को भी जगा दिया। जब वह निराशा के यातनापूर्ण अकेलपन में पड़ा हुआ इन घटनाओं को याद करता तो उसका दिल रोंने लगता और ऐसा मालूम होता कि ईश्वर ने मुझे मेरे पापों की सजा दी है धीरे धीरे यह खयाल उसके दिल में मजबूत हो गया। ऊफ मैंने उस मासूम औरत पर कैसा जूलम किया कैसी बेरहमी की! यह उसी का दण्ड है। यह सोचते-सोचते ललिता की मायूस तस्वीर उसकी आखों के सामने खड़ी हो जाती और प्यारी मुखड़ेवाली कमला अपने मरे हुए सौतेल भाई के साथ उसकी तरफ प्यार से दौड़ती हुई दिखाई देती। इस लम्बी अवधि में नानकचन्द को ललिता की याद तो कई बार आयी थी मगर भोग विलास पीने पिलाने की उन कैफियातों ने कभी उस खयाल को जमने नहीं दिया। एक धुधला-सा सपना दिखाई दिया और बिखर गया। मालूम नहीं दोनो मर गयी या जिन्दा है। अफसोस! ऐसी बेकसी की हालत में छोड़कर मैंने उनकी सुध तक न ली। उस नेकनामी पर धिक्कार है जिसके लिए ऐसी निर्दयता की कीमत देनी पड़े। यह खयाल उसके दिल पर इस बुरी तरह बैठा कि एक रोज वह कलकत्ता के लिए रवाना हो गया।

सुबह का वक्त था। वह कलकत्ते पहुँचा और अपने उसी पुराने घर को चला। सारा शहर कुछ हो गया था। बहुत तलाश के बाद उसे अपना पुराना घर नजर आया। उसके दिल में जोर से धड़कन होने लगी और भावनाओं में हलचल पैदा हो गयी। उसने एक पड़ोसी से पूछा-इस मकान में कौन रहता है?

बूढ़ा बंगाली था, बोला-हाम यह नहीं कह सकता, कौन है कौन नहीं है। इतना बड़ा मुलुक में कौन किसको जानता है? हाँ, एक लड़की और उसका बूढ़ा माँ, दो औरत रहता है। विधवा हैं, कपड़े की सिलाई करता है। जब से उसका आदमी मर गया, तब से यही काम करके अपना पेट पालता है।

इतने में दरवाजा खुला और एक तेरह-चौदह साल की सुन्दर लड़की किताव लिये हुए बाहर निकली। नानकचन्द पहचान गया कि यह कमला है। उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए, बेआखितयार जी चाहा कि उस लड़की को छाती से लगा ले। कुबेर की दौलत मिल गयी। आवाज को सम्हालकर बोला-बेटी, जाकर अपनी अम्माँ से कह दो कि बनारस से एक आदमी आया है। लड़की अन्दर चली गयी और थोड़ी देर में ललिता दरवाजे पर आयी। उसके चेहरे पर घूँघट था और गो सौन्दर्य की ताजगी न थी मगर आकर्षण अब भी था। नानकचन्द ने उसे देखा और एक ठंडी साँस ली। पतिव्रत और धैर्य और निराशा की सजीव मूर्ति सामने खड़ी थी। उसने बहुत जोर लगाया, मगर जब्त न हो सका, बरबस रोंने लगा। ललिता ने घूँघट की आड़ से उसे देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। वह चित्र जो हृदय-पट पर अंकित था, और जो जीवन के अल्पकालिक आनन्दों की याद दिलाता रहता था, जो सपनों में सामने आ-आकर कभी खुशी के गीत सुनाता था और कभी रंज के तीर चुभाता था, इस वक्त सजीव, सचल सामने खड़ा था। ललिता पर ऐ बेहोशी छा

गयी, कुछ वही हालत जो आदमी को सपने में होती है। वह व्यग्र होकर नानकचन्द की तरफ बढ़ी और रोती हुई बोली-मुझे भी अपने साथ ले चलो। मुझे अकेले किस पर छोड़ दिया है; मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता।

ललिता को इस बात की जरा भी चेतना न थी कि वह उस व्यक्ति के सामने खड़ी है जो एक जमाना हुआ मर चुका, वरना शायद वह चीखकर भागती। उस पर एक सपने की-सी हालत छायी हुई थी, मगर जब नानकचन्द ने उसे सीने से लगाकर कहा 'ललिता, अब तुमको अकेले न रहना पड़ेगा, तुम्हें इन आँखों की पुतली बनाकर रखूँगा। मैं इसीलिए तुम्हारे पास आया हूँ। मैं अब तक नरक में था, अब तुम्हारे साथ स्वर्ग को सुख भोगूँगा।' तो ललिता चौंकी और छिटककर अलग हटती हुई बोली-आँखों को तो यकीन आ गया मगर दिल को नहीं आता। ईश्वर करे यह सपना न हो!

-जमाना, जून १९१३

बाबू दयाशंकर उन लोगों में थे जिन्हें उस वक्त तक सोहबत का मजा नहीं मिलता जब तक कि वह प्रेमिका की जबान की तेजी का मजा न उठाये। रुठे हुए को मनाने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता फिरी हुई निगाहें कभी-कभी मुहब्बत के नशे की मतवाली आँखें से भी ज्यादा मोहक जान पड़तीं। आकर्षक लगती। झगड़ों में मिलाप से ज्यादा मजा आता। पानी में हलके-हलके झकोले कैसा समों दिखा जाते हैं। जब तक दरिया में धीमी-धीमी हलचल न हो सैर का लुत्फ नहीं।

अगर बाबू दयाशंकर को इन दिलचस्पियों के कम मौके मिलते थे तो यह उनका कसूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गम्भीर थी, तो भी चूँकि उनका कसूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गम्भीर थी, तो भी चूँकि उसे अपने पति की रुचि का अनुभव हो चुका था इसलिए वह कभी-कभी अपनी तबियत के खिलाफ सिर्फ उनकी खातिर से उनसे रूठ जाती थी मगर यह बे-नींव की दीवार हवा का एक झोंका भी न सम्हाल सकती। उसकी आँखें, उसके होंठ उसका दिल यह बहुरूपिये का खेल ज्यादा देर तक न चला सकते। आसमान पर घटायें आतीं मगर सावन की नहीं, कुआर की। वह डरती, कहीं ऐसा न हो कि हँसी-हँसी से रोना आ जाय। आपस की बदमजगी के ख्याल से उसकी जान निकल जाती थी। मगर इन मौकों पर बाबू साहब को जैसी-जैसी रिझाने वाली बातें सूझतीं वह काश विद्यार्थी जीवन में सूझी होतीं तो वह कई साल तक कानून से सिर मारने के बाद भी मामूली क्लर्क न रहते।

२

दयाशंकर को कौमी जलसों से बहुत दिलचस्पी थी। इस दिलचस्पी की बुनियाद उसी जमाने में पड़ी जब वह कानून की दरगाह के मुजाविर थे और वह अक तक कायम थी। रुपयों की थैली गायब हो गई थी मगर कंधों में दर्द मौजूद था। इस साल कांफ्रेंस का जलसा सतारा में होने वाला था। नियत तारीख से एक रोज पहले बाबू साहब सतारा को रवाना हुए। सफर की तैयारियों में इतने व्यस्त थे कि गिरिजा से बातचीत करने की भी फुर्सत न मिली थी। आनेवाली खुशियों की उम्मीद उस क्षणिक वियोग के ख्याल के ऊपर भारी थी।

कैसा शहर होगा! बड़ी तारीफ सुनते हैं। दकन सौन्दर्य और संपदा की खान है। खूब सैर रहेगी। हजरत तो इन दिल को खुश करनेवाले ख्यालों में मस्त थे और गिरिजा आँखों में आंसू भरे अपने दरवाजे पर खड़ी यह कैफियत देख रही थी और ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि इन्हें खैरितय से लाना। वह खुद एक हफ्ता कैसे काटेगी, यह ख्याल बहुत ही कष्ट देनेवाला था।

गिरिजा इन विचारों में व्यस्त थी दयाशंकर सफर की तैयारियों में। यहाँ तक कि सब तैयारियाँ पूरी हो गईं। इक्का दरवाजे पर आ गया। बिसतर और ट्रंक उस पर रख दिये और तब विदाई भेंट की बातें होने लगीं। दयाशंकर गिरिजा के सामने आए और मुस्कराकर बोले-अब जाता हूँ।

गिरिजा के कलेजे में एक बछी-सी लगी। बरबस जी चाहा कि उनके सीने से लिपटकर रोऊँ। आँसुओं की एक बाढ़-सी आँखें में आती हुई मालूम हुई मगर जब्त करके बोली-जाने को कैसे कहूँ, क्या वक्त आ गया?

इयाशंकर-हाँ, बल्कि देर हो रही है।

गिरिजा-मंगल की शाम को गाड़ी से आओगे न?

दयाशंकर-जरूर, किसी तरह नहीं रूक सकता। तुम सिर्फ उसी दिन मेरा इंतजार करना।

गिरिजा-ऐसा न हो भूल जाओ। सतारा बहुत अच्छा शहर है।

दयाशंकर-(हँसकर) वह स्वर्ग ही क्यों न हो, मंगल को यहाँ जरूर आ जाऊँगा। दिल बराबर यहीं रहेगा। तुम जरा भी न घबराना।

यह कहकर गिरिजा को गले लगा लिया और मुस्कराते हुए बाहर निकल आए। इक्का रवाना हो गया। गिरिजा पलंग पर बैठ गई और खूब रोयी। मगर इस वियोग के दुख, आँसुओं की बाढ़, अकेलेपन के दर्द और तरह-तरह के भावों की भीड़ के साथ एक और ख्याल दिल में बैठा हुआ था जिसे वह बार-बार हटाने की कोशिश करती थी-क्या इनके पहलू में दिल नहीं है! या है तो उस पर उन्हें पूरा-पूरा अधिकार है? वह मुस्कराहट जो विदा होते वक्त दयाशंकर के चेहरे पर लग रही थी, गिरिजा की समझ में नहीं आती थी।

सतारा में बड़ी धूम थी। दयाशंकर गाड़ी से उतरे तो वर्दीपोश वालंटियरों ने उनका स्वागत किया। एक फिटन उनके लिए तैयार खड़ी थी। उस पर बैठकर वह कांफ्रेंस पंडाल की तरफ चले दोनों तरफ झंडियाँ लहरा रही थीं। दरवाजे पर बन्दवारें लटक रही थीं। औरतें अपने झरोखों से और मर्द बरामदों में खड़े हो-होकर खुशी से तालियाँ बाजते थे। इस शान-शौकत के साथ वह पंडाल में पहुँचे और एक खूबसूरत खेमे में उतरे। यहाँ सब तरह की सुविधाएँ एकत्र थीं, दस बजे कांफ्रेंस शुरू हुई। वक्ता अपनी-अपनी भाषा के जलवे दिखाने लगे। किसी के हँसी-दिल्लगी से भरे हुए चुटकुलों पर वाह-वाह की धूम मच गई, किसी की आग बरसानेवाले तकरीर ने दिलों में जोश की एक तहर-सी पेछा कर दी। विद्वत्तापूर्ण भाषणों के मुकाबले में हँसी-दिल्लगी और बात कहने की खुबी को लोगों ने ज्यादा पसन्द किया। श्रोताओं को उन भाषणों में थियेटर के गीतों का-सा आनन्द आता था।

कई दिन तक यही हालत रही और भाषणों की दृष्टि से कांफ्रेंस को शानदार कामयाबी हासिल हुई। आखिरकार मंगल का दिन आया। बाबू साहब वापसी की तैयारियाँ करने लगे। मगर कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आज उन्हें मजबूरन ठहरना पड़ा। बम्बई और यू.पी. के डेलीगेटों में एक हाकी मैच ठहर गई। बाबू दयाशंकर हाकी के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। वह भी टीम में दाखिल कर लिये गये थे। उन्होंने बहुत कोशिश की कि अपना गला छुड़ा लें मगर दोस्तों ने इनकी आनाकानी पर बिलकुल ध्यान न दिया। साहब, जो ज्यादा बेतकल्लुफ थे, बोल-आखिर तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है? तुम्हारा दफ्तर अभी हफ्ता भर बंद है। बीवी साहबा की जाराजगी के सिवा मुझे इस जल्दबाजी का कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। दयाशंकर ने जब देखा कि जल्द ही मुझपर बीवी का गुलाम होने की फबतियाँ कसी जाने वाली हैं, जिससे ज्यादा अपमानजनक बात मर्द की शान में कोई दूसरी नहीं कही जा सकती, तो उन्होंने बचाव की कोई सूरत न देखकर वापसी मुलतवी कर दी। और हाकी में शरीक हो गए। मगर दिल में यह पक्का इरादा कर लिया कि शाम की गाड़ी से जरूर चले जायेंगे, फिर चाहे कोई बीवी का गुलाम नहीं, बीवी के गुलाम का बाप कहे, एक न मानेंगे।

खैर, पांच बजे खेल शुरू हुआ। दोनों तरफ के खिलाड़ी बहुत तेज थे जिन्होंने हाकी खेलने के सिवा जिन्दगी में और कोई काम ही नहीं किया। खेल बड़े जोश और सरगर्मी से होने लगा। कई हजार तमाशाई जमा थे। उनकी तालियाँ और बढ़ावे खिलाड़ियों पर मारू बाजे का काम कर रहे थे और गेंद किसी अभागे की किस्मत की तरह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। दयाशंकर के हाथों की तेजी और सफाई, उनकी पकड़ और बेऐब निशानेबाजी पर लोग हैरान थे, यहाँ तक कि जब वक्त खत्म होने में सिर्फ एक मिनट बाकी रह गया था और दोनों तरफ के लोग हिम्मतें हार चुके थे तो दयाशंकर ने गेंद लिया और बिजली की तरह विरोधी पक्ष के गोल पर पहुँच गये। एक पटाखें की आवाज हुई, चारों तरफ से गोल का नारा बुलन्द हुआ! इलाहाबाद की जीत हुई और इस जीत का सेहरा दयाशंकर के सिर था-जिसका नतीजा यह हुआ कि बेचारे दयाशंकर को उस वक्त भी रुकना पड़ा और सिर्फ इतना ही नहीं, सतारा अमेचर क्लब की तरफ से इस जीत की बधाई में एक नाटक खेलने का कोई प्रस्ताव हुआ जिसे बुध के रोज भी रवाना होने की कोई उम्मीद बाकी न रही। दयाशंकर ने दिल में बहुत पेचोताब खाया मगर जबान से क्या कहते! बीवी का गुलाम कहलाने का इर जबान बन्द किये हुए था। हालाँकि उनका दिल कह रहा था कि अब की देवी रुठेगी तो सिर्फ खुशामदों से न मानेंगी।

बाबू दयाशंकर वादे के रोज के तीन दिन बाद मकान पर पहुँचे। सतारा से गिरिजा के लिए कई अनूठे तोहफे लाये थे। मगर उसने इन चीजों को कुछ इस तरह देखा कि जैसे उनसे उसका जी भर गया है। उसका चेहरा उतरा हुआ था और होंठ सूखे थे। दो दिन से उसने कुछ नहीं खाया था। अगर चलते वक्त दयाशंकर की आंख से आँसू की चन्द बूँदें टपक पड़ी होतीं या कम से कम चेहरा कुछ उदास और आवाज कुछ भारी हो गयी होती तो शायद गिरिजा उनसे न रुठती। आँसुओं की चन्द बूँदें उसके दिल में इस खयाल को तरो-ताजा रखतीं कि उनके न आने का कारण चाहे ओर कुछ हो निष्ठुरता हरगिज नहीं है। शायद हाल पूछने के लिए उसने तार दिया होता और अपने पति को अपने सामने खैरियत से देखकर वह बरबस उनके सीने में जा चिमटती और देवताओं की कृतज्ञ होती। मगर आँखों की वह बेमौका कंजूसी और चेहरे की वह

निष्ठुर मुसकान इस वक्त उसके पहलू में खटक रही थी। दिल में खयाल जम गया था कि मैं चाहे इनके लिए मर ही मिटूँ मगर इन्हें मेरी परवाह नहीं है। दोस्तों का आग्रह और जिद केवल बहाना है। कोई जबरदस्ती किसी को रोक नहीं सकता। खूब! मैं तो रात की रात बैठकर काटूँ और वहाँ मजे उड़ाये जाँँ।

बाबू दयाशंकर को रूठों के मनाने में विशेष दक्षता थी और इस मौके पर उन्होंने कोई बात, कोई कोशिश उठा नहीं रखी। तोहफे तो लाए थे मगर उनका जादू न चला। तब हाथ जोड़कर एक पैर से खड़े हुए, गुदगुदाया, तलुवे सहलाये, कुछ शोखी और शरारत की। दस बजे तक इन्हीं सब बातों में लगे रहे। इसके बाद खाने का वक्त आया। आज उन्होंने रूखी रोटियाँ बड़े शौक से और मामूली से कुछ ज्यादा खायी-गिरिजा के हाथ से आज हफ्ते भर बाद रोटियाँ नसीब हुई हैं, सतारे में रोटियों को तरस गये पूडियाँ खाते-खाते आँतों में बायगोले पड़ गये। यकीन मानो गिरिजन, वहाँ कोई आराम न था, न कोई सैर, न कोई लुत्फ। सैर और लुत्फ तो महज अपने दिल की कैफियत पर मुनहसर है। बेफिक्री हो तो चटियल मैदान में बाग का मजा आता है और तबियत को कोई फिक्र हो तो बाग वीराने से भी ज्यादा उजाड़ मालूम होता है। कम्बख्त दिल तो हरदम यहीं धरा रहता था, वहाँ मजा क्या खाक आता। तुम चाहे इन बातों को केवल बनावट समझ लो, क्योंकि मैं तुम्हारे सामने दोषी हूँ और तुम्हें अधिकार है कि मुझे झूठा, मक्कार, दगाबाज, वेवफा, बात बनानेवाला जो चाहे समझ लो, मगर सच्चाई यही है जो मैं कह रहा हूँ। मैं जो अपना वादा पूरा नहीं कर सका, उसका कारण दोस्तों की जिद थी।

दयाशंकर ने रोटियों की खूब तारीफ की क्योंकि पहले कई बार यह तरकीब फायदेमन्द साबित हुई थी, मगर आज यह मन्त्र भी कारगर न हुआ। गिरिजा के तेवर बदले ही रहे।

तीसरे पहर दयाशंकर गिरिजा के कमरे में गये और पंखा झलने लगे; यहाँ तक कि गिरिजा झुंझलाकर बोल उठी-अपनी नाजबरदारियाँ अपने ही पास रखिये। मैंने हुजूर से भर पाया। मैं तुम्हें पहचान गयी, अब धोखा नही खाने की। मुझे न मालूम था कि मुझसे आप यों दगा करेंगे। गरज जिन शब्दों में बेवफाइयों और निष्ठुरताओं की शिकायतें हुआ करती हैं वह सब इस वक्त गिरिजा ने खर्च कर डाले।

५

शाम हुई। शहर की गलियों में मोतिये और बेले की लपटें आने लगीं। सड़कों पर छिड़काव होने लगा और मिट्टी की सौंधी खुशबू उड़ने लगी। गिरिजा खाना पकाने जा रही थी कि इतने में उसके दरवाजे पर इक्का आकर रुका और उसमें से एक औरत उतर पड़ी। उसके साथ एक महरी थी उसने ऊपर आकर गिरिजा से कहा—बहू जी, आपकी सखी आ रही हैं।

यह सखी पड़ोस में रहनेवाली अहलमद साहब की बीवी थीं। अहलमद साहब बूढ़े आदमी थे। उनकी पहली शादी उस वक्त हुई थी, जब दूध के दाँत न टूटे थे। दूसरी शादी संयोग से उस जमाने में हुई जब मुँह में एक दाँत भी बाकी न था। लोगों ने बहुत समझाया कि अब आप बूढ़े हुए, शादी न कीजिए, ईश्वर ने लड़के दिये हैं, बहुएँ हैं, आपको किसी बात की तकलीफ नहीं हो सकती। मगर अहलमद साहब खुद बुढ़े और दुनिया देखे हुए आदमी थे, इन शुभचिंतकों की सलाहों का जवाब व्यावहारिक उदाहरणों से दिया करते थे—क्यों, क्या मौत को बूढ़ों से कोई दुश्मनी है? बूढ़े गरीब उसका क्या बिगाड़ते हैं? हम बाग में जाते हैं तो मुरझाये हुए फूल नहीं तोड़ते, हमारी आँखें तरो-ताजा, हरे-भरे खूबसूरत फूलों पर पड़ती हैं। कभी-कभी गजरे वगैरह बनाने के लिए कलियाँ भी तोड़ ली जाती हैं। यही हालत मौत की है। क्या यमराज को इतनी समझ भी नहीं है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जवान और बच्चे बूढ़ों से ज्यादा मरते हैं। मैं अभी ज्यों का त्यों हूँ, मेरे तीन जवान भाई, पाँच बहनें, बहनों के पति, तीनों भावजें, चार बेटे, पाँच बेटियाँ, कई भतीजे, सब मेरी आँखों के सामने इस दुनिया से चल बसे। मौत सबको निगल गई मगर मेरा बाल बाँका न कर सकी। यह गलत, बिल्कुल गलत है कि बूढ़े आदमी जल्द मर जाते हैं। और असल बात तो यह है कि जबान बीवी की जरूरत बुढ़ापे में ही होती है। बहुएँ मेरे सामने निकलना चाहें और न निकल सकती हैं, भावजें खुद बूढ़ी हुईं, छोटे भाई की बीवी मेरी परछाईं भी नही देख सकती है, बहनें अपने-अपने घर हैं, लड़के सीधे मुँह बात नहीं करते। मैं ठहरा बूढ़ा, बीमार पड़ूँ तो पास कौन फटके, एक लोटा पानी कौन दे, देखूँ किसकी आँख से, जी कैसे बहलाऊँ? क्या आत्महत्या कर लूँ। या कहीं डूब मरूँ? इन दलीलों के मुकाबिले में किसी की जबान न खुलती थी।

गरज इस नयी अहलमदिन और गिरिजा में कुछ बहनापा सा हो गया था, कभी-कभी उससे मिलने आ जाया करती थी। अपने भाग्य पर सन्तोष करने वाली स्त्री थी, कभी शिकायत या रंज की एक बात जबान

से न निकालती। एक बार गिरिजा ने मजाक में कहा था कि बूढ़े और जवान का मेल अच्छा नहीं होता। इस पर वह नाराज हो गयी और कई दिन तक न आयी। गिरिजा महरी को देखते ही फौरन आँगन में निकल आयी और गो उस इस वक्त मेहमान का आना नागवारा गुजरा मगर महरी से बोली-बहन, अच्छी आयीं, दो घड़ी दिल बहलेगा।

जरा देर में अहलमदिन साहब गहने से लदी हुई, घूँघट निकाले, छमछम करती हुई आँगन में आकर खड़ी हो गई। गिरिजा ने करीब आकर कहा-वाह सखी, आज तो तुम दुलहिन बनी हो। मुझसे पर्दा करने लगी हो क्या? यह कहकर उसने घूँघट हटा दिया और सखी का मुँह देखते ही चौंककर एक कदम पीछे हट गई। दयाशंकर ने जोर से कहकहा लगाया और गिरिजा को सीने से लिपटा लिया और विनती के स्वर में बोले- गिरिजन, अब मान जाओ, ऐसी खता फिर कभी न होगी। मगर गिरिजन अलग हट गई और रुखाई से बोली-तुम्हारा बहुरूप बहुत देख चुकी, अब तुम्हारा असली रूप देखना चाहती हूँ।

६

दयाशंकर प्रेम-नदी की हलकी-हलकी लहरों का आनन्द तो जरूर उठाना चाहते थे मगर तूफान से उनकी तबियत भी उतना ही घबराती थी जितना गिरिजा की, बल्कि शायद उससे भी ज्यादा। हृदय-पविर्तन के जितने मंत्र उन्हें याद थे वह सब उन्होंने पढ़े और उन्हें कारगर न होते देखकर आखिर उनकी तबियत को भी उलझन होने लगी। यह वे मानते थे कि बेशक मुझसे खता हुई है मगर खता उनके खयाल में ऐसी दिल जलानेवाली सजाओं के काबिल न थी। मनाने की कला में वह जरूर सिद्धहस्त थे मगर इस मौके पर उनकी अक्ल ने कुछ काम न दिया। उन्हें ऐसा कोई जादू नजर नहीं आता था जो उठती हुई काली घटाओं और जोर पकड़ते हुए झोंकों को रोक दे। कुछ देर तक वह उन्हीं खयालों में खामोश खड़े रहे और फिर बोले- आखिर गिरिजन, अब तुम क्या चाहती हो।

गिरिजा ने अत्यन्त सहानुभूति शून्य बेपरवाही से मुँह फेरकर कहा-कुछ नहीं।

दयाशंकर-नहीं, कुछ तो जरूर चाहती हो वर्ना चार दिन तक बिना दाना-पानी के रहने का क्या मतलब! क्या मुझे पर जान देने की ठानी है? अगर यही फैसला है तो बेहतर है तुम यों जान दो और मैं कत्ल के जुर्म में फाँसी पाऊँ, किस्सा तमाम हो जाये। अच्छा होगा, बहुत अच्छा होगा, दुनिया की परेशानियों से छुटकारा हो जाएगा।

यह मन्तर बिलकुल बेअसर न रहा। गिरिजा आँखों में आँसू भरकर बोली-तुम खामखाह मुझसे झगड़ना चाहते हो और मुझे झगड़े से नफरत है। मैं तुमसे न बोलती हूँ और न चाहती हूँ कि तुम मुझसे बोलने की तकलीफ गवारा करो। क्या आज शहर में कहीं नाच नहीं होता, कहीं हाकी मैच नहीं है, कहीं शतरंज नहीं बिछी हुई है। वहीं तुम्हारी तबियत जमती है, आप वहीं जाइए, मुझे अपने हाल पर रहने दीजिए मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।

दयाशंकर करुण स्वर में बोले-क्या तुमने मुझे ऐसा बेवफा समझ लिया है?

गिरिजा-जी हाँ, मेरा तो यही तजुर्बा है।

दयाशंकर-तो तुम सख्त गलती पर हो। अगर तुम्हारा यही खयाल है तो मैं कह सकता हूँ कि औरतों की अन्तर्दृष्टि के बारे में जितनी बातें सुनी हैं वह सब गलत हैं। गिरिजन, मेरे भी दिल है...

गिरिजा ने बात काटकर कहा-सच, आपके भी दिल है यह आज नयी बात मालूम हुई।

दयाशंकर कुछ झेंपकर बोले-खैर जैसा तुम समझों। मेरे दिल न सही, मेरा जिगर न सही, दिमाग तो साफ जाहिर है कि ईश्वर ने मुझे नहीं दिया वर्ना वकालत में फेल क्यों होता? गोया मेरे शरीर में सिर्फ पेट है, मैं सिर्फ खाना जानता हूँ और सचमुच है भी ऐसा ही, तुमने मुझे कभी फाका करते नहीं देखा। तुमने कई बार दिन-दिन भर कुछ नहीं खाया है, मैं पेट भरने से कभी बाज नहीं आया। लेकिन कई बार ऐसा भी हुआ है कि दिल और जिगर जिस कोशिश में असफल रहे वह इसी पेट ने पूरी कर दिखाई या यों कहों कि कई बार इसी पेट ने दिल और दिमाग और जिगर का काम कर दिखाया है और मुझे अपने इस अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की बेहयाइयाँ लोगों को बुरी मालूम होती हैं... इस वक्त मेरा खाना न बने। मैं कुछ न खाऊंगा।

गिरिजा ने पति की तरफ देखा, चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट थी, वह यह कर रही थी कि यह आखिरी बात तुम्हें ज्यादा सम्हलकर कहनी चाहिए थी। गिरिजा और औरतों की तरह यह भूल जाती थी कि मर्दों की आत्मा को भी कष्ट हो सकता है। उसके खयाल में कष्ट का मतलब शारीरिक कष्ट था। उसने

दयाशंकर के साथ और चाहे जो रियायत की हो, खिलाने-पिलाने में उसने कभी भी रियायत नहीं की और जब तक खाने की दैनिक मात्रा उनके पेट में पहुँचती जाय उसे उनकी तरफ से ज्यादा अन्देशा नहीं होता था। हजम करना दयाशंकर का काम था। सच पूछिये तो गिरिजा ही की सख्तियों ने उन्हें हाकी का शौक दिलाया वर्ना अपने और सैकड़ों भाइयों की तरह उन्हें दफ्तर से आकर हुक्के और शतरंज से ज्यादा मनोरंजन होता था। गिरिजा ने यह धमकी सुनी तो तयोरियां चढ़ाकर बोली-अच्छी बात है, न बनेगा।

दयाशंकर दिल में कुछ झेंप-से गये। उन्हें इस बेरहम जवाब की उम्मीद न थी। अपने कमरे में जाकर अखबार पढ़ने लगे। इधर गिरिजा हमेशा की तरह खाना पकाने में लग गई। दयाशंकर का दिल इतना टूट गया था कि उन्हें खयाल भी न था कि गिरिजा खाना पका रही होगी। इसलिए जब नौ बजे के करीब उसने आकर कहा कि चलो खाना खा लो तो वह ताज्जुब से चौंक पड़े मगर यह यकीन आ गया कि मैंने बाजी मार ली। जी हरा हुआ, फिर भी ऊपर से रुखाई से कहा-मैंने तो तुमसे कह दिया था कि आज कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा-चलो थोड़ा-सा खा लो।

दयाशंकर-मुझे जरा भी भूख नहीं है।

गिरिजा-क्यों? आज भूख नहीं लगी?

दयाशंकर-तुम्हें तीन दिन से भूख क्यों नहीं लगी?

गिरिजा-मुझे तो इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मेरे दिल को चोट पहुँचाई थी।

दयाशंकर-मुझे भी इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मुझे तकलीफ दी है।

दयाशंकर ने रुखाई के साथ यह बातें कहीं और अब गिरिजा उन्हें मनाने लगी। फौरन पाँसा पलट गया। अभी एक ही क्षण पहले वह उसकी खुशामदे कर रहे थे, मुजरिम की तरह उसके सामने हाथ बाँधे खड़े, गिड़गिड़ा रहे थे, मिन्नतें करते थे और अब बाजी पलटी हुई थी, मुजरिम इन्साफ की मसनद पर बैठा हुआ था। मुहब्बत की राहें मकड़ी के जालों से भी पेचीदा हैं।

दयाशंकर ने दिन में प्रतिज्ञा की थी कि मैं भी इसे इतना ही हैरान करूँगा जितना इसने मुझे किया है और थोड़ी देर तक वह योगियों की तरह स्थिरता के साथ बैठे रहे। गिरिजा न उन्हें गुदगुदाया, तलुवे खुजलाये, उनके बालों में कंघी की, कितनी ही लुभाने वाली अदाएँ खर्च कीं मगर असर न हुआ। तब उसने अपनी दोनों बाँहें उनकी गर्दन में डाल दीं और याचना और प्रेम से भरी हुई आँखें उठाकर बोली-चलो, मेरी कसम, खा लो।

फूस की बाँध बह गई। दयाशंकर ने गिरिजा को गले से लगा लिया। उसके भोलेपन और भावों की सरलता ने उनके दिल पर एक अजीब दर्दनाक असर पैदा किया। उनकी आँखें भी गीली हो गयीं। आह, मैं कैसा जालिम हूँ, मेरी बेवफाइयों ने इसे कितना रुलाया है, तीन दिन तक उसके आँसू नहीं थमे, आँखें नहीं झपकीं, तीन दिन तक इसने दाने की सूरत नहीं देखी मगर मेरे एक जरा-से इनकार ने, झूठे नकली इनकार ने, चमत्कार कर दिखाया। कैसा कोमल हृदय है! गुलाब की पंखुड़ी की तरह, जो मुरझा जाती है मगर मैली नहीं होती। कहाँ मेरा ओछापन, खुदगर्जी और कहाँ यह बेखुदी, यह त्यागा, यह साहस।

दयाशंकर के सीने से लिपटी हुई गिरिजा उस वक्त अपने प्रबल आकर्षण से उनके दिल को खींचे लेती थी। उसने जीती हुई बाजी हारकर आज अपने पति के दिल पर कब्जा पा लिया। इतनी जबर्दस्त जीत उसे कभी न हुई थी। आज दयाशंकर को मुहब्बत और भोलेपन की इस मूरत पर जितना गर्व था उसका अनुमान लगाना कठिन है। जरा देर में वह उठ खड़े हुए और बोले-एक शर्त पर चलूँगा।

गिरिजा-क्या?

दयाशंकर-अब कभी मत रूठना।

गिरिजा-यह तो टेढ़ी शर्त है मगर मंजूर है।

दो-तीन कदम चलने के बाद गिरिजा ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली-तुम्हें भी मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।

दयाशंकर-मैं समझ गया। तुमसे सच कहता हूँ, अब ऐसा न होगा।

दयाशंकर ने आज गिरिजा को भी अपने साथ खिलाया। वह बहुत लजायी, बहुत हीले किये, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, यह तुम्हें क्या हो गया है। मगर दयाशंकर ने एक न मानी और कई कौर गिरिजा को अपने हाथ से खिलाये और हर बार अपनी मुहब्बत का बेदर्दी के साथ मुआवजा लिया।

खाते-खाते उन्होंने हँसकर गिरिजा से कहा-मुझे न मालूम था कि तुम्हें मनाना इतना आसान है।

गिरिजा ने नीची निगाहों से देखा और मुस्करायी, मगर मुँह से कुछ न बोली।

--उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

नागपंचमी आई। साठे के जिन्दादिल नौजवानों ने रंग-बिरंगे जाँघिये बनवाये। अखाड़े में ढोल की मर्दाना सदायें गूँजने लगीं। आसपास के पहलवान इकट्ठे हुए और अखाड़े पर तम्बोलियों ने अपनी दुकानें सजायीं क्योंकि आज कुश्ती और दोस्ताना मुकाबले का दिन है। औरतों ने गोबर से अपने आँगन लीपे और गाती-बजाती कटोरो में दूध-चावल लिए नाग पूजने चलीं।

साठे और पाठे दो लगे हुए मौजे थे। दोनों गंगा के किनारे। खेती में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी इसीलिए आपस में फौजदारियाँ खूब होती थीं। आदिकाल से उनके बीच होड़ चली आती थी। साठेवालों को यह घमण्ड था कि उन्होंने पाठेवालों को कभी सिर न उठाने दिया। उसी तरह पाठेवाले अपने प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखलाना ही जिन्दगी का सबसे बड़ा काम समझते थे। उनका इतिहास विजयों की कहानियों से भरा हुआ था। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हुए चलते थे:

साठेवाले कायर सगरे पाठेवाले हैं सरदार

और साठे के धोबी गाते:

साठेवाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तरवार।
उन लोगन के जनम नसाये जिन पाठे मान लीन अवतार॥

गरज आपसी होड़ का यह जोश बच्चों में माँ दूध के साथ दाखिल होता था और उसके प्रदर्शन का सबसे अच्छा और ऐतिहासिक मौका यही नागपंचमी का दिन था। इस दिन के लिए साल भर तैयारियाँ होती रहती थीं। आज उनमें मार्के की कुश्ती होने वाली थी। साठे को गोपाल पर नाज था, पाठे को बलदेव का गर्। दोनों सूरमा अपने-अपने फरीक की दुआएँ और आरजुएँ लिए हुए अखाड़े में उतरे। तमाशाइयों पर चुम्बक का-सा असर हुआ। मौजों के चौकीदारों ने लट्ठ और डण्डों का यह जमघट देखा और मर्दों की अंगारे की तरह लाल आँखें तो पिछले अनुभव के आधार पर बेपता हो गये। इधर अखाड़े में दाँव-पेंच होते रहे। बलदेव उलझता था, गोपाल पैतरे बदलता था। उसे अपनी ताकत का जोम था, इसे अपने करतब का भरोसा। कुछ देर तक अखाड़े से ताल ठोंकने की आवाजें आती रहीं, तब यकायक बहुत-से आदमी खुशी के नारे मार-मार उछलने लगे, कपड़े और बर्तन और पैसे और बताशे लुटाये जाने लगे। किसी ने अपना पुराना साफा फेंका, किसी ने अपनी बोसीदा टोपी हवा में उड़ा दी साठे के मनचले जवान अखाड़े में पिल पड़े। और गोपाल को गोद में उठा लाये। बलदेव और उसके साथियों ने गोपाल को लहू की आँखों से देखा और दाँत पीसकर रह गये।

२

दस बजे रात का वक्त और सावन का महीना। आसमान पर काली घटाएँ छाई थीं। अंधेरे का यह हाल था कि जैसे रोशनी का अस्तित्व ही नहीं रहा। कभी-कभी बिजली चमकती थी मगर अंधेरे को और ज्यादा अंधेरा करने के लिए। मेंढकों की आवाजें जिन्दगी का पता देती थीं वर्ना और चारों तरफ मौत थी। खामोश, डरावने और गम्भीर साठे के झोंपड़े और मकान इस अंधेरे में बहुत गौर से देखने पर काली-काली भेड़ों की तरह नजर आते थे। न बच्चे रोते थे, न औरतें गाती थीं। पावित्रात्मा बुड्ढे राम नाम न जपते थे।

मगर आबादी से बहुत दूर कई पुरशोर नालों और ढाक के जंगलों से गुजरकर ज्वार और बाजरे के खेत थे और उनकी मेंडों पर साठे के किसान जगह-जगह मड़ैया डाले खेतों की रखवाली कर रहे थे। तले जमीन, ऊपर अंधेरा, मीलों तक सन्नाटा छाया हुआ। कहीं जंगली सुअरों के गोल, कहीं नीलगायों के रेवड़, चिलम के सिवा कोई साथी नहीं, आग के सिवा कोई मददगार नहीं। जरा खटका हुआ और चौंके पड़े। अंधेरा भय का दूसरा नाम है, जब मिट्टी का एक ढेर, एक ठूँठा पेड़ और घास का ढेर भी जानदार चीजें बन जाती हैं। अंधेरा उनमें जान डाल देता है। लेकिन यह मजबूत हाथोंवाले, मजबूत जिगरवाले, मजबूत इरादे वाले किसान हैं कि यह सब सख्तियाँ। झेलते हैं ताकि अपने ज्यादा भाग्यशाली भाइयों के लिए भोग-विलास के

सामान तैयार करें। इन्हीं रखवालों में आज का हीरो, साठे का गौरव गोपाल भी है जो अपनी मड़ैया में बैठा हुआ है और नींद को भगाने के लिए धीमे सुरों में यह गीत गा रहा है:

मैं तो तोसे नैना लगाय पछतायी रे

अचाकन उसे किसी के पाँव की आहट मालूम हुई। जैसे हिरन कुत्तों की आवाजों को कान लगाकर सुनता है उसी तरह गोपाल ने भी कान लगाकर सुना। नींद की औंघाई दूर हो गई। लट्ठ कंधे पर रक्खा और मड़ैया से बाहर निकल आया। चारों तरफ कालिमा छाई हुई थी और हलकी-हलकी बूंदें पड़ रही थीं। वह बाहर निकला ही था कि उसके सर पर लाठी का भरपूर हाथ पड़ा। वह त्योंराकर गिरा और रात भर वहीं बेसुध पड़ा रहा। मालूम नहीं उस पर कितनी चोटें पड़ीं। हमला करनेवालों ने तो अपनी समझ में उसका काम तमाम कर डाला। लेकिन जिन्दगी बाकी थी। यह पाठे के गैरतमन्द लोग थे जिन्होंने अंधेरे की आड़ में अपनी हार का बदला लिया था।

३

गोपाल जाति का अहीर था, न पढ़ा न लिखा, बिल्कुल अक्खड़। दिमागा रौशन ही नहीं हुआ तो शरीर का दीपक क्यों घुलता। पूरे छः फुट का कद, गठा हुआ बदन, ललकान कर गाता तो सुननेवाले मील भर पर बैठे हुए उसकी तानों का मजा लेते। गाने-बजाने का आशिक, होली के दिनों में महीने भर तक गाता, सावन में मल्हार और भजन तो रोज का शगल था। निझर ऐसा कि भूत और पिशाच के अस्तित्व पर उसे विद्वानों जैसे संदेह थे। लेकिन जिस तरह शेर और चीते भी लाल लपटों से डरते हैं उसी तरह लाल पगड़ी से उसकी रूह असाधारण बात थी लेकिन उसका कुछ बस न था। सिपाही की वह डरावनी तस्वीर जो बचपन में उसके दिल पर खींची गई थी, पत्थर की लकीर बन गई थी। शरारतें गर्यीं, बचपन गया, मिठाई की भूख गई लेकिन सिपाही की तस्वीर अभी तक कायम थी। आज उसके दरवाजे पर लाल पगड़ीवालों की एक फौज जमा थी लेकिन गोपाल जख्मों से चूर, दर्द से बेचैन होने पर भी अपने मकान के अंधेरे कोने में छिपा हुआ बैठा था। नम्बरदार और मुखिया, पटवारी और चौकीदार रोब खाये हुए ढंग से खड़े दारोगा की खुशामद कर रहे थे। कहीं अहीर की फरियाद सुनाई देती थी, कहीं मोदी रोना-धोना, कहीं तेली की चीख-पुकार, कहीं कमाई की आँखों से लहू जारी। कलवार खड़ा अपनी किस्मत को रो रहा था। फोहश और गन्दी बातों की गर्मबाजारी थी। दारोगा जी निहायत कारगुजार अफसर थे, गालियों में बात करते थे। सुबह को चारपाई से उठते ही गालियों का वजीफा पढ़ते थे। मेहतर ने आकर फरियाद की-हुजूर, अण्डे नहीं हैं, दारोगाजी हण्टर लेकर दौड़े औश्र उस गरीब का भुरकुस निकाल दिया। सारे गाँव में हलचल पड़ी हुई थी। कांसिटेबल और चौकीदार रास्तों पर यों अकड़ते चलते थे गोया अपनी ससुराल में आये हैं। जब गाँव के सारे आदमी आ गये तो वारदात हुई और इस कम्बख्त गोपाल ने रपट तक न की।

मुखिया साहब बेंत की तरह काँपते हुए बोले-हुजूर, अब माफी दी जाय।

दारोगाजी ने गाजबनाक निगाहों से उसकी तरफ देखकर कहा-यह इसकी शरारत है। दुनिया जानती है कि जुर्म को छुपाना जुर्म करने के बराबर है। मैं इस बदकाश को इसका मजा चखा दूँगा। वह अपनी ताकत के जोम में भूला हुआ है, और कोई बात नहीं। लातों के भूत बातों से नहीं मानते।

मुखिया साहब ने सिर झुकाकर कहा-हुजूर, अब माफी दी जाय।

दारोगाजी की त्योंरियाँ चढ़ गर्यीं और झुंझलाकर बोले-अरे हजूर के बच्चे, कुछ सठिया तो नहीं गया है। अगर इसी तरह माफी देनी होती तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि यहाँ तक दौड़ा आता। न कोई मामला, न ममाले की बात, बस माफी की रट लगा रक्खी है। मुझे ज्यादा फुरसत नहीं है। नमाज पढ़ता हूँ, तब तक तुम अपना सलाह मशविरा कर लो और मुझे हँसी-खुशी रुखसत करो वर्ना गौसखों को जानते हो, उसका मारा पानी भी नहीं माँगता!

दारोगा तकवे व तहारत के बड़े पाबन्द थे पाँचों वक्त की नमाज पढ़ते और तीसों रोजे रखते, ईदों में धूमधाम से कुर्बानियाँ होतीं। इससे अच्छा आचरण किसी आदमी में और क्या हो सकता है!

४

मुखिया साहब दबे पाँव गुपचुप ढंग से गौरा के पास और बोले-यह दारोगा बड़ा काफिर है, पचास से नीचे तो बात ही नहीं करता। अब्बल दर्जे का थानेदार है। मैंने बहुत कहा, हुजूर, गरीब आदमी है, घर में

कुछ सुभीता नहीं, मगर वह एक नहीं सुनता।

गौरा ने घूँघट में मुँह छिपाकर कहा-दादा, उनकी जान बच जाए, कोई तरह की आंच न आने पाए, रुपये-पैसे की कौन बात है, इसी दिन के लिए तो कमाया जाता है।

गोपाल खाट पर पड़ा सब बातें सुन रहा था। अब उससे न रहा गया। लकड़ी गॉठ ही पर टूटती है। जो गुनाह किया नहीं गया वह दबता है मगर कुचला नहीं जा सकता। वह जोश से उठ बैठा और बोला-पचास रुपये की कौन कहे, मैं पचास कौड़ियाँ भी न दूँगा। कोई गदर है, मैंने कसूर क्या किया है?

मुखिया का चेहरा फक हो गया। बड़प्पन के स्वर में बोले-धीरे बोलो, कहीं सुन ले तो गजब हो जाए।

लेकिन गोपाल बिफरा हुआ था, अकड़कर बोला-मैं एक कौड़ी भी न दूँगा। देखें कौन मेरे फाँसी लगा देता है।

गौरा ने बहलाने के स्वर में कहा-अच्छा, जब मैं तुमसे रुपये माँगूँ तो मत देना। यह कहकर गौरा ने, जो इस वक्त लौड़ी के बजाय रानी बनी हुई थी, छप्पर के एक कोने में से रुपयों की एक पोटली निकाली और मुखिया के हाथ में रख दी। गोपाल दाँत पीसकर उठा, लेकिन मुखिया साहब फौरन से पहले सरक गये। दारोगा जी ने गोपाल की बातें सुन ली थीं और दुआ कर रहे थे कि ऐ खुदा, इस मरदूद के दिल को पलट। इतने में मुखिया ने बाहर आकर पचीस रुपये की पोटली दिखाई। पचीस रास्ते ही में गायब हो गये थे। दारोगा जी ने खुदा का शुक्र किया। दुआ सुनी गयी। रुपया जेब में रक्खा और रसद पहुँचाने वालों की भीड़ को रोते और बिलबिलाते छोड़कर हवा हो गये। मोदी का गला घुंट गया। कसाई के गले पर छुरी फिर गयी। तेली पिस गया। मुखिया साहब ने गोपाल की गर्दन पर एहसान रक्खा गोया रसद के दाम गिरह से दिए। गाँव में सुखरू हो गया, प्रतिष्ठा बढ़ गई। इधर गोपाल ने गौरा की खूब खबर ली। गाँव में रात भर यही चर्चा रही। गोपाल बहुत बचा और इसका सेहरा मुखिया के सिर था। बड़ी विपत्ति आई थी। वह टल गयी। पितरों ने, दीवान हरदौल ने, नीम तलेवाली देवी ने, तालाब के किनारे वाली सती ने, गोपाल की रक्षा की। यह उन्हीं का प्रताप था। देवी की पूजा होनी जरूरी थी। सत्यनारायण की कथा भी लाजिमी हो गयी।

५

फिर सुबह हुई लेकिन गोपाल के दरवाजे पर आज लाल पगड़ियों के बजाय लाल साड़ियों का जमघट था। गौरा आज देवी की पूजा करने जाती थी और गाँव की औरतें उसका साथ देने आई थीं। उसका घर सौँधी-सौँधी मिट्टी की खुशबू से महक रहा था जो खस और गुलाब से कम मोहक न थी। औरतें सुहाने गीत गा रही थीं। बच्चे खुश हो-होकर दौड़ते थे। देवी के चबूतरे पर उसने मिट्टी का हाथी चढ़ाया। सती की माँग में सेंदुर डाला। दीवान साहब को बताशे और हलुआ खिलाया। हनुमान जी को लड्डू से ज्यादा प्रेम है, उन्हें लड्डू चढ़ाये तब गाती बजाती घर को आयी और सत्यनारायण की कथा की तैयारियाँ होने लगीं। मालिन फूल के हार, केले की शाखें और बन्दनवारें लायीं। कुम्हार नये-नये दिये और हॉडियाँ दे गया। बारी हरे ढाक के पत्तल और दोने रख गया। कहार ने आकर मटकों में पानी भरा। बढ़ई ने आकर गोपाल और गौरा के लिए दो नयी-नयी पीढ़ियाँ बनायीं। नाइन ने आँगन लीपा और चौक बनायी। दरवाजे पर बन्दनवारें बाँध गयीं। आँगन में केले की शाखें गड़ गयीं। पण्डित जी के लिए सिंहासन सज गया। आपस के कामों की व्यवस्था खुद-ब-खुद अपने निश्चित दायरे पर चलने लगी। यही व्यवस्था संस्कृति है जिसने देहात की जिन्दगी को आडम्बर की ओर से उदासीन बना रक्खा है। लेकिन अफसोस है कि अब ऊँच-नीच की बेमतलब और बेहूदा कैदों ने इन आपसी कर्तव्यों को सौहार्द्र सहयोग के पद से हटा कर उन पर अपमान और नीचता का दागालगा दिया है।

शाम हुई। पण्डित मोटेरामजी ने कन्धे पर झोली डाली, हाथ में शंख लिया और खड़ाऊँ पर खटपट करते गोपाल के घर आ पहुँचे। आँगन में टाट बिछा हुआ था। गाँव के प्रतिष्ठित लोग कथा सुनने के लिए आ बैठे। घण्टी बजी, शंख फुँका गया और कथा शुरू हुई। गोपाल भी गाढ़े की चादर ओढ़े एक कोने में फुँका गया और कथा शुरू हुई। गोजाल भी गाढ़े की चादर ओढ़े एक कोने में दीवार के सहारे बैठा हुआ था। मुखिया, नम्बरदार और पटवारी ने मारे हमदर्दी के उससे कहा—सत्यनारायण की महिमा थी कि तुम पर कोई आंच न आई।

गोपाल ने अँगड़ाई लेकर कहा—सत्यनारायण की महिमा नहीं, यह अंधेर है।

--जमाना, जुलाई १९१३

सुबह का वक्त था। ठाकुर दर्शनसिंह के घर में एक हंगामा बरपा था। आज रात को चन्द्रग्रहण होने वाला था। ठाकुर साहब अपनी बूढ़ी ठकुराइन के साथ गंगाजी जाते थे इसलिए सारा घर उनकी पुरशोर तैयारी में लगा हुआ था। एक बहू उनका फटा हुआ कुर्ता टाँक रही थी, दूसरी बहू उनकी पगड़ी लिए सोचती थी, कि कैसे इसकी मरम्मत करूँ दोनो लड़कियाँ नाश्ता तैयार करने में तल्लीन थीं। जो ज्यादा दिलचस्प काम था और बच्चों ने अपनी आदत के अनुसार एक कुहराम मचा रक्खा था क्योंकि हर एक आने-जाने के मौके पर उनका रोने का जोश उमंग पर होत था। जाने के वक्त साथ जाने के लिए रोते, आने के वक्त इसलिए रोते किशरीनी का बॉट-बखरा मनोनुकूल नहीं हुआ। बूढ़ी ठकुराइन बच्चों को फुसलाती थी और बीच-बीच में अपनी बहुओं को समझाती थी-देखो खबरदार ! जब तक उग्रह न हो जाय, घर से बाहर न निकलना। हँसिया, छुरी, कुल्हाड़ी, इन्हें हाथ से मत छुना। समझाये देती हूँ, मानना चाहे न मानना। तुम्हें मेरी बात की परवाह है। मुँह में पानी की बूंदें न पड़ें। नारायण के घर विपत पड़ी है। जो साधु—भिखारी दरवाजे पर आ जाय उसे फेरना मत। बहुओं ने सुना और नहीं सुना। वे मना रहीं थीं कि किसी तरह यह यहाँ से टलें। फागुन का महीना है, गाने को तरस गये। आज खूब गाना-बजाना होगा।

ठाकुर साहब थे तो बूढ़े, लेकिन बूढ़ापे का असर दिल तक नहीं पहुँचा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि कोई ग्रहण गंगा-स्नान के बगैर नहीं छूटा। उनका ज्ञान आश्चर्य जनक था। सिर्फ पत्रों को देखकर महीनों पहले सूर्य-ग्रहण और दूसरे पर्वों के दिन बता देते थे। इसलिए गाँववालों की निगाह में उनकी इज्जत अगर पण्डितों से ज्यादा न थी तो कम भी न थी। जवानी में कुछ दिनों फौज में नौकरी भी की थी। उसकी गर्मी अब तक बाकी थी, मजाल न थी कि कोई उनकी तरफ सीधी आँख से देख सके। सम्मन लानेवाले एक चपरासी को ऐसी व्यावहारिक चेतावनी दी थी जिसका उदाहरण आस-पास के दस-पाँच गाँव में भी नहीं मिल सकता। हिम्मत और हौसले के कामों में अब भी आगे-आगे रहते थे किसी काम को मुश्किल बता देना, उनकी हिम्मत को प्रेरित कर देना था। जहाँ सबकी जबानें बन्द हो जाएँ, वहाँ वे शेरों की तरह गरजते थे। जब कभी गाँव में दरोगा जी तशरीफ लाते तो ठाकुर साहब ही का दिल-गुर्दा था कि उनसे आँखें मिलाकर आमने-सामने बात कर सकें। ज्ञान की बातों को लेकर छिड़नेवाली बहसों के मैदान में भी उनके कारनामे कुछ कम शानदार न थे। झगड़ा पण्डित हमेशा उनसे मुँह छिपाया करते। गरज, ठाकुर साहब का स्वभावगत गर्व और आत्म-विश्वास उन्हें हर बरात में दूल्हा बनने पर मजबूर कर देता था। हाँ, कमजोरी इतनी थी कि अपना आल्हा भी आप ही गा लेते और मजे ले-लेकर क्योंकि रचना को रचनाकार ही खूब बयान करता है!

२

जब दोपहर होते-होते ठाकुराइन गाँव से चले तो सैंकड़ों आदमी उनके साथ थे और पक्की सड़क पर पहुँचे, तो यात्रियों का ऐसा ताँता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाजार है। ऐसे-ऐसे बुढ़े लाठियाँ टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी। अन्धे दूसरों की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाये आते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर पर कपड़ों की पोटली, किसी के कन्धे पर लोटा-डोर, किसी के कन्धे पर काँवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चीथड़े लपेट लिये थे, जूते कहाँ से लायें। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था। सबके चेहरे खिले हुए, हँसते-हँसते बातें करते चले जा रहे थे कुछ औरतें गा रही थी:

चाँद सूरज दूनो लोक के मालिक
एक दिना उनहूँ पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती

ऐसा मालूम होता था, यह आदमियों की एक नदी थी, जो सैंकड़ों छोटे-छोटे नालों और धारों को लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए जा रही थी।

जब यह लोग गंगा के किनारे पहुँचे तो तीसरे पहर का वक्त था लेकिन मीलों तक कहीं तिल रखने की जगह न थी। इस शानदार दृश्य से दिलों पर ऐसा रोब और भक्ति का ऐसा भाव छा जाता था कि

बरबस 'गंगा माता की जय' की सदायें बुलन्द हो जाती थीं। लोगों के विश्वास उसी नदी की तरह उमड़े हुए थे और वह नदी! वह लहराता हुआ नीला मैदान! वह प्यासों की प्यास बुझानेवाली! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी! वह पवित्रता का स्रोत! वह मुट्ठी भर खाक को आश्रय देनेवाली गंगा हँसती-मुस्कराती थी और उछलती थी। क्या इसलिए कि आज वह अपनी चौतरफा इज्जत पर फूली न समाती थी या इसलिए कि वह उछल-उछलकर अपने प्रेमियों के गले मिलना चाहती थी जो उसके दर्शनों के लिए मंजिल तय करके आये थे! और उसके परिधान की प्रशंसा किस जबान से हो, जिस सूरज से चमकते हुए तारे टँके थे और जिसके किनारों को उसकी किरणों ने रंग-बिरंगे, सुन्दर और गतिशील फूलों से सजाया था।

अभी ग्रहण लगने में धण्टे की देर थी। लोग इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं मदारियों के खेल थे, कहीं चूरनवाले की लच्छेदार बातों के चमत्कार। कुछ लोग मेढ़ों की कुश्ती देखने के लिए जमा थे। ठाकुर साहब भी अपने कुछ भक्तों के साथ सैर को निकले। उनकी हिम्मत ने गवारा न किया कि इन बाजारु दिलचस्पियों में शरीक हों। यकायक उन्हें एक बड़ा-सा शामियाना तना हुआ नजर आया, जहाँ ज्यादातर पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ थी। ठाकुर साहब ने अपने साथियों को एक किनारे खड़ा कर दिया और खुद गर्व से ताकते हुए फर्श पर जा बैठे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यहाँ उन पर देहातियों की ईर्ष्या--दृष्टि पड़ेगी और सम्भव है कुछ ऐसी बारीक बातें भी मालूम हो जायँ तो उनके भक्तों को उनकी सर्वज्ञता का विश्वास दिलाने में काम दे सकें।

यह एक नैतिक अनुष्ठान था। दो-ढाई हजार आदमी बैठे हुए एक मधुरभाषी वक्ता का भाषण सुन रहे थे। फैशनेबुल लोग ज्यादातर अगली पंक्ति में बैठे हुए थे जिन्हें कनबतियों का इससे अच्छा मौका नहीं मिल सकता था। कितने ही अच्छे कपड़े पहने हुए लोग इसलिए दुखी नजर आते थे कि उनकी बगल में निम्न श्रेणी के लोग बैठे हुए थे। भाषण दिलचस्त मालूम पड़ता था। वजन ज्यादा था और चटखारे कम, इसलिए तालियाँ नहीं बजती थी।

३

वक्ता ने अपने भाषण में कहा—

मेरे प्यारे दोस्तो, यह हमारा और आपका कर्तव्य है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण, ज्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज्यादा शुभ और कोई कर्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यंत करुण है। मगर विश्वास मानिये यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का जिम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है? अब इसके सिवा और कोई इलाज नहीं है कि हम उस घृणा और उपेक्षा को, जो उनकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है, धोयें और खूब मलकर धोयें। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हजार वर्षों से जमी हुई है, वह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन लोगों की छाया से हम बचते आये हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी जलील समझ रक्खा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही उनसे शादी के रिश्ते जोड़ें या उनके साथ बैठकर खायें-पियें। मगर क्या यह भी मुमकिन नहीं है कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आयें? क्या यह सचमुच असम्भव बात है? आपने कभी ईसाई मिशनरियों को देखा है? आह, जब मैं एक उच्चकोटि का सुन्दर, सुकुमार, गौरवर्ण लेडी को अपनी गोद में एक काला-कलूटा बच्चा लिये हुए देखता हूँ जिसके बदन पर फोड़े हैं, खून है और गन्दगी है—वह सुन्दरी उस बच्चे को चूमती है, प्यार करती है, छाती से लगाती है—तो मेरा जी चाहता है उस देवी के कदमों पर सिर रख दूँ। अपनी नीचता, अपना कमीनापन, अपनी झूठी बड़ाई, अपने हृदय की संकीर्णता मुझे कभी इतनी सफाई से नजर नहीं आती। इन देवियों के लिए जिन्दगी में क्या-क्या संपदाएँ, नहीं थी, खुशियाँ बाँहें पसारे हुए उनके इन्तजार में खड़ी थी। उनके लिए दौलत की सब सुख-सुविधाएँ थीं। प्रेम के आकर्षण थे। अपने आत्मीय और स्वजनों की सहानुभूतियाँ थीं और अपनी प्यारी मातृभूमि का आकर्षण था। लेकिन इन देवियों ने उन तमाम नेमतों, उन सब सांसारिक संपदाओं को सेवा, सच्ची निस्वार्थ सेवा पर बलिदान कर दिया है ! वे ऐसी बड़ी कुर्बानियाँ कर सकती हैं, तो हम क्या इतना भी नहीं कर सकते कि अपने अछूत भाइयों से हमदर्दी का सलूक कर सकें? क्या हम सचमुच ऐसे पस्त-हिम्मत, ऐसे बोदे, ऐसे बेरहम हैं? इसे खूब समझ लीजिए कि आप उनके साथ कोई रियायत, कोई मेहरबानी नहीं कर रहे हैं। यह उन पर कोई एहसान नहीं है। यह आप ही के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल है। इसलिए मेरे भाइयों और दोस्तो, आइये इस मौके पर शाम के वक्त पवित्र गंगा नदी के किनारे काशी के

पवित्र स्थान में हम मजबूत दिल से प्रतिज्ञा करें कि आज से हम अछूतों के साथ भाई-चारे का सलूक करेंगे, उनके तीज-त्योहारों में शरीक होंगे और अपने त्योहारों में उन्हें बुलायेंगे। उनके गले मिलेंगे और उन्हें अपने गले लगायेंगे! उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों में दर्दमन्द होंगे, और चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय, चाहे ताना-तिशनों और जिल्लत का सामना ही क्यों न करना पड़े, हम इस प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे। आप में सैंकड़ों जोशीले नौजवान हैं जो बात के धनी और इरादे के मजबूत हैं। कौन यह प्रतिज्ञा करता है? कौन अपने नैतिक साहस का परिचय देता है? वह अपनी जगह पर खड़ा हो जाय और ललकारकर कहे कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक इस पर दृढ़ता से कायम रहूँगा।

४

सूरज गंगा की गोद में जा बैठा था और माँ प्रेम और गर्व से मतवाली जोश में उमड़ी हुई रंग केसर को शर्माती और चमक में सोने की लजाती थी। चार तरफ एक रोबीली खामोशी छायी थी उस सन्नाटे में संन्यासी की गर्मी और जोश से भरी हुई बातें गंगा की लहरों और गगनचुम्बी मंदिरों में समा गयीं। गंगा एक गम्भीर माँ की निराशा के साथ हँसी और देवताओं ने अफसोस से सिर झुका लिया, मगर मुँह से कुछ न बोले।

संन्यासी की जोशीली पुकार फिजां में जाकर गायब हो गई, मगर उस मजमे में किसी आदमी के दिल तक न पहुँची। वहाँ कौम पर जान देने वालों की कमी न थी: स्टेजों पर कौमी तमाशे खेलनेवाले कालेजों के होनहार नौजवान, कौम के नाम पर मिटनेवाले पत्रकार, कौमी संस्थाओं के मेम्बर, सेक्रेटरी और प्रेसिडेंट, राम और कृष्ण के सामने सिर झुकानेवाले सेठ और साहूकार, कौमी कालिजों के ऊँचे हौसलोंवाले प्रोफेसर और अखबारों में कौमी तरक्कियों की खबरें पढ़कर खुश होने वाले दफ्तरों के कर्मचारी हजारों की तादाद में मौजूद थे। आँखों पर सुनहरी ऐनकें लगाये, मोटे-मोटे वकीलों का एक पूरी फौज जमा थी। मगर संन्यासी के उस गर्म भाषण से एक दिल भी न पिघला क्योंकि वह पत्थर के दिल थे जिसमें दर्द और घुलावट न थी, जिसमें सदिच्छा थी मगर कार्य-शक्ति न थी, जिसमें बच्चों की सी इच्छा थी मर्दों का-सा इरादा न था।

सारी मजलिस पर सन्नाटा छाया हुआ था। हर आदमी सिर झुकाये फिक्र में डूबा हुआ नजर आता था। शर्मिंदगी किसी को सर उठाने न देती थी और आँखें झेंप में मारे जमीन में गड़ी हुई थी। यह वही सर हैं जो कौमी चर्चों पर उछल पड़ते थे, यह वही आँखें हैं जो किसी वक्त राष्ट्रीय गौरव की लाली से भर जाती थी। मगर कथनी और करनी में आदि और अन्त का अन्तर है। एक व्यक्ति को भी खड़े होने का साहस न हुआ। कैंची की तरह चलनेवाली जबान भी ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भय से बन्द हो गयीं।

5

ठाकुर दर्शनसिंह अपनी जगी पर बैठे हुए इस दृश्य को बहुत गौर और दिलचस्पी से देख रहे थे। वह अपने मार्मिक विश्वासों में चाहे कट्टर हो या न हों, लेकिन सांस्कृतिक मामलों में वे कभी अगुवाई करने के दोषी नहीं हुए थे। इस पेचीदा और डरावने रास्ते में उन्हें अपनी बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं होता था। यहाँ तर्क और युक्ति को भी उनसे हार माननी पड़ती थी। इस मैदान में वह अपने घर की स्त्रियों की इच्छा पूरी करने ही अपना कर्तव्य समझते थे और चाहे उन्हें खुद किसी मामले में कुछ एतराज भी हो लेकिन यह औरतों का मामला था और इसमें वे हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे परिवार की व्यवस्था में हलचल और गड़बड़ी पैदा हो जाने की जबरदस्त आशंका रहती थी। अगर किसी वक्त उनके कुछ जोशीले नौजवान दोस्त इस कमजोरी पर उन्हें आड़े हाथों लेते तो वे बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा करते थे—भाई, यह औरतों के मामले हैं, उनका जैसा दिल चाहता है, करती हैं, मैं बोलनेवाला कौन हूँ। गरज यहाँ उनकी फौजी गर्म-मिजाजी उनका साथ छोड़ देती थी। यह उनके लिए तिलिस्म की घाटी थी जहाँ होश-हवास बिगड़ जाते थे और अन्धे अनुकरण का पैर बँधी हुई गर्दन पर सवार हो जाता था।

लेकिन यह ललकार सुनकर वे अपने को काबू में न रख सके। यही वह मौका था जब उनकी हिम्मतें आसमान पर जा पहुँचती थीं। जिस बीड़े को कोई न उठाये उसे उठाना उनका काम था। वर्जनाओं से उनको आत्मिक प्रेम था। ऐसे मौके पर वे नतीजे और मसलहत से बगावत कर जाते थे और उनके इस हौसले में यश के लोभ को उतना दखल नहीं था जितना उनके नैसर्गिक स्वाभाव का। वर्ना यह असम्भव था कि एक ऐसे जलसे में जहाँ ज्ञान और सभ्यता की धूम-धाम थी, जहाँ सोने की ऐनकों से रोशनी और तरह-तरह के परिधानों से दीप्त चिन्तन की किरणें निकल रही थीं, जहाँ कपड़े-लते की नफासत से रोब और मोटापे से

प्रतिष्ठा की झलक आती थी, वहाँ एक देहाती किसान को जबान खोलने का हौसला होता। ठाकुर ने इस दृश्य को गौर और दिलचस्पी से देखा। उसके पहलू में गुदगुदी-सी हुई। जिन्दादिली का जोश रगों में दौड़ा। वह अपनी जगह से उठा और मर्दाना लहजे में ललकारकर बोला—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक उस पर कायम रहूँगा।

६

इतना सुनना था कि दो हजार आँखें अचम्भे से उसकी तरफ ताकने लगीं। सुभानअल्लाह, क्या हुलिया थी—गाढ़े की ढीली मिर्जई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सर पर एक भारी-सा उलझा हुआ साफा, कन्धे पर चुनौटी और तम्बाकू का वजनी बटुआ, मगर चेहरे से गम्भीरता और दृढ़ता स्पष्ट थी। गर्व आँखों के तंग घेरे से बाहर निकला पड़ता था। उसके दिल में अब इस शानदार मजमे की इज्जत बाकी न रही थी। वह पुराने वक्तों का आदमी था जो अगर पत्थर को पूजता था तो उसी पत्थर से डरता भी था, जिसके लिए एकादशी का व्रत केवल स्वास्थ्य-रक्षा की एक युक्ति और गंगा केवल स्वास्थ्यप्रद पानी की एक धारा न थी। उसके विश्वासों में जागृति न हो लेकिन दुविधा नहीं थी। यानी कि उसकी कथनी और करनी में अन्तर न था और न उसकी बुनियाद कुछ अनुकरण और देखादेखी पर थी मगर अधिकांशतः भय पर, जो ज्ञान के आलोक के बाद वृत्तियों के संस्कार की सबसे बड़ी शक्ति है। गेरुए बाने का आदर और भक्ति करना इसके धर्म और विश्वास का एक अंग था। संन्यास में उसकी आत्मा को अपना अनुचर बनाने की एक सजीव शक्ति छिपी हुई थी और उस ताकत ने अपना असर दिखाया। लेकिन मजमे की इस हैरत ने बहुत जल्द मजाक की सूरत अख्तियार की। मतलबभरी निगाहें आपस में कहने लगीं—आखिर गंवार ही तो ठहरा! देहाती है, ऐसे भाषण कभी काहे को सुने होंगे, बस उबल पड़ा। उथले गड़ढे में इतना पानी भी न समा सका! कौन नहीं जानता कि ऐसे भाषणों का उद्देश्य मनोरंजन होता है! दस आदमी आये, इकट्ठे बैठ, कुछ सुना, कुछ गप-शप मारी और अपने-अपने घर लौटे, न यह कि कौल-करार करने बैठे, अमल करने के लिए कसमें खाये!

मगर निराश संन्यासी सो रहा था—अफसोस, जिस मुल्क की रोशनी में इतना अंधेरा है, वहाँ कभी रोशनी का उदय होना मुश्किल नजर आता है। इस रोशनी पर, इस अंधेरी, मुर्दा और बेजान रोशनी पर मैं जहालत को, अज्ञान को ज्यादा ऊँची जगह देता हूँ। अज्ञान में सफाई है और हिम्मत है, उसके दिल और जबान में पर्दा नहीं होता, न कथनी और करनी में विरोध। क्या यह अफसोस की बात नहीं है कि ज्ञान और अज्ञान के आगे सिर झुकाये? इस सारे मजमें मैं सिर्फ एक आदमी है, जिसके पहलू में मर्दों का दिल है और गो उसे बहुत सजग होने का दावा नहीं लेकिन मैं उसके अज्ञान पर ऐसी हजारों जागृतियों को कुर्बान कर सकता हूँ। तब वह प्लेटफार्म से नीचे उतरे और दर्शनसिंह को गले से लगाकर कहा—ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर कायम रखे।

--जमाना, अगस्त-सितम्बर १९१३

आखिरी मंजिल

आह ? आज तीन साल गुजर गए, यही मकान है, यही बाग है, यही गंगा का किनारा, यही संगमरमर का हौज। यही मैं हूँ और यही दरोदीवार। मगर इन चीजों से दिल पर कोई असर नहीं होता। वह नशा जो गंगा की सुहानी और हवा के दिलकश झोंकों से दिल पर छा जाता था। उस नशे के लिए अब जी तरस-जरस के रह जाता है। अब वह दिल नहीं रहा। वह युवती जो जिंदगी का सहारा थी अब इस दुनिया में नहीं है।

मोहिनी ने बड़ा आकर्षक रूप पाया था। उसके सौंदर्य में एक आश्चर्यजनक बात थी। उसे प्यार करना मुश्किल था, वह पूजने के योग्य थी। उसके चेहरे पर हमेशा एक बड़ी लुभावनी आत्मिकता की दीप्ति रहती थी। उसकी आंखें जिनमें लाज और गंभीरता और पवित्रता का नशा था, प्रेम का स्रोत थी। उसकी एक-एक चितवन, एक-एक क्रिया; एक-एक बात उसके हृदय की पवित्रता और सच्चाई का असर दिल पर पैदा करती थी। जब वह अपनी शर्मीली आंखों से मेरी ओर ताकती तो उसका आकर्षण और उसकी गर्मी मेरे दिल में

एक ज्वारभाटा सा पैदा कर देती थी। उसकी आंखों से आत्मिक भावों की किरनें निकलती थीं मगर उसके होठों प्रेम की बानी से अपरिचित थे। उसने कभी इशारे से भी उस अथाह प्रेम को व्यक्त नहीं किया जिसकी लहरों में वह खुद तिनके की तरह बही जाती थी। उसके प्रेम की कोई सीमा न थी। वह प्रेम जिसका लक्ष्य मिलन है, प्रेम नहीं वासना है। मोहिनी का प्रेम वह प्रेम था जो मिलने में भी वियोग के मजे लेता है। मुझे खूब याद है एक बार जब उसी हौज के किनारे चाँदनी रात में मेरी प्रेम – भरी बातों से विभोर होकर उसने कहा था-आह ! वह आवाज अभी मेरे हृदय पर अंकित है, 'मिलन प्रेम का आदि है अंत नहीं।' प्रेम की समस्या पर इससे ज्यादा शनदार, इससे ज्यादा ऊंचा ख्याल कभी मेरी नजर में नहीं गुजरा। वह प्रेम जो चितावनो से पैदा होता है और वियोग में भी हरा-भरा रहता है, वह वासना के एक झोंके को भी बदोशत नहीं कर सकता। संभव है कि यह मेरी आत्मस्तुति हो मगर वह प्रेम, जो मेरी कमजोरियों के बावजूद मोहिनी को मुझसे था उसका एक कतरा भी मुझे बेसुध करने के लिए काफी था। मेरा हृदय इतना विशाल ही न था, मुझे आश्चर्य होता था कि मुझमें वह कौन-सा गुण था जिसने मोहिनी को मेरे प्रति प्रेम से विह्वल कर दिया था। सौन्दर्य, आचरण की पवित्रता, मर्दानगी का जौहर यही वह गुण हैं जिन पर मुहब्बत निछावर होती है। मगर मैं इनमें से एक पर भी गर्व नहीं कर सकता था। शायद मेरी कमजोरियाँ ही उस प्रेम की तड़प का कारण थीं।

मोहिनी में वह अदायें न थीं जिन पर रंगीली तबीयतें फिदा हो जाया करती हैं। तिरछी चितवन, रूप-गर्व की मस्ती भरी हुई आंखें, दिल को मोह लेने वाली मुस्कराहट, चंचल वाणी, उनमें से कोई चीज यहाँ न थी! मगर जिस तरह चाँद की मद्धिम सुहानी रोशनी में कभी-कभी फुहारें पड़ने लगती हैं, उसी तरह निश्छल प्रेम में उसके चेहरे पर एक मुस्कराहट कौंध जाती और आंखें नम हो जातीं। यह अदा न थी, सच्चे भावों की तस्वीर थी जो मेरे हृदय में पवित्र प्रेम की खलबली पैदा कर देती थी।

२

शाम का वक्त था, दिन और रात गले मिल रहे थे। आसमान पर मतवाली घटायें छाई हुई थीं और मैं मोहिनी के साथ उसी हौज के किनारे बैठा हुआ था। ठण्डी-ठण्डी बयार और मस्त घटायें हृदय के किसी कोने में सोते हुए प्रेम के भाव को जगा दिया करती हैं। वह मतवालापन जो उस वक्त हमारे दिलों पर छाया हुआ था उस पर मैं हजारों होशमंदियों को कुर्बान कर सकता हूँ। ऐसा मालूम होता था कि उस मस्ती के आलम में हमारे दिल बेताब होकर आंखों से टपक पड़ेंगे। आज मोहिनी की जबान भी संयम की बेड़ियों से मुक्त हो गई थी और उसकी प्रेम में डूबी हुई बातों से मेरी आत्मा को जीवन मिल रहा था।

एकाएक मोहिनी ने चौंककर गंगा की तरफ देखा। हमारे दिलों की तरह उस वक्त गंगा भी उमड़ी हुई थी।

पानी की उस उद्विग्न उठती-गिरती सतह पर एक दिया बहता हुआ चला जाता था और और उसका चमकता हुआ अक्स थिरकता और नाचता एक पुच्छल तारे की तरह पानी को आलोकित कर रहा था। आह! उस नन्ही-सी जान की क्या बिसात थी! कागज के चंद पुर्जे, बांस की चंद तीलियाँ, मिट्टी का एक दिया कि जैसे किसी की अतृप्त लालसाओं की समाधि थी जिस पर किसी दुख बँटानेवाले ने तरस खाकर एक दिया जला दिया था मगर वह नन्हीं-सी जान जिसके अस्तित्व का कोई ठिकाना न था, उस अथाह सागर में उछलती हुई लहरों से टकराती, भँवरों से हिलकोरें खाती, शोर करती हुई लहरों को रौंदती चली जाती थी। शायद जल देवियों ने उसकी निर्बलता पर तरस खाकर उसे अपने आंचलों में छुपा लिया था।

जब तक वह दिया झिलमिलाता और टिमटिमाता, हमदर्द लहरों से झकोरे लेता दिखाई दिया। मोहिनी टकटकी लगाये खोयी-सी उसकी तरफ ताकती रही। जब वह आंख से ओझल हो गया तो वह बेचैनी से उठ खड़ी हुई और बोली- मैं किनारे पर जाकर उस दिये को देखूँगी।

जिस तरह हलवाई की मनभावन पुकार सुनकर बच्चा घर से बाहर निकल पड़ता है और चाव-भरी आंखों से देखता और अधीर आवाजों से पुकारता उस नेमत के थाल की तरफ दौड़ता है, उसी जोश और चाव के साथ मोहिनी नदी के किनारे चली।

बाग से नदी तक सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। हम दोनों तेजी के साथ नीचे उतरे और किनारे पहुँचते ही मोहिनी ने खुशी के मारे उछलकर जोर से कहा-अभी है! अभी है! देखो वह निकल गया!

वह बच्चों का-सा उत्साह और उद्विग्न अधीरता जो मोहिनी के चेहरे पर उस समय थी, मुझे कभी न भूलेगी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ, उस दिये से ऐसा हार्दिक संबंध, ऐसी विह्वलता क्यों? मुझ जैसा कवित्वशून्य व्यक्ति उस पहली को जरा भी न बूझ सका।

मेरे हृदय में आशंकाएं पैदा हुईं। अंधेरी रात है, घटायें उमड़ी हुईं, नदी बाढ़ पर, हवा तेज, यहाँ इस वक्त ठहरना ठीक नहीं। मगर मोहिनी! वह चाव-भरे भोलेपन की तस्वीर, उसी दिये की तरफ आँखें लगाये चुपचाप खड़ी थी और वह उदास दिया ज्यों हिलता मचलता चला जाता था, न जाने कहाँ किस देश!

मगर थोड़ी देर के बाद वह दिया आँखों से ओझल हो गया। मोहिनी ने निराश स्वर में पूछा-गया! बुझ गया होगा?

और इसके पहले कि मैं जवाब दूँ वह उस डोंगी के पास चली गई, जिस पर बैठकर हम कभी-कभी नदी की सैरें किया करते थे, और प्यार से मेरे गले लिपटकर बोली-मैं उस दिये को देखने जाऊँगी कि वह कहाँ जा रहा है, किस देश को।

यह कहते-कहते मोहिनी ने नाव की रस्सी खोल ली। जिस तरह पेड़ों की डालियाँ तूफान के झोंकों से झंकोले खाती हैं उसी तरह यह डोंगी डौंवाडोल हो रही थी। नदी का वह डरावना विस्तार, लहरों की वह भयानक छल्लों, पानी की वह गरजती हुई आवाज, इस खौफनाक अंधेरे में इस डोंगी का बेड़ा क्योंकर पार होगा! मेरा दिल बैठ गया। क्या उस अभागे की तलाश में यह किशती भी डूबेगी! मगर मोहिनी का दिल उस वक्त उसके बस में न था। उसी दिये की तरह उसका हृदय भी भावनाओं की विराट, लहरों भरी, गरजती हुई नदी में बहा जा रहा था। मतवाली घटायें झुकती चली आती थीं कि जैसे नदी के गले मिलेंगी और वह काली नदी यों उठती थी कि जैसे बदलों को छू लेंगी। डर के मारे आँखें मुंदी जाती थीं। हम तेजी के साथ उछलते, कगारों के गिरने की आवाजें सुनते, काले-काले पेड़ों का झूमना देखते चले जाते थे। आबादी पीछे छूट गई, देवताओं को बस्ती से भी आगे निकल गये। एकाएक मोहिनी चौंककर उठ खड़ी हुई और बोली- अभी है! अभी है! देखो वह जा रहा है।

मैंने आंख उठाकर देखा, वह दिया ज्यों का त्यों हिलता-मचलता चला जाता था।

३

उस दिये को देखते हम बहुत दूर निकल गए। मोहिनी ने यह राग अलापना शुरू किया:
मैं साजन से मिलन चली

कैसा तड़पा देने वाला गीत था और कैसी दर्दभरी रसीली आवाज। प्रेम और आंसुओं में डूबी हुई। मोहक गीत में कल्पनाओं को जगाने की बड़ी शक्ति होती है। वह मनुष्य को भौतिक संसार से उठाकर कल्पनालोक में पहुँचा देता है। मेरे मन की आंखों में उस वक्त नदी की पुरशोर लहरें, नदी किनारे की झूमती हुई डालियाँ, सनसनाती हुई हवा सबने जैसे रूप धर लिया था और सब की सब तेजी से कदम उठाये चली जाती थीं, अपने साजन से मिलने के लिए। उत्कंठा और प्रेम से झूमती हुई ऐ युवती की धुंधली सपने-जैसी तस्वीर हवा में, लहरों में और पेड़ों के झुरमुट में चली जाती दिखाई देती और कहती थी- साजन से मिलने के लिए! इस गीत ने सारे दृश्य पर उत्कंठा का जादू फूंक दिया।

मैं साजन से मिलन चली

साजन बसत कौन सी नगरी में बौरी ना जानूँ

ना मोहे आस मिलन की उससे ऐसी प्रीत भली

मैं साजन से मिलन चली

मोहिनी खामोश हुई तो चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था और उस सन्नाटे में एक बहुत मद्धिम, रसीला स्वप्निल-स्वर क्षितिज के उस पार से या नदी के नीचे से या हवा के झोंकों के साथ आता हुआ मन के कानों को सुनाई देता था।

मैं साजन से मिलन चली

मैं इस गीत से इतना प्रभावित हुआ कि जरा देर के लिए मुझे खयाल न रहा कि कहाँ हूँ और कहाँ जा रहा हूँ। दिल और दिमाग में वही राग गूँज रहा था। अचानक मोहिनी ने कहा-उस दिये को देखो। मैंने दिये की तरफ देखा। उसकी रोशनी मंद हो गई थी और आयु की पूंजी खत्म हो चली थी। आखिर वह एक बार जरा भभका और बुझ गया। जिस तरह पानी की बूँद नदी में गिरकर गायब हो जाती है, उसी तरह अंधेरे के फैलाव में उस दिये की हस्ती गायब हो गई ! मोहिनी ने धीमे से कहा, अब नहीं दिखाई देता! बुझ

गया! यह कहकर उसने एक ठण्डी सांस ली। दर्द उमड़ आया। आँसुओं से गला फंस गया, जबान से सिर्फ इतना निकला, क्या यही उसकी आखिरी मंजिल थी? और आँखों से आँसू गिरने लगे।

मेरी आँखों के सामने से पर्दा-सा हट गया। मोहिनी की बेचैनी और उत्कंठा, अधीरता और उदासी का रहस्य समझ में आ गया और बरबस मेरी आँखों से भी आँसू की चंद बूंदें टपक पड़ीं। क्या उस शोर-भरे, खतरनाक, तूफानी सफर की यही आखिरी मंजिल थी?

दूसरे दिन मोहिनी उठी तो उसका चेहरा पीला था। उसे रात भर नींद नहीं आई थी। वह कवि स्वभाव की स्त्री थी। रात की इस घटना ने उसके दर्द-भरे भावुक हृदय पर बहुत असर पैदा किया था। हँसी उसके होंठों पर यूँ ही बहुत कम आती थी, हाँ चेहरा खिला रहता था आज से वह हँसमुखपन भी बिदा हो गया, हरदम चेहरे पर एक उदासी-सी छाया रहती और बातें ऐसी जिनसे हृदय छलनी होता था और रोना आता था। मैं उसके दिल को इन खयालों से दूर रखने के लिए कई बार हँसाने वाले किस्से लाया मगर उसने उन्हें खोलकर भी न देखा। हाँ, जब मैं घर पर न होता तो वह कवि की रचनाएं देखा करती मगर इसलिए नहीं कि उनके पढ़ने से कोई आनन्द मिलता था बल्कि इसलिए कि उसे रोने के लिए खयाल मिल जाता था और वह कविताएँ जो उस जमाने में उसने लिखीं दिल को पिघला देने वाले दर्द-भरे गीत हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो उन्हें पढ़कर अपने आँसू रोक लेगा। वह कभी-कभी अपनी कविताएँ मुझे सुनाती और जब मैं दर्द में डूबकर उनकी प्रशंसा करता तो मुझे उसकी आँखों में आत्मा के उल्लास का नशा दिखाई पड़ता। हँसी-दिल्लगी और रंगीनी मुमकिन है कुछ लोगों के दिलों पर असर पैदा कर सके मगर वह कौन-सा दिल है जो दर्द के भावों से पिघल न जाएगा।

एक रोज हम दोनों इसी बाग की सैर कर रहे थे। शाम का वक्त था और चैत का महीना। मोहिनी की तबियत आज खुश थी। बहुत दिनों के बाद आज उसके होंठों पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी थी। जब शाम हो गई और पूरनमासी का चाँद गंगा की गोद से निकलकर ऊपर उठा तो हम इसी हौज के किनारे बैठ गए। यह मौलसिरियों की कतार ओर यह हौज मोहिनी की यादगार हैं। चाँदनी में बिसात आयी और चौपड़ होने लगी। आज तबियत की ताजगी ने उसके रूप को चमका दिया था और उसकी मोहक चपलतायें मुझे मतवाला किये देती थीं। मैं कई बाजियाँ खेला और हर बार हारा। हारने में जो मजा था वह जीतने में कहाँ। हल्की-सी मस्ती में जो मजा है वह छकने और मतवाला होने में नहीं।

चाँदनी खूब छिटकी हुई थी। एकाएक मोहिनी ने गंगा की तरफ देखा और मुझसे बोली, वह उस पार कैसी रोशनी नजर आ रही है? मैंने भी निगाह दौड़ाई, चिता की आग जल रही थी लेकिन मैंने टालकर कहा-साँझी खाना पका रहे हैं।

मोहिनी को विश्वास नहीं हुआ। उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट दिखाई दी और आँखें नम हो गईं। ऐसे दुख देने वाले दृश्य उसके भावुक और दर्दमंद दिल पर वही असर करते थे जो लू की लपट फूलों के साथ करती है।

थोड़ी देर तक वह मौन, निश्चला बैठी रही फिर शोकभरे स्वर में बोली-‘अपनी आखिरी मंजिल पर पहुँच गया!’

-जमाना, अगस्त-सितम्बर १९११

आल्हा का नाम किसने नहीं सुना। पुराने जमाने के चन्देल राजपूतों में वीरता और जान पर खेलकर स्वामी की सेवा करने के लिए किसी राजा महाराजा को भी यह अमर कीर्ति नहीं मिली। राजपूतों के नैतिक नियमों में केवल वीरता ही नहीं थी बल्कि अपने स्वामी और अपने राजा के लिए जान देना भी उसका एक अंग था। आल्हा और ऊदल की जिन्दगी इसकी सबसे अच्छी मिसाल है। सच्चा राजपूत क्या होता था और उसे क्या होना चाहिये इसे लिस खूबसूरती से इन दोनों भाइयों ने दिखा दिया है, उसकी मिसाल हिन्दोस्तान के किसी दूसरे हिस्से में मुश्किल से मिल सकेगी। आल्हा और ऊदल के मार्क और उसको कारनामे एक चन्देली कवि ने शायद उन्हीं के जमाने में गाये, और उसको इस सूबे में जो लोकप्रियता प्राप्त है वह शायद रामायण को भी न हो। यह कविता आल्हा ही के नाम से प्रसिद्ध है और आठ-नौ शताब्दियाँ गुजर जाने के बावजूद उसकी दिलचस्पी और सर्वप्रियता में अन्तर नहीं आया। आल्हा गाने का इस प्रदेश में बड़ा रिवाज है। देहात में लोग हजारों की संख्या में आल्हा सुनने के लिए जमा होते हैं। शहरों में भी कभी-कभी यह मण्डलियाँ दिखाई दे जाती हैं। बड़े लोगों की अपेक्षा सर्वसाधारण में यह किस्सा अधिक लोकप्रिय है। किसी मजलिस में जाइए हजारों आदमी जमीन के फर्श पर बैठे हुए हैं, सारी महाफिल जैसे बेसुध हो रही है और आल्हा गाने वाला किसी मोढ़े पर बैठा हुआ आपनी अलाप सुना रहा है। उसकी आवज आवश्यकतानुसार कभी ऊँची हो जाती है और कभी मद्धिम, मगर जब वह किसी लड़ाई और उसकी तैयारियों का जिक्र करने लगता है तो शब्दों का प्रवाह, उसके हाथों और भावों के इशारे, ढोल की मर्दाना लय उन पर वीरतापूर्ण शब्दों का चुस्ती से बैठना, जो जड़ाई की कविताओं ही की अपनी एक विशेषता है, यह सब चीजें मिलकर सुनने वालों के दिलों में मर्दाना जोश की एक उमंग सी पैदा कर देती हैं। बयान करने का तर्ज ऐसा सादा और दिलचस्प और जबान ऐसी आमफहम है कि उसके समझने में जरा भी दिक्कत नहीं होती। वर्णन और भावों की सादगी, कला के सौंदर्य का प्राण है।

राजा परमालदेव चन्देल खानदान का आखिरी राजा था। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में वह खानदान समाप्त हो गया। महोबा जो एक मामूली कस्बा है उस जमाने में चन्देलों की राजधानी था। महोबा की सल्तनत दिल्ली और कन्नौज से आंखें मिलाती थी। आल्हा और ऊदल इसी राजा परमालदेव के दरबार के सम्मनित सदस्य थे। यह दोनों भाई अभी बच्चे ही थे कि उनका बाप जसराज एक लड़ाई में मारा गया। राजा को अनार्यों पर तरस आया, उन्हें राजमहल में ले आये और मोहब्बत के साथ अपनी रानी मलिनहा के सुपुर्द कर दिया। रानी ने उन दोनों भाइयों की परवरिश और लालन-पालन अपने लड़के की तरह किया। जवान होकर यही दोनों भाई बहादुरी में सारी दुनिया में मशहूर हुए। इन्हीं दिलावरों के कारनामों ने महोबे का नाम रोशन कर दिया है।

बड़े लड्डया महोबेवाला
जिनके बल को वार न पार

आल्हा और ऊदल राजा परमालदेव पर जान कुर्बान करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। रानी मलिनहा ने उन्हें पाला, उनकी शादियाँ कीं, उन्हें गोद में खिलाया। नमक के हक के साथ-साथ इन एहसानों और सम्बन्धों ने दोनों भाइयों को चन्देल राजा का जौनिसार रखवाला और राजा परमालदेव का वफादार सेवक बना दिया था। उनकी वीरता के कारण आस-पास के सैकड़ों घमंडी राजा चन्देलों के अधीन हो गये। महोबा राज्य की सीमाएँ नदी की बाढ़ की तरह फैलने लगीं और चन्देलों की शक्ति दूज के चाँद से बढ़कर पूरनमासी का चाँद हो गई। यह दोनों वीर कभी चैन से न बैठते थे। रणक्षेत्र में अपने हाथ का जौहर दिखाने की उन्हें धुन थी। सुख-सेज पर उन्हें नींद न आती थी। और वह जमाना भी ऐसा ही बेचैनियों से भरा हुआ था। उस जमाने में चैन से बैठना दुनिया के परदे से मिट जाना था। बात-बात पर तलवारें चलतीं और खून की नदियाँ बहती थीं। यहाँ तक कि शादियाँ भी खूनी लड़ाइयों जैसी हो गई थीं। लड़की पैदा हुई और शामत आ गई। हजारों सिपाहियों, सरदारों और सम्बन्धियों की जानें दहेज में देनी पड़ती थीं। आल्हा और ऊदल उस पुरशोर जमाने की यच्ची तस्वीरें हैं और गोकि ऐसी हालतों ओर जमाने के साथ जो नैतिक दुर्बलताएँ और विषमताएँ पाई जाती हैं, उनके असर से वह भी बचे हुए नहीं हैं, मगर उनकी दुर्बलताएँ उनका कसूर नहीं बल्कि उनके जमाने का कसूर हैं।

आल्हा का मामा माहिल एक काले दिल का, मन में द्वेष पालने वाला आदमी था। इन दोनों भाइयों का प्रताप और ऐश्वर्य उसके हृदय में कोंटे की तरह खटका करता था। उसकी जिन्दगी की सबसे बड़ी आरजू यह थी कि उनके बड़प्पन को किसी तरह खाक में मिला दे। इसी नेक काम के लिए उसने अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर दी थी। सैंकड़ों वार किये, सैंकड़ों बार आग लगायी, यहाँ तक कि आखिरकार उसकी नशा पैदा करनेवाली मंत्रणाओं ने राजा परमाल को मतवाला कर दिया। लोहा भी पानी से कट जाता है।

एक रोज राजा परमाल दरबार में अकेले बैठे हुए थे कि माहिल आया। राजा ने उसे उदास देखकर पूछा, भइया, तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ है। माहिल की आँखों में आँसू आ गये। मक्कार आदमी को अपनी भावनाओं पर जो अधिकार होता है वह किसी बड़े योगी के लिए भी कठिन है। उसका दिल रोता है मगर होंठ हँसते हैं, दिल खुशियों के मजे लेता है मगर आँखें रोती हैं, दिल डाह की आग से जलता है मगर जबान से शहद और शक्कर की नदियाँ बहती हैं।

माहिल बोला-महाराज, आपकी छाया में रहकर मुझे दुनिया में अब किसी चीज की इच्छा बाकी नहीं मगर जिन लोगों को आपने धूल से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया और जो आपकी कृपा से आज बड़े प्रताप और ऐश्वर्यवाले बन गये, उनकी कृतघ्नता और उपद्रव खड़े करना मेरे लिए बड़े दुःख का कारण हो रही है।

परमाल ने आश्चर्य से पूछा- क्या मेरा नमक खानेवालों में ऐसे भी लोग हैं?

माहिल- महाराज, मैं कुछ नहीं कह सकता। आपका हृदय कृपा का सागर है मगर उसमें एक खूंखार घड़ियाल आ घुसा है।

-वह कौन है?

-मैं।

राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा-तुम!

माहिल- हाँ महाराज, वह अभागा व्यक्ति मैं ही हूँ। मैं आज खुद अपनी फरियाद लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। अपने सम्बन्धियों के प्रति मेरा जो कर्तव्य है वह उस भक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं जो मुझे आपके प्रति है। आल्हा मेरे जिगर का टुकड़ा है। उसका मांस मेरा मांस और उसका रक्त मेरा रक्त है। मगर अपने शरीर में जो रोग पैदा हो जाता है उसे विवश होकर हकीम से कहना पड़ता है। आल्हा अपनी दौलत के नशे में चूर हो रहा है। उसके दिल में यह झूठा खयाल पैदा हो गया है कि मेरे ही बाहु-बल से यह राज्य कायम है।

राजा परमाल की आंखें लाल हो गयीं, बोला-आल्हा को मैंने हमेशा अपना लड़का समझा है।

माहिल- लड़के से ज्यादा।

परमाल- वह अनाथ था, कोई उसका संरक्षक न था। मैंने उसका पालन-पोषण किया, उसे गोद में खिलाया। मैंने उसे जागीरें दीं, उसे अपनी फौज का सिपहसालार बनाया। उसकी शादी में मैंने बीस हजार चन्देल सूरमाओं का खून बहा दिया। उसकी माँ और मेरी मलिनहा वर्षों गले मिलकर सोई हैं और आल्हा क्या मेरे एहसानों को भूल सकता है? माहिल, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता।

माहिल का चेहरा पीला पड़ गया। मगर सम्हलकर बोला- महाराज, मेरी जबान से कभी झूठ बात नहीं निकली।

परमाल- मुझे कैसे विश्वास हो?

माहिल ने धीरे से राजा के कान में कुछ कह दिया।

आल्हा और ऊदल दोनों चौगान के खेल का अभ्यास कर रहे थे। लम्बे-चौड़े मैदान में हजारों आदमी इस तमाशे को देख रहे थे। गेंद किसी अभागे की तरह इधर-उधर ठोकरें खाता फिरता था। चौबदार ने आकर कहा-महाराज ने याद फरमाया है।

आल्हा को सन्देह हुआ। महाराज ने आज बेवक्त क्यों याद किया? खेल बन्द हो गया। गेंद को ठोकरों से छुट्टी मिली। फौरन दरबार में चौबदार के साथ हाजिर हुआ और झुककर आदाब बजा लाया।

परमाल ने कहा- मैं तुमसे कुछ माँगूँ? दोगे?

आल्हा ने सादगी से जवाब दिया-फरमाइए।

परमाल-इनकार तो न करोगे?

आल्हा ने कनखियों से माहिल की तरफ देखा समझ गया कि इस वक्त कुछ न कुछ दाल में काला है। इसके चेहरे पर यह मुस्कराहट क्यों? गूलर में यह फूल क्यों लगे? क्या मेरी वफादारी का इम्तहान लिया जा रहा है? जोश से बोला-महाराज, मैं आपकी जबान से ऐसे सवाल सुनने का आदी नहीं हूँ। आप मेरे संरक्षक, मेरे पालनहार, मेरे राजा हैं। आपकी भँवों के इशारे पर मैं आग में कूद सकता हूँ और मौत से लड़ सकता हूँ। आपकी आज्ञा पाकर मैं असम्भव को सम्भव बना सकता हूँ आप मुझसे ऐसे सवाल न करें।

परमाल- शाबाश, मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद है।

आल्हा-मुझे क्या हुक्म मिलता है?

परमाल- तुम्हारे पास नाहर घोड़ा है?

आल्हा ने 'जी हाँ' कहकर माहिल की तरफ भयानक गुस्से भरी हुई आँखों से देखा।

परमाल- अगर तुम्हें बुरा न लगे तो उसे मेरी सवारी के लिए दे दो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, सोचने लगा, मैंने अभी वादा किया है कि इनकार न करूँगा। मैंने बात हारी है। मुझे इनकार न करना चाहिए। निश्चय ही इस वक्त मेरी स्वामिभक्ति की परीक्षा ली जा रही है। मेरा इनकार इस समय बहुत बेमौका और खतरनाक है। इसका तो कुछ गम नहीं। मगर मैं इनकार किस मुँह से करूँ, बेवफा न कहलाऊँगा? मेरा और राजा का सम्बन्ध केवल स्वामी और सेवक का ही नहीं है, मैं उनकी गोद में खेला हूँ। जब मेरे हाथ कमजोर थे, और पाँव में खड़े होने का बूता न था, तब उन्होंने मेरे जुल्म सहे हैं, क्या मैं इनकार कर सकता हूँ?

विचारों की धारा मुड़ी- माना कि राजा के एहसान मुझ पर अनगिनती हैं मेरे शरीर का एक-एक रोआँ उनके एहसानों के बोझ से दबा हुआ है मगर क्षत्रिय कभी अपनी सवारी का घोड़ा दूसरे को नहीं देता। यह क्षत्रियों का धर्म नहीं। मैं राजा का पाला हुआ और एहसानमन्द हूँ। मुझे अपने शरीर पर अधिकार है। उसे मैं राजा पर न्यौछावर कर सकता हूँ। मगर राजपूती धर्म पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। जिन लोगों ने धर्म के कच्चे धागे को लोहे की दीवार समझा है, उन्हीं से राजपूतों का नाम चमक रहा है। क्या मैं हमेशा के लिए अपने ऊपर दाग लगाऊँ? आह! माहिल ने इस वक्त मुझे खूब जकड़ रखा है। सामने खूंखार शेर है; पीछे गहरी खाई। या तो अपमान उठाऊँ या कृतघ्न कहलाऊँ। या तो राजपूतों के नाम को डुबोऊँ या बर्बाद हो जाऊँ। खैर, जो ईश्वर की मर्जी, मुझे कृतघ्न कहलाना स्वीकार है, मगर अपमानित होना स्वीकार नहीं। बर्बाद हो जाना मंजूर है, मगर राजपूतों के धर्म में बट्टा लगाना मंजूर नहीं।

आल्हा सर नीचा किये इन्हीं खयालों में गोते खा रहा था। यह उसके लिए परीक्षा की घड़ी थी जिसमें सफल हो जाने पर उसका भविष्य निर्भर था।

मगर माहिला के लिए यह मौका उसके धीरज की कम परीक्षा लेने वाला न था।

वह दिन अब आ गया जिसके इन्तजार में कभी आँखें नहीं थीं। खुशियों की यह बाढ़ अब संयम की लोहे की दीवार को काटती जाती थी। सिद्ध योगी पर दुर्बल मनुष्य की विजय होती जाती थी। एकाएक परमाल ने आल्हा से बुलन्द आवाज में पूछा- किस दनिधा में हो? क्या नहीं देना चाहते?

आल्हा ने राजा से आंखें मिलाकर कहा-जी नहीं।

परमाल को तैश आ गया, कड़ककर बोला-क्यों?

आल्हा ने अविचल मन से उत्तर दिया-यह राजपूतों का धर्म नहीं है।

परमाल-क्या मेरे एहसानों का यही बदला है? तुम जानते हो, पहले तुम क्या थे और अब क्या हो?

आल्हा-जी हाँ, जानता हूँ।

परमाल- तुम्हें मैंने बनाया है और मैं ही बिगाड़ सकता हूँ।

आल्हा से अब सब्र न हो सका, उसकी आँखें लाल हो गयीं और तयोरियों पर बल पड़ गये। तेज लहजे में बोला- महाराज, आपने मेरे ऊपर जो एहसान किए, उनका मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। क्षत्रिय कभी एहसान नहीं भूलता। मगर आपने मेरे ऊपर एहसान किए हैं, तो मैंने भी जो तोड़कर आपकी सेवा की है। सिर्फ नौकरी और नामक का हक अदा करने का भाव मुझमें वह निष्ठा और गर्मी नहीं पैदा कर सकता जिसका मैं बार-बार परिचय दे चुका हूँ। मगर खैर, अब मुझे विश्वास हो गया कि इस दरबार में मेरा गुजर न होगा। मेरा आखिरी सलाम कबूल हो और अपनी नादानी से मैंने जो कुछ भूल की है वह माफ की जाए।

माहिल की ओर देखकर उसने कहा- मामा जी, आज से मेरे और आपके बीच खून का रिश्ता टूटता है। आप मेरे खून के प्यासे हैं तो मैं भी आपकी जान का दुश्मन हूँ।

४

आल्हा की माँ का नाम देवल देवी था। उसकी गिनती उन हौसले वाली उच्च विचार स्त्रियों में है जिन्होंने हिन्दोस्तान के पिछले कारनामों को इतना स्पृहणीय बना दिया है। उस अंधेरे युग में भी जबकि आपसी फूट और बैर की एक भयानक बाढ़ मुल्क में आ पहुँची थी, हिन्दोस्तान में ऐसी ऐसी देवियाँ पैदा हुईं जो इतिहास के अंधेरे से अंधेरे पन्नों को भी ज्योतित कर सकती हैं। देवल देवी से सुना कि आल्हा ने अपनी आन को रखने के लिए क्या किया तो उसकी आखों भर आए। उसने दोनों भाइयों को गले लगाकर कहा- बेटा, तुमने वही किया जो राजपूतों का धर्म था। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम जैसे दो बात की लाज रखने वाले बेटे पाये हैं।

उसी रोज दोनों भाइयों महोबा से कूच कर दिया अपने साथ अपनी तलवार और घोड़ों के सिवा और कुछ न लिया। माल-असबाब सब वहीं छोड़ दिये सिपाही की दौलत और इज्जत सबक कुछ उसकी तलवार है। जिसके पास वीरता की सम्पत्ति है उसे दूसरी किसी सम्पत्ति की जरूरत नहीं।

बरसात के दिन थे, नदी नाले उमड़े हुए थे। इन्द्र की उदारताओं से मालामाल होकर जमीन फूली नहीं समाती थी। पेड़ों पर मोरों की रसीली झनकारें सुनाई देती थीं और खेतों में निश्चिन्तता की शराब से मतवाल किसान मल्हार की तानें अलाप रहे थे। पहाड़ियों की घनी हरियावल पानी की दर्पण-जैसी सतह और जंगली बेल बूटों के बनाव संवार से प्रकृति पर एक यौवन बरस रहा था। मैदानों की ठंडी-ठंडी मस्त हवा जंगली फूलों की मीठी मीठी, सुहानी, आत्मा को उल्लास देनेवाली महक और खेतों की लहराती हुई रंग बिरंगी उपज ने दिलों में आरजुओं का एक तूफान उठा दिया था। ऐसे मुबारक मौसम में आल्हा ने महोबा को आखिरी सलाम किया। दोनों भाइयों की आँखें रोते रोते लाल हो गयी थीं क्योंकि आज उनसे उनका देश छूट रहा था। इन्हीं गलियों में उन्होंने घुटने के बल चलना सीखा था, इन्हीं तालाबों में कागज की नावें चलाई थीं, यही जवानी की बेफिक्रियों के मजे लूटे थे। इनसे अब हमेशा के लिए नाता टूटता था। दोनों भाई आगे बढ़ते जाते थे, मगर बहुत धीरे-धीरे। यह खयाल था कि शायद परमाल ने रुठनेवालों को मनाने के लिए अपना कोई भरोसे का आदमी भेजा होगा। घोड़ों को सम्हाले हुए थे, मगर जब महोबे की पहाड़ियों का आखिरी निशान आँखों से ओझल हो गया तो उम्मीद की आखिरी झलक भी गायब हो गयी। उन्होंने जिनका कोई देश नथा एक ठंडी सांस ली और घोड़े बढ़ा दिये। उनके निर्वासन का समाचार बहुत जल्द चारों तरफ फैल गया। उनके लिए हर दरबार में जगह थीं, चारों तरफ से राजाओं के संदेश आने लगे। कन्नौज के राजा जयचन्द ने अपने राजकुमार को उनसे मिलने के लिए भेजा। संदेशों से जो काम न निकला वह इस मुलाकात ने पूरा कर दिया। राजकुमार की खातिदारियाँ और आवभगत दोनों भाइयों को कन्नौज खींच ले गई। जयचन्द आँखें बिछाये बैठा था। आल्हा को अपना सेनापति बना दिया।

५

आल्हा और ऊदल के चले जाने के बाद महोबे में तरह-तरह के अंधेर शुरू हुए। परमाल कमजी शासक था। मातहत राजाओं ने बगावत का झण्डा बुलन्द किया। ऐसी कोई ताकत न रही जो उन झगड़ालू लोगों को वश में रख सके। दिल्ली के राज पृथ्वीराज की कुछ सेना सिमता से एक सफल लड़ाई लड़कर वापस आ रही थी। महोबे में पड़ाव किया। अक्खड़ सिपाहियों में तलवार चलते कितनी देर लगती है। चाहे राजा परमाल के मुलाजियों की ज्यादाती हो चाहे चौहान सिपाहियों की, तनीजा यह हुआ कि चन्देलों और चौहानों में अनबन हो गई। लड़ाई छिड़ गई। चौहान संख्या में कम थे। चंदेलों ने आतिथ्य-सत्कार के नियमों को एक किनारे रखकर चौहानों के खून से अपना कलेजा ठंडा किया और यह न समझे कि मुठ्ठी भर सिपाहियों के पीछे सारे देश पर विपत्ति आ जाएगी। बेगुनाहों को खून रंग लायेगा। पृथ्वीराज को यह दिल तोड़ने वाली खबर मिली तो उसके गुस्से की कोई हद न रही। आँधी की तरह महोबे पर चढ़ दौड़ा और सिरको, जो इलाका महोबे का एक मशहूर कस्बा था, तबाह करके महोबे की तरह बढ़ा। चन्देलों ने भी फौज खड़ी की। मगर पहले ही मुकाबिले में उनके हौसले पस्त हो गये। आल्हा-ऊदल के बगैर फौज बिन दूल्हे की बारात थी। सारी फौज तितर-बितर हो गयी। देश में तहलका मच गया। अब किसी क्षण पृथ्वीराज महोबे में आ पहुँचेगा, इस डर से लोगों के हाथ-पाँव फूल गये। परमाल अपने किये पर बहुत पछताया। मगर अब

पछताना व्यर्थ था। कोई चारा न देखकर उसने पृथ्वीराज से एक महीने की सन्धि की प्रार्थना की। चौहान राजा युद्ध के नियमों को कभी हाथ से न जाने देता था। उसकी वीरता उसे कमजोर, बेखबर और नामुस्तैद दुश्मन पर वार करने की इजाजत न देती थी। इस मामले में अगर वह इन नियमों को इतनी सख्ती से पाबन्द न होता तो शहाबुद्दीन के हाथों उसे वह बुरा दिन न देखना पड़ता। उसकी बहादुरी ही उसकी जान की गाहक हुई। उसने परमाल का पैगाम मंजूर कर लिया। चन्देलों की जान में जान आई।

अब सलाह-मशविरा होने लगा कि पृथ्वीराज से क्योंकर मुकाबिला किया जाये। रानी मलिनहा भी इस मशविरे में शरीक थीं। किसी ने कहा, महोबे के चारों तरफ एक ऊँची दीवार बनायी जाय ; कोई बोला, हम लोग महोबे को वीरान करके दक्खिन को ओर चलें। परमाल जबान से तो कुछ न कहता था, मगर समर्पण के सिवा उसे और कोई चारा न दिखाई पड़ता था। तब रानी मलिनहा खड़ी होकर बोली :

‘चन्देल वंश के राजपूतो, तुम कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो? क्या दीवार खड़ी करके तुम दुश्मन को रोक लोगे? झाड़ू से कहीं आँधी रुकती है ! तुम महोबे को वीरान करके भागने की सलाह देते हो। ऐसी कायरों जैसी सलाह औरतें दिया करती हैं। तुम्हारी सारी बहादुरी और जान पर खेलना अब कहाँ गया? अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि चन्देलों के नाम से राजे थर्राते थे। चन्देलों की धाक बंधी हुई थी, तुमने कुछ ही सालों में सैकड़ों मैदान जीते, तुम्हें कभी हार नहीं हुई। तुम्हारी तलवार की दमक कभी मन्द नहीं हुई। तुम अब भी वही हो, मगर तुममें अब वह पुरुषार्थ नहीं है। वह पुरुषार्थ बनाफल वंश के साथ महोबे से उठ गया। देवल देवी के रुठने से चण्डिका देवी भी हमसे रुठ गई। अब अगर कोई यह हारी हुई बाजी सम्हाल सकता है तो वह आल्हा है। वही दोनों भाई इस नाजुक वक्त में तुम्हें बचा सकते हैं। उन्हीं को मनाओ, उन्हीं को समझाओं, उन पर महोबे के बहुत हक हैं। महोबे की मिट्टी और पानी से उनकी परवरिश हुई है। वह महोबे के हक कभी भूल नहीं सकते, उन्हें ईश्वर ने बल और विद्या दी है, वही इस समय विजय का बीड़ा उठा सकते हैं।’

रानी मलिनहा की बातें लोगों के दिलों में बैठ गयीं।

६

जगना भाट आल्हा और ऊदल को कन्नौज से लाने के लिए रवाना हुआ। यह दोनों भाई राजकुँवर लाखन के साथ शिकार खेलने जा रहे थे कि जगना ने पहुँचकर प्रणाम किया। उसके चेहरे से परेशानी और झिझक बरस रही थी। आल्हा ने घबराकर पूछा—कवीश्वर, यहाँ कैसे भूल पड़े? महोबे में तो खैरियत है? हम गरीबों को क्योंकर याद किया?

जगना की आँखों में आँसू भर जाए, बोला—अगर खैरियत होती तो तुम्हारी शरण में क्यों आता। मुसीबत पड़ने पर ही देवताओं की याद आती है। महोबे पर इस वक्त इन्द्र का कोप छाया हुआ है। पृथ्वीराज चौहान महोबे को घेरे पड़ा है। नरसिंह और वीरसिंह तलवारों की भेंट हो चुके हैं। सिरकों सारा राख को ढेर हो गया। चन्देलों का राज वीरान हुआ जाता है। सारे देश में कुहराम मचा हुआ है। बड़ी मुश्किलों से एक महीने की मौहलत ली गई है और मुझे राजा परमाल ने तुम्हारे पास भेजा है। इस मुसीबत के वक्त हमारा कोई मददगार नहीं है, कोई ऐसा नहीं है जो हमारी किम्मत बँधाये। जब से तुमने महोबे से नहीं है, कोई ऐसा नहीं है जो हमारी हिम्मत बँधाये। जब से तुमने महोबे से नाता तोड़ा है तब से राजा परमाल के होंठों पर हँसी नहीं आई। जिस परमाल को उदास देखकर तुम बेचैन हो जाते थे उसी परमाल की आँखें महीनों से नींद को तरसती हैं। रानी महिलना, जिसकी गोद में तुम खेले हो, रात-दिन तुम्हारी याद में रोती रहती है। वह अपने झरोखे से कन्नौज की तरफ आँखें लगाये तुम्हारी राह देखा करती है। ऐ बनाफल वंश के सपूतो ! चन्देलों की नाव अब डूब रही है। चन्देलों का नाम अब मिटा जाता है। अब मौका है कि तुम तलवारे हाथ में लो। अगर इस मौके पर तुमने डूबती हुई नाव को न सम्हाला तो तुम्हें हमेशा के लिए पछताना पड़ेगा क्योंकि इस नाम के साथ तुम्हारा और तुम्हारे नामी बाप का नाम भी डूब जाएगा।

आल्हा ने रुखेपन से जवाब दिया—हमें इसकी अब कुछ परवाह नहीं है। हमारा और हमारे बाप का नाम तो उसी दिन डूब गया, जब हम बेकसूर महोबे से निकाल दिए गए। महोबा मिट्टी में मिल जाय, चन्देलों को चिराग गुल हो जाय, अब हमें जरा भी परवाह नहीं है। क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार था जो हमको दिया गया? हमारे बाप ने महोबे पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, हमने गोड़ों को हराया और चन्देलों को देवगढ़ का मालिक बना दिया। हमने यादवों से लोहा लिया और कठियार के मैदान में चन्देलों का झंडा गाड़ दिया। मैंने इन्ही हाथों से कछवाहों की बढ़ती हुई लहर को रोका। गया का मैदान हमीं ने

जीता, रीवाँ का घमण्ड हमी ने तोड़ा। मैंने ही मेवात से खिराज लिया। हमने यह सब कुछ किया और इसका हमको यह पुरस्कार दिया गया है? मेरे बाप ने दस राजाओं को गुलामी का तौक पहनाया। मैंने परमाल की सेवा में सात बार प्राणलेवा जख्म खाए, तीन बार मौत के मुँह से निकल आया। मैंने चालीस लड़ाइयाँ लड़ी और कभी हारकर न आया। ऊदल ने सात खूनी मार्के जीते। हमने चन्देलों की बहादुरी का डंका बजा दिया। चन्देलों का नाम हमने आसमान तक पहुँचा दिया और इसके यह पुरस्कार हमको मिला है? परमाल अब क्यों उसी दगाबाज माहिल को अपनी मदद के लिए नहीं बुलाते जिसको खुश करने के लिए मेरा देश निकाला हुआ था !

जगना ने जवाब दिया—आल्हा ! यह राजपूतों की बातें नहीं हैं। तुम्हारे बाप ने जिस राज पर प्राण न्यौछावर कर दिये वही राज अब दुश्मन के पांव तले रौंदा जा रहा है। उसी बाप के बेटे होकर भी क्या तुम्हारे खून में जोश नहीं आता? वह राजपूत जो अपने मुसीबत में पड़े हुए राजा को छोड़ता है, उसके लिए नरक की आग के सिवा और कोई जगह नहीं है। तुम्हारी मातृभूमि पर बर्बादी की घटा छाई हुई है। तुम्हारी माँ और बहनें दुश्मनों की आबरू लूटनेवाली निगाहों को निशाना बन रही हैं, क्या अब भी तुम्हारे खून में जोश नहीं आता? अपने देश की यह दुर्गत देखकर भी तुम कन्नौज में चैन की नींद सो सकते हो?

देवल देवी को जगना के आने की खबर हुई। असने फौरन आल्हा को बुलाकर कहा—बेटा, पिछली बातें भूल जाओ और आज ही महोबे चलने की तैयारी करो।

आल्हा कुछ जबाब न दे सका, मगर ऊदल झुँझलाकर बोला—हम अब महोबे नहीं जा सकते। क्या तुम वह दिन भूल गये जब हम कुतों की तरह महोबे से निकाल दिए गए? महोबा डूबे या रहे, हमारा जी उससे भर गया, अब उसको देखने की इच्छा नहीं है। अब कन्नौज ही हमारी मातृभूमि है।

राजपूतनी बेटे की जबान से यह पाप की बात न सुन सकी, तैश में आकर बोली—ऊदल, तुझे ऐसी बातें मुँह से निकालते हुए शर्म नहीं आती ? काश, ईश्वर मुझे बाँझ ही रखता कि ऐसे बेटों की माँ न बनती। क्या इन्हीं बनाफल वंश के नाम पर कलंक लगानेवालों के लिए मैंने गर्भ की पीड़ा सही थी? नालायको, मेरे सामने से दूर हो जाओ। मुझे अपना मुँह न दिखाओ। तुम जसराज के बेटे नहीं हो, तुम जिसकी रान से पैदा हुए हो वह जसराज नहीं हो सकता।

यह मर्मन्तक चोट थी। शर्म से दोनों भाइयों के माथे पर पसीना आ गया। दोनों उठ खड़े हुए और बोले- माता, अब बस करो, हम ज्यादा नहीं सुन सकते, हम आज ही महोबे जायेंगे और राजा परमाल की खिदमत में अपना खून बहायेंगे। हम रणक्षेत्र में अपनी तलवारों की चमक से अपने बाप का नाम रोशन करेंगे। हम चौहान के मुकाबिले में अपनी बहादुरी के जौहर दिखायेंगे और देवल देवी के बेटों का नाम अमर कर देंगे।

७

दोनों भाई कन्नौज से चले, देवल भी साथ थी। जब वह रुठनेवाले अपनी मातृभूमि में पहुँचे तो सूखे धानों में पानी पड़ गया, टूटी हुई हिम्मतें बंध गयीं। एक लाख चन्देल इन वीरों की अगवानी करने के लिए खड़े थे। बहुत दिनों के बाद वह अपनी मातृभूमि से बिछुड़े हुए इन दोनों भाइयों से मिले। आँखों ने खुशी के आँसू बहाए। राजा परमाल उनके आने की खबर पाते ही कीरत सागर तक पैदल आया। आल्हा और ऊदल दौड़कर उसके पांव से लिपट गए। तीनों की आँखों से पानी बरसा और सारा मनमुटाव धुल गया।

दुश्मन सर पर खड़ा था, ज्यादा आतिथ्य-सत्कार का मौकर न था, वहीं कीरत सागर के किनारे देश के नेताओं और दरबार के कर्मचारियों की राय से आल्हा फौज का सेनापति बनाया गया। वहीं मरने-मारने के लिए सौगन्धें खाई गई। वहीं बहादुरों ने कसमें खाई कि मैदान से हटेंगे तो मरकर हटेंगे। वहीं लोग एक दूसरे के गले मिले और अपनी किस्मतों को फैसला करने चले। आज किसी की आँखों में और चेहरे पर उदासी के चिन्ह न थे, औरतें हँस-हँस कर अपने प्यारों को विदा करती थीं, मर्द हँस-हँसकर स्त्रियों से अलग होते थे क्योंकि यह आखिरी बाजी है, इसे जीतना जिन्दगी और हारना मौत है।

उस जगह के पास जहाँ अब और कोई कस्बा आबाद है, दोनों फौजों को मुकाबला हुआ और अठारह दिन तक मारकाट का बाजार गर्म रहा। खूब घमासान लड़ाई हुई। पृथ्वीराज खुद लड़ाई में शरीक था। दोनों दल दिल खोलकर लड़े। वीरों ने खूब अरमान निकाले और दोनों तरफ की फौजें वहीं कट मरीं। तीन लाख आदमियों में सिर्फ तीन आदमी जिन्दा बचे—एक पृथ्वीराज, दूसरा चन्दा भाट तीसरा आल्हा। ऐसी भयानक अटल और निर्णायक लड़ाई शायद ही किसी देश और किसी युग में हुई हो। दोनों ही हारे और दोनों ही

जीते। चन्देल और चौहान हमेशा के लिए خاک में मिल गए क्योंकि थानेसर की लड़ाई का फैसला भी इसी मैदान में हो गया। चौहानों में जितने अनुभवी सिपाही थे, वह सब औरई में काम आए। शहाबुद्दीन से मुकाबिला पड़ा तो नौसिखिये, अनुभवहीन सिपाही मैदान में लाये गये और नतीजा वही हुआ जो हो सकता था। आल्हा का कुद पता न चला कि कहाँ गया। कहीं शर्म से डूब मरा या साधू हो गया।

जनता में अब तक यही विश्वास है कि वह जिन्दा है। लोग कहते हैं कि वह अमर हो गया। यह बिल्कुल ठीक है क्योंकि आल्हा सचमुच अमर है अमर है और वह कभी मिट नहीं सकता, उसका नाम हमेशा कायम रहेगा।

--जमाना, जनवरी १९१२

बाबू अक्षयकुमार पटना के एक वकील थे और बड़े वकीलों में समझे जाते थे। यानी रायबहादुरी के करीब पहुँच चुके थे। जैसा कि अक्सर बड़े आदमियों के बारे में मशहूर है, इन बाबू साब का लड़कपन भी बहुत गरीबी में बीता था। माँ-बाप अब अपने शैतान लड़कों को डाँटते-डॉपटते तो बाबू अक्षयकुमार का नाम मिसाल के तौर पर पेश किया जाता था—अक्षय बाबू को देखो, आज दरवाजे पर हाथी झूमता है, कल पढ़ने को तेल नहीं मयस्सर होता था, पुआल जलाकर उसकी आँच में पढ़ते, सड़क की लालटेनों की रोशनी में सबक याद करते। विद्या इस तरह आती है। कोई-कोई कल्पनाशील व्यक्ति इस बात के भी साक्षी थे कि उन्होंने अक्षय बाबू को जुगनू की रोशनी में पढ़ते देखा है जुगनू की दमक या पुआल की आँच में स्थायी प्रकाश हो सकता है, इसका फैसला सुननेवालों की अकल पर था। कहने का आशय यह है कि अक्षयकुमार का बचपन का जमाना बहुत ईर्ष्या करने योग्य न था और न वकालत का जमाना खुशनसीबियों की वह बाढ़ अपने साथ लाया जिसकी उम्मीद थी। बाढ़ का जिक्र ही क्या, बरसों तक अकाल की सूरत थी यह आशा कि सियाह गाउन कामधेनु साबित होगा और दुलिया की सारी नेमतें उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेगी, झूठ निकली। काला गाउन काले नसीब को रोशन न कर सका। अच्छे दिनों के इन्तजार में बहुत दिन गुजर गए और आखिरकार जब अच्छे दिन आये, जब गार्डन पार्टियों में शरीक होने की दावतें आने लगीं, जब वह आम जलसों में सभापति की कुर्सी पर शोभायमान होने लगे तो जवानी बिदा हो चुकी थी और बालों को खिजाब की जरूरत महसूस होने लगी थी। खासकर इस कारण से कि सुन्दर और हँसमुख हेमवती की खातिरदारी जरूरी थी जिसके शुभ आगमन ने बाबू अक्षयकुमार के जीवन की अन्तिम आकांक्षा को पूरा कर दिया था।

2

जिस तरह दानशीलता मनुष्य की दुर्गुणों को छिपा लेती है उसी तरह कृपणता उसके सद्गुणों पर पर्दा डाल देती है। कंजूस आदमी के दुश्मन सब होते हैं, दोस्त कोई नहीं होता। हर व्यक्ति को उससे नफरत होती है। वह गरीब किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, आम तौर पर वह बहुत ही शान्तिप्रिय, गम्भीर, सबसे मिलजुल कर रहनेवाला और स्वाभिमानी व्यक्ति होता है मगर कंजूसी काला रंग है जिस पर दूसरा कोई रंग, चाहे कितना ही चटख क्यों न हों, नहीं चढ़ सकता। बाबू अक्षयकुमार भी कंजूस मशहूर थे, हालाँकि जैसा कायदा है, यह उपाधि उन्हें ईर्ष्या के दरबार से प्राप्त हुई थी। जो व्यक्ति कंजूस कहा जाता हो, समझ लो कि वह बहुत भाग्यशाली है और उससे डाह करने वाले बहुत हैं। अगर बाबू अक्षयकुमार कौड़ियों को दाँत से पकड़ते थे तो किसी का क्या नुकसान था। अगर उनका मकान बहुत ठाट-बाट से नहीं सजा हुआ था, अगर उनके यहाँ मुफ्तखोर ऊँघनेवाले नौकरों की फौज नहीं थी, अगर वह दो घोड़ों की फिटन पर कचहरी नहीं जाते थे तो किसी का क्या नुकसान था। उनकी जिन्दगी का उसूल था कि कौड़ियों की तुम फिक्र रखो, रुपये अपनी फिक्र आप कर लेंगे। और इस सुनहरे उसूल का कठोरता से पालन करने का उन्हें पूरा अधिकार था। इन्हीं कौड़ियों पर जवानी की बहारें और दिल की उमंगें न्यौछावर की थीं। आँखों की रोशनी और सेहत जैसी बड़ी नेमत इन्हीं कौड़ियों पर चढ़ाती थीं। उन्हें दाँतों से पकड़ते थे तो बहुत अच्छा करते थे, पलकों से उठाना चाहिए था।

लेकिन सुन्दर हँसमुख हेमवती का स्वभाव इसके बिल्कुल उलटा था। अपनी दूसरी बहनों की तरह वह भी सुख-सुविधा पर जान देती थी और गो बाबू अक्षयकुमार ऐसे नादान और ऐसे रुखे-सूखे नहीं थे कि उसकी कद्र करने के काबिल कमजोरियों की कद्र न करते (नहीं, वह सिंगार और सजावट की चीजों को देखकर कभी-कभी खुश होने की कोशिश भी करते थे) मगर कभी-कभी जब हेमवती उनकी नेक सलाहों ही परवाह न करके सीमा से आगे बढ़ जाती थी तो उस दिन बाबू साहब को उसकी खातिर अपनी वकालत की योग्यता का कुछ-न-कुछ हिस्सा जरूर खर्च करना पड़ता था।

एक रोज जब अक्षयकुमार कचहरी से आये तो सुन्दर और हँसमुख हेमवती ने एक रंगीन लिफाफा उनके हाथ में रख दिया। उन्होंने देखा तो अन्दर एक बहुत नफीस गुलाबी रंग का निमंत्रण था। हेमवती से बोले—इन लोगों को एक-न-एक खब्त सूझता ही रहता है। मेरे खयाल में इस ड्रामैटिक परफार्मेंस की कोई जरूरत न थी।

हेमवती इन बातों के सुनने की आदी थी, मुस्कराकर बोली—क्यों, इससे बेहतर और कौन खुशी को मौकर हो सकता है।

अक्षय कुमार सगड़ गये कि अब बहस-मुबाहिसे की जरूरत आ गई, सम्हाल बैठे और बोले—मेरी जान, बी० ए० के इम्तहान में पास होना कोई गैर-मामूली बात नहीं है, हजारों नौजवान हर साल पास होते रहते हैं। अगर मेरा भाई होता तो मैं सिर्फ उसकी पीठ ठोंककर कहता कि शाबाश, खूब मेहनत की। मुझे ड्रामा खेलने का खयाल भी न पैदा होता। डाक्टर साहब तो समझदार आदमी हैं, उन्हें क्या सूझी !

हेमवती—मुझे तो जाना ही पड़ेगा।

अक्षयकुमार—क्यों, क्या वादा कर लिया है?

हेमवती—डाक्टर साहब की बीवी खुद आई थी।

अक्षयकुमार—तो मेरी जान, तुम भी कभी उनके घर चली जाना, परसों जाने की क्या जरूरत है?

हेमवती—अब बता ही दूँ, मुझे नायिका का पार्ट दिया गया है और मैंने उस मंजूर कर लिया है।

यह कहकर हेमवती ने गर्व से अपने पति की तरफ देखा, मगर अक्षयकुमार को इस खबर से बहुत खुशी नहीं हुई। इससे पहले दो बार हेमवती शकुन्तला बन चुकी थी। इन दोनों मौकों पर बाबू साहब को काफी खर्च करना पड़ा था। उन्हें डर हुआ कि अब की हफ्ते में फिर घोष कम्पनी दो सौ का बिल पेश करेगी। और इस बात की सख्त जरूरत थी कि अभी से रोक-थाम की जाय। उन्होंने बहुत मुलायमियत से हेमवती का हाथ पकड़ लिया और बहुत मीठे और मुहब्बत में लिपटे हुए लहजे में बोले—प्यारी, यह बला फिर तुमने अपने सर ले ली। अपनी तकलीफ और परेशानी का बिलकुल खयाल नहीं किया। यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारी परेशानी तुम्हारे इस प्रेमी को कितना परेशान करती है। मेरी जान, यह जलसे नैतिक दृष्टि से बहुत आपत्तिजनक होते हैं। इन्हीं मौकों पर दिलों में ईर्ष्या के बीज बोये जाते हैं। यहीं, पीठ पीछे बुराई करने की आदत पड़ती है और यहीं तानेबाजी और नोकझोंक की मशक होती है। फलों लेडी हसीन है, इसलिए उसकी दूसरी बहनों का फर्ज है कि उससे जलें। मेरी जान, ईश्वर न करे कि कोई डाही बने मगर डाह करने के योग्य बनना तो अपने अखितयार की बात नहीं। मुझे भय है कि तुम्हारा दाहक सौन्दर्य कितने ही दिलों को जलाकर राख कर देगा। प्यारी हेमू, मुझे दुख है कि तुमने मूझसे पूछे बगैर यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मुझे विश्वास है, अगर तुम्हें मालूम होता कि मैं इसे पसन्द न करूँगा तो तुम हरगिज स्वीकार न करतीं।

सुन्दर और हँसमुख हेमवती इस मुहब्बत में लिपटी हुई तकरीर को बजाहिर बहुत गौर से सुनती रही। इसके बाद जान-बूझकर अनजान बनते हुए बोली—मैंने तो यह सोचकर मंजूर कर लिया था कि कपड़े सब पहले ही के रक्खें हुए हैं, ज्यादा सामान की जरूरत न होगी, सिर्फ चन्द घंटों की तकलीफ है और एहसान मुफ्त। डाक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं है। मगर अब न जाऊँगी। मैं अभी उनको अपनी मजबूरी लिखे देती हूँ। सचमुच क्या फायदा, बेकार की उलझन।

यह सुनकर कि कपड़े सब पहले के रक्खें हुए हैं, कुछ ज्यादा खर्च न होगा, अक्षयकुमार के दिल पर से एक बड़ा बोझ उठ गया। डाक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं। यह जुमला भी मानी से खाली न था। बाबू साहब पछताये कि अगर पहले से यह हाल मालूम होता तो काहे को इस तरह रुखा-सूखा उपदेशक बनना पड़ता। गर्दन हिलाकर बोले—नहीं-नहीं मेरी जान, मेरा मंशा यह हरगिज नहीं कि तुम जाओ ही मत। जब तुम निमंत्रण स्वीकार कर चुकी हो तो अब उससे मुकरना इन्सानियत से हटी हुई बात मालूम होती है। मेरी सिर्फ यह मंशा थी कि जहाँ तक मुमकिन हो, ऐसे जलसों से दूर रहना चाहिये।

मगर हेमवती ने अपना फैसला बहाल रक्खा—अब मैं न जाऊँगी। तुम्हारी बातें गिरह में बांध लीं।

दूसरे दिन शाम को अक्षयकुमार हवाखोरी को निकले। आनन्द बाग उस वक्त जोबन पर था। ऊंचे-ऊंचे सरो और अशोक की कतारों के बीच, लाल बजरी से सजी हुई सड़क ऐसी खूबसूरत मालूम होती थी कि जैसे कमल के पत्तों में फूल खिलो हुआ है या नोकदार पलकों के बीच में लाल मतवाली आंखें जेब दे रही हैं। बाबू अक्षयकुमार इस क्यारी पर हवा के हल्के-फुल्के ताजगी देनेवाले झोंकों को मजा उठाते हुए एक सायेदार कुंज में जा बैठे। यह उनकी खास जगह थी। इस इनायतों की बस्ती में आकर थोड़ी देर के लिए उनके दिल पर फूलों के खिलेपन और पत्तों की हरियाली का बहुत ही नशीला असर होता था। थोड़ी देर के लिए उनका दिल भी फूल की तरह खिल जाता था। यहाँ बैठे उन्हें थोड़ी देर हुई थी कि उन्हें एक बूढ़ा आदमी अपनी तरफ

आता हुआ दिखायी दिया। उसने सलाम किया और एक मोहरदार बन्द लिफाफा देकर गायब हो गया। अक्षय बाबू ने लिफाफा खोला और उसकी अम्बरी महक से रुह फड़क उठी। खत का मजमून यह था:

‘मेरे प्यारे अक्षय बाबू, आप इस नाचीज के खत को पढ़कर बहुत हैरत में आएंगे, मगर मुझे आशा है कि आप मेरी इस ढिठाई को माफ करेंगे। आपके आचार-विचार, आपकी सुरुचि और आपके रहन-सहन की तारीफें सुन-सुनकर मेरे दिल में आपके लिए एक प्रेम और आदर का भाव पैदा हो गया है। आपके सादे रहन-सहन ने मुझे मोहित कर लिया है। अगर हया-शर्म मेरा दामन न पकड़े होती तो मैं अपनी भावनाओं को और भी स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करती। साल भर हुआ कि मैंने सामान्य पुरुषों की दुर्बलताओं से निराश होकर यह इरादा कर लिया था कि शेष जीवन खुशियों को सपना देखने में काटूँगी। मैंने ढूँढा, मगर जिस दिल की तलाश थी, न मिला। लेकिन जब से मैंने आपको देखा है, मुद्दतों की सोयी हुई उमंगें जाग उठी हैं। आपके चेहरे पर सुन्दरता और जवानी की रोशनी न सही मगर कल्पना की झलक मौजूद है, जिसकी मेरी निगाह में ज्यादा इज्जत हैं हालाँकि मेरा खयाल है कि अगर आपको अपने बहिरंग की चिन्ता होती तो शायद मेरे अस्तित्व का दुर्बल अंश ज्यादा प्रसन्न होता। मगर मैं रुप की भूखी नहीं हूँ। मुझे एक सच्चे, प्रदर्शन से मुक्त, सीने में दिल रखनेवाले इन्सान की चाह है और मैंने उसे पा लिया। मैंने एक चतुर पनडुब्बे की तरह समुन्दर की तह में बैठकर उस रतन को ढूँढ निकाला है, मेरी आपसे केवल यह प्रार्थना है कि आप कल रात को डाक्टर किचलू के मकान पर तशरीफ लायें। मैं आपका बहुत एहसान मानूँगी। वहाँ एक हरे कपड़े पहने स्त्री अशोकों के कुंज में आपके लिए आंखें बिछाये बैठी नजर आयेगी।’

इस खत को अक्षयकुमार ने दोबारा पढ़ा। इसका उनके दिल पर क्या असर हुआ, यह बयान करने की जरूरत नहीं। वह ऋषियों नहीं थे, हालाँकि ऐसे नाजुक मौके पर ऋषियों का फिसल जाना भी असम्भव नहीं। उन्हें एक नशा-सा महसूस होने लगा। जरूर इस परी ने मुझे यहाँ बैठे देखा होगा। मैंने आज कई दिन से आईना भी नहीं देखा, जाने चेहरे की क्या कैफियत हो रही हैं। इस खयाल से बेचैन होकर वह दौड़े हुए एक हौज पर गए और उसके साफ पानी में अपनी सूरत देखी, मगर संतोष न हुआ। बहुत तेजी से कदम बढ़ाते हुए मकान की तरफ चले और जाते ही आईने पर निगाह दौड़ाई। हजामत साफ नहीं है और साफा कम्बख्त खूबसूरती से नहीं बँधा। मगर तब भी मुझे कोई बदसूरत नहीं कह सकता। यह जरूर कोई आला दरजे की पढ़ी-लिखी, ऊँचे विचारों वाली स्त्री है। वर्ना मामूली औरतों की निगाह में तो दौलत और रुप के सिवा और कोई चीज जँचती ही नहीं। तो भी मेरा यह फूहड़पन किसी सुरुचि-सम्पन्न स्त्री को अच्छा नहीं मालूम हो सकता। मुझे अब इसका खयाल रखना होगा। आज मेरे भाग्य जागे हैं। बहुत मुद्दत के बाद मेरी कद्र करनेवाला एक सच्चा जौहरी नजर आया है। भारतीय स्त्रियों शर्म और हया की पुतली होती हैं। जब तक कि अपने दिल की हलचलों से मजबूर न हो जाये वह ऐसा खत लिखने को साहस नहीं कर सकतीं।

इन्हीं खयालों में बाबू अक्षयकुमार ने रात काटी। पलक तक नहीं झपकी।

४

दूसरे दिन सुबह दस बजे तक बाबू अक्षयकुमार ने शहर की सारी फैशनेबुल दुकानों की सैर की। दुकानदार हैरत में थे कि आज बाबू साहब यहाँ कैसे भूल पड़े। कभी भूलकर भी न झाँकते थे, यह कायापलट क्योंकर हुई? गरज, आज उन्होंने बड़ी बेदरदी से रुपया खर्च किया और जब घर चले तो फिटन पर बैठने की जगह न थी।

हेमवती ने उनके माथे पर से पसीना साफ करके पूछा—आज सबेरे से कहाँ गायब हो गये? अक्षयकुमार ने चेहरे को जरा गम्भीर बनाकर जवाब दिया—आज जिगर में कुछ दर्द था, डाक्टर चड्ढा के पास चला गया था।

हेमवती के सुन्दर हँसते हुए चेहरे पर मुस्कराहट-सी आ गयी, बोली—तुमने मुझसे बिलकुल जिक्र नहीं किया? जिगर का दर्द भयानक मर्ज है।

अक्षयकुमार—डाक्टर साहब ने कहा है, कोई डरने की बात नहीं है।

हेमवती—इसकी दवा डा० किचलू के यहाँ बहुत अच्छी मिलती है। मालूम नहीं, डाक्टर चड्ढा मर्ज की तह तक पहुँचे भी या नहीं।

अक्षयकुमार ने हेमवती की तरफ एक बार चुभती हुई निगाहों से देखा और खाना खाने लगे। इसके बाद अपने कमरे में जाकर बैठे। शाम को जब वह पार्क, घंटाघर, आनन्द बाग की सैर करते हुए फिटन पर जा रहे थे तो उनके होंठों पर लाली और गालों पर जवानी की गुलाबी झलक मौजूद थीं। तो भी प्रकृति के अन्याय पर, जिसने उन्हें रुप की सम्पदा से वंचित रक्खा था, उन्हें आज जितना गुस्सा आया, शायद और

कभी न आया हो। आज वह पतली नाक के बदले अपना खूबसूरत गाउन और डिप्लोमा सब कुछ देने के लिए तैयार थे।

डाक्टर साहब किचलू का खूबसूरत लताओं से सजा हुआ बँगला रात के वक्त दिन का समों दिखा रहा था। फाटक के खम्भे, बरामदे की मेहराबें, सरों के पेड़ों की कतारें सब बिजली के बल्बों से जगमगा रही थीं। इन्सान की बिजली की कारीगरी अपना रंगारंग जादू दिखा रही थी। दरवाजे पर शुभागमन का बन्दनवार, पेड़ों पर रंग-बिरंगे पक्षी, लताओं में खिले हुए फूल, यह सब इसी बिजली की रोशनी के जलवे हैं। इसी सुहानी रोशनी में शहर के रईस इठलाते फिर रहे हैं। अभी नाटक शुरू करने में कुछ देर है। मगर उत्कण्ठा लोगों को अधीर करने पर लगी हैं। डाक्टर किचलू दरवाजे पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं। आठ बजे होंगे कि बाबू अक्षयकुमार बड़ी आन-बान के साथ अपनी फिटन से उतरे। डाक्टर साहब चौंक पड़े, आज यह गूलर में कैसे फूल लग गए। उन्होंने बड़े उत्साह से आगे बढ़कर बाबू साहब का स्वागत किया और सर से पाँव तक उन्हें गौर से देखा। उन्हें कभी खयाल भी न हुआ था कि बाबू अक्षयकुमार ऐसे सुन्दर सजीले कपड़े पहने हुए गबरु नौजवान बन सकते हैं। कायाकल्प का स्टण्ट उदाहरण आँखों के सामने खड़ा था।

अक्षय बाबू को देखते ही इधर-उधर के लोग आकर उनके चारों ओर जमा हो गए। हर शख्स हैरत से एक-दूसरे का मुँह ताकता था। हॉठ रुमाल की आड़ ढूँढने लगे, आँखें सरगोशियाँ करने लगीं। हर शख्स ने गैरमामूली तपाक से उनका मिजाज पूछा। शराबियों की मजलिस और पीने की मनाही करने वाली हजरते वाइज की तशरीफ़आवरी का नज़ारा पेश हो गया।

अक्षय बाबू बहुत झेंप रहे थे। उनकी आँखें ऊपर को न उठती थीं। इसलिए जब मिजाज़ापुरियों को तूफान दूर हुआ तो उन्होंने अपनी हरे कपड़ों वाली स्त्री की तलाश में चारों तरफ एक निगाह दौड़ायी और दिल में कहा—यह शोहदे हैं, मसखरे, मगर अभी-अभी उनकी आँखें खुली जाती हैं। मैं दिखा दूँगा कि मुझ पर भी सुन्दरियों की दृष्टि पड़ती है। ऐसी सुन्दरियाँ भी हैं जो सच्चे दिल से मेरे मिजाज़ की कैफियत पूछती हैं और जिनसे अपना दर्देदिल कहने में मैं भी रंगीन-बयान हो सकता हूँ। मगर उस हरे कपड़ों वाली प्रेमिका का कहीं पता न था। निगाँ चारों तरफ से घूम-घामकर नाकाम वापस आयीं।

आध घंटे के बाद नाटक शुरू हुआ। बाबू साहब निराश भाव से पैर उठाते हुए थियेटर हाल में गए और कुर्सी पर बैठ गए। बैठ क्या गए, गिर पड़े। पर्दा उठा। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों के साथ सिर पर घड़ा रखें पौदों को सींचती हुई दिखाई दी। दर्शक बाग-बाग हो गये। तारीफों के नार नाबुलन्द हुए। शकुन्तला का जो काल्पनिक चित्र खिंच सकता है, वह आँखों के सामने खड़ा था—वही प्रेमिका का खुलापन, वही आकर्षक गम्भीरता, वही मतवाली चाल, वही शर्मीली आँखें। अक्षय बाबू पहचान गए यह सुन्दर हँसमुख हेमवती थी।

बाबू अक्षयकुमार का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। इसने मुझसे वादा किया था कि मैं नाटक में न जाऊँगी। मैंने घंटों इस समझाया। अपनी असमर्थता लिखने पर तैयार थी। मगर सिर्फ-दूसरों को रिझाने और लुभाने के लिए, सिर्फ दूसरों के दिलों में अपने रूप और अपनी अदाओं को जादू फूँकने के लिए, सिर्फ दूसरी औरतों को जलाने के लिए उसने मेरी नसीहतों का और अपने वादे का, यहाँ तक कि मेरी अप्रसन्नता का भी जरा भी खयाल न किया !

हेमवती ने भी उड़ती हुई निगाहों से उनकी तरफ देखा। उनके बॉकपन पर उसे जरा भी ताज्जुब न हुआ। कम-से-कम वह मुस्करायी नहीं।

सारी महफिल बेसुध हो रही थी। मगर अक्षयबाबू का जी वहाँ। न लगता था वह बार-बार उठके बाहर जाते, इधर-उधर बेचैनी से आँखें फाड़-फाड़ देखते और हर बार झुंझलाकर वापस आते। चहाँ तक कि बारह बज गए और अब मायूस होकर उन्होंने अपने-आप को कोसना शुरू किया—मैं भी कैसा अहमक हूँ। एक शोख औरत के चकमे में आ गया। जरूर इन्हीं बदमाशों में से किसी की शरारत होगी। यह लोग मुझे देख-देखकर कैसा हँसते थे! इन्हीं में से किसी मसखरे ने यह शिगूफा छोड़ा है। अफसोस ! सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया, लज्जित हुआ सो अलग। कई मुकदमें हाथ से गए। हेमवती की निगाहों में जलील हो गया और यह सब सिर्फ इन हाहियों की खातिर ! मुझसे बड़ा अहमक और कौन होगा !

इस तरह अपने ऊपर लानत भेजते, गुस्से में भरे हुए वे फिर महाफिल की तरफ चले कि एकाएक एक सरो के पेड़ के नीचे वह हरितवसना सुन्दरी उन्हें इशारे से अपनी तरफ बुलाती हुई नजर आयी। खुशी के मारे उनकी बाँछें खिल गई, दिलोंदिमाग पर एक नशा-सा छा गया। मस्ती के कदम उठाते, झूमते और ऐंठते उस स्त्री के पास आये और आशिकाना जोश के साथ बोले—ऐ रुप की रानी, मैं तुम्हारी इस कृपा के लिए हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। तुम्हें देखने के शौक में इस अधमरे प्रेमी की आँखें पथरा गई और अगर तुम्हें

कुछ देर तक और यह आँखें देख न पातीं तो तुम्हें अपने रूप के मारे हुए की लाश पर हसरत के आँसू बहाने पड़ते। कल शाम ही से मेरे दिल की जो हालत हो रही है, उसका जिक्र बयान की ताकत से बाहर हैं। मेरी जान, मैं कल कचहरी न गया, और कई मुकदमें हाथ से खोए। मगर तुम्हारे दर्शन से आत्मा को जो आनन्द मिल रहा है, उस पर मैं अपनी जान भी न्योछावर कर ससकता हूँ। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रेम की आग ने संयम और धैर्य को जलाकर खाक कर दिया है। तुम्हें अपने हुस्न के दीवाने से यह पर्दा करना शोभा नहीं देता। शमा और परवाना मैं पर्दा कैसा। रूप की खान और ऐ सौन्दर्य की आत्मा ! तेरी मुहब्बत भरी बातों ने मेरे दिल में आरजुओं का तूफान पैदा कर दिया है। अब यह दिल तुम्हारे ऊपर न्योछावर है और यह जान तुम्हारे चरणों पर अर्पित है।

यह कहते हुए बाबू अक्षयकुमार ने आशिकों जैसी ढिठाई से आगे बढ़कर उस हरितवसना सुन्दरी का घूँघट उठा दिया और हेमवती को मुस्कराते देखकर बेअख्तियार मुँह से निकला—अरे ! और फिर कुछ मुँह से न निकला। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे आँखों के सामने से पर्दा हट गया। बोले— यह सब तुम्हारी शरारत थी?

सुन्दर, हँसमुख हेमवती मुस्करायी और कुछ जवाब देना चाहती थीं, मगर बाबू अक्षयकुमार ने उस वक्त ज्यादा सवाल-जवाब का मौका न देखा। बहुत लज्जित होते हुए बोले—हेमवत, अब मुँह से कुद मत कहो, तुम जीतीं मैं हार गया। यह हार कभी न भूलेगी।

--जमाना, मई-जून 1992

दशहरे के दिन थे, अचलगढ़ में उत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। दरबारे आम में राज्य के मंत्रियों के स्थान पर अप्सराएँ शोभायमान थीं। धर्मशालों और सरायों में घोड़े हिनहिना रहे थे। रियासत के नौकर, क्या छोटे, क्या बड़े, रसद पहुँचाने के बहाने से दरबाजे आम में जमे रहते थे। किसी तरह हटाये न हटते थे। दरबारे खास में पंडित और पुजारी और महन्त लोग आसन जमाए पाठ करते हुए नजर आते थे। वहाँ किसी राज्य के कर्मचारी की शकल न दिखायी देती थी। घी और पूजा की सामग्री न होने के कारण सुबह की पूजा शाम को होती थी। रसद न मिलने की वजह से पंडित लोग हवन के घी और मेवों के भोग के अग्निकुंड में डालते थे। दरबारे आम में अंग्रेजी प्रबन्ध था और दरबारे खास में राज्य का।

राजा देवमल बड़े हौसलेमन्द रईस थे। इस वार्षिक आनन्दोत्सव में वह जी खोलकर रुपया खर्च करते। जिन दिनों अकाल पड़ा, राज्य के आधे आदमी भूखों तड़पकर मर गए। बुखार, हैजा और प्लेग में हजारों आदमी हर साल मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। राज्य निर्धन था इसलिए न वहाँ पाठशालाएँ थीं, न चिकित्सालय, न सड़कें। बरसात में रनिवास दलदल हो जाता और अँधेरी रातों में सरेशाम से घरों के दरवाजे बन्द हो जाते। अँधेरी सड़कों पर चलना जान जोखिम था। यह सब और इनसे भी ज्यादा कष्टप्रद बातें स्वीकार थीं मगर यह कठिन था, असम्भव था कि दुर्गा देवी का वार्षिक आनन्दोत्सव न हो। इससे राज्य की शान बट्टा लगने का भय था। राज्य मिट जाए, महलों की ईंटें बिक जाएँ मगर यह उत्सव जरूर हो। आस पास के राजे-रईस आमंत्रित होते, उनके शामियानों से मीलों तक संगमरमर का एक शहर बस जाता, हफ्तों तक खूब चहल-पहल धूम-धाम रहती। इसी की बदौलत अचलगढ़ का नाम अटलगढ़ हो गया था।

२

मगर कुंवर इन्दरमल को राजा साहब की इन मस्ताना कार्रवाइयों में बिल्कुल आस्था न थी। वह प्रकृति से एक बहुत गम्भीर और सीधासादा नवयुवक था। यों गजब का दिलेर, मौत के सामने भी ताल ठोंककर उतर पड़े मगर उसकी बहादुरी खून की प्यास से पाक थी। उसके वार बिना पर की चिड़ियों या बेजबान जानवरों पर नहीं होते थे। उसकी तलवार कमजोरों पर नहीं उठती थी। गरीबों की हिमायत, अनाथों की सिफारिशें, निर्धनों की सहायता और भाग्य के मारे हुआँ के घाव की मरहम-पट्टी इन कामों से उसकी आत्मा को सुख मिलता था। दो साल हुए वह इंदौर कालेज से ऊँची शिक्षा पाकर लौटा था और तब से उसका यह जोश असाधारण रूप में बढ़ा हुआ था, इतना कि वह साधारण समझदारी की सीमाओं को लॉच गया था, चौबीस साल का लम्बा-तड़ंगा हैकल जवान, धन ऐश्वर्य के बीच पला हुआ, जिसे चिन्ताओं की कभी हवा तक न लगी, अगर रुलाया तो हँसी ने। वह ऐसा नेक हो, उसके मर्दाना चेहरे पर चिन्तल को पीलापन और झुर्रियाँ नजर आयें यह एक असाधारण बात थी। उत्सव का शुभ दिन पास आ पहुँचा था, सिर्फ चार दिन बाकी थे। उत्सव का प्रबन्ध पूरा हो चुका था, सिर्फ अगर कसर थी तो कहीं-कहीं दोबारा नजर डाल लेने की। तीसरे पहर का वक्त था, राजा साहब रनिवास में बैठे हुए कुछ चुनी हुई अप्सराओं का गाना सुन रहे थे। उनकी सुरीली तानों से जो खुशी हो रही थी; उससे कहीं ज्यादा खुशी यह सोचकर हो रही थी कि यह तराने पोलिटिकल एजेण्ट को भड़का देंगे। वह आँखें बन्द करके सुनेगा और खुशी के मारे उछल-उछल पड़ेगा।

इस विचार से जो प्रसन्नता होती थी वह तानसेन की तानों में भी नहीं हो सकती थी। आह, उसकी जबान से अनजाने ही, 'वाह-वाह' निकल पड़ेगी। अजब नहीं कि उठकर मुझसे हाथ मिलाये और मेरे चुनाव की तारीफ करें इतने में कुंवर इंदरमल बहुत सादा कपड़े पहने सेवा में उपस्थित हुए और सर झुकाकर अभिवादन किया। राजा साहब की आँखें शर्म से झुक गई, मगर कुंवर साहब का इस समय आना अच्छा नहीं लगा। गानेवालियों को वहाँ से उठ जाने का इशारा किया।

कुंवर इन्दरमल बोले—महाराज, क्या मेरी बिनती पर बिल्कुल ध्यान न दिया जायेगा?

राजा साहब की गद्दी के उत्तराधिकारी राजकुमार की इज्जत करते थे और मुहब्बत तो कुदरती बात थी, तो भी उन्हें यह बेमौका हठ पसन्द न आता था। वह इतने संकीर्ण बुद्धि न थे कि कुंवर साहब की नेक सलाहों की कद्र न करें। इससे निश्चय ही राज्य पर बोझ बढ़ता जाता था और रियासत पर बहुत जुल्म करना पड़ता था। मैं अंधा नहीं हूँ कि ऐसी मोटी-मोटी बातें न समझ सकूँ। मगर अच्छी बातें भी मौका-महल देखकर की जाती हैं। आखिरकार नाम और यश, इज्जत और आबरू भी कोई चीज है? रियासत में संगमरमर

की सड़कें बनवा दूँ, गली-गली मंदरसे खोल दूँ, घर-घर कुँएँ खोदवा दूँ, दवाओं की नहरे जारी कर दूँ मगर दशहरे की धूम-धाम से रियासत की जो इज्जत और नाम है वह इन बातों से कभी हासिल नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि धीरे-धीरे यह खर्च घटा दूँ मगर एकबारगी ऐसा करना न तो उचित है और न सम्भव। जवाब दिया—आखिर तुम क्या चाहते हो? क्या दशहरा बिलकुल बन्द कर दूँ?

इन्दरमल ने राजा साहब के तेवर बदले हुए देखे, तो आदरपूर्वक बोले—मैंने कभी दशहरे के उत्सव के खिलाफ मुँह से एक शब्द नहीं निकाला, यह हमारा जातीय पर्व है, यह विजय का शुभ दिन है, आज के दिन खुशियाँ मनाना हमारा जातीय कर्तव्य है। मुझे सिर्फ इन अप्सराओं से आपत्ति है, नाच-गाने से इस दिन की गम्भीरता और महत्ता डूब जाती है।

राजा साहब ने व्यंग्य के स्वर में कहा—तुम्हारा मतलब है कि रो-रोकर जशन मनाएँ, मातम करें।

इन्दरमल ने तीखें होकर कहा—यह न्याय के सिद्धान्तों के खिलाफ बात है कि हम तो उत्सव मनाएँ, और हजारों आदमी उसकी बदौलत मातम करें। बीस हजार मजदूर एक महीने से मुफ्त में काम कर रहे हैं, क्या उनके घरों में खुशियाँ मनाई जा रही हैं? जो पसीना बहायें वह रोटियों को तरसों और जिन्होंने हरामकारी को अपना पेशा बना लिया है, वह हमारी महफिलों की शोभा बनें। मैं अपनी आँखों से यह अन्याय और अत्याचार नहीं देख सकता। मैं इस पाप-कर्म में योग नहीं दे सकता। इससे तो यही अच्छा है कि मुँह छिपाकर कहीं निकल जाऊँ। ऐसे राज में रहना, मैं अपने उसूलों के खिलाफ और शर्मनाम समझता हूँ।

इन्दरमल ने तैश में यह धृष्टतापूर्ण बातें कीं। मगर पिता के प्रेम को जगाने की कोशिश ने राजहठ के सोए हुए काले देव को जगा दिया। राजा साहब गुस्से से भरी हुई आँखों से देखकर बोले—हाँ, मैं भी यही ठीक समझता हूँ। तुम अपने उसूलों के पक्के हो तो मैं भी अपनी धुन का पूरा हूँ।

इन्दरमल ने मुस्कराकर राजा साहब को सलाम किया। उसका मुस्कराना घाव पर नमक हो गया। राजकुमार की आँखों में कुछ बूँदें शायद मरहम का काम देतीं।

३

राजकुमार ने इधर पीठ फेरी, उधर राजा साहब ने फिर अप्सराओं को बुलाया और फिर चित्त को प्रफुल्लित करनेवाले गानों की आवाजें गूँजने लगीं। उनके संगीत-प्रेम की नदी कभी इतने जोर-शोर से न उमड़ी थी, वाह-वाह की बाढ़ आई हुई थी, तालियों का शोर मचा हुआ था और सुर की किशती उस पुरशोर दरिया में हिंडोले की तरह झूल रही थी।

यहाँ तो नाच-गाने का हंगामा गरम था और रनिवास में रोने-पीटने का। रानी भान कुँवर दुर्गा की पूजा करके लौट रही थी कि एक लौंडी ने आकर यह मर्मन्तक समाचार दिया। रानी ने आरती का थाल जमीन पर पटक दिया। वह एक हफ्ते से दुर्गा का व्रत रखती थीं। मृगछाले पर सोती और दूध का आहार करती थीं। पाँव थरीये, जमीन पर गिर पड़ी। मुरझाया हुआ फूल हवा के झोंके को न सह सका। चेरियाँ सम्हल गयीं और रानी के चारों तरफ गोल बांधकर छाती और सिर पीटने लगीं। कोहराम मच गया। आँखों में आँसू न सही, आँचलों से उनका पर्दा छिपा हुआ था, मगर गले में आवाज तो थी। इस वक्त उसी की जरूरत थी। उसी की बुलन्दी और गरज में इस समय भाग्य की झलक छिपी हुई थी।

लौंडियाँ तो इस प्रकार स्वामिभक्ति का परिचय देने में व्यस्त थीं और भानकुँवर अपने खयालों में डूबी हुई थीं। कुँवर से ऐसी बेअदबी क्योंकर हुई, यह खयाल में नहीं आता। उसने कभी मेरी बातों का जवाब नहीं दिया, जरूर राजा की ज्यादाती है।

इसने इस नाच-रंग का विरोध किया होगा, किया ही चाहिए। उन्हें क्या, जो कुछ बनेगी-बिगड़ेगी उसे जिम्मे लगेगी। यह गुस्सेवर हैं ही। झल्ला गये होंगे। उसे सख्त-सुस्त कहा होगा। बात की उसे कहाँ बर्दाश्त, यही तो उसमें बड़ा ऐब है, रुठकर कहीं चला गया होगा। मगर गया कहाँ? दुर्गा ! तुम मेरे लाल की रक्षा करना, मैं उसे तुम्हारे सुपुर्द करती हूँ। अफसोस, यह गजब हो गया। मेरा राज्य सूना हो गया और इन्हें अपने राग-रंग की सूझी हुई है। यह सोचते-सोचते रानी के शरीर में कँपकँपी आ गई, उठकर गुस्से से काँपती हुई वह बेधड़क नाचगाने की महफिल की तरफ चली। करीब पहुँची तो सुरीली तानें सुनाई दीं। एक बरछी-सी जिगर में चुभ गयी। आग पर तेल पड़ गया।

रानी को देखते ही गानेवालियों में एक हलचल-सी मच गई। कोई किसी कोने में जा छिपी, कोई गिरती-पड़ती दरवाजों की तरफ भागी। राजा साहब ने रानी की तरफ घूरकर देखा। भयानक गुस्से का शोला सामने दहक रहा था। उनकी तयोरियों पर भी बल पड़ गए। खून बरसाती हुई आँखें आपस में मिलीं। मोम ने लोहे को सामना किया।

रानी थर्रायी हुई आवाज में बोली—मेरा इन्दरमल कहाँ गया? यह कहते-कहते उसकी आवाज रुक गई और होंठ काँपकर रह गए।

राजा ने बेरुखी से जवाब दिया—मैं नहीं जानता।

रानी सिसकियाँ भरकर बोली—आप नहीं जानते कि वह कल तीसरे पहर से गायब है और उसका कहीं पता नहीं? आपकी इन जहरीली नागिनों ने यह विष बोया है। अगर उसका बाल भी बाँका हुआ तो उसके जिम्मेदार आप होंगे।

राजा ने तुरसी से कहा—वह बड़ा घमण्डी और बिनकहा हो गया है, मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।

रानी कुचले हुए साँप की तरह ऐंठकर बोली—राजा, तुम्हारी जबान से यह बातें निकल रही हैं ! हाय मेरा लो, मेरी आँखों की पुलती, मेरे जिगर का टुकड़ा, मेरा सब कुछ यों अलोप हो जाए और इस बेरहम का दिल जरा भी न पसीजे ! मेरे घर में आग लग जाए और यहाँ इन्द्र का अखाड़ा सजा रहे ! मैं खून के आँसू रोऊँ और यहाँ खुशी के राग अलापे जाएं !

राजा के नथने फड़कने लगे, कड़ककर बोले—रानी भानकुंवर अब जबान बन्द करो। मैं इससे ज्यादा नहीं सुन सकता। बेहतर होगा कि तुम महल में चली जाओ।

रानी ने बिफरी हुई शेरनी की तरह गर्दन उठाकर कहा—हाँ, मैं खुद जाती हूँ। मैं हुजूर के ऐश में विघ्न नहीं डालना चाहती, मगर आपको इसका भुगतान करना पड़ेगा। अचलगढ़ में या तो भान कुंवर रहेगी या आपकी जहरीली, विषैली परियाँ !

राजा पर इस धमकी को कोई असर न हुआ। गेंडे की ढाल पर कच्चे लोहे का असर क्या हो सकता है ! जी में आया कि साफ-साफ कह दें, भान कुंवर चाहे रहे या न रहे यह परियाँ जरूर रहेंगी लेकिन आपने को रोककर बोले—तुमको अख्तियार है, जो ठीक समझो वह करो।

रानी कुछ कदम चलकर फिर लौटीं और बोली—त्रिया-हठ रहेगी या राजहठ?

राजा ने निष्कम स्वर में उत्तर दिया—इस वक्त तो राजहठ ही रहेगी।

४

रानी भानकुंवर के चले जाने के बाद राजा देवमल फिर अपने कमरे में आ बैठे, मगर चिन्तित और मन बिलकुल बुझा हुआ, मुर्दे के समान। रानी की सख्त बातों से दिल के सबसे नाजुक हिस्सों में टीस और जलन हो रही थी। पहले तो वह अपने ऊपर झुंझलाए कि मैंने उसकी बातों को क्यों इतने धीरज से सुना मगर जब गुस्से की आग धीमी हुई और दिमाग का सन्तुलन फिर असली हालत पर आया तो उन घटनाओं पर अपने मन में विचार करने लगे। न्यायप्रिय स्वभाव के लोगों के लिए क्रोध एक चेतावनी होती है, जिससे उन्हें अपने कथन और आचार की अच्छाई और बुराई को जाँचने और आगे के लिए सावधान हो जाने का मौका मिलता है। इस कड़वी दवा से अकसर अनुभव को शक्ति संकट को व्यापकता और चिन्तन को सजगता प्राप्त होती है। राजा सोचने लगे—बेशक रियासत के अन्दरूनी हालात के लिहाज से यह सब नाच-रंग बेमौका है। बेशक वह रिआया के साथ अपना फर्ज नहीं अदा कर रहे थे। वह इन खर्चों और इस नैतिक धब्बे को मिटाने के लिए तैयार थे, मगर इस तरह कि नुक्ताचीनी करने वाली आँखें उसमें कुछ और मतलब न निकाल सकें। रियासत की शान कायम रहे। इतना इन्दरमल से उन्होंने साफ कह दिया था कि अगर इतने पर भी अपनी जिद से बाज नहीं आता तो उसकी ढिठाई है। हर एक मुमकिन पहलू से गौर करने पर राजा साहब के इस फैसले में जरा भी फेर फार न हुआ। कुंवर का यों गायब हो जाना जरूर चिन्ता की बात है और रियासत के लिए उसके खतरनाक नतीजे हो सकते हैं मगर वह अपने आप को इन नतीजों की जिम्मेदारियों से बिलकुल बरी समझते थे। वह यह मानते थे कि इन्दरमल के चले जाने के बाद उनका यह महफिलें जमाना बेमौका और दूसरों को भड़कानेवाला था मगर इसका कुंवर के आखिरी फैसले पर क्या असर पड़ सकता है? कुंवर ऐसा नादाँ, नातजुर्बेकार और बुजदिल तो नहीं है कि आत्महत्या कर लें, हाँ, वह दो-चार दिन इधर-उधर आवारा घूमेगा और अगर ईश्वर ने कुछ भी विवेक उसे दिया तो वह दुखी और लज्जित होकर जरूर चला आएगा। मैं खुद उसे ढूँढ़ निकालूँगा। वह ऐसा कठोर नहीं है कि अपने बूढ़े बाप की मजबूरी पर कुछ भी ध्यान न दे।

इन्दरमल से फारिग होकर राजा साहब का ध्यान रानी की तरफ पहुँचा और जब उसकी आग की तरह दहकती हुई बातें याद आयीं तो गुस्से से बदन में पसीना आ गया और वह बेताब होकर उठकर टहलने लगे। बेशक, मैं उसके साथ बेरहमी से पेश आया। माँ को अपनी औलाद ईमान से भी ज्यादा प्यारी होती है और

उसका रुष्ट होना उचित था मगर इन धमकियों के क्या माने? इसके सिवा कि वह रुठकर मैके चली जाए और मुझे बदनाम करे, वह मेरा और क्या कर सकती है? अक्लमन्दों ने कहा है कि औरत की आज बेवफा होती है, वह मीठे पानी की चंचल, चुलबुली-चमकीली धारा है, जिसकी गोद में चहकती और चिमटती है उसे बालू का ढेर बनाकर छोड़ती है। यही भानकुंवर है जिसकी नाजबरदारियां मुहब्बत का दर्जा रखती हैं। आह, क्या वह पिछली बातें भूल जाऊँ ! क्या उन्हें किस्सा समझकर दिल को तसकीन दूँ।

इसी बीच में एक लौड़ी ने आकर कहा कि महारानी ने हाथी मँगवाया है और न जाने कहाँ जा रही हैं। कुछ बताती नहीं। राजा ने सुना और मुँह फेर लिया।

५

शहर इन्दौर से तीन मील दूर उत्तर की तरफ घने पेड़ों के बीच में एक तालाब है जिसके चाँदी-जैसे चेहरे से काँई का हरा मखमली घूँघट कभी नहीं उठता। कहते हैं किसी जमाने में उसके चारों तरफ पक्के घाट बने हुए थे मगर इस वक्त तो सिर्फ यह अनश्रुति बाकी थी जो कि इस दुनिया में अकसर ईट-पत्थर की यादगारी से ज्यादा टिकाऊ हुआ करती है।

तालाब के पूरब में एक पुराना मन्दिर था, उसमें शिव जी राख की धूनी रमाये खामोश बैठे हुए थे। अबाबीलें और जंगली कबूतर उन्हीं अपनी मीठी बोलियाँ सुनाया करते। मगर उस वीराने में भी उनके भक्तों की कमी न थी। मंदिर के अन्दर भरा हुआ पानी और बाहर बदबूदार कीचड़, इस भक्ति के प्रमाण थे। वह मुसाफिर जो इस तालाब में नहाता उसके एक लोटे पानी से अपने ईश्वर की प्यास बुझाता था। शिव जी खाते कुछ न थे मगर पानी बहुत पीते थे। उनकी न बुझनेवाली प्यास कभी न बुझती थी।

तीसरे पहर का वक्त था। क्वार की धूप तेज थी। कुंवर इन्दरमल अपने हवा की चालवाले घोड़े पर सवार इन्दौर की तरफ से आए और एक पेड़ की छाया में ठहर गए। वह बहुत उदास थे। उन्होंने घोड़े को पेड़ से बाँध दिया और खुद जीन के ऊपर डालनेवाला कपड़ा बिछाकर लेट रहे। उन्हें अचलगढ़ से निकले आज तीसरा दिन है मगर चिन्ताओं ने पलक नहीं झपकने दी। रानी भानकुंवर उसके दिल से एक पल के लिए भी दूर न होती थी। इस वक्त ठण्डी हवा लगी तो नींद आ गई। सपने में देखने लगा कि जैसे रानी आई हैं और उसे गले लगाकर रो रही हैं। चौंकर आँखें खोलीं तो रानी सचमुच सामने खड़ी उसकी तरफ आँसू भरी आँखों से ताक रही थीं। वह उठ बैठा और माँ के पैरों को चूमा। मगर रानी ने ममता से उठाकर गले लगा लेने के बजाय अपने पाँव हटा लिए और मुँह से कुछ न बोली।

इन्दरमल ने कहा—माँ जी, आप मुझसे नाराज हैं?

रानी ने रुखाई से जवाब दिया—मैं तुम्हारी कौन होती हूँ !

कुंवर—आपको यकीन आए न आए, मैं जब से अचलगढ़ से चला हूँ एक पल के लिए भी आपका खयाल दिल से दूर नहीं हुआ। अभी आप ही को सपने में देख रहा था।

इन शब्दों ने रानी का गुस्सा ठंडा किया। कुंवर की ओर से निश्चित होकर अब वह राजा का ध्यान कर रही थी। उसने कुंवर से पूछा—तुम तीन दिन कहाँ रहे?

कुंवर ने जावाब दिया—क्या बताऊँ, कहाँ रहा। इन्दौर चला गया था वहाँ पोलिटिकल एजेण्ट से सारी कथा कह सुनाई।

रानी ने यह सुना तो माथा पीटकर बोली—तुमने गजब कर दिया। आग लगा दी।

इन्दरमल—क्या करूँ, खुद पछताता हूँ, उस वक्त यही धुन सवार थी।

रानी—मुझे जिन बातों का डर था वह सब हो गई। अब कौन मुँह लेकर अचलगढ़ जायेंगे।

इन्दरमल—मेरा जी चाहता है कि अपना गला घोट लूँ।

रानी—गुस्सा बुरी बला है। तुम्हारे आने के बाद मैंने रार मचाई और कुद यही इरादा करके इन्दौर जा रही थी, रास्ते में तुम मिल गए।

यह बातें हो ही रही थीं कि सामने से बहेलियों और साँड़नियों की एक लम्बी कतार आती हुई दिखाई दी। साँड़नियों पर मर्द सवार थे। सुरमा लगी आँखों वाले, पेचदार जुल्फोंवाले। बहेलियों में हुस्न के जलवे थे। शोख निगाहें, बेधड़क चितवनें, यह उन नाच-रंग वालों का काफिला था जो अचलगढ़ से निराश और खिन्न चला आता था। उन्होंने रानी की सवारी देखी और कुंवर का घोड़ा पहचान लिया। घमण्ड से सलाम किया मगर बोले नहीं। जब वह दूर निकल गए तो कुंवर ने जोर से कहकहा मारा। यह विजय का नारा था।

रानी ने पूछा—यह क्या कायापलट हो गई। यह सब अचलगढ़ से लौटे आते हैं और ऐन दशहरे के दिन?

इन्दरमल बड़े गर्व से बोले—यह पोलिटिकल एजेंट के इनकारी तार के करिश्में हैं, मेरी चाल बिलकुल ठीक पड़ी।

रानी का सन्देह दूर हो गया। जरूर यही बात है यह इनकारी तार की करामात है। वह बड़ी देर तक बेसुध-सी जमीन की तरफ ताकती रही और उसके दिल में बार-बार यह सवाल पैदा होता था, क्या इसी का नाम राजहठ है।

आखिरी इन्दरमल ने खामोशी तोड़ी—क्या आज चलने का इरादा है कि कल?

रानी—कल शाम तक हमको अचलगढ़ पहुँचना है, महाराज घबराते होंगे।

-जमाना, सितम्बर १९१२

सिर्फ एक आवाज

सुबह का वक्त था। ठाकुर दर्शनसिंह के घर में एक हंगामा बरपा था। आज रात को चन्द्रग्रहण होने वाला था। ठाकुर साहब अपनी बूढ़ी ठकुराइन के साथ गंगाजी जाते थे इसलिए सारा घर उनकी पुरशोर तैयारी में लगा हुआ था। एक बहू उनका फटा हुआ कुर्ता टाँक रही थी, दूसरी बहू उनकी पगड़ी लिए सोचती थी, कि कैसे इसकी मरम्मत करूँ दोनो लड़कियाँ नाश्ता तैयार करने में तल्लीन थीं। जो ज्यादा दिलचस्प काम था और बच्चों ने अपनी आदत के अनुसार एक कुहराम मचा रक्खा था क्योंकि हर एक आने-जाने के मौके पर उनका रोने का जोश उमंग पर होत था। जाने के वक्त साथी जाने के लिए रोते, आने के वक्त इसलिए रोते किशरीनी का बॉट-बखरा मनोनुकूल नहीं हुआ। बूढ़ी ठकुराइन बच्चों को फुसलाती थी और बीच-बीच में अपनी बहुओं को समझाती थी-देखो खबरदार ! जब तक उग्रह न हो जाय, घर से बाहर न निकलना। हँसिया, छुरी, कुल्हाड़ी, इन्हें हाथ से मत छुना। समझाये देती हूँ, मानना चाहे न मानना। तुम्हें मेरी बात की परवाह है। मुंह में पानी की बूंदें न पड़ें। नारायण के घर विपत पड़ी है। जो साधु—भिखारी दरवाजे पर आ जाय उसे फेरना मत। बहुओं ने सुना और नहीं सुना। वे मना रहीं थीं कि किसी तरह यह यहाँ से टलें। फागुन का महीना है, गाने को तरस गये। आज खूब गाना-बजाना होगा।

ठाकुर साहब थे तो बूढ़े, लेकिन बूढ़ापे का असर दिल तक नहीं पहुँचा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि कोई ग्रहण गंगा-स्नान के बगैर नहीं छूटा। उनका ज्ञान आश्चर्य जनक था। सिर्फ पत्रों को देखकर महीनों पहले सूर्य-ग्रहण और दूसरे पर्वों के दिन बता देते थे। इसलिए गाँववालों की निगाह में उनकी इज्जत अगर पण्डितों से ज्यादा न थी तो कम भी न थी। जवानी में कुछ दिनों फौज में नौकरी भी की थी। उसकी गर्मी अब तक बाकी थी, मजाल न थी कि कोई उनकी तरफ सीधी आँख से देख सके। सम्मन लानेवाले एक चपरासी को ऐसी व्यावहारिक चेतावनी दी थी जिसका उदाहरण आस-पास के दस-पाँच गाँव में भी नहीं मिल सकता। हिम्मत और हौसले के कामों में अब भी आगे-आगे रहते थे किसी काम को मुश्किल बता देना, उनकी हिम्मत को प्रेरित कर देना था। जहाँ सबकी जबानें बन्द हो जाएँ, वहाँ वे शेरों की तरह गरजते थे। जब कभी गाँव में दरोगा जी तशरीफ लाते तो ठाकुर साहब ही का दिल-गुर्दा था कि उनसे आँखें मिलाकर आमने-सामने बात कर सकें। ज्ञान की बातों को लेकर छिड़नेवाली बहसों के मैदान में भी उनके कारनामे कुछ कम शानदार न थे। झगड़ा पण्डित हमेशा उनसे मुँह छिपाया करते। गरज, ठाकुर साहब का स्वभावगत गर्व और आत्म-विश्वास उन्हें हर बरात में दूल्हा बनने पर मजबूर कर देता था। हाँ, कमजोरी इतनी थी कि अपना आल्हा भी आप ही गा लेते और मजे ले-लेकर क्योंकि रचना को रचनाकार ही खूब बयान करता है।

जब दोपहर होते-होते ठाकुराइन गाँव से चले तो सैंकड़ों आदमी उनके साथ थे और पक्की सड़क पर पहुँचे, तो यात्रियों का ऐसा ताँता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाजार है। ऐसे-ऐसे बुढ़े लाठियाँ टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी। अन्धे दूसरों की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाये आते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर पर कपड़ों की पोटली, किसी के कन्धे पर लोटा-डोर, किसी के कन्धे पर काँवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चीथड़े लपेट लिये थे, जूते कहाँ से लायें। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था। सबके चेहरे खिले हुए, हँसते-हँसते बातें करते चले जा रहे थे कुछ औरतें गा रही थी:

चाँद सूरज दूनो लोक के मालिक
एक दिना उनहूँ पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती

ऐसा मालूम होता था, यह आदमियों की एक नदी थी, जो सैंकड़ों छोटे-छोटे नालों और धारों को लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए जा रही थी।

जब यह लोग गंगा के किनारे पहुँचे तो तीसरे पहर का वक्त था लेकिन मीलों तक कहीं तिल रखने की जगह न थी। इस शानदार दृश्य से दिलों पर ऐसा रोब और भक्ति का ऐसा भाव छा जाता था कि बरबस 'गंगा माता की जय' की सदायें बुलन्द हो जाती थीं। लोगों के विश्वास उसी नदी की तरह उमड़े हुए थे और वह नदी! वह लहराता हुआ नीला मैदान! वह प्यासों की प्यास बुझानेवाली! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी! वह पवित्रता का स्रोत! वह मुट्ठी भर खाक को आश्रय देनेवाली गंगा हँसती-मुस्कराती थी और उछलती थी। क्या इसलिए कि आज वह अपनी चौतरफा इज्जत पर फूली न समाती थी या इसलिए कि वह उछल-उछलकर अपने प्रेमियों के गले मिलना चाहती थी जो उसके दर्शनों के लिए मंजिल तय करके आये थे! और उसके परिधान की प्रशंसा किस जबान से हो, जिस सूरज से चमकते हुए तारे टाँके थे और जिसके किनारों को उसकी किरणों ने रंग-बिरंगे, सुन्दर और गतिशील फूलों से सजाया था।

अभी ग्रहण लगने में धण्टे की देर थी। लोग इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं मदारियों के खेल थे, कहीं चूरनवाले की लच्छेदार बातों के चमत्कार। कुछ लोग मेढ़ों की कुश्ती देखने के लिए जमा थे। ठाकुर साहब भी अपने कुछ भक्तों के साथ सैर को निकले। उनकी हिम्मत ने गवारा न किया कि इन बाजारु दिलचस्पियों में शरीक हों। यकायक उन्हें एक बड़ा-सा शामियाना तना हुआ नजर आया, जहाँ ज्यादातर पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ थी। ठाकुर साहब ने अपने साथियों को एक किनारे खड़ा कर दिया और खुद गर्व से ताकते हुए फर्श पर जा बैठे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यहाँ उन पर देहातियों की ईर्ष्या--दृष्टि पड़ेगी और सम्भव है कुछ ऐसी बारीक बातें भी मालूम हो जायँ तो उनके भक्तों को उनकी सर्वज्ञता का विश्वास दिलाने में काम दे सकें।

यह एक नैतिक अनुष्ठान था। दो-ढाई हजार आदमी बैठे हुए एक मधुरभाषी वक्ता का भाषण सुन रहे थे। फैशनेबुल लोग ज्यादातर अगली पंक्ति में बैठे हुए थे जिन्हें कनबतियों का इससे अच्छा मौका नहीं मिल सकता था। कितने ही अच्छे कपड़े पहने हुए लोग इसलिए दुखी नजर आते थे कि उनकी बगल में निम्न श्रेणी के लोग बैठे हुए थे। भाषण दिलचस्त मालूम पड़ता था। वजन ज्यादा था और चटखारे कम, इसलिए तालियाँ नहीं बजती थी।

3

वक्ता ने अपने भाषण में कहा—

मेरे प्यारे दोस्तो, यह हमारा और आपका कर्तव्य है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण, ज्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज्यादा शुभ और कोई कर्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यंत करुण है। मगर विश्वास मानिये यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का जिम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है? अब इसके सिवा और कोई इलाज नहीं है कि हम उस घृणा और उपेक्षा को, जो उनकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है, धोयें और खूब मलकर धोयें। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हजार वर्षों से जमी हुई है, वह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन लोगों की छाया से हम बचते आये हैं, जिन्हें हमने जानवरों से भी जलील समझ रक्खा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही

उनसे शादी के रिश्ते जोड़ें या उनके साथ बैठकर खाएँ-पियें। मगर क्या यह भी मुमकिन नहीं है कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आयें? क्या यह सचमुच असम्भव बात है? आपने कभी ईसाई मिशनरियों को देखा है? आह, जब मैं एक उच्चकोटि का सुन्दर, सुकुमार, गौरवर्ण लेडी को अपनी गोद में एक काला-कलूटा बच्चा लिये हुए देखता हूँ जिसके बदन पर फोड़े हैं, खून है और गन्दगी है—वह सुन्दरी उस बच्चे को चूमती है, प्यार करती है, छाती से लगाती है—तो मेरा जी चाहता है उस देवी के कदमों पर सिर रख दूँ। अपनी नीचता, अपना कमीनापन, अपनी झूठी बड़ाई, अपने हृदय की संकीर्णता मुझे कभी इतनी सफाई से नजर नहीं आती। इन देवियों के लिए जिन्दगी में क्या-क्या संपदाएँ, नहीं थी, खुशियाँ बाँहें पसारे हुए उनके इन्तजार में खड़ी थी। उनके लिए दौलत की सब सुख-सुविधाएँ थीं। प्रेम के आकर्षण थे। अपने आत्मीय और स्वजनों की सहानुभूतियाँ थीं और अपनी प्यारी मातृभूमि का आकर्षण था। लेकिन इन देवियों ने उन तमाम नेमतों, उन सब सांसारिक संपदाओं को सेवा, सच्ची निस्वार्थ सेवा पर बलिदान कर दिया है ! वे ऐसी बड़ी कुर्बानियाँ कर सकती हैं, तो हम क्या इतना भी नहीं कर सकते कि अपने अछूत भाइयों से हमदर्दी का सलूक कर सकें? क्या हम सचमुच ऐसे पस्त-हिम्मत, ऐसे बोदे, ऐसे बेरहम हैं? इसे खूब समझ लीजिए कि आप उनके साथ कोई रियायत, कोई मेहरबानी नहीं कर रहे हैं। यह उन पर कोई एहसान नहीं है। यह आप ही के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल है। इसलिए मेरे भाइयों और दोस्तों, आइये इस मौके पर शाम के वक्त पवित्र गंगा नदी के किनारे काशी के पवित्र स्थान में हम मजबूत दिल से प्रतिज्ञा करें कि आज से हम अछूतों के साथ भाई-चारे का सलूक करेंगे, उनके तीज-त्योहारों में शरीक होंगे और अपने त्योहारों में उन्हें बुलायेंगे। उनके गले मिलेंगे और उन्हें अपने गले लगायेंगे! उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों में दर्दमन्द होंगे, और चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय, चाहे ताना-तिशनों और जिल्लत का सामना ही क्यों न करना पड़े, हम इस प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे। आप में सैंकड़ों जोशीले नौजवान हैं जो बात के धनी और इरादे के मजबूत हैं। कौन यह प्रतिज्ञा करता है? कौन अपने नैतिक साहस का परिचय देता है? वह अपनी जगह पर खड़ा हो जाय और ललकारकर कहे कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक इस पर दृढ़ता से कायम रहूँगा।

४

सूरज गंगा की गोद में जा बैठा था और माँ प्रेम और गर्व से मतवाली जोश में उमड़ी हुई रंग केसर को शर्माती और चमक में सोने की लजाती थी। चार तरफ एक रोबीली खामोशी छायी थी उस सन्नाटे में संन्यासी की गर्मी और जोश से भरी हुई बातें गंगा की लहरों और गगनचुम्बी मंदिरों में समा गयीं। गंगा एक गम्भीर माँ की निराशा के साथ हँसी और देवताओं ने अफसोस से सिर झुका लिया, मगर मुँह से कुछ न बोले।

संन्यासी की जोशीली पुकार फिजां में जाकर गायब हो गई, मगर उस मजमे में किसी आदमी के दिल तक न पहुँची। वहाँ कौम पर जान देने वालों की कमी न थी: स्टेजों पर कौमी तमाशे खेलनेवाले कालेजों के होनहार नौजवान, कौम के नाम पर मिटनेवाले पत्रकार, कौमी संस्थाओं के मेम्बर, सेक्रेटरी और प्रेसिडेंट, राम और कृष्ण के सामने सिर झुकानेवाले सेठ और साहूकार, कौमी कालिजों के ऊँचे हौंसलोंवाले प्रोफेसर और अखबारों में कौमी तरक्कियों की खबरें पढ़कर खुश होने वाले दफ्तरों के कर्मचारी हजारों की तादाद में मौजूद थे। आँखों पर सुनहरी ऐनकें लगाये, मोटे-मोटे वकीलों का एक पूरी फौज जमा थी। मगर संन्यासी के उस गर्म भाषण से एक दिल भी न पिघला क्योंकि वह पत्थर के दिल थे जिसमें दर्द और घुलावट न थी, जिसमें सदृच्छा थी मगर कार्य-शक्ति न थी, जिसमें बच्चों की सी इच्छा थी मर्दों का-सा इरादा न था।

सारी मजलिस पर सन्नाटा छाया हुआ था। हर आदमी सिर झुकाये फिक्र में डूबा हुआ नजर आता था। शर्मिंदगी किसी को सर उठाने न देती थी और आँखें झेंप में मारे जमीन में गड़ी हुई थी। यह वही सर हैं जो कौमी चर्चों पर उछल पड़ते थे, यह वही आँखें हैं जो किसी वक्त राष्ट्रीय गौरव की लाली से भर जाती थी। मगर कथनी और करनी में आदि और अन्त का अन्तर है। एक व्यक्ति को भी खड़े होने का साहस न हुआ। कैंची की तरह चलनेवाली जबान भी ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भय से बन्द हो गयीं।

5

ठाकुर दर्शनसिंह अपनी जमीन पर बैठे हुए इस दृश्य को बहुत गौर और दिलचस्पी से देख रहे थे। वह अपने मार्मिक विश्वासों में चाहे कट्टर हो या न हों, लेकिन सांस्कृतिक मामलों में वे कभी अगुवाई

करने के दोषी नहीं हुए थे। इस पेचीदा और डरावने रास्ते में उन्हें अपनी बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं होता था। यहाँ तर्क और युक्ति को भी उनसे हार माननी पड़ती थी। इस मैदान में वह अपने घर की स्त्रियों की इच्छा पूरी करने ही अपना कर्तव्य समझते थे और चाहे उन्हें खुद किसी मामले में कुछ एतराज भी हो लेकिन यह औरतों का मामला था और इसमें वे हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे परिवार की व्यवस्था में हलचल और गड़बड़ी पैदा हो जाने की जबरदस्त आशंका रहती थी। अगर किसी वक्त उनके कुछ जोशीले नौजवान दोस्त इस कमजोरी पर उन्हें आड़े हाथों लेते तो वे बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा करते थे—भाई, यह औरतों के मामले हैं, उनका जैसा दिल चाहता है, करती हैं, मैं बोलनेवाला कौन हूँ। गरज यहाँ उनकी फौजी गर्म-मिजाजी उनका साथ छोड़ देती थी। यह उनके लिए तिलिस्म की घाटी थी जहाँ होश-हवास बिगड़ जाते थे और अन्धे अनुकरण का पैर बँधी हुई गर्दन पर सवार हो जाता था।

लेकिन यह ललकार सुनकर वे अपने को काबू में न रख सके। यही वह मौका था जब उनकी हिम्मतें आसमान पर जा पहुँचती थीं। जिस बीड़े को कोई न उठाये उसे उठाना उनका काम था। वर्जनाओं से उनको आत्मिक प्रेम था। ऐसे मौके पर वे नतीजे और मसलहत से बगावत कर जाते थे और उनके इस हौसले में यश के लोभ को उतना दखल नहीं था जितना उनके नैसर्गिक स्वाभाव का। वर्ना यह असम्भव था कि एक ऐसे जलसे में जहाँ ज्ञान और सभ्यता की धूम-धाम थी, जहाँ सोने की ऐनकों से रोशनी और तरह-तरह के परिधानों से दीप्त चिन्तन की किरणें निकल रही थीं, जहाँ कपड़े-लते की नफासत से रोब और मोटापे से प्रतिष्ठा की झलक आती थी, वहाँ एक देहाती किसान को जबान खोलने का हौसला होता। ठाकुर ने इस दृश्य को गौर और दिलचस्पी से देखा। उसके पहलू में गुदगुदी-सी हुई। जिन्दादिली का जोश रगों में दौड़ा। वह अपनी जगह से उठा और मर्दाना लहजे में ललकारकर बोला—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक उस पर कायम रहूँगा।

६

इतना सुनना था कि दो हजार आँखें अचम्भे से उसकी तरफ ताकने लगीं। सुभानअल्लाह, क्या हुलिया थी—गाढे की ढीली मिर्जई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सर पर एक भारी-सा उलझा हुआ साफा, कन्धे पर चुनौटी और तम्बाकू का वजनी बटुआ, मगर चेहरे से गम्भीरता और दृढ़ता स्पष्ट थी। गर्व आँखों के तंग घेरे से बाहर निकला पड़ता था। उसके दिल में अब इस शानदार मजमे की इज्जत बाकी न रही थी। वह पुराने वक्तों का आदमी था जो अगर पत्थर को पूजता था तो उसी पत्थर से डरता भी था, जिसके लिए एकादशी का व्रत केवल स्वास्थ्य-रक्षा की एक युक्ति और गंगा केवल स्वास्थ्यप्रद पानी की एक धारा न थी। उसके विश्वासों में जागृति न हो लेकिन दुविधा नहीं थी। यानी कि उसकी कथनी और करनी में अन्तर न था और न उसकी बुनियाद कुछ अनुकरण और देखादेखी पर थी मगर अधिकांशतः भय पर, जो ज्ञान के आलोक के बाद वृत्तियों के संस्कार की सबसे बड़ी शक्ति है। गेरुए बाने का आदर और भक्ति करना इसके धर्म और विश्वास का एक अंग था। संन्यास में उसकी आत्मा को अपना अनुचर बनाने की एक सजीव शक्ति छिपी हुई थी और उस ताकत ने अपना असर दिखाया। लेकिन मजमे की इस हैरत ने बहुत जल्द मजाक की सूरत अख्तियार की। मतलबभरी निगाहें आपस में कहने लगीं—आखिर गंवार ही तो ठहरा! देहाती है, ऐसे भाषण कभी काहे को सुने होंगे, बस उबल पड़ा। उथले गड्ढे में इतना पानी भी न समा सका! कौन नहीं जानता कि ऐसे भाषणों का उद्देश्य मनोरंजन होता है! दस आदमी आये, इकट्ठे बैठ, कुछ सुना, कुछ गप-शप मारी और अपने-अपने घर लौटे, न यह कि कौल-करार करने बैठे, अमल करने के लिए कसमें खाये!

मगर निराश संन्यासी सो रहा था—अफसोस, जिस मुल्क की रोशनी में इतना अंधेरा है, वहाँ कभी रोशनी का उदय होना मुश्किल नजर आता है। इस रोशनी पर, इस अंधेरी, मुर्दा और बेजान रोशनी पर मैं जहालत को, अज्ञान को ज्यादा ऊँची जगह देता हूँ। अज्ञान में सफाई है और हिम्मत है, उसके दिल और जबान में पर्दा नहीं होता, न कथनी और करनी में विरोध। क्या यह अफसोस की बात नहीं है कि ज्ञान और अज्ञान के आगे सिर झुकाये? इस सारे मजमे में सिर्फ एक आदमी है, जिसके पहलू में मर्दों का दिल है और गो उसे बहुत सजग होने का दावा नहीं लेकिन मैं उसके अज्ञान पर ऐसी हजारों जागृतियों को कुर्बान कर सकता हूँ। तब वह प्लेटफार्म से नीचे उतरे और दर्शनसिंह को गले से लगाकर कहा—ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर कायम रखे।

--जमाना, अगस्त-सितम्बर १९१३

सावन का महीना था। रेवती रानी ने पांव में मेहंदी रचायी, मांग-चोटी संवारी और तब अपनी बूढ़ी सास ने जाकर बोली—अम्मां जी, आज भी मेला देखने जाऊँगी।

रेवती पण्डित चिन्तामणि की पत्नी थी। पण्डित जी ने सरस्वती की पूजा में ज्यादा लाभ न देखकर लक्ष्मी देवी की पूजा करनी शुरू की थी। लेन-देन का कार-बार करते थे मगर और महाजनों के विपरीत खास-खास हालतों के सिवा पच्चीस फीसदी से ज्यादा सूद लेना उचित न समझते थे।

रेवती की सास बच्चे को गोद में लिये खटोले पर बैठी थी। बहू की बात सुनकर बोली—भीग जाओगी तो बच्चे को जुकाम हो जायगा।

रेवती—नहीं अम्मां, कुछ देर न लगेगी, अभी चली आऊँगी।

रेवती के दो बच्चे थे—एक लड़का, दूसरी लड़की। लड़की अभी गोद में थी और लड़का हीरामन सातवें साल में था। रेवती ने उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाये। नजर लगने से बचाने के लिए माथे और गालों पर काजल के टीके लगा दिये, गुड़ियाँ पीटने के लिए एक अच्छी रंगीन छड़ी दे दी और अपनी सहेलियाँ के साथ मेला देखने चली।

कीरत सागर के किनारे औरतों का बड़ा जमघट था। नीलगूँ घटाएँ छायी हुई थीं। औरतें सोलह सिंगार किए सागर के खुले हुए हरे-भरे सुन्दर मैदान में सावन की रिमझिम वर्षा की बहार लूट रही थीं। शाखों में झूले पड़े थे। कोई झूला झूलती कोई मल्हार गाती, कोई सागर के किनारे बैठी लहरों से खेलती। ठंडी-ठंडी खुशगवार पानी की हलकी-हलकी फुहार पहाड़ियों की निखरी हुई हरियावल, लहरों के दिलकश झकोले मौसम को ऐसा बना रहे थे कि उसमें संयम टिक न पाता था।

आज गुड़ियों की विदाई है। गुड़ियाँ अपनी ससुराल जायेंगी। कुंवारी लड़कियाँ हाथ-पाँव में मेहंदी रचाये गुड़ियों को गहने-कपड़े से सजाये उन्हें विदा करने आयी हैं। उन्हें पानी में बहाती हैं और छकछक-कर सावन के गीत गाती हैं। मगर सुख-चैन के आंचल से निकलते ही इन लाड़-प्यार में पली हुई गुड़ियों पर चारों तरफ से छड़ियों और लकड़ियों की बौछार होने लगती है।

रेवती यह सैर देख रही थी और हीरामन सागर की सीढ़ियों पर और लड़कियों के साथ गुड़ियाँ पीटने में लगा हुआ था। सीढ़ियों पर काई लगी हुई थीं अचानक उसका पाँव फिसला तो पानी में जा पड़ा। रेवती चीख मारकर दौड़ी और सर पीटने लगी। दम के दम में वहाँ मर्दों और औरतों का ठट लग गया मगर यह किसी की इन्सानियत तकाजा न करती थी कि पानी में जाकर मुमकिन हो तो बच्चे की जान बचाये। संवारे हुए बाल न बिखर जायेंगे! धुली हुई धोती न भीग जाएगी! कितने ही मर्दों के दिलों में यह मर्दाना खयाल आ रहे थे। दस मिनट गुजरे गये मगर कोई आदमी हिम्मत करता नजर न आया। गरीब रेवती पछाड़े खा रही थीं अचानक उधर से एक आदमी अपने घोड़े पर सवार चला जाता था। यह भीड़ देखकर उतर पड़ा और एक तमाशाई से पूछा—यह कैसी भीड़ है? तमाशाई ने जवाब दिया—एक लड़का डूब गया है।

मुसाफिर—कहाँ?

तमाशाई—जहाँ वह औरत खड़ी रो रही है।

मुसाफिर ने फौरन अपनी गाढ़े की मिर्जई उतारी और धोती कसकर पानी में कूद पड़ा। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग हैरान थे कि यह आदमी कौन हैं। उसने पहला गोता लगाया, लड़के की टोपी मिली। दूसरा गोता लगाया तो उसकी छड़ी हाथ में लगी और तीसरे गोते के बाद जब ऊपर आया तो लड़का उसकी गोद में था। तमाशाइयों ने जोर से वाह-वाह का नारा बुलन्द किया। मां दौड़कर बच्चे से लिपट गयी। इसी बीच पण्डित चिन्तामणि के और कई मित्र आ पहुँचे और लड़के को होश में लाने की फिक्र करने लगे। आध घण्टे में लड़के ने आँखें खोल दीं। लोगों की जान में जान आई। डाक्टर साहब ने कहा—अगर लड़का दो मिनट पानी में रहता तो बचना असम्भव था। मगर जब लोग अपने गुमनाम भलाई करने वाले को ढूँढ़ने लगे तो उसका कहीं पता न था। चारों तरफ आदमी दौड़ाये, सारा मेला छान मारा, मगर वह नजर न आया।

बीस साल गुजर गए। पण्डित चिन्तामणि का कारोबार रोज ब रोज बढ़ता गया। इस बीच मैं उसकी माँ ने सातों यात्राएँ कीं और मरीं तो ठाकुरद्वारा तैयार हुआ। रेवती बहू से सास बनी, लेन-देन, बही-खाता हीरामणि के साथ मैं आया हीरामणि अब एक हष्ट-पुष्ट लम्बा-तगड़ा नौजवान था। बहुत अच्छे स्वभाव का, नेक। कभी-कभी बाप से छिपाकर गरीब असामियों को यों ही कर्ज दे दिया करता। चिन्तामणि ने कई बार इस अपराध के लिए बेटे को आँखें दिखाई थीं और अलग कर देने की धमकी दी थी। हीरामणि ने एक बार एक संस्कृत पाठशाला के लिए पचास रुपया चन्दा दिया। पण्डित जी उस पर ऐसे क्रुद्ध हुए कि दो दिन तक खाना नहीं खाया। ऐसे अप्रिय प्रसंग आये दिन होते रहते थे, इन्हीं कारणों से हीरामणि की तबीयत बाप से कुछ खिंची रहती थी। मगर उसकी या सारी शरारतें हमेशा रेवती की साजिश से हुआ करती थीं। जब कस्बे की गरीब विधवायें या जमींदार के सताये हुए असामियों की औरतें रेवती के पास आकर हीरामणि को आंचल फैला—फैलाकर दुआएँ देने लगती तो उसे ऐसा मालूम होता कि मुझसे ज्यादा भाग्यवान और मेरे बेटे से ज्यादा नेक आदमी दुनिया में कोई न होगा। तब उसे बरबस वह दिन याद आ जाता तब हीरामणि कीरत सागर में डूब गया था और उस आदमी की तस्वीर उसकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती जिसने उसके लाल को डूबने से बचाया था। उसके दिल की गहराई से दुआ निकलती और ऐसा जी चाहता कि उसे देख पाती तो उसके पांव पर गिर पड़ती। उसे अब पक्का विश्वास हो गया था कि वह मनुष्य न था बल्कि कोई देवता था। वह अब उसी खटोले पर बैठी हुई, जिस पर उसकी सास बैठती थी, अपने दोनों पोतों को खिलाया करती थी।

आज हीरामणि की सत्ताईसवीं सालगिरह थी। रेवती के लिए यह दिन साल के दिनों में सबसे अधिक शुभ था। आज उसका दया का हाथ खूब उदारता दिखलाता था और यही एक अनुचित खर्च था जिसमें पण्डित चिन्तामणि भी शरीक हो जाते थे। आज के दिन वह बहुत खुश होती और बहुत रोती और आज अपने गुमनाम भलाई करनेवाले के लिए उसके दिल से जो दुआएँ निकलतीं वह दिल और दिमाग की अच्छी से अच्छी भावनाओं में रंगी होती थीं। उसी दिन की बदौलत तो आज मुझे यह दिन और यह सुख देखना नसीब हुआ है!

३

एक दिन हीरामणि ने आकर रेवती से कहा—अम्मां, श्रीपुर नीलाम पर चढ़ा हुआ है, कहो तो मैं भी दाम लगाऊँ।

रेवती—सोलहो आना है?

हीरामणि—सोलहो आना। अच्छा गांव है। न बड़ा न छोटा। यहाँ से दस कोस है। बीस हजार तक बोली चढ़ चुकी है। सौ-दौ सौ में खत्म हो जायगी।

रेवती—अपने दादा से तो पूछो

हीरामणि—उनके साथ दो घंटे तक माथापच्ची करने की किसे फुरसत है।

हीरामणि अब घर का मालिक हो गया था और चिन्तामणि की एक न चलने पाती। वह गरीब अब ऐनक लगाये एक गद्दे पर बैठे अपना वक्त खांसने में खर्च करते थे।

दूसरे दिन हीरामणि के नाम पर श्रीपुर खत्म हो गया। महाजन से जमींदार हुए अपने मुनीम और दो चपरासियों को लेकर गांव की सैर करने चले। श्रीपुरवालों को खबर हुई। नये जमींदार का पहला आगमन था। घर-घर नजराने देने की तैयारियाँ होने लगीं। पांचतें दिन शाम के वक्त हीरामणि गांव में दाखिल हुए। दही और चावल का तिलक लगाया गया और तीन सौ असामी पहर रात तक हाथ बांधे हुए उनकी सेवा में खड़े रहे। सवेरे मुख्तारआम ने असामियों का परिचय कराना शुरू किया। जो असामी जमींदार के सामने आता वह अपनी बिसात के मुताबिक एक या दो रुपये उनके पांव पर रख देता। दोपहर होते-होते पांच सौ रुपयों का ढेर लगा हुआ था।

हीरामणि को पहली बार जमींदारी का मजा मिला, पहली बार धन और बल का नशा महसूस हुआ। सब नशों से ज्यादा तेज, ज्यादा घातक धन का नशा है। जब असामियों की फेहरिस्त खतम हो गयी तो मुख्तार से बोले—और कोई असामी तो बाकी नहीं है?

मुख्तार—हां महाराज, अभी एक असामी और है, तखत सिंह।

हीरामणि—वह क्यों नहीं आया ?

मुख्तार—जरा मस्त है।

हीरामणि—मैं उसकी मस्ती उतार दूँगा। जरा कोई उसे बुला लाये।

थोड़ी देर में एक बूढ़ा आदमी लाठी टेकता हुआ आया और दण्डवत् करके जमीन पर बैठ गया, न नजर न लिया। उसकी यह गुस्ताखी देखकर हीरामणि को बुखार चढ़ आया। कड़ककर बोले—अभी किसी जमींदार से पाला नहीं पड़ा है। एक-एक की हेकड़ी भुला दूँगा!

तखत सिंह ने हीरामणि की तरफ गौर से देखकर जवाब दिया—मेरे सामने बीस जमींदार आये और चले गये। मगर कभी किसी ने इस तरह घुड़की नहीं दी।

यह कहकर उसने लाठी उठाई और अपने घर चला आया।

बूढ़ी ठकुराइन ने पूछा—देखा जमींदार को कैसे आदमी है?

तखत सिंह—अच्छे आदमी हैं। मैं उन्हें पहचान गया।

ठकुराइन—क्या तुमसे पहले की मुलाकात है।

तखत सिंह—मेरी उनकी बीस बरस की जान-पहिचान है, गुड़ियों के मेलेवली बात याद है न?

उस दिन से तखत सिंह फिर हीरामणि के पास न आया।

४

छ महीने के बाद रेवती को भी श्रीपुर देखने का शौक हुआ। वह और उसकी बहू और बच्चे सब श्रीपुर आये। गाँव की सब औरतें उससे मिलने आयीं। उनमें बूढ़ी ठकुराइन भी थी। उसकी बातचीत, सलीका और तमीज देखकर रेवती दंग रह गयी। जब वह चलने लगी तो रेवती ने कहा—ठकुराइन, कभी-कभी आया करना, तुमसे मिलकर तबियत बहुत खुश हुई।

इस तरह दोनों औरतों में धीरे-धीरे मेल हो गया। यहाँ तो यह कैफियत थी और हीरामणि अपने मुख्तारआम के बहकाते में आकर तखत सिंह को बेदखल करने की तरकीबें सोच रहा था।

जेठ की पूरनमासी आयी। हीरामणि की सालगिरह की तैयारियाँ होने लगीं। रेवती चलनी में मैदा छान रही थी कि बूढ़ी ठकुराइन आयी। रेवती ने मुस्कराकर कहा—ठकुराइन, हमारे यहाँ कल तुम्हारा न्योता है।

ठकुराइन—तुम्हारा न्योता सिर-आँखों पर। कौन-सी बरसगाँठ है?

रेवती—उनतीसवीं।

ठकुराइन—नरायन करे अभी ऐसे-ऐसे सौ दिन तुम्हें और देखने नसीब हो।

रेवती—ठकुराइन, तुम्हारी जबान मुबारक हो। बड़े-बड़े जन्तर-मन्तर किये हैं तब तुम लोगों की दुआ से यह दिन देखना नसीब हुआ है। यह तो सातवें ही साल में थे कि इसकी जान के लाले पड़ गये। गुड़ियों का मेला देखने गयी थी। यह पानी में गिर पड़े। बारे, एक महात्मा ने इसकी जान बचायी। इनकी जान उन्हीं की दी हुई है बहुत तलाश करवाया। उनका पता न चला। हर बरसगाँठ पर उनके नाम से सौ रुपये निकाल रखती हूँ। दो हजार से कुछ ऊपर हो गये हैं। बच्चे की नीयत है कि उनके नाम से श्रीपुर में एक मंदिर बनवा दें। सच मानो ठकुराइन, एक बार उनके दर्शन हो जाते तो जीवन सफल हो जाता, जी की हवस निकाल लेते।

रेवती जब खामोश हुई तो ठकुराइन की आँखों से आँसू जारी थे।

दूसरे दिन एक तरफ हीरामणि की सालगिरह का उत्सव था और दूसरी तरफ तखत सिंह के खेत नीलाम हो रहे थे।

ठकुराइन बोली—मैं रेवती रानी के पास जाकर दुहाई मचाती हूँ।

तखत सिंह ने जवाब दिया—मेरे जीते-जी नहीं।

५

अ साढ़ का महीना आया। मेघराज ने अपनी प्राणदायी उदारता दिखायी। श्रीपुर के किसान अपने-अपने खेत जोतने चले। तखतसिंह की लालसा भरी आँखें उनके साथ-साथ जातीं, यहाँ तक कि जमीन उन्हें अपने दामन में छिपा लेती।

तखत सिंह के पास एक गाय थी। वह अब दिन के दिन उसे चराया करता। उसकी जिन्दगी का अब यही एक सहारा था। उसके उपले और दूध बेचकर गुजर-बसर करता। कभी-कभी फाके करने पड़ जाते। यह सब मुसीबतें उसने झेलीं मगर अपनी कंगाली का रोना रोने के लिए एक दिन भी हीरामणि के पास न गया। हीरामणि ने उसे नीचा दिखाना चाहा था मगर खुद उसे ही नीचा देखना पड़ा, जीतने पर भी उसे हार हुई, पुराने लोहे को अपने नीच हठ की आँच से न झुका सका।

एक दिन रेवती ने कहा—बेटा, तुमने गरीब को सताया, अच्छा न किया।

हीरामणि ने तेज होकर जवाब दिया—वह गरीब नहीं है। उसका घमण्ड मैं तोड़ दूँगा।

दौलत के नशे में मतवाला जमींदार वह चीज तोड़ने की फिक्र में था जो कहीं थी ही नहीं। जैसे नासमझ बच्चा अपनी परछाई से लड़ने लगता है।

६

साल भर तखतसिंह ने ज्यों-त्यों करके काटा। फिर बरसात आयी। उसका घर छाया न गया था। कई दिन तक मूसलाधर मेंह बरसा तो मकान का एक हिस्सा गिर पड़ा। गाय वहाँ बँधी हुई थी, दबकर मर गयीं तखतसिंह को भी सख्त चोट आयी। उसी दिन से बुखार आना शुरू हुआ। दवा-दारू कौन करता, रोजी का सहारा था वह भी टूटा। जालिम बेदर्द मुसीबत ने कुचल डाला। सारा मकान पानी से भरा हुआ, घर में अनाज का एक दाना नहीं, अंधेरे में पड़ा हुआ कराह रहा था कि रेवती उसके घर गयी। तखतसिंह ने आँखें खोलीं और पूछा—कौन है?

ठकुराइन—रेवती रानी हैं।

तखतसिंह—मेरे धन्यभाग, मुझ पर बड़ी दया की।

रेवती ने लज्जित होकर कहा—ठकुराइन, ईश्वर जानता है, मैं अपने बेटे से हैरान हूँ। तुम्हें जो तकलीफ हो मुझसे कहो। तुम्हारे ऊपर ऐसी आफत पड़ गयी और हमसे खबर तक न की?

यह कहकर रेवती ने रुपयों की एक छोटी-सी पोटली ठकुराइन के सामने रख दी।

रुपयों की झनकार सुनकर तखतसिंह उठ बैठा और बोला—रानी, हम इसके भूखे नहीं हैं। मरते दम गुनाहगार न करो

दूसरे दिन हीरामणि भी अपने मुसाहिबों को लिये उधर से जा निकला। गिरा हुआ मकान देखकर मुस्कराया। उसके दिल ने कहा, आखिर मैंने उसका घमण्ड तोड़ दिया। मकान के अन्दर जाकर बोला—ठाकुर, अब क्या हाल है?

ठाकुर ने धीरे से कहा—सब ईश्वर की दया है, आप कैसे भूल पड़े?

हीरामणि को दूसरी बार हार खानी पड़ी। उसकी यह आरजू कि तखतसिंह मेरे पाँव को आँखों से चूमे, अब भी पूरी न हुई। उसी रात को वह गरीब, आजाद, ईमानदार और बेगरज ठाकुर इस दुनिया से विदा हो गया।

७

बूढ़ी ठकुराइन अब दुनिया में अकेली थी। कोई उसके गम का शरीक और उसके मरने पर आँसू बहानेवाला न था। कंगाली ने गम की आँच और तेज कर दी थीं जरूरत की चीजें मौत के घाव को चाहे न भर सकें मगर मरहम का काम जरूर करती है।

रोटी की चिन्ता बुरी बला है। ठकुराइन अब खेत और चरागाह से गोबर चुन लाती और उपले बनाकर बेचती। उसे लाठी टेकते हुए खेतों को जाते और गोबर का टोकरा सिर पर रखकर बोझ में हाँफते हुए आते देखना बहुत ही दर्दनाक था। यहाँ तक कि हीरामणि को भी उस पर तरस आ गया। एक दिन उन्होंने आटा, दाल, चावल, थालियों में रखकर उसके पास भेजा। रेवती खुद लेकर गयी। मगर बूढ़ी ठकुराइन आँखों में आँसू भरकर बोला—रेवती, जब तक आँखों से सूझता है और हाथ-पाँव चलते हैं, मुझे और मरनेवाले को गुनाहगार न करो।

उस दिन से हीरामणि को फिर उसके साथ अमली हमदर्दी दिखलाने का साहस न हुआ।

एक दिन रेवती ने ठकुराइन से उपले मोल लिये। गाँव में पैसे के तीस उपले बिकते थे। उसने चाहा कि इससे बीस ही उपले लूँ। उस दिन से ठकुराइन ने उसके यहाँ उपले लाना बन्द कर दिया।

ऐसी देवियाँ दुनिया में कितनी हैं! क्या वह इतना न जानती थी कि एक गुप्त रहस्य जबान पर लाकर मैं अपनी इन तकलीफों का खात्मा कर सकती हूँ! मगर फिर वह एहसान का बदला न हो जाएगा! मसल मशहूर है नेकी कर और दरिया में डाल। शायद उसके दिल में कभी यह ख्याल ही नहीं आया कि मैंने रेवती पर कोई एहसान किया।

यह वजादार, आन पर मरनेवाली औरत पति के मरने के बाद तीन साल तक जिन्दा रही। यह जमाना उसने जिस तकलीफ से काटा उसे याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई-कई दिन निराहार बीत जाते। कभी

गोबर न मिलता, कभी कोई उपले चुरा ले जाता। ईश्वर की मर्जी! किसी की घर भरा हुआ है, खानेवाल नहीं। कोई यो रो-रोकर जिन्दगी काटता है।

बुढ़िया ने यह सब दुख झेला मगर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

८

हीरामणि की तीसवीं सालगिरह आयी। ढोल की सुहानी आवाज सुनायी देने लगी। एक तरफ घी की पूड़ियां पक रही थीं, दूसरी तरफ तेल की। घी की मोटे ब्राह्मणों के लिए, तेल की गरीब-भूखे-नीचों के लिए।

अचानक एक औरत ने रेवती से आकर कहा—ठकुराइन जाने कैसी हुई जाती हैं। तुम्हें बुला रही हैं।

रेवती ने दिल में कहा—आज तो खैरियत से काटना, कहीं बुढ़िया मर न रही हो।

यह सोचकर वह बुढ़िया के पास न गयी। हीरामणि ने जब देखा, अम्माँ नहीं जाना चाहती तो खुद चला। ठकुराइन पर उसे कुछ दिनों से दया आने लगी थी। मगर रेवती मकान के दरवाजे ते उसे मना करने आयी। या रहमदिल, नेकमिजाज, शरीफ रेवती थी।

हीरामणि ठकुराइन के मकान पर पहुँचा तो वहाँ बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। बूढ़ी औरत का चेहरा पीला था और जान निकलने की हालत उस पर छाई हुई थी। हीरामणि ने जो से कहा—ठकुराइन, मैं हूँ हीरामणि।

ठकुराइन ने आँखें खोली और इशारे से उसे अपना सिर नजदीक लाने को कहा। फिर रुक-रुककर बोली—मेरे सिरहाने पिटारी में ठाकुर की हड्डियाँ रखी हुई हैं, मेरे सुहाग का सेंदुर भी वहीं है। यह दोनों प्रयागराज भेज देना।

यह कहकर उसने आँखें बन्द कर ली। हीरामणि ने पिटारी खोली तो दोनों चीजें हिफाजत के साथ रक्खी हुई थीं। एक पोटली में दस रुपये भी रक्खे हुए मिले। यह शायद जानेवाले का सफरखर्च था।

रात को ठकुराइन के कण्ठों का हमेशा के लिए अन्त हो गया।

उसी रात को रेवती ने सपना देखा—सावन का मेला है, घटाएँ छाई हुई हैं, मैं कीरत सागर के किनारे खड़ी हूँ। इतने में हीरामणि पानी में फिसल पड़ा। मैं छाती पीट-पीटकर रोने लगी। अचानक एक बूढ़ा आदमी पानी में कूदा और हीरामणि को निकाल लाया। रेवती उसके पाँव पर गिर पड़ी और बोली—आप कौन हैं?

उसने जवाब दिया—मैं श्रीपुर में रहता हूँ, मेरा नाम तखतसिंह है।

श्रीपुर अब भी हीरामणि के कब्जे में है, मगर अब रौनक दोबाला हो गयी है। वहाँ जाओ तो दूर से शिवाले का सुनहरा कलश दिखाई देने लगता है; जिस जगह तखत सिंह का मकान था, वहाँ यह शिवाला बना हुआ है। उसके सामने एक पक्का कुआँ और पक्की धर्मशाला है। मुसाफिर यहाँ ठहरते हैं और तखत सिंह का गुन गाते हैं। यह शिवाला और धर्मशाला दोनों उसके नाम से मशहूर हैं।

उर्दू 'प्रेमपचीसी' से

ठाकुर प्रद्युम्न सिंह एक प्रतिष्ठित वकील थे और अपने हौसले और हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर। उनके दोस्त अक्सर कहा करते कि अदालत की इजलास में उनके मर्दाना कमाल ज्यादा साफ तरीके पर जाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बाबजूद इसके कि उन्हें शायद ही कभी किसी मामले में सुर्खरूई हासिल होती थी, उनके मुवक्किलों की भक्ति-भावना में जरा भर भी फर्क नहीं आता था। इन्साफ की कुर्सी पर बैठनेवाले बड़े लोगों की निडर आजादी पर किसी प्रकार का सन्देह करना पाप ही क्यों न हो, मगर शहर के जानकार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मामले में जिद पकड़ लेते हैं तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इन्साफ को भी अपने वश में कर लेता है। एक से ज्यादा मौकों पर उनके जीवट और जिगर ने वे चमत्कार कर दिखाये थे जहाँ कि इन्साफ और कानून के जवाब दे दिया। इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना गुणों के सच्चे जौहरी थे। अगर मुवक्किल को कुश्ती में कुछ पैठ हो तो यह जरूरी नहीं था कि वह उनकी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए रुपया-पैसा दे। इसीलिए उनके यहाँ शहर के पहलवानों और फेकैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वह जबर्दस्त प्रभावशाली और व्यावहारिक कानूनी बारीकी थी जिसकी काट करने में इन्साफ को भी आगा-पीछा सोचना पड़ता। वे गर्व और सच्चे गर्व की दिल से कदर करते थे। उनके बेतकल्लुफ घर की इयोढ़ियाँ बहुत ऊँची थी वहाँ झुकने की जरूरत न थी। इन्सान खूब सिर उठाकर जा सकता था। यह एक विश्वस्त कहानी है कि एक बार उन्होंने किसी मुकदमे को बाबजूद बहुत विनती और आग्रह के हाथ में लेने से इनकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ देहाती था। उसने जब आरजू-मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए देहाती को सीने से लगा लिया।

2

धन और धरती के बीच आदिकाल से एक आकर्षण है। धरती में साधारण गुरुत्वाकर्षण के अलावा एक खास ताकत होती है, जो हमेशा धन को अपनी तरफ खींचती है। सूद और तमस्सुक और व्यापार, यह दौलत की बीच की मंजिलें हैं, जमीन उसकी आखिरी मंजिल है। ठाकुर प्रद्युम्न सिंह की निगाहें बहुत अर्से से एक बहुत उपजाऊ मौजे पर लगी हुई थीं। लेकिन बैंक का एकाउण्ट कभी हौसले को कदम नहीं बढ़ाने देता था। यहाँ तक कि एक दफा उसी मौजे का जमींदार एक कत्ल के मामले में पकड़ा गया। उसने सिर्फ रस्मों-रिवाज के माफिक एक आसामी को दिन भर धूप और जेठ की जलती हुई धूप में खड़ा रखा था लेकिन अगर सूरज की गर्मी या जिस्म की कमजोरी या प्यास की तेजी उसकी जानलेवा बन जाय तो इसमें जमींदार की क्या खता थी। यह शहर के वकीलों की ज्यादाती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमदा न हुआ या मुमकिन है जमींदार के हाथ की तंगी को भी उसमें कुछ दखल हो। बहरहाल, उसने चारों तरफ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की शरण ली। मुकदमा निहायत कमजोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताकत से धावा किया था और उसकी कुमक के लिए शासन और अधिकार के ताजे से ताजे रिसाले तैयार थे। ठाकुर साहब अनुभवी सँपेरों की तरह साँप के बिल में हाथ नहीं डालते थे लेकिन इस मौके पर उन्हें सूखी मसलहत के मुकाबले में अपनी मुरादों का पल्ला झुकता हुआ नजर आया। जमींदार को इत्मीनान दिलाया और वकालतनामा दाखिल कर दिया और फिर इस तरह जी-जान से मुकदमे की पैरवी की, कुछ इस तरह जान लड़ायी कि मैदान से जीत का डंका बजाते हुए निकले। जनता की जबान इस जीत का सेहरा उनकी कानूनी पैठ के सर नहीं, उनके मर्दाना गुणों के सर रखती है क्योंकि उन दिनों वकील साहब नजीरों और दफाओं की हिम्मततोड़ पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल की उत्साहवर्द्धक दिलचस्पियों में ज्यादा लगे रहते थे लेकिन यह बात जरा भी यकीन करने के काबिल नहीं मालूम होती। ज्यादा जानकान लोग कहते हैं कि अनार के बमगोलों और सेब और अंगूर की गोलियों ने पुलिस के, इस पुरशोर हमले को तोड़कर बिखेर दिया गरज कि मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। जमींदार की जान बची। मौत के मुँह से निकल आया उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला—ठाकुर साहब, मैं इस काबिल तो नहीं कि आपकी खिदमत कर सकूँ। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान् ने गरीब सुदामा के सूखे चावल खुशी से कबूल किए थे। मेरे पास बुजुर्गों की यादगार छोटा-सा वीरान मौजा है उसे आपकी भेंट करता हूँ। आपके लायक तो नहीं लेकिन मेरी खातिर इसे कबूल कीजिए। मैं आपका जस कभी न भूलूँगा। वकील साहब फड़क उठे। दो-

चार बार निस्पृह बैरागियों की तरह इन्कार करने के बाद इस भेंट को कबूल कर लिया। मुंह-माँगी मुराद मिली।

3

इस मौजे के लोग बेहद सरदश और झगड़ालू थे, जिन्हें इस बात का गर्व था कि कभी कोई जमींदार उन्हें बस में नहीं कर सका। लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रद्युम्न सिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियाँ भूल गये, एक बदलगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियाँ खड़ी कीं, कुछ हिनहिनाये और तब गर्दन झुका दीं। समझ गये कि यह जिगर का मजबूत आसन का पक्का शहसवार है।

असाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच-बेचकर बैलों की तलाश में दर-ब-दर फिरते थे। गाँवों की बूढ़ी बनियाइन नवेली दुलहन बनी हुई थी और फाका करने वाला कुम्हार बरात का दूल्हा था मजदूर मौके के बादशाह बने हुए थे। टपकती हुई छतें उनकी कृपादृष्टि की राह देख रही थी। घास से ढके हुए खेत उनके ममतापूर्ण हाथों के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिस चाहते थे उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज मनचले लड़कों का धावा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियाँ लटकाये पहर रात से टपके की खोज में घूमते नजर आते थे जो बुढ़ापे के बावजूद भोजन और जाप से ज्यादा दिलचस्प और मजेदार काम था। नाले पुरशोर, नदियाँ अथाह, चारों तरफ हरियाली और खुशहाली। इन्हीं दिनों ठाकुर साहब मौत की तरह, जिसके आने की पहले से कोई सूचना नहीं होती, गाँव में आये। एक सजी हुई बरात थी, हाथी और घोड़े, और साज-सामान, लठैतों का एक रिसाला-सा था। गाँव ने यह तूमतड़ाक और आन-बान देखी तो रहे-सहे होश उड़ गये। घोड़े खेतों में ऐंड़ने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और बुलन्द आवाज में बोले—मैंने सुना है कि तुम लोग सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो क्या मंजूर है?

एक बूढ़े किसान ने बेद के पेड़ की तरह काँपते हुए जवाब दिया—सरकार, आप हमारे राजा हैं। हम आपसे ऐंठकर कहाँ जायेंगे।

ठाकुर साहब तेवर बदलकर बोले—तो तुम लोग सब के सब कल सुबह तक तीन साल का पेशगी लगान दाखिल कर दो और खूब ध्यान देकर सुन लो कि मैं हुकम को दुहराना नहीं जानता वरना मैं गाँव में हल चलवा दूँगा और घरों को खेत बना दूँगा।

सारे गाँव में कोहराम मच गया। तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्दी जुटाना असम्भव था। रात इसी हैस-बैस में कटी। अभी तक आरजू-मिन्नत के बिजली जैसे असर की उम्मीद बाकी थी। सुबह बड़ी इन्तजार के बाद आई तो प्रलय बनकर आई। एक तरफ तो जोर जबर्दस्ती और अन्याय-अत्याचार का बाजार गर्म था, दूसरी तरफ रोती हुई आँखों, सर्द आहों और चीख-पुकार का, जिन्हें सुननेवाला कोई न था। गरीब किसान अपनी-अपनी पोटलियाँ लादे, बेकस अन्दाज से ताकते, आँखें में याचना भरे बीवी-बच्चों को साथ लिये रोते-बिलखते किसी अज्ञात देश को चले जाते थे। शाम हुई तो गाँव उजड़ गया।

४

यह खबर बहुत जल्द चारों तरफ फैल गयी। लोगों को ठाकुर साहब के इन्सान होने पर सन्देह होने लगा। गाँव वीरान पड़ा हुआ था। कौन उसे आबाद करे। किसके बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी औरतें कुओं पर पानी भरें। राह चलते मुसाफिर तबाही का यह दृश्य आँखों से देखते और अफसोस करते। नहीं मालूम उन वीराने देश में पड़े हुए गरीबों पर क्या गुजरी। आह, जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे, अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह पूरा साल गुजर गया। तब गाँव के नसीब जागे। जमीन उपजाऊ थी। मकान मौजूद। धीरे-धीरे जुल्म की यह दास्तान फीकी पड़ गयी। मनचले किसानों की लोभ-दृष्टि उस पर पड़ने लगी। बला से जमींदार जालिम हैं, बेरहम हैं, सख्तियाँ करता है, हम उसे मना लेंगे। तीन साल की पेशगी लगान का क्या जिक्र वह जैसे खुश होगा, खुश करेंगे। उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सर-आँखों पर रक्खेंगे। वह राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। जिन्दगी की कशमकश और लड़ाई में आत्मसम्मान को निबाहना कैसा मुश्किल काम है! दूसरा अषाढ़ आया तो वह गाँव फिर बगीचा बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाजों पर घरींदे बनाने लगे, मर्दों के बुलन्द आवाज के गाने खेतों में सुनाई दिये व औरतों के सुहाने गीत चक्कियों पर। जिन्दगी के मोहक दृश्य दिखाई देने लगे।

साल भर गुजरा। जब रबी की दूसरी फसल आयी तो सुनहरी बालों को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर परती जमीन ने सोना उगल दिया था औरतें खुश थीं कि अब के नये-नये गहने बनवायेंगे, मर्द खुश थे कि अच्छे-अच्छे बैल मोल लेंगे और दारोगा जी की खुशी का तो अन्त ही न था। ठाकुर साहब ने यह खुशखबरी सुनी तो देहात की सैर को चले। वही शानशौकत, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फौज! गाँववालों ने उनके आदर सत्कार की तैयारियाँ करनी शुरू कीं। मोटे-ताजे बकरों का एक पूरा गला चौपाल के दरवाज पर बाँधा लकड़ी के अम्बार लगा दिये, दूध के हौज भर दिये। ठाकुर साहब गाँव की मेड़ पर पहुँचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी अगवानी के लिए हाथ बाँधे खड़े थे। लेकिन पहली चीज जिसकी फरमाइश हुई वह लेमनेड और बर्फ थी। असामियों के हाथों के तोते उड़ गये। यह पानी की बोतल इस वक्त वहाँ अमृत के दामों बिक सकती थी। मगर बेचारे देहाती अमीरों के चोचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सिर झुकाये भौंचक खड़े थे। चेहरे पर झेंप और शर्म थी। दिलों में धड़कन और भय। ईश्वर! बात बिगड़ गई है, अब तुम्हीं सम्हालो।’

बर्फ की ठण्डक न मिली तो ठाकुर साहब की प्यास की आग और भी तेज हुई, गुस्सा भड़क उठा, कड़ककर बोले—मैं शैतान नहीं हूँ कि बकरों के खून से प्यास बुझाऊँ, मुझे ठंडा बर्फ चाहिए और यह प्यास तुम्हारे और तुम्हारी औरतों के आँसुओं से ही बुझेगी। एहसानफरामोश, नीच मैंने तुम्हें जमीन दी, मकान दिये और हैसियत दी और इसके बदले में तुम ये दे रहे हो कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूँ! तुम इस काबिल नहीं हो कि तुम्हारे साथ कोई रियायत की जाय। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गाँव में न देखूँ वरना प्रलय हो जायेगा। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दुहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है, जो कुछ ले जा सको, ले जाओ। लेकिन शाम को मैं किसी की मनहूस सूरत न देखूँ। यह रोना और चीखना फिजू है, मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का, आँसुओं से नहीं पसीजता।

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गाँव कोई दिया जलानेवाला तक न रहा। फूलता-फलता गाँव भूत का डेरा बन गया।

५

बहुत दिनों तक यह घटना आस-पास के मनचले किस्सागोयों के लिए दिलचस्पियों का खजाना बनी रही। एक साहब ने उस पर अपनी कलम भी चलायी। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की गाँव आबाद हो जाय लेकिन किसकी जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में कदम रखता जहाँ मोटापे की सजा फाँसी थी। कुछ मजदूर-पेशा लोग किस्मत का जुआ खेलने आये मगर कुछ महीनों से ज्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गाँव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आखिर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर होकर आराजी माफ करने का काम आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रियासत से रही-सही साख भी खो दी। इस तरह तीन साल गुजर जाने के बाद एक रोज वहाँ बंजारों का काफिला आया। शाम हो गयी थी और पूरब तरफ से अंधेरे की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गाँव वीरान पड़ा हुआ है, जहाँ आदमियों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का भेद समझ में न आया। मकान मौजूद हैं, जमीन उपजाऊ है, हरियाली से लहराते हुए खेत हैं और इन्सान का नाम नहीं! कोई और गाँव पास न था वहीं पड़ाव डाल दिया। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना रजत-संगीत अलापना शुरू किया और काफिला गाँव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने जोर-जबर्दस्ती की यह लम्बी कहानी उन्हें सुनायी। दुनिया भर में घूमते फिरने ने उन्हें मुश्किलों का आदी बना दिया था। आपस में कुद मशविरा किया और फैसला हो गया। ठाकुर साहब की इयोढ़ी पर जा पहुँचे और नजराने दाखिल कर दिये। गाँव फिर आबाद हुआ।

यह बंजारे बला के चीमड़, लोहे की-सी हिम्मत और इरादे के लोग थे जिनके आते ही गाँव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धुएँ के बादल उठे, कोल्हाड़ों ने फिर धुएँ ओर भाप की चादरें पहनीं, तुलसी के चबूतरे पर फिर से चिराग जले। रात को रंगीन तबियत नौजवानों की अलापें सुनायी देने लगीं। चरागाहों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखाई दिये और किसी पेड़ के नीचे बैठे हुए चरवाहे की बाँसुरी की मद्धिम और रसीली आवाज दर्द और असर में डूबी हुई इस प्राकृतिक दृश्य में जादू का आकर्षण पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख और सफेद चिकनाई, तिल की ऊदी बहार और सन का शोख पीलापन अपने रूप का जलवा दिखाता था। किसानों की मड़ैया और छप्परों पर भी फल-फूल की रंगीनी

दिखायी देती थी। उस पर पानी की हलकी-हलकी फुहारें प्रकृति के सौंदर्य के लिए सिंगार करनेवाली का कमा दे रही थीं। जिस तरह साधुओं के दिल सत्य की ज्योति से भरे होते हैं, उसी तरह सागर और तालाब साफ-शफ़फ़ा पानी से भरे थे। शायद राजा इन्द्र कैलाश की तरावट भरी ऊँचाइयों से उतरकर अब मैदानों में आनेवाले थे। इसीलिए प्रकृति ने सौन्दर्य और सिद्धियों और आशाओं के भी भण्डार खोल दिये थे। वकील साहब को भी सैर की तमन्ना ने गुदगुदाया। हमेशा की तरह अपने रईसाना ठाट-बाट के साथ गाँव में आ पहुँचे। देखा तो संतोष और निश्चिन्तता के वरदान चारों तरफ स्पष्ट थे।

६

गाँववालों ने उनके शुभागमन का समाचार सुना, सलाम को हाजिर हुए। वकील साहब ने उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े पहने, स्वाभिमान के साथ कदम मिलाते हुए देखा। उनसे बहुत मुस्कराकर मिले। फसल का हाल-चाल पूछा। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे पूरी जिम्मेदारी और चौधरापे की शान टपकती थी, जवाब दिया—हुजूर के कदमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ नहीं आपकी दी हुई नेमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं, आप हैं और आपके लिए जान तक हाजिर है।

ठाकुर साहब ने तेवर बदलकर कहा—मैं अपनी खुशामद सुनने का आदी नहीं हूँ।

बूढ़े हरदास के माथे पर बल पड़े, अभिमान को चोट लगी। बोला—मुझे भी खुशामद करने की आदत नहीं है।

ठाकुर साहब ने ऐंठकर जवाब दिया—तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज नहीं। ताकत की तरह तुम्हारी अकल भी बुढ़ापे की भेंट चढ़ गई।

हरदास ने अपने साथियों की तरफ देखा। गुस्से की गर्मी से सब की आँख फैली हुई और धीरज की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला—हम आपकी रैयत हैं लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे आप जमींदार को अपना सिर दे दें आबरू नहीं दे सकते।

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलन्द आवाज में ताईद की—आबरू जान के पीछे है।

ठाकुर साहब के गुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा लाल हो गया, और जोर से बोले—तुम लोग जबान सम्हालकर बातें करो वर्ना जिस तरह गले में झोलियाँ लटकाये आये थे उसी तरह निकाल दिये जाओगे। मैं प्रद्युम्न सिंह हूँ, जिसने तुम जैसे कितने ही हेकड़ों को इसी जगह कुचलवा डाला है। यह कहकर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुनसिंह को बुलाकर कहा—ठाकुर, अब इन चींटियों के पर निकल आये हैं, कल शाम तक इन लोगों से मेरा गाँव साफ हो जाए।

हरदास खड़ा हो गया। गुस्सा अब चिनगारी बनकर आँखों से निकल रहा था। बोला—हमने इस गाँव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जियेंगे इसी गाँव में रहेंगे, यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अक्खड़ गंवार हैं। नाहक गरीबों की जान के पीछ मत पड़िए। खून-खराबा हो जायेगा। लेकिन आपको यही मंजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियों को चुनौती है, जब चाहे दिल के अरमान निकाल लें।

इतना कहकर ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी गर्व के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुनसिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि यह लोहे के चने हैं लेकिन शोहदों का सरदार था, कुछ अपने नाम की लाज थी। दूसरे दिन शाम के वक्त जब रात और दिन में मुठभेड़ हो रही थी, इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वह धौल-धप्पा हुआ कि जमीन थरी गयी। जबानों ने मुंह के अन्दर वह मार्क दिखाये कि सूरज डर के मारे पश्चिम में जा छिपा। तब लाठियों ने सिर उठाया लेकिन इससे पहले कि वह डाक्टर साहब की दुआ और शुक्रिये की मुस्तहक हों अर्जुनसिंह ने समझदारी से काम लिया। ताहम उनके चन्द आदमियों के लिए गुड़ और हल्दी पीने का सामान हो चुका था।

वकील साहब ने अपनी फौज की यह बुरी हालतें देखीं, किसी के कपड़े फटे हुए, किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हाँफते-हाँफते बेदम (खून बहुत कम नजर आया क्योंकि यह एक अनमोल चीज है और इसे डंडों की मार से बचा लिया गया) तो उन्होंने अर्जुनसिंह की पीठ ठोकी और उसकी बहादुरी और जाँबाजी की खूब तारीफ की। रात को उनके सामने लड्डू और इमरतियों की ऐसी वर्षा हुई कि यह सब गर्द-गुबार धुल गया। सुबह को इस रिसाले ने ठंडे-ठंडे घर की राह ली और कसम खा गए कि अब भूलकर भी इस गाँव का रुख न करेंगे।

तब ठाकुर साहब ने गाँव के आदमियों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हो गए। अखितयार और हुकूमत अगर घमंड की मसनद से उतर आए तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती है। जब सब आदमी आ गये तो ठाकुर साहब एक-एक करके उनसे बगलगीर हुए ओर बोले—मैं ईश्वर का बहु ऋणी हूँ कि मुझे गाँव के लिए जिन आदमियों की तलाश थी, वह लोग मिल गये। आपको मालूम है कि यह गाँव कई बार उजड़ा और कई बार बसा। उसका कारण यही था कि वे लोग मेरी कसौटी पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था लेकिन मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गाँव में वे लोग आबाद हों जो जुल्म का मर्दों की तरह सामना करें, जो अपने अधिकारों और रियायतों की मर्दों की तरह हिफाजत करें, जो हुकूमत के गुलाम न हों, जो रोब और अखितयार की तेज निगाह देखकर बच्चों की तरह डर से सहम न जाएँ। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुकसान और शर्मिंदगी और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएँ पूरी हो गयीं। मुझे इत्मीनान है कि आप उल्टी हवाओं और ऊँची-ऊँची उठनेवाली लहरों का मुकाबला कामयाबी से करेंगे। मैं आज इस गाँव से अपना हाथ खींचता हूँ। आज से यह आपकी मिलिकियत है। आपही इसके जमींदार और मालिक हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आप फलें-फूलें ओर सरसब्ज हों।

इन शब्दों ने दिलों पर जादू का काम किया। लोग स्वामिभक्ति के आवेश से मस्त हो-होकर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गये और कहने लगे—हम आपके, कदमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका-सा कद्रदान और रियाया-परवर बुजुर्ग हम कहाँ पायेंगे। वीरों की भक्ति और सहनुभूति, वफादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और असर पैदा करने वाला दृश्य आँखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने उदार निश्चय पर दृढ़ रहे और गो पचास साल से ज्यादा गुजर गये हैं। लेकिन उन्हीं बंजारों के वारिस अभी तक मौजा साहषगंज के माफीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रद्युम्न सिंह की पूजा और मन्नतें करती हैं और गो अब इस मौजे के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलंदी पर पहुँच गये हैं लेकिन गूढ़े और अक्खड़ हरदास के नाम पर अब भी गर्व करते हैं। और भादों सुदी एकादशी के दिन अभी उसी मुबारक फतेह की यादगार में जश्न मनाये जाते हैं।

—जमाना, अक्टूबर १९१३

सेठ पुरुषोत्तमदास पूना की सरस्वती पाठशाला का मुआयना करने के बाद बाहर निकले तो एक लड़की ने दौड़कर उनका दामन पकड़ लिया। सेठ जी रुक गये और मुहब्बत से उसकी तरफ देखकर पूछा—क्या नाम है?

लड़की ने जवाब दिया—रोहिणी।

सेठ जी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले—तुम्हें कुछ इनाम मिला?

लड़की ने उनकी तरफ बच्चों जैसी गंभीरता से देखकर कहा—तुम चले जाते हो, मुझे रोना आता है, मुझे भी साथ लेते चलो।

सेठजी ने हँसकर कहा—मुझे बड़ी दूर जाना है, तुम कैसे चालोगी?

रोहिणी ने प्यार से उनकी गर्दन में हाथ डाल दिये और बोली—जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी चलूँगी। मैं तुम्हारी बेटी हूँगी।

मदरसे के अफसर ने आगे बढ़कर कहा—इसका बाप साल भर हुआ नहीं रहा। माँ कपड़े सीती है, बड़ी मुश्किल से गुजर होती है।

सेठ जी के स्वभाव में करुणा बहुत थी। यह सुनकर उनकी आँखें भर आयीं। उस भोली प्रार्थना में वह दर्द था जो पत्थर-से दिल को पिघला सकता है। बेकसी और यतीमी को इससे ज्यादा दर्दनाक ढंग से जाहिर कना नामुमकिन था। उन्होंने सोचा—इस नन्हें-से दिल में न जाने क्या अरमान होंगे। और लड़कियाँ अपने खिलौने दिखाकर कहती होंगी, यह मेरे बाप ने दिया है। वह अपने बाप के साथ मदरसे आती होंगी, उसके साथ मेलों में जाती होंगी और उनकी दिलचस्पियों का जिक्र करती होंगी। यह सब बातें सुन-सुनकर इस भोली लड़की को भी ख्वाहिश होती होगी कि मेरे बाप होता। माँ की मुहब्बत में गहराई और आत्मिकता होती है जिसे बच्चे समझ नहीं सकते। बाप की मुहब्बत में खुशी और चाव होता है जिसे बच्चे खूब समझते हैं।

सेठ जी ने रोहिणी को प्यार से गले लगा लिया और बोले—अच्छा, मैं तुम्हें अपनी बेटी बनाऊँगा। लेकिन खूब जी लगाकर पढ़ना। अब छुट्टी का वक्त आ गया है, मेरे साथ आओ, तुम्हारे घर पहुँचा दूँ।

यह कहकर उन्होंने रोहिणी को अपनी मोटरकार में बिठा लिया। रोहिणी ने बड़े इत्मीनान और गर्व से अपनी सहेलियों की तरफ देखा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें खुशी से चमक रही थीं और चेहरा चाँदनी रात की तरह खिला हुआ था।

२

सेठ ने रोहिणी को बाजार की खूब सैर करायी और कुछ उसकी पसन्द से, कुछ अपनी पसन्द से बहुत-सी चीजें खरीदीं, यहाँ तक कि रोहिणी बातें करते-करते कुछ थक-सी गयी और खामोश हो गई। उसने इतनी चीजें देखीं और इतनी बातें सुनीं कि उसका जी भर गया। शाम होते-होते रोहिणी के घर पहुँचे और मोटरकार से उतरकर रोहिणी को अब कुछ आराम मिला। दरवाजा बन्द था। उसकी माँ किसी ग्राहक के घर कपड़े देने गयी थी। रोहिणी ने अपने तोहफों को उलटना-पलटना शुरू किया—खूबसूरत रबड़ के खिलौने, चीनी की गुड़िया जरा दबाने से चूँ-चूँ करने लगतीं और रोहिणी यह प्यारा संगीत सुनकर फूली न समाती थी। रेशमी कपड़े और रंग-बिरंगी साड़ियों की कई बण्डल थे लेकिन मखमली बूटे की गुलकारियों ने उसे खूब लुभाया था। उसे उन चीजों के पाने की जितनी खुशी थी, उससे ज्यादा उन्हें अपनी सहेलियों को दिखाने की बेचैनी थी। सुन्दरी के जूते अच्छे सही लेकिन उनमें ऐसे फूल कहाँ हैं। ऐसी गुड़िया उसने कभी देखी भी न होगी। इन खयालों से उसके दिल में उमंग भर आयी और वह अपनी मोहिनी आवाज में एक गीत गाने लगी। सेठ जी दरवाजे पर खड़े इन पवित्र दृश्य का हार्दिक आनन्द उठा रहे थे। इतने में रोहिणी की माँ रुक्मिणी कपड़ों की एक पोटली लिये हुए आती दिखायी दी। रोहिणी ने खुशी से पागल होकर एक छलाँग भरी और उसके पैरों से लिपट गयी। रुक्मिणी का चेहरा पीला था, आँखों में हसरत और बेकसी छिपी हुई थी, गुप्त चिंता का सजीव चित्र मालूम होती थी, जिसके लिए जिंदगी में कोई सहारा नहीं।

मगर रोहिणी को जब उसने गोद में उठाकर प्यार से चूमा मो जरा देर के लिए उसकी आँखों में उन्मीद और जिंदगी की झलक दिखायी दी। मुरझाया हुआ फूल खिल गया। बोली—आज तू इतनी देर तक कहाँ रही, मैं तुझे ढूँढ़ने पाठशाला गयी थी।

रोहिणी ने हुमककर कहा—मैं मोटरकार पर बैठकर बाजार गयी थी। वहाँ से बहुत अच्छी-अच्छी चीजें लायी हूँ। वह देखो कौन खड़ा है?

माँ ने सेठ जी की तरफ ताका और लजाकर सिर झुका लिया।

बरामदे में पहुँचते ही रोहिणी माँ की गोद से उतरकर सेठजी के पास गयी और अपनी माँ को यकीन दिलाने के लिए भोलेपन से बोली—क्यों, तुम मेरे बाप हो न?

सेठ जी ने उसे प्यार करके कहा—हाँ, तुम मेरी प्यारी बेटा हो।

रोहिणी ने उनसे मुँह की तरफ याचना-भरी आँखों से देखकर कहा—अब तुम रोज यहीं रहा करोगे?

सेठ जी ने उसके बाल सुलझाकर जवाब दिया—मैं यहाँ रहूँगा तो काम कौन करेगा? मैं कभी-कभी तुम्हें देखने आया करूँगा, लेकिन वहाँ से तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें भेजूँगा।

रोहिणी कुछ उदास-सी हो गयी। इतने में उसकी माँ ने मकान का दरवाजा खोला और बड़ी फुर्ती से मैले बिछावन और फटे हुए कपड़े समेट कर कोने में डाल दिये कि कहीं सेठ जी की निगाह उन पर न पड़ जाए। यह स्वाभिमान स्त्रियों की खास अपनी चीज है।

रुक्मिणी अब इस सोच में पड़ी थी कि मैं इनकी क्या खातिर-तवाजो करूँ। उसने सेठ जी का नाम सुना था, उसका पति हमेशा उनकी बड़ाई किया करता था। वह उनकी दया और उदारता की चर्चाएँ अनेकों बार सुन चुकी थी। वह उन्हें अपने मन का देवता समझा कतरी थी, उसे क्या उमीद थी कि कभी उसका घर भी उसके कदमों से रोशन होगा। लेकिन आज जब वह शुभ दिन संयोग से आया तो वह इस काबिल भी नहीं कि उन्हें बैठने के लिए एक मोढ़ा दे सके। घर में पान और इलायची भी नहीं। वह अपने आँसुओं को किसी तरह न रोक सकी।

आखिर जब अंधेरा हो गया और पास के ठाकुरद्वारे से घण्टों और नगाड़ों की आवाजें आने लगीं तो उन्होंने जरा ऊँची आवाज में कहा—बाईजी, अब मैं जाता हूँ। मुझे अभी यहाँ बहुत काम करना है। मेरी रोहिणी को कोई तकलीफ न हो। मुझे जब मौका मिलेगा, उसे देखने आऊँगा। उसके पालने-पोसने का काम मेरा है और मैं उसे बहुत खुशी से पूरा करूँगा। उसके लिए अब तुम कोई फिक्र मत करो। मैंने उसका वजीफा बाँध दिया है और यह उसकी पहली किस्त है।

यह कहकर उन्होंने अपना खूबसूरत बटुआ निकाला और रुक्मिणी के सामने रख दिया। गरीब औरत की आँखें में आँसू जारी थे। उसका जी बरबस चाहता था कि उसके पैरों को पकड़कर खूब रोये। आज बहुत दिनों के बाद एक सच्चे हमदर्द की आवाज उसके मन में आयी थी।

जब सेठ जी चले तो उसने दोनों हाथों से प्रणाम किया। उसके हृदय की गहराइयों से प्रार्थना निकली—आपने एक बेबस पर दया की है, ईश्वर आपको इसका बदला दे।

दूसरे दिन रोहिणी पाठशाला गई तो उसकी बाँकी सज-धज आँखों में खुबी जाती थी। उस्तानियों ने उसे बारी-बारी प्यार किया और उसकी सहेलियाँ उसकी एक-एक चीज को आश्चर्य से देखती और ललचाती थी। अच्छे कपड़ों से कुछ स्वाभिमान का अनुभव होता है। आज रोहिणी वह गरीब लड़की न रही जो दूसरों की तरफ विवश नेत्रों से देखा करती थी। आज उसकी एक-एक क्रिया से शैशवोचित गर्व और चंचलता टपकती थी और उसकी जबान एक दम के लिए भी न रुकती थी। कभी मोटर की तेजी का जिक्र था कभी बाजार की दिलचस्पियों का बयान, कभी अपनी गुड़ियों के कुशल-मंगल की चर्चा थी और कभी अपने बाप की मुहब्बत की दास्तान। दिल था कि उमंगों से भरा हुआ था।

एक महीने बाद सेठ पुरुषोत्तमदास ने रोहिणी के लिए फिर तोहफे और रुपये रवाना किये। बेचारी विधवा को उनकी कृपा से जीविका की चिन्ता से छुट्टी मिली। वह भी रोहिणी के साथ पाठशाला आती और दोनों माँ-बेटियाँ एक ही दरजे के साथ-साथ पढ़तीं, लेकिन रोहिणी का नम्बर हमेशा माँ से अक्वल रहा सेठ जी जब पूना की तरफ से निकलते तो रोहिणी को देखने जरूर आते और उनका आगमन उसकी प्रसन्नता और मनोरंजन के लिए महीनों का सामान इकट्ठा कर देता।

इसी तरह कई साल गुजर गये और रोहिणी ने जवानी के सुहाने हरे-भरे मैदान में पैर रक्खा, जबकि बचपन की भोली-भाली अदाओं में एक खास मतलब और इरादों का दखल हो जाता है।

रोहिणी अब आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य में अपनी पाठशाला की नाक थी। हाव-भाव में आकर्षक गम्भीरता, बातों में गीत का-सा खिंचाव और गीत का-सा आत्मिक रस था। कपड़ों में रंगीन सादगी, आँखों में लाज-संकोच, विचारों में पवित्रता। जवानी थी मगर घमण्ड और बनावट और चंचलता से मुक्त। उसमें एक

सेठ जी के बड़े बेटे नरोत्तमदास कई साल तक अमेरिका और जर्मनी की युनिवर्सिटियों की खाक छानने के बाद इंजीनियरिंग विभाग में कमाल हासिल करके वापस आए थे। अमेरिका के सबसे प्रतिष्ठित कालेज में उन्होंने सम्मान का पद प्राप्त किया था। अमेरिका के अखबार एक हिन्दोस्तानी नौजवान की इस शानदार कामयाबी पर चकित थे। उन्हीं का स्वागत करने के लिए बम्बई में एक बड़ा जलसा किया गया था। इस उत्सव में शरीक होने के लिए लोग दूर-दूर से आए थे। सरस्वती पाठशाला को भी निमंत्रण मिला और रोहिणी को सेठानी जी ने विशेष रूप से आमंत्रित किया। पाठशाला में हफ्तों तैयारियाँ हुईं। रोहिणी को एक दम के लिए भी चैन न था। यह पहला मौका था कि उसने अपने लिए बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाये। रंगों के चुनाव में वह मिठास थी, काट-छाँट में वह फबन जिससे उसकी सुन्दरता चमक उठी। सेठानी कौशल्या देवी उसे लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर मौजूद थीं। रोहिणी गाड़ी से उतरते ही उनके पैरों की तरफ झुकी लेकिन उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इस तरह प्यार किया कि जैसे वह उनकी बेटी है। वह उसे बार-बार देखती थीं और आँखों से गर्व और प्रेम टपक पड़ता था।

इस जलसे के लिए ठीक समुन्दर के किनारे एक हरे-भरे सुहाने मैदान में एक लम्बा-चौड़ा शामियाना लगाया गया था। एक तरफ आदमियों का समुद्र उमड़ा हुआ था दूसरी तरफ समुद्र की लहरें उमड़ रही थीं, गोया वह भी इस खुशी में शरीक थीं।

जब उपस्थित लोगों ने रोहिणी बाई के आने की खबर सुनी तो हजारों आदमी उसे देखने के लिए खड़े हो गए। यही तो वह लड़की है। जिसने अबकी शास्त्री की परीक्षा पास की है। जरा उसके दर्शन करने चाहिये। अब भी इस देश की स्त्रियों में ऐसे रतन मौजूद हैं। भोले-भाले देशप्रेमियों में इस तरह की बातें होने लगीं। शहर की कई प्रतिष्ठित महिलाओं ने आकर रोहिणी को गले लगाया और आपस में उसके सौन्दर्य और उसके कपड़ों की चर्चा होने लगी।

आखिर मिस्टर पुरुषोत्तमदास तशरीफ लाए। हालाँकि वह बड़ा शिष्ट और गम्भीर उत्सव था लेकिन उस वक्त दर्शन की उत्कंठा पागलपन की हद तक जा पहुँची थी। एक भगदड़-सी मच गई। कुर्सियों की कतारे गड़बड़ हो गई। कोई कुर्सी पर खड़ा हुआ, कोई उसके हथ्यों पर। कुछ मनचले लोगों ने शामियाने की रस्सियाँ पकड़ीं और उन पर जा लटके कई मिनट तक यही तूफान मचा रहा। कहीं कुर्सियाँ टूटीं, कहीं कुर्सियाँ उलटीं, कोई किसी के ऊपर गिरा, कोई नीचे। ज्यादा तेज लोगों में धौल-धप्पा होने लगा।

तब बीन की सुहानी आवाजें आने लगीं। रोहिणी ने अपनी मण्डली के साथ देशप्रेम में डूबा हुआ गीत शुरू किया। सारे उपस्थित लोग बिलकुल शान्त थे और उस समय वह सुरीला राग, उसकी कोमलता और स्वच्छता, उसकी प्रभावशाली मधुरता, उसकी उत्साह भरी वाणी दिलों पर वह नशा-सा पैदा कर रही थी जिससे प्रेम की लहरें उठती हैं, जो दिल से बुराइयों को मिटाता है और उससे जिन्दगी की हमेशा याद रहने वाली यादगारें पैदा हो जाती हैं। गीत बन्द होने पर तारीफ की एक आवाज न आई। वहीं ताने कानों में अब तक गूँज रही थीं।

गाने के बाद विभिन्न संस्थाओं की तरफ से अभिनन्दन पेश हुए और तब नरोत्तमदास लोगों को धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए। लेकिन उनके भाषाण से लोगों को थोड़ी निराशा हुई। यों दोस्तों की मण्डली में उनकी वक्तृता के आवेग और प्रवाह की कोई सीमा न थी लेकिन सार्वजनिक सभा के सामने खड़े होते ही शब्द और विचार दोनों ही उनसे बेवफाई कर जाते थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी मुश्किल से धन्यवाद के कुछ शब्द कहे और तब अपनी योग्यता की लज्जित स्वीकृति के साथ अपनी जगह पर आ बैठे। कितने ही लोग उनकी योग्यता पर जानियों की तरह सिर हिलाने लगे।

अब जलसा खत्म होने का वक्त आया। वह रेशमी हार जो सरस्वती पाठशाला की ओर से भेजा गया था, मेज पर रखा हुआ था। उसे हीरो के गले में कौन डाले? प्रेसिडेंट ने महिलाओं की पंक्ति की ओर नजर दौड़ाई। चुनने वाली आँख रोहिणी पर पड़ी और ठहर गई। उसकी छाती धड़कने लगी। लेकिन उत्सव के सभापति के आदेश का पालन आवश्यक था। वह सर झुकाये हुए मेज के पास आयी और काँपते हाथों से हार को उठा लिया। एक क्षण के लिए दोनों की आँखें मिलीं और रोहिणी ने नरोत्तमदास के गले में हार डाल दिया।

दूसरे दिन सरस्वती पाठशाला के मेहमान विदा हुए लेकिन कौशल्या देवी ने रोहिणी को न जाने दिया। बोली—अभी तुम्हें देखने से जी नहीं भरा, तुम्हें यहाँ एक हफ्ता रहना होगा। आखिर मैं भी तो तुम्हारी माँ हूँ। एक माँ से इतना प्यार और दूसरी माँ से इतना अलगाव!

रोहिणी कुछ जवाब न दे सकी।

यह सारा हफ्ता कौशल्या देवी ने उसकी विदाई की तैयारियों में खर्च किया। सातवें दिन उसे विदा करने के लिए स्टेशन तक आयीं। चलते वक्त उससे गले मिलीं और बहुत कोशिश करने पर भी आँसुओं को न रोक सकीं। नरोत्तमदास भी आये थे। उनका चेहरा उदास था। कौशल्या ने उनकी तरफ सहानुभूतिपूर्ण आँखों से देखकर कहा—मुझे यह तो ख्याल ही न रहा, रोहिणी क्या यहाँ से पूना तक अकेली जायेगी? क्या हर्ज है, तुम्हीं चले जाओ, शाम की गाड़ी से लौट आना।

नरोत्तमदास के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गयी, जो इन शब्दों में न छिप सकी—अच्छा, मैं ही चला जाऊँगा। वह इस फिक्र में थे कि देखें बिदाई की बातचीत का मौका भी मिलता है या नहीं। अब वह खूब जी भरकर अपना दर्द दिल सुनायेंगे और मुमकिन हुआ तो उस लाज-संकोच को, जो उदासीनता के परदे में छिपी हुई है, मिटा देंगे।

4

रुक्मिणी को अब रोहिणी की शादी की फिक्र पैदा हुई। पड़ोस की औरतों में इसकी चर्चा होने लगी थी। लड़की इतनी सयानी हो गयी है, अब क्या बुढ़ापे में ब्याह होगा? कई जगह से बात आयी, उनमें कुछ बड़े प्रतिष्ठित घराने थे। लेकिन जब रुक्मिणी उन पैमानों को सेठजी के पास भेजती तो वे यही जवाब देते कि मैं खुद फिक्र में हूँ। रुक्मिणी को उनकी यह टाल-मटोल बुरी मालूम होती थी।

रोहिणी को बम्बई से लौटे महीना भर हो चुका था। एक दिन वह पाठशाला से लौटी तो उसे अम्मा की चारपाई पर एक खत पड़ा हुआ मिला। रोहिणी पढ़ने लगी, लिखा था—बहन, जब से मैंने तुम्हारी लड़की को बम्बई में देखा है, मैं उस पर रीझ गई हूँ। अब उसके बगैर मुझे चैन नहीं है। क्या मेरा ऐसा भाग्य होगा कि वह मेरी बहू बन सके? मैं गरीब हूँ लेकिन मैंने सेठ जी को राजी कर लिया है। तुम भी मेरी यह विनती कबूल करो। मैं तुम्हारी लड़की को चाहे फूलों की सेज पर न सुला सकूँ, लेकिन इस घर का एक-एक आदमी उसे आँखों की पुतली बनाकर रखेगा। अब रहा लड़का। माँ के मुँह से लड़के का बखान कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लेकिन यह कह सकती हूँ कि परमात्मा ने यह जोड़ी अपनी हाथों बनायी है। सूरत में, स्वभाव में, विद्या में, हर दृष्टि से वह रोहिणी के योग्य है। तुम जैसे चाहे अपना इत्मीनान कर सकती हो। जवाब जल्द देना और ज्यादा क्या लिखूँ। नीचे थोड़े-से शब्दों में सेठजी ने उस पैगाम की सिफारिश की थी।

रोहिणी गालों पर हाथ रखकर सोचने लगी। नरोत्तमदास की तस्वीर उसकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई। उनकी वह प्रेम की बातें, जिनका सिलसिला बम्बई से पूना तक नहीं टूटा था, कानों में गूँजने लगीं। उसने एक ठण्डी साँस ली और उदास होकर चारपाई पर लेट गई।

5

सरस्वती पाठशाला में एक बार फिर सजावट और सफाई के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आज रोहिणी की शादी का शुभ दिन। शाम का वक्त, बसन्त का सुहाना मौसम। पाठशाला के दारो-दीवार मुस्करा रहे हैं और हरा-भरा बगीचा फूला नहीं समाता।

चन्द्रमा अपनी बारात लेकर पूरब की तरफ से निकला। उसी वक्त मंगलाचरण का सुहाना राग उस रूपहली चाँदनी और हल्के-हल्के हवा के झोंकों में लहरें मारने लगा। दूल्हा आया, उसे देखते ही लोग हैरत में आ गए। यह नरोत्तमदास थे।

दूल्हा मण्डप के नीचे गया। रोहिणी की माँ अपने को रोक न सकी, उसी वक्त जाकर सेठ जी के पैर पर गिर पड़ी। रोहिणी की आँखों से प्रेम और आनन्द के आँसू बहने लगे।

मण्डप के नीचे हवन-कुण्ड बना था। हवन शुरू हुआ, खुशबू की लपेटें हवा में उठीं और सारा मैदान महक गया। लोगों के दिलो-दिमाग में ताजगी की उमंग पैदा हुई।

फिर संस्कार की बारी आई। दूल्हा और दुल्हन ने आपस में हमदर्दी, जिम्मेदारी और वफादारी के पवित्र शब्द अपनी जबानों से कहे। विवाह की वह मुबारक जंजीर गले में पड़ी जिसमें वजन है, सख्ती है,

पाबन्दियों हैं लेकिन वजन के साथ सुख और पाबन्दियों के साथ विश्वास है। दोनों दिलों में उस वक्त एक नयी, बलवान, आत्मिक शक्ति की अनुभूति हो रही थी।

जब शादी की रस्में खत्म हो गयीं तो नाच-गाने की मजलिस का दौर आया। मोहक गीत गूँजने लगे। सेठ जी थककर चूर हो गए थे। जरा दम लेने के लिए बागीचे में जाकर एक बेंच पर बैठ गये। ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही आ रही थी। एक नशा-सा पैदा करने वाली शान्ति चारों तरफ छायी हुई थी। उसी वक्त रोहिणी उनके पास आयी और उनके पैरों से लिपट गयी। सेठ जी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और हँसकर बोले—क्यों, अब तो तुम मेरी अपनी बेटी हो गयीं?

--जमाना, जून १९१४

मुझे हमेशा आदमियों के परखने की सनक रही है और अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि यह अध्ययन जितना मनोरंजक, शिक्षाप्रद और उदधाटनों से भरा हुआ है, उतना शायद और कोई अध्ययन न होगा। लेकिन अपने दोस्त लाला साईंदयाल से बहुत अर्से तक दोस्ती और बेतकल्लुफी के सम्बन्ध रहने पर भी मुझे उनकी थाह न मिली। मुझे ऐसे दुर्बल शरीर में जानियों की-सी शान्ति और संतोष देखकर आश्चर्य होता था जो एक नाजुक पौधे की तरह मुसीबतों के झोंकों में भी अचल और अटल रहता था। ज्यों वह बहुत ही मामूली दरजे का आदमी था जिसमें मानव कमजोरियों की कमी न थी। वह वादे बहुत करता था लेकिन उन्हें पूरा करने की जरूरत नहीं समझता था। वह मिथ्याभाषी न हो लेकिन सच्चा भी न था। बेमुरौवत न हो लेकिन उसकी मुरौवत छिपी रहती थी। उसे अपने कर्तव्य पर पाबन्द रखने के लिए दबाव और निगरानी की जरूरत थी, किफायतशारी के उसूलों से बेखबर, मेहनत से जी चुराने वाला, उसूलों का कमजोर, एक ढीला-ढाला मामूली आदमी था। लेकिन जब कोई मुसीबत सिर पर आ पड़ती तो उसके दिल में साहस और दृढ़ता की वह जबर्दस्त ताकत पैदा हो जाती थी जिसे शहीदों का गुण कह सकते हैं। उसके पास न दौलत थी न धार्मिक विश्वास, जो ईश्वर पर भरोसा करने और उसकी इच्छाओं के आगे सिर झुका देने का स्रोत है। एक छोटी-सी कपड़े की दुकान के सिवाय कोई जीविका न थी। ऐसी हालतों में उसकी हिम्मत और दृढ़ता का सोता कहाँ छिपा हुआ है, वहाँ तक मेरी अन्वेषण-दृष्टि नहीं पहुँचती थी।

२

बाप के मरते ही मुसीबतों ने उस पर छापा मारा कुछ थोड़ा-सा कर्ज विरासत में मिला जिसमें बराबर बढ़ते रहने की आश्चर्यजनक शक्ति छिपी हुई थी। बेचारे ने अभी बरसी से छुटकारा नहीं पाया था कि महाजन ने नालिश की और अदालत के तिलस्मी अहाते में पहुँचते ही यह छोटी-सी हस्ती इस तरह फूली जिस तरह मशक फलती है। डिग्री हुई। जो कुछ जमा-जथा थी; बर्तन-भाँड़ें, हॉडी-तवा, उसके गहरे पेट में समा गये। मकान भी न बचा। बेचारे मुसीबतों के मारे साईंदयाल का अब कहीं ठिकाना न था। कौड़ी-कौड़ी को मुहताज, न कहीं घर, न बार। कई-कई दिन फाके से गुजर जाते। अपनी तो खैर उन्हें जरा भी फिक्र न थी लेकिन बीवी थी, दो-तीन बच्चे थे, उनके लिए तो कोई-न-कोई फिक्र करनी पड़ती थी। कुनबे का साथ और यह बेसरोसामानी, बड़ा दर्दनाक दृश्य था। शहर से बाहर एक पेड़ की छाँह में यह आदमी अपनी मुसीबत के दिन काट रहा था। सारे दिन बाजारों की खाक छानता। आह, मैंने एक बार उस रेलवे स्टेशन पर देखा। उसके सिर पर एक भारी बोझ था। उसका नाजुग, सुख-सुविधा में पला हुआ शरीर, पसीना-पसीना हो रहा था। पैर मुश्किल से उठते थे। दम फूल रहा था लेकिन चेहरे से मर्दाना हिम्मत और मजबूत इरादे की रोशनी टपकती थी। चेहरे से पूर्ण संतोष झलक रहा था। उसके चेहरे पर ऐसा इत्मीनान था कि जैसे यही उसका बाप-दादों का पेशा है। मैं हैरत से उसका मुँह ताकता रह गया। दुख में हमदर्दी दिखलाने की हिम्मत न हुई। कई महीने तक यही कैफियत रही। आखिरकार उसकी हिम्मत और सहनशक्ति उसे इस कठिन दुर्गम घाटी से बाहर निकल लायी।

३

थोड़े ही दिनों के बाद मुसीबतों ने फिर उस पर हमला किया। ईश्वर ऐसा दिन दुश्मन को भी न दिखलाये। मैं एक महीने के लिए बम्बई चला गया था, वहाँ से लौटकर उससे मिलने गया। आह, वह दृश्य याद करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ओर दिल डर से कॉप उठता है। सुबह का वक्त था। मैंने दरवाजे पर आवाज दी और हमेशा की तरह बेतकल्लुफ अन्दर चला गया, मगर वहाँ साईंदयाल का वह हँसमुख चेहरा, जिस पर मर्दाना हिम्मत की ताजगी झलकती थी, नजर न आया। मैं एक महीने के बाद उनके घर जाऊँ और वह आँखों से रोते लेकिन होंठों से हँसते दौड़कर मेरे गले लिपट न जाय! जरूर कोई आफत है। उसकी बीवी सिर झुकाये आयी और मुझे उसके कमरे में ले गयी। मेरा दिल बैठ गया। साईंदयाल एक चारपाई पर मैले-कुचैले कपड़े लपेटे, आँखें बन्द किये, पड़ा दर्द से कराह रहा था। जिस्म और बिछौने पर मक्खियों के गुच्छे बैठे हुए थे। आहट पाते ही उसने मेरी तरफ देखा। मेरे जिगर के टुकड़े हो गये। हड्डियों का ढाँचा रह गया था। दुर्बलता की इससे ज्यादा सच्ची और करुणा तस्वीर नहीं हो सकती। उसकी बीवी ने

मेरी तरफ निराशाभरी आँखों से देखा। मेरी आँसू भर आये। उस सिमटे हुए ढाँचे में बीमारी को भी मुश्किल से जगह मिलती होगी, जिन्दगी का क्या जिक्र! आखिर मैंने धीरे पुकारा। आवाज सुनते ही वह बड़ी-बड़ी आँखें खुल गयीं लेकिन उनमें पीड़ा और शोक के आँसू न थे, सन्तोष और ईश्वर पर भरोसे की रोशनी थी और वह पीला चेहरा! आह, वह गम्भीर संतोष का मौन चित्र, वह संतोषमय संकल्प की सजीव स्मृति। उसके पीलेपन में मर्दाना हिम्मत की लाली झलकती थी। मैं उसकी सूरत देखकर घबरा गया। क्या यह बुझते हुए चिराग की आखिरी झलक तो नहीं है?

मेरी सहमी हुई सूरत देखकर वह मुस्कराया और बहुत धीमी आवाज में बोला—तुम ऐसे उदास क्यों हो, यह सब मेरे कर्मों का फल है।

४

मगर कुछ अजब बदकिस्मत आदमी था। मुसीबतों को उससे कुछ खास मुहब्बत थी। किसे उम्मीद थी कि वह उस प्राणघातक रोग से मुक्ति पायेगा। डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया था। मौत के मुंह से निकल आया। अगर भविष्य का जरा भी ज्ञान होता तो सबसे पहले मैं उसे जहर दे देता। आह, उस शोकपूर्ण घटना को याद करके कलेजा मुंह को आता है। धिक्कार है इस जिन्दगी पर कि बाप अपनी आँखों से अपनी इकलौते बेटे का शोक देखे।

कैसा हँसमुख, कैसा खूबसूरत, होनहार लड़का था, कैसा सुशील, कैसा मधुरभाषी, जालिम मौत ने उसे छाँट लिया। प्लेग की दुहाई मची हुई थी। शाम को गिल्टी निकली और सुबह को—कैसी मनहूस, अशुभ सुबह थी—वह जिन्दगी सबेरे के चिराग की तरह बुझ गयी। मैं उस वक्त उस बच्चे के पास बैठा हुआ था और साईंदयाल दीवार का सहारा लिए हुए खामोशा आसमान की तरफ देखता था। मेरी और उसकी आँखों के सामने जालिम और बेरहम मौत ने उस बच्चे को हमारी गोद से छीन लिया। मैं रोते हुए साईंदयाल के गले से लिपट गया। सारे घर में कुहराम मचा हुआ था। बेचारी माँ पछाड़ें खा रही थी, बहनें दौड़-दौड़कर भाई की लाश से लिपटती थीं। और जरा देर के लिए ईर्ष्या ने भी समवेदना के आगे सिर झुका दिया था—मुहल्ले की औरतों को आँसू बहाने के लिए दिल पर जोर डालने की जरूरत न थी।

जब मेरे आँसू थमे तो मैंने साईंदयाल की तरफ देखा। आँखों में तो आँसू भरे हुए थे—आह, संतोष का आँखों पर कोई बस नहीं, लेकिन चेहरे पर मर्दाना दृढ़ता और समर्पण का रंग स्पष्ट था। इस दुख की बाढ़ और तूफानों में भी शान्ति की नैया उसके दिल को डूबने से बचाये हुए थी।

इस दृश्य ने मुझे चकित नहीं स्तम्भित कर दिया। सम्भावनाओं की सीमाएँ कितनी ही व्यापक हों ऐसी हृदय-द्रावक स्थिति में होश-हवास और इत्मीनान को कायम रखना उन सीमाओं से परे है। लेकिन इस दृष्टि से साईंदयाल मानव नहीं, अति-मानव था। मैंने रोते हुए कहा—भाईसाहब, अब संतोष की परीक्षा का अवसर है। उसने दृढ़ता से उत्तर दिया—हाँ, यह कर्मों का फल है।

मैं एक बार फिर भौंचक होकर उसका मुंह ताकने लगा।

५

लेकिन साईंदयाल का यह तपस्वियों जैसा धैर्य और ईश्वरेच्छा पर भरोसा अपनी आँखों से देखने पर भी मेरे दिल में संदेह बाकी थे। मुमकिन है, जब तक चोट ताजी है सब्र का बाँध कायम रहे। लेकिन उसकी बुनियादें हिल गयी हैं, उसमें दरारें पड़ गई हैं। वह अब ज्यादा देर तक दुख और शोक की जहरों का मुकाबला नहीं कर सकता।

क्या संसार की कोई दुर्घटना इतनी हृदयद्रावक, इतनी निर्मम, इतनी कठोर हो सकता है! संतोष और दृढ़ता और धैर्य और ईश्वर पर भरोसा यह सब उस आँधी के समान घास-फूस से ज्यादा नहीं। धार्मिक विश्वास तो क्या, अध्यात्म तक उसके सामने सिर झुका देता है। उसके झोंके आस्था और निष्ठा की जड़ें हिला देते हैं।

लेकिन मेरा अनुमान गलत निकला। साईंदयाल ने धीरज को हाथ से न जाने दिया। वह बदस्तूर जिन्दगी के कामों में लग गया। दोस्तों की मुलाकातें और नदी के किनारे की सैर और तफरीह और मेलों की चहल-पहल, इन दिलचस्पियों में उसके दिल को खींचने की ताकत अब भी बाकी थी। मैं उसकी एक-एक क्रिया को, एक-एक बात को गौर से देखता और पढ़ता। मैंने दोस्ती के नियम-कायदों को भुलाकर उसे उस

हालत में देखा जहाँ उसके विचारों के सिवा और कोई न था। लेकिन उस हालत में भी उसके चेहरे पर वही पुरुषोचित धैर्य था और शिकवे-शिकायत का एक शब्द भी उसकी जबान पर नहीं आया।

६

इसी बीच मेरी छोटी लड़की चन्द्रमुखी निमोनिया की भेंट चढ़ गयी। दिन के धंधे से फुरसत पाकर जब मैं घर पर आता और उसे प्यार से गोद में उठा लेता तो मेरे हृदय को जो आनन्द और आत्मिक शक्ति मिलती थी, उसे शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। उसकी अदाएँ सिर्फ दिल को लुभानेवाली नहीं गम को भुलानेवाली हैं। जिस वक्त वह हुमककर मेरी गोद में आती तो मुझे तीनों लोक की संपत्ति मिल जाती थी। उसकी शरारतें कितनी मनमोहक थीं। अब हुक्के में मजा नहीं रहा, कोई चिलम को गिरानेवाला नहीं! खाने में मजा नहीं आता, कोई थाली के पास बैठा हुआ उस पर हमला करनेवाला नहीं! मैं उसकी लाश को गोद में लिये बिलख-बिलखकर रो रहा था। यही जी चाहता था कि अपनी जिन्दगी का खात्मा कर दूँ। यकायक मैंने साईंदयाल को आते देखा। मैंने फौरन आँसू पोंछ डाले और उस नन्हीं-सी जान को जमीन पर लिटाकर बाहर निकल आया। उस धैर्य और संतोष के देवता ने मेरी तरफ संवेदनशील की आँखों से देखा और मेरे गले से लिपटकर रोने लगा। मैंने कभी उसे इस तरह चीखें मारकर रोते नहीं देखा। रोते-रोते उसी हिचकियाँ बंध गयीं, बेचैनी से बेसुध और बेहार हो गया। यह वही आदमी है जिसका इकलौता बेटा मरा और माथे पर बल नहीं आया। यह कायापलट क्यों?

७

इस शोक पूर्ण घटना के कई दिन बाद जबकि दुखी दिल सम्हलने लगा, एक रोज हम दोनों नदी की सैर को गये। शाम का वक्त था। नदी कहीं सुनहरी, कहीं नीली, कहीं काली, किसी थके हुए मुसाफिर की तरह धीरे-धीरे बह रही थी। हम दूर जाकर एक टीले पर बैठ गये लेकिन बातचीत करने को जी न चाहता था। नदी के मौन प्रवाह ने हमको भी अपने विचारों में डुबो दिया। नदी की लहरें विचारों की लहरों को पैदा कर देती हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि प्यारी चन्द्रमुखी लहरों की गोद में बैठी मुस्कुरा रही है। मैं चौंक पड़ा और अपने आँसुओं को छिपाने के लिए नदी में मुँह धोने लगा। साईंदयाल ने कहा—भाईसाहब, दिल को मजबूत करो। इस तरह कुढ़ोगे तो जरूर बीमार हो जाओगे।

मैंने जवाब दिया—ईश्वर ने जितना संयम तुम्हें दिया है, उसमें से थोड़ा-सा मुझे भी दे दो, मेरे दिल में इतनी ताकत कहाँ।

साईंदयाल मुस्कुराकर मेरी तरफ ताकने लगे।

मैंने उसी सिलसिले में कहा—किताबों में तो दृढ़ता और संतोष की बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी हैं मगर सच मानों कि तुम जैसा दृढ़, कठिनाइयों में सीधा खड़ा रहने वाला आदमी आज तक मेरी नजर से नहीं गुजरा। तुम जानते हो कि मुझे मानव स्वभाव के अध्ययन का हमेशा से शौक है लेकिन मेरे अनुभव में तुम अपनी तरह के अकेले आदमी हो। मैं यह न मानूँगा कि तुम्हारे दिल में दर्द और घुलावट नहीं है। उसे मैं अपनी आँखों से देख चुका हूँ। फिर इस जानियों जैसे संतोष और शान्ति का रहस्य तुमने कहाँ छिपा रक्खा है? तुम्हें इस समय यह रहस्य मुझसे कहना पड़ेगा।

साईंदयाल कुछ सोच-विचार में पड़ गया और जमीन की तरफ ताकते हुए बोला—यह कोई रहस्य नहीं, मेरे कर्मों का फल है।

यह वाक्य मैंने चौथी बार उसकी जबान से सुना और बोला—जिन, कर्मों का फल ऐसा शक्तिदायक है, उन कर्मों की मुझे भी कुछ दीक्षा दो। मैं ऐसे फलों से क्यों वंचित रहूँ।

साईंदयाल ने व्याथापूर्ण स्वर में कहा—ईश्वर न करे कि तुम ऐसा कर्म करो और तुम्हारी जिन्दगी पर उसका काला दाग लगे। मैंने जो कुछ किया है, व मुझे ऐसा लज्जाजनक और ऐसा घृणित मालूम होता है कि उसकी मुझे जो कुछ सजा मिले, मैं उसे खुशी के साथ झेलने को तैयार हूँ। आह! मैंने एक ऐसे पवित्र खानदान को, जहाँ मेरा विश्वास और मेरी प्रतिष्ठा थी, अपनी वासनाओं की गन्दगी में लिथेड़ा और एक ऐसे पवित्र हृदय को जिसमें मुहब्बत का दर्द था, जो सौन्दर्य-वाटिका की एक अनोखी-नयी खिली हुई कली थी, और सच्चाई थी, उस पवित्र हृदय में मैंने पाप और विश्वासघात का बीज हमेशा के लिए बो दिया। यह पाप है जो मुझसे हुआ है और उसका पल्ला उन मुसीबतों से बहुत भारी है जो मेरे ऊपर अब तक पड़ी हैं या आगे चलकर पड़ेंगी। कोई सजा, कोई दुख, कोई क्षति उसका प्रायश्चित्त नहीं कर सकती।

मैंने सपने में भी न सोचा था कि साईंदयाल अपने विश्वासों में इतना दृढ़ है। पाप हर आदमी से होते हैं, हमारा मानव जीवन पापों की एक लम्बी सूची है, वह कौन-सा दामन है जिस पर यह काले दाग न हों। लेकिन कितने ऐसे आदमी हैं जो अपने कर्मों की सजाओं को इस तरह उदारतापूर्वक मुस्कराते हुए झेलने के लिए तैयार हों। हम आग में कूदते हैं लेकिन जलने के लिए तैयार नहीं होते।

मैं साईंदयाल को हमेशा इज्जत की निगाह से देखता हूँ, इन बातों को सुनकर मेरी नजरों में उसकी इज्जत तिगुनी हो गयी। एक मामूली दुनियादार आदमी के सीने में एक फकीर का दिल छिपा हुआ था जिसमें ज्ञान की ज्योति चमकती थी। मैंने उसकी तरफ श्रद्धापूर्ण आँखों से देखा और उसके गले से लिपटकर बोला—साईंदयाल, अब तक मैं तुम्हें एक दृढ़ स्वभाव का आदमी समझता था, लेकिन आज मालूम हुआ कि तुम उन पवित्र आत्माओं में हो, जिनका अस्तित्व संसार के लिए वरदान है। तुम ईश्वर के सच्चे भक्त हो और मैं तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाता हूँ।

—उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

सभ्यता का रहस्य

यों तो मेरी समझ में दुनिया की एक हजार एक बातें नहीं आती—जैसे लोग प्रातःकाल उठते ही बालों पर छुरा क्यों चलाते हैं ? क्या अब पुरुषों में भी इतनी नजाकत आ गयी है कि बालों का बोझ उनसे नहीं सँभलता ? एक साथ ही सभी पढ़े-लिखे आदमियों की आँखें क्यों इतनी कमजोर हो गयी है ? दिमाग की कमजोरी ही इसका कारण है या और कुछ ? लोग खिताबों के पीछे क्यों इतने हैरान होते हैं ? इत्यादि—लेकिन इस समय मुझे इन बातों से मतलब नहीं। मेरे मन में एक नया प्रश्न उठ रहा है और उसका जवाब मुझे कोई नहीं देता। प्रश्न यह है कि सभ्य कौन है और असभ्य कौन ? सभ्यता के लक्षण क्या हैं ? सरसरी नजर से देखिए, तो इससे ज्यादा आसान और कोई सवाल ही न होगा। बच्चा-बच्चा इसका समाधान कर सकता है। लेकिन जरा गौर से देखिए, तो प्रश्न इतना आसान नहीं जान पड़ता। अगर कोट-पतलून पहनना, टाई-हैट कालर लगाना, मेज पर बैठकर खाना खाना, दिन में तेरह बार कोको या चाय पीना और सिगार पीते हुए चलना सभ्यता है, तो उन गोरों को भी सभ्य कहना पड़ेगा, जो सड़क पर बैठकर शाम को कभी-कभी टहलते नजर आते हैं; शराब के नशे से आँखें सुर्ख, पैर लड़खड़ाते हुए, रास्ता चलनेवालों को अनायास छेड़ने की धुन ! क्या उन गोरों को सभ्य कहा जा सकता है ? कभी नहीं। तो यह सिद्ध हुआ कि सभ्यता कोई और ही चीज है, उसका देह से इतना सम्बन्ध नहीं है जितना मन से।

2

मेरे इने-गिने मित्रों में एक राय रतनकिशोर भी हैं। आप बहुत ही सहृदय, बहुत ही उदार, बहुत शिक्षित और एक बड़े ओहदेदार हैं। बहुत अच्छा वेतन पाने पर भी उनकी आमदनी खर्च के लिए काफी नहीं होती। एक चौथाई वेतन तो बँगले ही की भेंट हो जाती है। इसलिए आप बहुधा चिंतित रहते हैं। रिश्वत तो नहीं लेते—कम-से-कम मैं नहीं जानता, हालाँकि कहने वाले कहते हैं—लेकिन इतना जानता हूँ कि वह भत्ता बढ़ाने के लिए दौरे पर बहुत रहते हैं, यहाँ तक कि इसके लिए हर साल बजट की किसी दूसरे मद से रुपये निकालने पड़ते हैं। उनके अफसर कहते हैं, इतने दौरे क्यों करते हो, तो जवाब देते हैं, इस जिले का काम ही

ऐसा है कि जब तक खूब दौरे न किए जाएँ रिआया शांत नहीं रह सकती। लेकिन मजा तो यह है कि राय साहब उतने दौरे वास्तव में नहीं करते, जितने कि अपने रोजनामचे में लिखते हैं। उनके पड़ाव शहर से पचास मील पर होते हैं। खेमे वहाँ गड़े रहते हैं, कैप के अमले वहाँ पड़े रहते हैं और राय साहब घर पर मित्रों के साथ गप-शप करते रहते हैं, पर किसी की मजाल है कि राय साहब की नेकनीयती पर सन्देह कर सके। उनके सभ्य पुरुष होने में किसी को शंका नहीं हो सकती।

एक दिन मैं उनसे मिलने गया। उस समय वह अपने घसियारे दमड़ी को डाँट रहे थे। दमड़ी रात-दिन का नौकर था, लेकिन घर रोटी खाने जाया करता था। उसका घर थोड़ी ही दूर पर एक गाँव में था। कल रात को किसी कारण से यहाँ न आ सका। इसलिए डाँट पड़ रही थी।

राय साहब—जब हम तुम्हें रात-दिन के लिए रखे हुए हैं, तो तुम घर पर क्यों रहे ? कल के पैसे कट जायेंगे।

दमड़ी—हजूर, एक मेहमान आ गये थे, इसी से न आ सका।

राय साहब—तो कल के पैसे उसी मेहमान से लो।

दमड़ी—सरकार, अब कभी ऐसी खता न होगी।

राय साहब—बक-बक मत करो।

दमड़ी—हजूर.....

राय साहब—दो रुपये जुरमाना।

दमड़ी रोता चला गया। रोजा बखशाने आया था, नमाज़ गले पड़ गयी। दो रुपये जुरमाना ठुक गया। खता यही थी कि बेचारा कसूर माफ कराना चाहता था।

यह एक रात को गैरहाज़िर होने की सजा थी ! बेचारा दिन-भर का काम कर चुका था, रात को यहाँ सोया न था, उसका दण्ड ! और घर बैठे भते उड़ानेवाले को कोई नहीं पूछता ! कोई दंड नहीं देता। दंड तो मिले और ऐसा मिले कि जिंदगी-भर याद रहे; पर पकड़ना तो मुश्किल है। दमड़ी भी अगर होशियार होता, तो जरा रात रहे आकर कोठरी में सो जाता। फिर किसे खबर होती कि वह रात को कहाँ रहा। पर गरीब इतना चंट न था।

3

दमड़ी के पास कुल छः बिस्वे जमीन थी। पर इतने ही प्राणियों का खर्च भी था। उसके दो लड़के, दो लड़कियाँ और स्त्री, सब खेती में लगे रहते थे, फिर भी पेट की रोटियाँ नहीं मयस्सर होती थीं। इतनी जमीन क्या सोना उगल देती ! अगर सब-के-सब घर से निकल मजदूरी करने लगते, तो आराम से रह सकते थे; लेकिन मौरूसी किसान मजदूर कहलाने का अपमान न सह सकता था। इस बदनामी से बचने के लिए दो बैल बाँध रखे थे ! उसके वेतन का बड़ा भाग बैलों के दाने-चारे ही में उड़ जाता था। ये सारी तकलीफें मंजूर थीं, पर खेती छोड़कर मजदूर बन जाना मंजूर न था। किसान की जो प्रतिष्ठा है, वह कहीं मजदूर की हो सकती है, चाहे वह रुपया रोज ही क्यों न कमाये ? किसानी के साथ मजदूरी करना इतने अपमान की बात नहीं, द्वार पर बँधे हुए बैल हुए बैल उसकी मान-रक्षा किया करते हैं, पर बैलों को बेचकर फिर कहाँ मुँह दिखलाने की जगह रह सकती है !

एक दिन राय साहब उसे सरदी से काँपते देखकर बोले—कपड़े क्यों नहीं बनवाता ? काँप क्यों रहा है ?

दमड़ी—सरकार, पेट की रोटी तो पूरा ही नहीं पड़ती, कपड़े कहाँ से बनवाऊँ ?

राय साहब—बैलों को बेच क्यों नहीं डालता ? सैकड़ों बार समझा चुका, लेकिन न-जाने क्यों इतनी मोटी-सी बात तेरी समझ में नहीं आती।

दमड़ी—सरकार, बिरादरी में कहीं मुँह दिखाने लायक न रहूँगा। लड़की की सगाई न हो पायेगी, टाट बाहर कर दिया जाऊँगा।

राय साहब—इन्हीं हिमाकतों से तुम लोगों की यह दुर्गति हो रही है। ऐसे आदमियों पर दया करना भी पाप है। (मेरी तरफ फिर कर) क्यों मुंशीजी, इस पागलपन का भी कोई इलाज है ? जाड़ों मर रहे हैं, पर दरवाजे पर बैल जरूर बाँधेंगे।

मैंने कहा—जनाब, यह तो अपनी-अपनी समझ है।

राय साहब—ऐसी समझ को दूर से सलाम कीजिए। मेरे यहाँ कई पुशतों से जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता था। कई हजार रुपयों पर पानी फिर जाता था। गाना होता था; दावतें होती थीं, रिश्तेदारों को

न्योते दिये जाते थे, गरीबों को कपड़े बाँटे जाते थे। वालिद साहब के बाद पहले ही साल मैंने उत्सव बन्द कर दिया। फायदा क्या ? मुफ्त में चार-पाँच हजार की चपत खानी पड़ती थी। सारे कसबे में वावेला मचा, आवाजें कसी गयीं, किसी ने नास्तिक कहा, किसी ने ईसाई बनाया लेकिन यहाँ इन बातों की क्या परवा ! आखिर थोड़े ही दिनों में सारा कोलाहल शान्त हो गया। अजी, बड़ी दिल्लगी थी। कसबे में किसी के यहाँ शादी हो, लकड़ी मुझसे ले ! पुश्तों से यह रस्म चली आती थी। वालिद तो दूसरों से दरख्त मोल लेकर इस रस्म को निभाते थे। थी हिमाकत या नहीं ? मैंने फौरन लकड़ी देना बन्द कर दिया। इस पर भी लोग बहुत रोये-धोये, लेकिन दूसरों का रोना-धोना सुनूँ, या अपना फायदा देखूँ। लकड़ी से कम-से-कम 500)रुपये सलाना की बचत हो गयी। अब कोई भूलकर भी इन चीजों के लिए दिक करने नहीं आता।

मेरे दिल में फिर सवाल पैदा हुआ, दोनों में कौन सभ्य है, कुल-प्रतिष्ठा पर प्राण देनेवाले मूर्ख दमड़ी; या धन पर कुल-मर्यादा को बलि देनेवाले राय रतन किशोर !

4

राय साहब के इजलास में एक बड़े मार्के का मुकदमा पेश था। शहर का एक रईस खून के मामले में फँस गया था। उसकी जमानत के लिए राय साहब की खुशामदें होने लगीं। इज्जत की बात थी। रईस साहब का हुक्म था कि चाहे रियासत बिक जाय, पर इस मुकदमे से बेदाग निकल जाऊँ। डालियाँ लगाई गयीं, सिफारिशें पहुँचाई गयीं, पर राय साहब पर कोई असर न हुआ। रईस के आदमियों को प्रत्यक्ष रूप से रिश्वत की चर्चा करने की हिम्मत न पड़ती थी। आखिर जब कोई बस न चला, तो रईस की स्त्री से मिलकर सौदा पटाने की ठानी।

रात के दस बजे थे। दोनों महिलाओं में बातें होने लगीं। 20 हजार की बातचीत थी ! राय साहब की पत्नी तो इतनी खुश हुई कि उसी वक्त राय साहब के पास दौड़ी हुई आयी और कहनें लगी—ले लो, ले लो

राय साहब ने कहा—इतनी बेसब्र न हो। वह तुम्हें अपने दिल में क्या समझेंगी ? कुछ अपनी इज्जत का भी खयाल है या नहीं ? माना कि रकम बड़ी है और इससे मैं एकबारगी तुम्हारी आये दिन की फरमायशों से मुक्त हो जाऊँगा, लेकिन एक सिविलियन की इज्जत भी तो कोई मामूली चीज नहीं है। तुम्हें पहले बिगड़कर कहना चाहिए था कि मुझसे ऐसी बेदूदी बातचीत करनी हो, तो यहाँ से चली जाओ। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

स्त्री—यह तो मैंने पहले ही किया, बिगड़कर खूब खरी-खोटी सुनायीं। क्या इतना भी नहीं जानती ? बेचारी मेरे पैरों पर सर रखकर रोने लगी।

राय साहब—यह कहा था कि राय साहब से कहूँगी, तो मुझे कच्चा ही चबा जायेंगे ?

यह कहते हुए राय साहब ने गदगद होकर पत्नी को गले लगा लिया।

स्त्री—अजी, मैं न-जाने ऐसी कितनी ही बातें कह चुकी, लेकिन किसी तरह टाले नहीं टलती। रो-रोकर जान दे रही है।

राय साहब—उससे वादा तो नहीं कर लिया ?

स्त्री—वादा ? मैं रुपये लेकर सन्दूक में रख आयी। नोट थे।

राय साहब—कितनी जबरदस्त अहमक हो, न मालूम ईश्वर तुम्हें कभी समझ भी देगा या नहीं।

स्त्री—अब क्या देगा ? देना होता, तो दे न दी होती।

राय साहब—हाँ मालूम तो ऐसा ही होता है। मुझसे कहा तक नहीं और रुपये लेकर सन्दूक में दाखिल कर लिए ! अगर किसी तरह बात खुल जाय, तो कहीं का न रहूँ।

स्त्री—तो भाई, सोच लो। अगर कुछ गड़बड़ हो, तो मैं जाकर रुपये लौटा दूँ।

राय साहब—फिर वही हिमाकत ! अरे, अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। ईश्वर पर भरोसा करके जमानत लेनी पड़ेगी। लेकिन तुम्हारी हिमाकत में शक नहीं। जानती हो, यह साँप के मुँह में उँगली डालना है। यह भी जानती हो कि मुझे ऐसी बातों से कितनी नफरत है, फिर भी बेसब्र हो जाती हो। अबकी बार तुम्हारी हिमाकत से मेरा व्रत टूट रहा है। मैंने दिल में ठान लिया था कि अब इस मामले में हाथ न डालूँगा, लेकिन तुम्हारी हिमाकत के मारे जब मेरी कुछ चलने भी पाये ?

स्त्री—मैं जाकर लौटाये देती हूँ।

राय साहब—और मैं जाकर जहर खाये लेता हूँ।

इधर तो स्त्री-पुरुष में यह अभिनय हो रहा था, उधर दमड़ी उसी वक्त अपने गाँव के मुखिया के खेत से जुआर काट रहा था। आज वह रात-भर की छुट्टी लेकर घर गया था। बैलों के लिए चारे का एक तिनका

भी नहीं है। अभी वेतन मिलने में कई दिन की देर थी, मोल ले न सकता था। घर वालों ने दिन को कुछ घास छीलकर खिलायी तो थी, लेकिन ऊँट के मुँह में जीरा। उतनी घास से क्या हो सकता था। दोनों बैल भूखे खड़े थे। दमड़ी को देखते ही दोनों पूँछें खड़ी करके हुँकारने लगे। जब वह पास गया तो दोनों उसकी हथेलियाँ चाटने लगे। बेचारा दमड़ी मन मसोसकर रह गया। सोचा, इस वक्त तो कुछ हो नहीं सकता, सबेरे किसी से कुछ उधार लेकर चारा लाऊँगा।

लेकिन जब ग्यारह बजे रात उसकी आँखें खुलीं, तो देखा कि दोनों बैल अभी तक नाँद पर खड़े हैं। चाँदनी रात थी, दमड़ी को जान पड़ा कि दोनों उसकी ओर उपेक्षा और याचना की दृष्टि से देख रहे हैं। उनकी क्षुधा-वेदना देखकर उसकी आँखें सजल हो आयीं। किसान को अपने बैल अपने लड़कों की तरह प्यारे होते हैं। वह उन्हें पशु नहीं, अपना मित्र और सहायक समझता। बैलों को भूखे खड़े देखकर नींद आँखों से भाग गयी। कुछ सोचता हुआ उठा। हँसिया निकाली और चारे की फिक्र में चला। गाँव के बाहर बाजरे और जुआर के खेत खड़े थे। दमड़ी के हाथ काँपने लगे। लेकिन बैलों की याद ने उसे उत्तेजित कर दिया। चाहता, तो कई बोझ काट सकता था; लेकिन वह चोरी करते हुए भी चोर न था। उसने केवल उतना ही चारा काटा, जितना बैलों को रात-भर के लिए काफी हो। सोचा, अगर किसी ने देख भी लिया, तो उससे कह दूँगा, बैल भूखे थे, इसलिए काट लिया। उसे विश्वास था कि थोड़े-से चारे के लिए कोई मुझे पकड़ नहीं सकता। मैं कुछ बेचने के लिए तो काट नहीं रहा हूँ; फिर ऐसा निर्दयी कौन है, जो मुझे पकड़ ले। बहुत करेगा, अपने दाम ले लेगा। उसने बहुत सोचा। चारे का थोड़ा होना ही उसे चोरी के अपराध से बचाने को काफी था। चोर उतना काटता, जितना उससे उठ सकता। उसे किसी के फायदे और नुकसान से क्या मतलब ? गाँव के लोग दमड़ी को चारा लिये जाते देखकर बिगड़ते जरूर, पर कोई चोरी के इलजाम में न फँसाता, लेकिन संयोग से हल्के के थाने का सिपाही उधर जा निकला। वह पड़ोस के एक बनिये के यहाँ जुआ होने की खबर पाकर कुछ ऐंठने की टोह में आया था। दमड़ी को चारा सिर पर उठाते देखा, तो सन्देह हुआ। इतनी रात गये कौन चारा काटता है ? हो न हो, कोई चोरी से काट रहा है, डाँटकर बोला—कौन चारा लिए जाता है ? खड़ा रह!

दमड़ी ने चौककर पीछे देखा, तो पुलिस का सिपाही ! हाथ-पाँव फूल गये, काँपते हुए बोला—हुजूर, थोड़ा ही-सा काटा है, देख लीजिए।

सिपाही—थोड़ा काटा हो या बहुत, है तो चोरी। खेत किसका है ?

दमड़ी—बलदेव महतो का।

सिपाही ने समझा था, शिकार फँसा, इससे कुछ ऐंठगा; लेकिन वहाँ क्या रखा था। पकड़कर गाँव में लाया और जब वहाँ भी कुछ हत्थे चढ़ता न दिखाई दिया तो थाने ले गया। थानेदार ने चालान कर दिया। मुकदमा राय साहब ही के इजलास में पेश किया।

राय साहब ने दमड़ी को फँसे हुए देखा, तो हमदर्दी के बदले कठोरता से काम लिया। बोले—यह मेरी बदनामी की बात है। तेरा क्या बिगड़ा, साल-छः महीने की सजा हो जायेगी, शर्मिन्दा तो मुझे होना पड़ रहा है ! लोग यही तो कहते होंगे कि राय साहब के आदमी ऐसे बदमाश और चोर हैं। तू मेरा नौकर न होता, तो मैं हलकी सजा देता; लेकिन तू मेरा नौकर है, इसलिए कड़ी-से-कड़ी सजा दूँगा। मैं यह नहीं सुन सकता कि राय साहब ने अपने नौकर के साथ रिआयत की।

यह कहकर राय साहब ने दमड़ी को छः महीने की सख्त कैद का हुक्म सुना दिया।

उसी दिन उन्होंने खून के मुकदमे में जमानत ले ली। मैंने दोनों वृत्तान्त सुने और मेरे दिल में यह खयाल और भी पक्का हो गया कि सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है। आप बुरे-से-बुरा काम करें, लेकिन अगर आप उस पर परदा डाल सकते हैं, तो आप सभ्य हैं, सज्जन हैं, जेन्टिलमैन हैं। अगर आप में यह सिफ़त नहीं तो आप असभ्य हैं, गँवार हैं, बदमाश हैं। यह सभ्यता का रहस्य है !

मेरे दफ्तर में चार चपरासी हैं। उनमें एक का नाम गरीब है। वह बहुत ही सीधा, बड़ा आज्ञाकारी, अपने काम में चौकस रहने वाला, घुड़कियाँ खाकर चुप रह जानेवाला यथा नाम तथा गुण वाला मनुष्य है। मुझे इस दफ्तर में साल-भर होते हैं, मगर मैंने उसे एक दिन के लिए भी गैरहाजिर नहीं पाया। मैं उसे 9 बजे दफ्तर में अपनी फटी दरी पर बैठे हुए देखने का ऐसा आदी हो गया हूँ कि मानो वह भी उसी इमारत का कोई अंग है। इतना सरल है कि किसी की बात टालना नहीं जाना। एक मुसलमान है। उससे सारा दफ्तर डरता है, मालूम नहीं क्यों ? मुझे तो इसका कारण सिवाय उसकी बड़ी-बड़ी बातों के और कुछ नहीं मालूम होता। उसके कथनानुसार उसके चचेरे भाई रामपुर रियासत में काजी हैं, फूफा टोंक की रियासत में कोतवाल हैं। उसे सर्वसम्मति ने 'काजी-साहेब' की उपाधि दे रखी है। शेष दो महाशय जाति के ब्राह्मण हैं। उनके आशीर्वादों का मूल्य उनके काम से कहीं अधिक है। ये तीनों कामचोर, गुस्ताख और आलसी हैं। कोई छोटा-सा काम करने को भी कहिए तो बिना नाक-भों सिकोड़े नहीं करते। क्लर्कों को तो कुछ समझते ही नहीं ! केवल बड़े बाबू से कुछ दबते हैं, यद्यपि कभी-कभी उनसे झगड़ बैठते हैं। मगर इन सब दुर्गुणों के होते हुए भी दफ्तर में किसी की मिट्टी इतनी खराब नहीं है, जितनी बेचारे गरीब की। तरक्की का अवसर आया है, तो ये तीनों मार ले जाते हैं, गरीब को कोई पूछता भी नहीं। और सब दस-दस पाते हैं, वह अभी छः ही में पड़ा हुआ है। सुबह से शाम तक उसके पैर एक क्षण के लिए भी नहीं टिकते—यहाँ तक कि तीनों चपरासी उस पर हुक्मत जताते हैं और ऊपर की आमदनी में तो उस बेचारे का कोई भाग ही नहीं। तिस पर भी दफ्तर के सब कर्मचारी—दफ्तरी से लेकर बाबू तक सब—उससे चिढ़ते हैं। उसकी कितनी ही बार शिकायतें हो चुकी हैं, कितनी ही बार जुर्माना हो चुका है और डाँट-डपट तो नित्य ही हुआ करती है। इसका रहस्य कुछ मेरी समझ में न आता था। हाँ, मुझे उस पर दया अवश्य आती थी, और आपने व्यवहार से मैं यह दिखाना चाहता था कि मेरी दृष्टि में उसका आदर चपरासियों से कम नहीं। यहाँ तक कि कई बार मैं उसके पीछे अन्य कर्मचारियों से लड़ भी चुका हूँ।

2

एक दिन बड़े बाबू ने गरीब से अपनी मेज साफ करने को कहा। वह तुरन्त मेज साफ करने लगा। दैवयोग से झाड़न का झटका लगा, तो दावात उलट गयी और रोशनाई मेज पर फैल गयी। बड़े बाबू यह देखते ही जामे से बाहर हो गये। उसके कान पकड़कर खूब ऐंठे और भारतवर्ष की सभी प्रचलित भाषाओं से दुर्वचन चुन-चुनकर उसे सुनाने लगे। बेचारा गरीब आँखों में आँसू भरे चुपचाप मूर्तिवत् खड़ा सुनता था, मानो उसने कोई हत्या कर डाली हो। मुझे बाबू का जरा-सी बात पर इतना भयंकर रौद्र रूप धारण करना बुरा मालूम हुआ। यदि किसी दूसरे चपरासी ने इससे भी बड़ा कोई अपराध किया होता, तो भी उस पर इतना वज्र-प्रहार न होता। मैंने अंग्रेजी में कहा—बाबू साहब, आप यह अन्याय कर रहे हैं। उसने जान-बूझकर तो रोशनाई गिराया नहीं। इसका इतना कड़ा दण्ड अनौचित्य की पराकाष्ठा है।

बाबूजी ने नम्रता से कहा—आप इसे जानते नहीं, बड़ा दुष्ट है।

‘मैं तो उसकी कोई दुष्टता नहीं देखता।’

‘आप अभी उसे जानते नहीं, एक ही पाजी है। इसके घर दो हलों की खेती होती है, हजारों का लेन-देन करता है; कई भैंसे लगती हैं। इन्हीं बातों का इसे घमण्ड है।’

‘घर की ऐसी दशा होती, तो आपके यहाँ चपरासगिरी क्यों करता?’

‘विश्वास मानिए, बड़ा पोढ़ा आदमी है और बला का मक्खीचूस।’

‘यदि ऐसा ही हो, तो भी कोई अपराध नहीं है।’

‘अजी, अभी आप इन बातों को नहीं जानते। कुछ दिन और रहिए तो आपको स्वयं मालूम हो जाएगा कि यह कितना कमीना आदमी है?’

एक दूसरे महाशय बोल उठे—भाई साहब, इसके घर मनों दूध-दही होता है, मनों मटर, जुवार, चने होते हैं, लेकिन इसकी कभी इतनी हिम्मत न हुई कि कभी थोड़ा-सा दफ्तरवालों को भी दे दो। यहाँ इन चीजों को तरसकर रह जाते हैं। तो फिर क्यों न जी जले ? और यह सब कुछ इसी नौकरी के बदौलत हुआ है। नहीं तो पहले इसके घर में भूनी भाँग न थी।

बड़े बाबू कुछ सकुचाकर बोले—यह कोई बात नहीं। उसकी चीज है, किसी को दे या न दे; लेकिन यह बिल्कुल पशु है।

मैं कुछ-कुछ मर्म समझ गया। बोला—यदि ऐसे तुच्छ हृदय का आदमी है, तो वास्तव में पशु ही है। मैं यह न जानता था।

अब बड़े बाबू भी खुले। संकोच दूर हुआ। बोले—इन सौगातों से किसी का उबार तो होता नहीं, केवल देने वाले की सहृदयता प्रकट होती है। और आशा भी उसी से की जाती है, जो इस योग्य होता है। जिसमें सामर्थ्य ही नहीं, उससे कोई आशा नहीं करता। नंगे से कोई क्या लेगा ?

रहस्य खुल गया। बड़े बाबू ने सरल भाव से सारी अवस्था दर्शा दी थी। समृद्धि के शत्रु सब होते हैं, छोटे ही नहीं, बड़े भी। हमारी ससुराल या ननिहाल दरिद्र हो, तो हम उससे आशा नहीं रखते ! कदाचित् वह हमें विस्मृत हो जाती है। किन्तु वे सामर्थ्यवान् होकर हमें न पूछें, हमारे यहाँ तीज और चौथ न भेजें, तो हमारे कलेजे पर साँप लोटने लगता है। हम अपने निर्धन मित्र के पास जायँ, तो उसके एक बीड़े पान से ही संतुष्ट हो जाते हैं; पर ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपने किसी धनी मित्र के घर से बिना जलपान के लौटाकर उसे मन में कोसने न लगे और सदा के लिए उसका तिरस्कार न करने लगे। सुदामा कृष्ण के घर से यदि निराश लौटते तो, कदाचित् वह उनके शिशुपाल और जरासंध से भी बड़े शत्रु होते। यह मानव-स्वभाव है।

तीन

कई दिन पीछे मैंने गरीब से पूछा—क्यों जी, तुम्हारे घर पर कुछ खेती-बारी होती है ?

गरीब ने दीन भाव से कहा—हाँ, सरकार, होती है। आपके दो गुलाम हैं, वही करते हैं ?

‘गायें-भैंसें भी लगती हैं?’

‘हाँ, हुजूर; दो भैंसें लगती हैं, मुदा गायें अभी गाभिन नहीं है। हुजूर, लोगों के ही दया-धरम से पेट की रोटियाँ चल जाती हैं।’

‘दफ्तर के बाबू लोगों की भी कभी कुछ खातिर करते हो?’

गरीब ने अत्यन्त दीनता से कहा—हुजूर; मैं सरकार लोगों की क्या खातिर कर सकता हूँ। खेती में जौ, चना, मक्का, जुवार के सिवाय और क्या होता है। आप लोग राजा हैं, यह मोटी-झोटी चीजें किस मुँह से आपकी भेंट करूँ। जी डरता है, कहीं कोई डाँट न बैठे कि इस टके के आदमी की इतनी मजाल। इसी के मारे बाबूजी, हियाव नहीं पड़ता। नहीं तो दूध-दही की कौन बिसात थी। मुँह लायक बीड़ा तो होना चाहिए।

‘भला एक दिन कुछ लाके दो तो, देखो, लोग क्या कहते हैं। शहर में यह चीजें कहाँ मयस्सर होती हैं। इन लोगों का जी कभी-कभी मोटी-झोटी चीजों पर चला करता है।’

‘जो सरकार, कोई कुछ कहे तो? कहीं कोई साहब से शिकायत कर दे तो मैं कहीं का न रहूँ।’

‘इसका मेरा जिम्मा है, तुम्हें कोई कुछ न कहेगा। कोई कुछ कहेगा, तो मैं समझा दूँगा।’

‘तो हुजूर, आजकल तो मटर की फसिल है। चने के साग भी हो गये हैं और कोल्हू भी खड़ा हो गया है। इसके सिवाय तो और कुछ नहीं है।’

‘बस, तो यही चीजें लाओ।’

‘कुछ उल्टी-सीधी पड़े, तो हुजूर ही सँभालेंगे!’

‘हाँ जी, कह तो दिया कि मैं देख लूँगा।’

दूसरे दिन गरीब आया तो उसके साथ तीन हष्ट-पुष्ट युवक भी थे। दो के सिरों पर टोकरियाँ थीं, उसमें मटर की फनियाँ भरी हुई थीं। एक के सिर पर मटका था, उसमें ऊख का रस था। तीनों ऊख का एक-एक गट्ठर काँख में दबाये हुए थे। गरीब आकर चुपके से बरामदे के सामने पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। दफ्तर में आने का उसे साहस नहीं होता था, मानो कोई अपराधी वृक्ष के नीचे खड़ा था कि इतने में दफ्तर के चपरासियों और अन्य कर्मचारियों ने उसे घेर लिया। कोई ऊख लेकर चूसने लगा, कई आदमी टाकरें पर टूट पड़े, लूट मच गयी। इतने में बड़े बाबू दफ्तर में आ पहुँचे। यह कौतुकब देखा तो उच्च स्वर से बोले—यह क्या भीड़ लगा रखी है, अपना-अपना काम देखो।

मैंने जाकर उनके कान में कहा—गरीब, अपने घर से यह सौगात लाया है। कुछ आप ले लीजिए, कुछ इन लोगों को बाँट दीजिए।

बड़े बाबू ने कृत्रिम क्रोध धारण करके कहा—क्यों गरीब, तुम ये चीजें यहाँ क्यों लाये ? अभी ले जाओ, नहीं तो मैं साहब से रपट कर दूँगा। कोई हम लोगों को मलूका समझ लिया है।

गरीब का रंग उड़ गया। थर-थर काँपने लगा। मुँह से एक शब्द भी न निकला। मेरी ओर अपराधी नेत्रों से ताकने लगा।

मैंने उसकी ओर से क्षमा-प्रार्थना की। बहुत कहने-सुनने पर बाबू साहब राजी हुए। सब चीजों में से आधी-आधी अपने घर भिजवायी। आधी में अन्य लोगों के हिस्से लगाये गये। इस प्रकार यह अभिनय समाप्त हुआ।

4

अब दफ्तर में गरीब का नाम होने लगा। उसे नित्य घुड़कियाँ न मिलतीं; दिन-भर दौड़ना न पड़ता। कर्मचारियों के व्यंग्य और अपने सहयोगियों के कटुवाक्य न सुनने पड़ते। चपरासी लोग स्वयं उसका काम कर देते। उसके नाम में भी थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ। वह गरीब से गरीबदास बना। स्वभाव में कुछ तबदीली पैदा हुई। दीनता की जगह आत्मगौरव का उद्भव हुआ। तत्परता की जगह आलस्य ने ली। वह अब भी कभी देर करके दफ्तर आता, कभी-कभी बीमारी का बहाना करके घर बैठ रहता। उसके सभी अपराध अब क्षम्य थे। उसे अपनी प्रतिष्ठा का गुर हाथ लग गया था। वह अब दसवें-पाँचवे दिन दूध, दही लाकर बड़े बाबू की भेंट किया करता। देवता को संतुष्ट करना सीख गया। सरलता के बदले अब उसमें काँड़याँपन आ गया।

एक रोज बड़े बाबू ने उसे सरकारी फार्मों का पार्सल छुड़ाने के लिए स्टेशन भेजा। कई बड़े-बड़े पुलिंदे थे। ठेले पर आये। गरीब ने ठेलेवालों से बारह आने मजदूरी तय की थी। जब कागज दफ्तर में गये तो उसने बड़े बाबू से बारह आने पैसे ठेलेवालों को देने के लिए वसूल किये। लेकिन दफ्तर से कुछ दूर जाकर उसकी नीयत बदली। अपनी दस्तूरी माँगने लगा। ठेलेवाले राजी न हुए। इस पर गरीब ने बिगड़कर सब पैसे जेब में रख लिये और धमकाकर बोला—अब एक फूटी कौड़ी भी न दूँगा। जाओ जहाँ फरियाद करो। देखें, क्या बना लेते हो।

ठेलेवाले ने जब देखा कि भेंट न देने से जमा ही गायब हुई जाती है तो रो-धोकर चार आने पैसे देने पर राजी हुए। गरीब ने अठन्नी उसके हवाले की, बारह आने की रसीद लिखाकर उसके अँगूठे के निशान लगवाये और रसीद दफ्तर में दाखिल हो गयी।

यह कुतूहल देखकर मैं दंग रह गया। यह वही गरीब है, जो कई महीने पहले सरलता और दीनता की मूर्ति था, जिजसे कभी चपरासियों से भी अपने हिस्से की रकम माँगने का साहस न होता था, जो दूसरों को खिलाना भी न जानता था, खाने का तो जिक्र ही क्या। यह स्वभावांतर देखकर अत्यन्त खेद हुआ। इसका उत्तरदायित्व किसके सिर था ? मेरे सिर, जिसने उसे चघड़पन और धूर्तता का पहला पाठ पढ़ाया था। मेरे चित्त में प्रश्न उठा—इस काँड़याँपन से, जो दूसरों का गला दबाता है, वह भोलापन क्या बुरा था, जो दूसरों का अन्याय सह लेता था। वह अशुभ मुहूर्त था, जब मैंने उसे प्रतिष्ठा-प्राप्ति का मार्ग दिखाया, क्योंकि वास्तव में वह उसके पतन का भयंकर मार्ग था। मैंने बाह्य प्रतिष्ठा पर उसकी आत्म-प्रतिष्ठा का बलिदान कर दिया।

प्यारी बहन,

जब से यहाँ आयी हूँ, तुम्हारी याद सताती रहती है। काश! तुम कुछ दिनों के लिए यहाँ चली आती, तो कितनी बहार रहती। मैं तुम्हें अपने विनोद से मिलाती। क्या यह सम्भव नहीं है ? तुम्हारे माता-पिता क्या तुम्हें इतनी आजादी भी न देंगे ? मुझे तो आश्चर्य यही है कि बेड़ियाँ पहनकर तुम कैसे रह सकती हो! मैं तो इस तरह घण्टे-भर भी नहीं रह सकती। ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि मेरे पिताजी पुरानी लकीर पीटने वालों में नहीं। वह उन नवीन आदर्शों के भक्त हैं, जिन्होंने नारी-जीवन को स्वर्ग बना दिया है। नहीं तो मैं कहीं की न रहती।

विनोद हाल ही में इंग्लैंड से डी० फिल० होकर लौटे हैं और जीवन-यात्रा आरम्भ करने के पहले एक बार संसार-यात्रा करना चाहते हैं। योरप का अधिकांश भाग तो वह देख चुके हैं, पर अमेरिका, आस्ट्रेलिया और एशिया की सैर किये बिना उन्हें चैन नहीं। मध्य एशिया और चीन का तो यह विशेष रूप से अध्ययन करना चाहते हैं। योरोपियन यात्री जिन बातों की मीमांसा न कर सके, उन्हीं पर प्रकाश डालना इनका ध्येय है। सच कहती हूँ, चन्दा, ऐसा साहसी, ऐसा निर्भीक, ऐसा आदर्शवादी पुरुष मैंने कभी नहीं देखा था। मैं तो उनकी बातें सुनकर चकित हो जाती हूँ। ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका उन्हें पूरा ज्ञान न हो, जिसकी वह आलोचना न कर सकते हो; और यह केवल किताबी आलोचना नहीं होती, उसमें मौलिकता और नवीनता होती है। स्ववन्नता के तो वह अनन्य उपासक हैं। ऐसे पुरुष की पत्नी बनकर ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो अपने सौभाग्य पर गर्व न करे। बहन, तुमसे क्या कहूँ कि प्रातःकाल उन्हें अपने बँगले की ओर आते देखकर मेरे चित्त की क्या दशा हो जाती है। यह उन पर न्योछावर होने के लिए विकल हो जाता है। यह मेरी आत्मा में बस गये हैं। अपने पुरुष की मैंने मन में जो कल्पना की थी, उसमें और उनमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं। मुझे रात-दिन यही भय लगा रहता है कि कहीं मुझमें उन्हें कोई त्रुटि न मिल जाय। जिन विषयों से उन्हें रुचि है, उनका अध्ययन आधी रात तक बैठी किया करती हूँ। ऐसा परिश्रम मैंने कभी न किया था। आईने-कंधी से मुझे कभी उतना प्रेम न था, सुभाषितों को मैंने कभी इतने चाव से कण्ठ न किया था। अगर इतना सब कुछ करने पर भी मैं उनका हृदय न पा सकी, तो बहन, मेरा जीवन नष्ट हो जायेगा, मेरा हृदय फट जायेगा और संसार मेरे लिए सूना हो जायेगा।

कदाचित् प्रेम के साथ ही मन में ईर्ष्या का भाव भी उदय हो जाता है। उन्हें मेरे बँगले की ओर जाते हुए देख जब मेरी पड़ोसिन कुसुम अपने बरामदे में आकर खड़ी हो जाती है, तो मेरा ऐसा जी चाहता है कि उसकी आँखें ज्योतिहीन हो जायँ। कल तो अनर्थ ही हो गया। विनोद ने उसे देखते ही हैट उतार ली और मुस्कराए। वह कुलटा भी खीसें निकालने लगी। ईश्वर सारी विपत्तियाँ दे, पर मिथ्याभिमान न दे। चुड़ैलों की-सी तो आपकी सूरत है, पर अपने को अप्सरा समझती हैं। आप कविता करती हैं और कई पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ छप भी गई हैं। बस, आप जमीन पर पाँव नहीं रखतीं। सच कहती हूँ, थोड़ी देर के लिए विनोद पर से मेरी श्रद्धा उठ गयी। ऐसा आवेश होता था कि चलकर कुसुम का मुँह नोच लूँ। खैरियत हुई कि दोनों में बातचलत न हुई, पर विनोद आकर बैठे तो आध घण्टे तक मैं उनसे न बोल सकी, जैसे उनके शब्दों में वह जादू ही न था, वाणी में वह रस ही न था। तब से अब तक मेरे चित्त की व्यग्रता शान्त नहीं हुई। रात-भर मुझे नींद नहीं आयी, वही दृश्य आँखों के सामने बार-बार आता था। कुसुम को लज्जित करने के लिए कितने मसूबे बाँध चुकी हूँ। अगर यह भय न होता कि विनोद मुझे ओछी और हलकी समझेंगे, तो मैं उनसे अपने मनोभावों को स्पष्ट कह देती। मैं सम्पूर्णतः उनकी होकर उन्हें सम्पूर्णतः अपना बनाना चाहती हूँ। मुझे विश्वास है कि संसार का सबसे रूपवान् युवक मेरे सामने आ जाय, तो मैं उसे आँख उठाकर न देखूँगी। विनोद के मन में मेरे प्रति यह भाव क्यों नहीं है।

चन्दा, प्यारी बहन; एक सप्ताह के लिए आ जा। तुझसे मिलने के लिए मन अधीर हो रहा है। मुझे इस समय तेरी सलाह और सहानुभूति की बड़ी जरूरत है। यह मेरे जीवन का सबसे नाजुक समय है। इन्हीं दस-पाँच दिनों में या तो पारस हो जाऊँगी या मिट्टी। लो सात बज गए और अभी बाल तक नहीं बनाये। विनोद

के आने का समय है। अब विदा होती हूँ। कहीं आज फिर अभागिनी कुसुम अपने बरामदे में न आ खड़ी हो। अभी से दिल काँप रहा है। कल तो यह सोचकर मन को समझाया था कि यों ही सरल भाव से वह हँस पड़ी होगी। आज भी अगर वही दृश्य सामने आया, तो उतनी आसानी से मन को न समझा सकूँगी।

तुम्हारी,
पद्मा

2

गोरखपुर
5-7-25

प्रिय पद्मा,

भला एक युग के बाद तुम्हें मेरी सुधि तो आई। मैंने तो समझा था, शायद तुमने परलोक-यात्रा कर ली। यह उस निष्ठुरता का दंड ही है, जो कुसुम तुम्हें दे रही है। 15 एप्रिल को कालेज बन्द हुआ और एक जुलाई को आप खत लिखती हैं—पूरे ढाई महीने बाद, वह भी कुसुम की कृपा से। जिस कुसुम को तुम कोस रही हो, उसे मैं आशीर्वाद दे रही हूँ। वह दारुण दुःख की भाँति तुम्हारे रास्ते में न आ खड़ी होती, तो तुम्हें क्यों मेरी याद आती ? खैर, विनोद की तुमने जो तसवीर खींची, वह बहुत ही आकर्षक है और मैं ईश्वर से मना रही हूँ, वह दिन जल्द आए कि मैं उनसे बहनोई के नाते मिल सकूँ। मगर देखना, कहीं सिविल मैरेज न कर बैठना। विवाह हिन्दू-पद्धति के अनुसार ही हो। हाँ, तुम्हें अखित्यर है जो सैकड़ों बेहूदा और व्यर्थ के कपड़े हैं, उन्हें निकाल डालो। एक सच्चे, विद्वान पण्डित को अवश्य बुलाना, इसलिए नहीं कि वह तुमसे बात-बात पर टके निकलवाये, बल्कि इसलिए कि वह देखता रहे कि वह सब कुछ शास्त्र-विधि से हो रहा है, या नहीं।

अच्छा, अब मुझसे पूछो कि इतने दिनों क्यों चुप्पी साधे बैठी रही। मेरे ही खानदान में इन ढाई महीनों में, पाँच शादियाँ हुईं। बारातों का ताँता लगा रहा। ऐसा शायद ही कोई दिन गया हो कि एक सौ महमानों से कम रहे हों और जब बारात आ जाती थी, तब तो उनकी संख्या पाँच-पाँच सौ तक पहुँच जाती थी। ये पाँचों लड़कियाँ मुझसे छोटी हैं और मेरा बस चलता तो अभी तीन-चार साल तक न बोलती, लेकिन मेरी सुनता कौन है और विचार करने पर मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि माता-पिता का लड़कियों के विवाह के लिए जल्दी करना कुछ अनुचित नहीं है। जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं। अगर माता-पिता अकाल मर जायँ, तो लड़की का विवाह कौन करे। भाइयों का क्या भरोसा। अगर पिता ने काफी दौलत छोड़ी है तो कोई बात नहीं; लेकिन जैसा साधारणतः होता है, पिता ऋण का भार छोड़ गये, तो बहन भाइयों पर भार हो जाती है। यह भी अन्य कितने ही हिन्दू-रस्मों की भाँति आर्थिक समस्या है, और जब तक हमारी आर्थिक दशा न सुधरेगी, यह रस्म भी न मिटेगी।

अब मेरे बलिदान की बारी है। आज के पंद्रहवें दिन यह घर मेरे लिए विदेश हो जायगा। दो-चार महीने के लिए आऊँगी, तो मेहमान की तरह। मेरे विनोद बनारसी हैं, अभी कानून पढ़ रहे हैं। उनके पिता नामी वकील हैं। सुनती हूँ, कई गाँव हैं, कई मकान हैं, अच्छी मर्यादा है। मैंने अभी तक वर को नहीं देखा। पिताजी ने मुझसे पुछवाया था कि इच्छा हो, तो वर को बुला दूँ। पर मैंने कह दिया, कोई जरूरत नहीं। कौन घर में बहू बने। है तकदीर ही का सौदा। न पिताजी ही किसी के मन में पैठ सकते हैं, न मैं ही। अगर दो-एक बार देख ही लेती, नहीं मुलाकात ही कर लेती तो क्या हम दोनों एक-दूसरे को परख लेते ? यह किसी तरह संभव नहीं। ज्यादा-से-ज्यादा हम एक-दूसरे का रंग-रूप देख सकते हैं। इस विषय में मुझे विश्वास है कि पिताजी मुझसे कम संयत नहीं हैं। मेरे दोनों बड़े बहनोई सौंदर्य के पुतले न हों पर कोई रमणी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरी बहनें उनके साथ आनन्द से जीवन बिता रही हैं। फिर पिताजी मेरे ही साथ क्यों अन्याय करेंगे। यह मैं मानती हूँ कि हमारे समाज में कुछ लोगों का वैवाहिक जीवन सुखकर नहीं है, लेकिन संसार में ऐसा कौन समाज है, जिसमें दुखी परिवार न हों। और फिर हमेशा पुरुषों ही का दोष तो नहीं होता, बहुधा स्त्रियाँ ही विष का गाँठ होती हैं। मैं तो विवाह को सेवा और त्याग का व्रत समझती हूँ और इसी भाव से उसका अभिवादन करती हूँ। हाँ, मैं तुम्हें विनोद से छीनना तो नहीं चाहती लेकिन अगर 20 जुलाई तक तुम दो दिन के लिए आ सको, तो मुझे जिला लो। ज्यों-ज्यों इस व्रत का दिन निकट आ रहा है, मुझे एक अज्ञात शंका हो रही है; मगर तुम खुद बीमार हो, मेरी दवा क्या करोगी—जरूर आना बहन !

तुम्हारी,

प्यारी चन्दा,

सैंकड़ों बातें लिखनी हैं, किस क्रम से शुरू करूँ, समझ में नहीं आता। सबसे पहले तुम्हारे विवाह के शुभ अवसर पर न पहुँच सकने के लिए क्षमा चाहती हूँ। मैं आने का निश्चय कर चुकी थी, मैं और प्यारी चन्दा के स्वयंवर में न जाऊँ। मगर उसके ठीक तीन दिन पहले विनोद ने अपना आत्मसमर्पण करके मुझे ऐसा मुग्ध कर दिया कि फिर मुझे किसी की सुधि न रही। आह! वे प्रेम के अन्तस्तल से निकले हुए उष्ण, आवेशमय और कंपित शब्द अभी तक कानों में गूँज रहे हैं। मैं खड़ी थी, और विनोद मेरे सामने घुटने टेके हुए प्रेरणा, विनय और आग्रह के पुतले बने बैठे थे। ऐसा अवसर जीवन में एक ही बार आता है, केवल एक बार, मगर उसकी मधुर स्मृति किसी स्वर्ग-संगीत की भाँती जीवन के तार-तार में व्याप्त रहता है। तुम उस आनन्द का अनुभव कर सकोगी—मैं रोने लगी, कह नहीं सकती, मन में क्या-क्या भाव आये; पर मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। कदाचित् यही आनन्द की चरम सीमा है। मैं कुछ-कुछ निराश हो चली थी। तीन-चार दिन से विनोद को आते-जाते कुसुम से बातें करते देखती थी, कुसुम नित नए आभूषणों से सजी रहती थी और क्या कहूँ, एक दिन विनोद ने कुसुम की एक कविता मुझे सुनायी और एक-एक शब्द पर सिर धुनते रहे। मैं मानिनी तो हूँ ही; सोचा, जब यह उस चुड़ैल पर लट्टू हो रहे हैं, तो मुझे क्या गरज पड़ी है कि इनके लिए अपना सिर खपाऊँ। दूसरे दिन वह सबेरे आये, तो मैंने कहला दिया, तबीयत अच्छी नहीं है। जब उन्होंने मुझसे मिलने के लिए आग्रह किया, तब विवश होकर मुझे कमरे में आना पड़ा। मन में निश्चय करके आयी थी—साफ कह दूँगी अब आप न आया कीजिए। मैं आपके योग्य नहीं हूँ, मैं कवि नहीं, विदुषी नहीं, सुभाषिणी नहीं—एक पूरी स्पीच मन में उमड़ रही थी, पर कमरे में आई और विनोद के सतृष्ण नेत्र देखे, प्रबल उत्कंठा में काँपते हुए होंठ—बहन, उस आवेश का चित्रण नहीं कर सकती। विनोद ने मुझे बैठने भी न दिया। मेरे सामने घुटनों के बल फर्श पर बैठ गये और उनके आतुर उन्मत्त शब्द मेरे हृदय को तरंगित करने लगे।

एक सप्ताह तैयारियों में कट गया। पापा ओर मामा फूले न समाते थे।

और सबसे प्रसन्न थी कुसुम ! यही कुसुम जिसकी सूरत से मुझे घृणा थी ! अब मुझे ज्ञात हुआ कि मैंने उस पर सन्देह करके उसके साथ घोर अन्याय किया। उसका हृदय निष्कपट है, उसमें न ईर्ष्या है, न तृष्णा, सेवा ही उसके जीवन का मूलतत्त्व है। मैं नहीं समझती कि उसके बिना ये सात दिन कैसे कटते। मैं कुछ खोई-खोई सी जान पड़ती थी। कुसुम पर मैंने अपना सारा भार छोड़ दिया था। आभूषणों के चुनाव और सजाव, वस्त्रों के रंग और काट-छाँट के विषय में उसकी सुरुचि विलक्षण है। आठवें दिन जब उसने मुझे दुल्हिन बनाया, तो मैं अपना रूप देखकर चकित रह गई। मैंने अपने को कभी ऐसी सुन्दरी न समझा था। गर्व से मेरी आँखों में नशा-सा छा गया।

उसी दिन संध्या-समय विनोद और मैं दो भिन्न जल-धाराओं की भाँति संगम पर मिलकर अभिन्न हो गये। विहार-यात्रा की तैयारी पहले ही से हो चुकी थी, प्रातःकाल हम मंसूरी के लिए रवाना हो गये। कुसुम हमें पहुँचाने के लिए स्टेशन तक आई और विदा होते समय बहुत रोयी। उसे साथ ले चलना चाहती थी, पर न जाने क्यों वह राजी न हुई।

मंसूरी रमणीक है, इसमें सन्देह नहीं। श्यामवर्ण मेघ-मालाएँ पहाड़ियों पर विश्राम कर रही हैं, शीतल पवन आशा-तरंगों की भाँति चित्त का रंजन कर रहा है, पर मुझे ऐसा विश्वास है कि विनोद के साथ मैं किसी निर्जन वन में भी इतने ही सुख से रहती। उन्हें पाकर अब मुझे किसी वस्तु की लालसा नहीं। बहन, तुम इस आनन्दमय जीवन की शायद कल्पना भी न कर सकोगी। सुबह हुई, नाश्ता आया, हम दोनों ने नाश्ता किया; डाँडी तैयार है, नौ बजते-बजते सैर करने निकल गए। किसी जल-प्रपात के किनारे जा बैठे। वहाँ जल-प्रवाह का मधुर संगीत सुन रहे हैं। या किसी शिला-खंड पर बैठे मेघों की व्योम-क्रीड़ा देख रहे हैं। ग्यारह बजते-बजते लौटें। भोजन किया। मैं प्यानो पर जा बैठी। विनोद को संगीत से प्रेम है। खुद बहुत अच्छा गाते हैं और मैं गाने लगती हूँ, तब तो वह झूमने ही लगते हैं। तीसरे पहर हम एक घंटे के लिए विश्राम करके खेलने या कोई खेल देखने चले जाते हैं। रात को भोजन करने के बाद थियेटर देखते हैं और वहाँ से लौट कर शयन करते हैं। न सास की घुड़कियाँ हैं न ननदों की कानाफूसी, न जेठानियों के ताने। पर इस सुख में

भी मुझे कभी-कभी एक शंका-सी होती है—फूल में कोई काँटा तो नहीं छिपा हुआ है, प्रकाश के पीछे कहीं अन्धकार तो नहीं है ! मेरी समझ में नहीं आता, ऐसी शंका क्यों होती है। अरे, यह तो पाँच बज गए, विनोद तैयार हैं, आज टेनिस का मैच देखने जाना है। मैं भी जल्दी से तैयार हो जाऊँ। शेष बातें फिर लिखूँगी।

हाँ, एक बात तो भूली ही जा रही थी। अपने विवाह का समाचार लिखना। पतिदेव कैसे हैं ? रंग-रूप कैसा है ? ससुराल गयी, या अभी मैके ही में हो ? ससुराल गयीं, तो वहाँ के अनुभव अवश्य लिखना। तुम्हारी खूब नुमाइश हुई होगी। घर, कुटुम्ब और मुहल्ले की महिलाओं ने घूँघट उठा-उठाकर खूब मुँह देखा होगा, खूब परीक्षा हुई होगी। ये सभी बातें विस्तार से लिखना। देखें कब फिर मुलाकात होती है।

तुम्हारी,
पद्मा

3

गोरखपुर
1-9-25

प्यारी पद्मा,

तुम्हारा पत्र पढ़कर चित्त को बड़ी शांति मिली। तुम्हारे न आने ही से मैं समझ गई थी कि विनोद बाबू तुम्हें हर ले गए, मगर यह न समझी थी कि तुम मंसूरी पहुँच गयी। अब उस आमोद-प्रमोद में भला गरीब चन्दा क्यों याद आने लगी। अब मेरी समझ में आ रहा है कि विवाह के लिए नए और पुराने आदर्श में क्या अन्तर है। तुमने अपनी पसन्द से काम लिया, सुखी हो। मैं लोक-लाज की दासी बनी रही, नसीबों को रो रही हूँ।

अच्छा, अब मेरी बीती सुनो। दान-दहेज के टंटे से तो मुझे कुछ मतलब है नहीं। पिताजी ने बड़ा ही उदार-हृदय पाया है। खूब दिल खोलकर दिया होगा। मगर द्वार पर बारात आते ही मेरी अग्नि-परीक्षा शुरू हो गयी। कितनी उत्कण्ठा थी—वह-दर्शन की, पर देखूँ कैसे। कुल की नाक न कट जाएगी। द्वार पर बारात आयी। सारा जमाना वर को घेरे हुए था। मैंने सोचा—छत पर से देखूँ। छत पर गयी, पर वहाँ से भी कुछ न दिखाई दिया। हाँ, इस अपराध के लिए अम्माँजी की घुड़कियाँ सुननी पड़ीं। मेरी जो बात इन लोगों को अच्छी नहीं लगती, उसका दोष मेरी शिक्षा के माथे मढ़ा जाता है। पिताजी बेचारे मेरे साथ बड़ी सहानुभूति रखते हैं। मगर किस-किस का मुँह पकड़ें। द्वारचार तो यों गुजरा और भाँवरों की तैयारियाँ होने लगी। जनवासे से गहनों और कपड़ों का थाल आया। बहन ! सारा घर—स्त्री-पुरुष—सब उस पर कुछ इस तरह टूटे, मानो इन लोगों ने कभी कुछ देखा ही नहीं। कोई कहता है, कंठा तो लाये ही नहीं; कोई हार के नाम को रोता है! अम्माँजी तो सचमुच रोने लगी, मानो मैं डुबा दी गयी। वर-पक्षवालों की दिल खोलकर निंदा होने लगी। मगर मैंने गहनों की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। हाँ, जब कोई वर के विषय में कोई बात करता था, तो मैं तन्मय होकर सुनने लगती था। मालूम हुआ—दुबले-पतले आदमी हैं। रंग साँवला है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं, हँसमुख हैं। इन सूचनाओं से दशर्नोत्कंठा और भी प्रबल होती थी। भाँवरों का मुहूर्त ज्यों-ज्यों समीप आता था, मेरा चित्त व्यग्र होता जाता था। अब तक यद्यपि मैंने उनकी झलक भी न देखी थी, पर मुझे उनके प्रति एक अभूतपूर्व प्रेम का अनुभव हो रहा था। इस वक्त यदि मुझे मालूम हो जाता कि उनके दुश्मनों को कुछ हो गया है, तो मैं बावली हो जाती। अभी तक मेरा उनसे साक्षात् नहीं हुआ है, मैंने उनकी बोली तक नहीं सुनी है, लेकिन संसार का सबसे रूपवान् पुरुष भी, मेरे चित्त को आकर्षित नहीं कर सकता। अब वही मेरे सर्वस्व हैं।

आधी रात के बाद भाँवरें हुईं। सामने हवन-कुण्ड था, दोनों ओर विप्रगण बैठे हुए थे, दीपक जल रहा था, कुल देवता की मूर्ति रखी हुई थीं। वेद मंत्र का पाठ हो रहा था। उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ कि सचमुच देवता विराजमान हैं। अग्नि, वायु, दीपक, नक्षत्र सभी मुझे उस समय देवत्व की ज्योति से प्रदीप्त जान पड़ते थे। मुझे पहली बार आध्यात्मिक विकास का परिचय मिला। मैंने जब अग्नि के सामने मस्तक झुकाया, तो यह कोरी रस्म की पाबंदी न थी, मैं अग्निदेव को अपने सम्मुख मूर्तिवान्, स्वर्गीय आभा से तेजोमय देख रही थी। आखिर भाँवरें भी समाप्त हो गईं; पर पतिदेव के दर्शन न हुए।

अब अन्तिम आशा यह थी कि प्रातःकाल जब पतिदेव कलेवा के लिए बुलाये जायँगे, उस समय देखूँगी। तब उनके सिर पर मौरे न होगा, सखियों के साथ मैं भी जा बैठूँगी और खूब जी भरकर देखूँगी। पर क्या मालूम था कि विधि कुछ और ही कुचक्र रच रहा है। प्रातःकाल देखती हूँ, तो जनवासे के खेमे उखड़ रहे

हैं। बात कुछ न थी। बारातियों के नाशते के लिए जो सामान भेजा गया था, वह काफी न था। शायद घी भी खराब था। मेरे पिताजी को तुम जानती ही हो। कभी किसी से दबे नहीं, जहाँ रहे शेर बनकर रहे। बोले—जाते हैं, तो जाने दो, मनाने की कोई जरूरत नहीं; कन्यापक्ष का धर्म है बारातियों का सत्कार करना, लेकिन सत्कार का यह अर्थ नहीं कि धमकी और रोब से काम लिया जाय, मानो किसी अफसर का पड़ाव हो। अगर वह अपने लड़के की शादी कर सकते हैं, तो मैं भी अपनी लड़की की शादी कर सकता हूँ।

बारात चली गई और मैं पति के दर्शन न कर सकी ! सारे शहर में हलचल मच गई। विरोधियों को हँसने का अवसर मिला। पिताजी ने बहुत सामान जमा किया था। वह सब खराब हो गया। घर में जिसे देखिए, मेरी ससुराल की निंदा कर रहा है—उजड़ है, लोभी है, बदमाश है, मुझे जरा भी बुरा नहीं लगता। लेकिन पति के विरुद्ध मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहती। एक दिन अम्माँजी बोली—लड़का भी बेसमझ है। दूध पीता बच्चा नहीं, कानून पढ़ता है, मूँछ-दाढ़ी आ गई है, उसे अपने बाप को समझाना चाहिए था कि आप लोग क्या कर रहे हैं। मगर वह भी भीगी बिल्ली बना रहा। मैं सुनकर तिलमिला उठी। कुछ बोली तो नहीं, पर अम्माँजी को मालूम जरूर हो गया कि इस विषय में मैं उनसे सहमत नहीं। मैं तुम्हीं से पूछती हूँ बहन, जैसी समस्या उठ खड़ी हुई थी, उसमें उनका क्या धर्म था ? अगर वह अपने पिता और अन्य सम्बन्धियों का कहना न मानते, तो उनका अपमान न होता ? उस वक्त उन्होंने वही किया, जो उचित था। मगर मुझे विश्वास है कि जरा मामला ठंडा होने पर वह आयेंगे। मैं अभी से उनकी राह देखने लगी हूँ। डाकिया चिट्ठियाँ लाता है, तो दिल में धड़कन होने लगती हैं—शायद उनका पत्र भी हो ! जी मैं बार-बार आता है, क्यों न मैं ही एक खत लिखूँ; मगर संकोच में पड़कर रह जाती हूँ। शायद मैं कभी न लिख सकूँगी। मान नहीं है केवल संकोच है। पर हाँ, अगर दस-पाँच दिन और उनका पत्र न आया, या वह खुद न आए, तो संकोच मान का रूप धारण कर लेगा। क्या तुम उन्हें एक चिट्ठी नहीं लिख सकती ! सब खेल बन जाय। क्या मेरी इतनी खातिर भी न करोगी ? मगर ईश्वर के लिए उस खत में कहीं यह न लिख देना कि चंदा ने प्रेरणा की है। क्षमा करना ऐसी भद्दी गलती की, तुम्हारी ओर से शंका करके मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर रही हूँ, मगर मैं समझदार थी ही कब ?

तुम्हारी,
चन्दा

5

मंसूरी
20-9-25

प्यारी चन्दा,

मैंने तुम्हारा खत पाने के दूसरे ही दिन काशी खत लिख दिया था। उसका जवाब भी मिल गया। शायद बाबूजी ने तुम्हें खत लिखा हो। कुछ पुराने खयाल के आदमी हैं। मेरी तो उनसे एक दिन भी न निभती। हाँ, तुमसे निभ जायगी। यदि मेरे पति ने मेरे साथ यह बर्ताव किया होता—अकारण मुझसे रूठे होते—तो मैं जिन्दगी-भर उनकी सूरत न देखती। अगर कभी आते भी, तो कुत्तों की तरह दुत्कार देती। पुरुष पर सबसे बड़ा अधिकार उसकी स्त्री का है। माता-पिता को खुश रखने के लिए वह स्त्री का तिरस्कार नहीं कर सकता। तुम्हारे ससुरालवालों ने बड़ा घृणित व्यवहार किया। पुराने खयालवालों का गजब का कलेजा है, जो ऐसी बातें सहते हैं। देखा उस प्रथा का फल, जिसकी तारीफ करते तुम्हारी जबान नहीं थकती। वह दीवार सड़ गई। टीपटाप करने से काम न चलेगा। उसकी जगह नये सिरे से दीवार बनाने की जरूरत है।

अच्छा, अब कुछ मेरी भी कथा सुन लो। मुझे ऐसा संदेह हो रहा है कि विनोद ने मेरे साथ दगा की है। इनकी आर्थिक दशा वैसी नहीं, जैसी मैंने समझी थी। केवल मुझे ठगने के लिए इन्होंने सारा स्वाँग भरा था। मोटर माँगे की थी, बँगले का किराया अभी तक नहीं दिया गया, फरनिचर किराये के थे। यह सच है कि इन्होंने प्रत्यक्ष रूप से मुझे धोखा नहीं दिया। कभी अपनी दौलत की डींग नहीं मारी, लेकिन ऐसा रहन-सहन बना लेना, जिससे दूसरों को अनुमान हो कि यह कोई बड़े धनी आदमी हैं, एक प्रकार का धोखा ही है। यह स्वाँग इसीलिए भरा गया था कि कोई शिकार फँस जाय। अब देखती हूँ कि विनोद मुझसे अपनी असली हालत को छिपाने का प्रयत्न किया करते हैं। अपने खत मुझे नहीं देखने देते, कोई मिलने आता है, तो चौंक पड़ते हैं और घबरायी हुई आवाज में बेरा से पूछते हैं, कौन है ? तुम जानती हो, मैं धन की लौंडी नहीं। मैं केवल विशुद्ध हृदय चाहती हूँ। जिसमें पुरुषार्थ है, प्रतिभा है, वह आज नहीं तो कल अवश्य ही धनवान् होकर

रहेगा। मैं इस कपट-लीला से जलती हूँ। अगर विनोद मुझसे अपनी कठिनाइयाँ कह दें, तो मैं उनके साथ सहानुभूति करूँगी, उन कठिनाइयों को दूर करने में उनकी मदद करूँगी। यों मुझसे परदा करके यह मेरी सहानुभूती और सहयोग ही से हाथ नहीं धोते, मेरे मन में अविश्वास, द्वेष और क्षोभ का बीज बोते हैं। यह चिंता मुझे मारे डालती है। अगर इन्होंने अपनी दशा साफ-साफ बता दी होती, तो मैं यहाँ मंसूरी आती ही क्यों ? लखनऊ में ऐसी गरमी नहीं पड़ती कि आदमी पागल हो जाय। यह हजारों रुपये क्यों पानी पड़ता। सबसे कठिन समस्या जीविका की है। कई विद्यालयों में आवेदन-पत्र भेज रखे हैं। जवाब का इंतजार कर रहे हैं। शायद इस महीने के अंत तक कहीं जगह मिल जाय। पहले तीन-बार सौ मिलेंगे। समझ में नहीं आता, कैसे काम चलेगा। डेढ़ सौ रुपये तो पापा मेरे कालेज का खर्च देते थे। अगर दस-पाँच महीने जगह न मिली तो यह क्या करेंगे, यह फिक्र और भी खाये डालती है। मुश्किल यही है कि विनोद मुझसे परदा रखते हैं। अगर हम दोनों बैठकर परामर्श कर लेते, तो सारी गुत्थियाँ सुलझ जातीं। मगर शायद यह मुझे इस योग्य ही नहीं समझते। शायद इनका खयाल है कि मैं केवल रेशमी गुड़िया हूँ, जिसे भाँति-भाँति के आभूषणों, सुगंधों और रेशमी वस्त्रों से सजाना ही काफी है। थियेटर में कोई नया तमाशा होने वाला होता है, दौड़े हुए आकर मुझे खबर देते हैं। कहीं कोई जलसा हो, कोई खेल हो, कहीं सैर करना हो उसकी शुभ सूचना मुझे अविलम्ब दी जाती है और बड़ी प्रसन्नता के साथ, मानो मैं रात-दिन विनोद और क्रीड़ा और विलास में मग्न रहना चाहती हूँ, मानो मेरे हृदय में गंभीर अंश है ही नहीं। यह मेरा अपमान है; घोर अपमान, जिसे मैं अब नहीं सह सकती। मैं अपने संपूर्ण अधिकार लेकर ही संतुष्ट हो सकती हूँ। बस, इस वक्त इतना ही। बाकी फिर। अपने यहाँ का हाल-हवाल विस्तार से लिखना। मुझे अपने लिए जितनी चिंता है, उससे कम तुम्हारे लिए नहीं है। देखो, हम दोनों के डोंगे कहाँ लगते हैं। तुम अपनी स्वदेशी, पाँच हजार वर्षों की पुरानी जर्जर नौका पर बैठी हो, मैं नये, द्रुतगामी मोटर-बोट पर। अवसर, विज्ञान और उद्योग। मेरे साथ हैं। लेकिन कोई दैवी विपत्ति आ जाय, तब भी इसी मोटर-बोट पर डूबूँगी। साल में लाखों आदमी रेल के टक्करों से मर जाते हैं, पर कोई बैलगाडियों पर यात्रा नहीं करता। रेलों का विस्तार बढ़ता ही जाता है। बस।

तुम्हारी,
पद्मा

6

गोरखपुर
25-9-25

प्यारी पद्मा,

कल तुम्हारा खत मिला, आज जवाब लिख रही हूँ। एक तुम हो कि महीनों रटाती हो। इस विषय में तुम्हें मुझसे उपदेश लेना चाहिए। विनोद बाबू पर तुम व्यर्थ ही आक्षेप लगा रही हो। तुमने क्यों पहले ही उनकी आर्थिक दशा की जाँच-पड़ताल नहीं की ? बस, एक सुन्दर, रसिक, शिष्ट, वाणी-मधुर युवक देखा और फूल उठीं ? अब भी तुम्हारा ही दोष है। तुम अपने व्यवहार से, रहन-सहन से सिद्ध कर दो कि तुममें गंभीर अंश भी है, फिर देखूँ कि विनोद बाबू कैसे तुमसे परदा रखते हैं। और बहन, यह तो मानवी स्वभाव है। सभी चाहते हैं कि लोग हमें संपन्न समझें। इस स्वाँग को अंत तक निभाने की चेष्टा की जाती है और जो इस काम में सफल हो जाता है, उसी का जीवन सफल समझा जाता है। जिस युग में धन ही सर्वप्रधान हो, मर्यादा, कीर्ति, यश—यहाँ तक कि विद्या भी धन से खरीदी जा सके, उस युग में स्वाँग भरना एक लाजिमी बात हो जाती है। अधिकार योग्यता का मुँह ताकते हैं ! यही समझ लो कि इन दोनों में फूल और फल का संबंध है। योग्यता का फूल लगा और अधिकार का फल आया।

इन जानोपदेश के बाद अब तुम्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। तुमने पतिदेव के नाम जो पत्र लिखा था, उसका बहुत अच्छा असर हुआ। उसके पाँचवें ही दिन स्वामी का कृपापात्र मुझे मिला। बहन, वह खत पाकर मुझे कितनी खुशी हुई, इसका तुम अनुमान कर सकती हो। मालूम होता था, अंधे को आँखें मिल गयी हैं। कभी कोठे पर जाती थी, कभी नीचे आती थी। सारे में खलबली पड़ गयी। तुम्हें वह पत्र अत्यन्त निराशाजनक जान पड़ता, मेरे लिए वह संजीवन-मंत्र था, आशादीपक था। प्राणेश ने बारातियों की उद्वेगता पर खेद प्रकट किया था, पर बड़ों के सामने वह जबान कैसे खोल सकते थे। फिर जनातियों ने भी, बारातियों का जैसा आदर-सत्कार करना चाहिए था, वैसा नहीं किया। अन्त में लिखा था—‘प्रिये, तुम्हारे दर्शनों की कितनी उत्कंठा है, लिख नहीं सकता। तुम्हारी कल्पित मूर्ति नित आँखों के सामने रहती है। पर कुल-मर्यादा का

पालन करना मेरा कर्तव्य है। जब तक माता-पिता का रुख न पाऊँ, आ नहीं सकता। तुम्हारे वियोग में चाहे प्राण ही निकल जायँ, पर पिता की इच्छा की उपेक्षा नहीं कर सकता। हाँ, एक बात का दृढ़-निश्चय कर चुका हूँ—चाहे इधर की दुनियाँ उधर हो जाय, कपूत कहलाऊँ, पिता के कोप का भागी बनूँ, घर छोड़ना पड़े पर अपनी दूसरी शादी न करूँगा। मगर जहाँ तक मैं समझता हूँ, मामला इतना तूल न खींचेगा। यह लोग थोड़े दिनों में नर्म पड़ जायँगे और तब मैं आऊँगा और अपनी हृदयेश्वरी को आँखों पर बिठाकर लाऊँगा।

बस, अब मैं। संतुष्ट हूँ बहन, मुझे और कुछ न चाहिए। स्वामी मुझ पर इतनी कृपा रखते हैं, इससे अधिक और वह क्या कर सकते हैं ! प्रियतम! तुम्हारी चन्दा सदस तुम्हारी रहेगी, तुम्हारी इच्छा ही उसका कर्तव्य है। वह जब तक जिएगी, तुम्हारे पवित्र चरणों से लगी रहेगी। उसे बिसारना मत।

बहन, आँखों में आँसू भर आते हैं, अब नहीं लिखा जाता, जवाब जल्द देना।

तुम्हारी,
चन्दा

7

दिल्ली
15-12-25

प्यारी बहन,

तुझसे बार-बार क्षमा माँगती हूँ, पैरों पड़ती हूँ। मेरे पत्र न लिखने का कारण आलस्य न था, सैर-सपाटे की धुन न थी। रोज सोचती थी कि आज लिखूँगी, पर कोई-न-कोई ऐसा काम आ पड़ता था, कोई ऐसी बात हो जाती थी; कोई ऐसी बाधा आ खड़ी होती थी कि चित्त अशांत हो जाता था और मुँह लपेट कर पड़ रहती थी। तुम मुझे अब देखो तोशायद पहिचान न सको। मंसूरी से दिल्ली आये एक महीना हो गया। यहाँ विनोद को तीन सौ रुपये की एक जगह मिल गयी है। यह सारा महीना बाजार की खाक छानने में कटा। विनोद ने मुझे पूरी स्वाधीनता दे रखी है। मैं जो चाहूँ, करूँ, उनसे कोई मतलब नहीं। वह मेरे मेहमान हैं। गृहस्थी का सारा बोझ मुझ पर डालकर वह निश्चिंत हो गए हैं। ऐसा बेफिक्रा मैंने आदमी ही नहीं देखा। हाजिरी की परवाह है, न डिनर की, बुलाया तो आ गए, नहीं तो बैठे हैं। नौकरों से कुछ बोलने की तो मानो इन्होंने कसम ही खा ली है। उन्हें डाटूँ तो मैं, रखूँ तो मैं, निकालूँ तो मैं, उनसे कोई मतलब ही नहीं। मैं चाहती हूँ, वह मेरे प्रबन्ध की आलोचना करें, ऐब निकालें; मैं चाहती हूँ जब मैं बाजार से कोई चीज लाऊँ, तो वह बतावें मैं जट गई या जीत आई; मैं चहती हूँ महीने के खर्च का बजट बनाते समय मेरे और उनके बीच में खूब बहस हो, पर इन अरमानों में से एक भी पूरा नहीं होता। मैं नहीं समझती, इस तरह कोई स्त्री कहाँ तक गृह-प्रबन्ध में सफल हो सकती है। विनोद के इस सम्पूर्ण आत्म-समर्पण ने मेरी निज की जरूरतों के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रखी। अपने शौक की चीजें खुद खरीदकर लाते बुरा मालूम होता है, कम-से-कम मुझसे नहीं हो सकमा। मैं जानती हूँ, मैं अपने लिए कोई चीज लाऊँ, तो वह नाराज न होंगे। नहीं, मुझे विश्वास है, खुश होंगे; लेकिन मेरा जी चाहता है, मेरे शौक सिंगार की चीजें वह खुद ला कर दें। उनसे लेने में जो आनन्द है, वह खुद जाकर लाने में नहीं। पिताजी अब भी मुझे सौ रुपया महीना देते हैं और उन रुपयों को मैं अपनी जरूरतों पर खर्च कर सकती हूँ। पर न जाने क्यों मुझे भय होता है कि कहीं विनोद समझें, मैं उनके रुपये खर्च किये डालती हूँ। जो आदमी किसी बात पर नाराज नहीं हो सकता, वह किसी बात पर खुश भी नहीं हो सकता। मेरी समझ में ही नहीं आता, वह किस बात से खुश और किस बात से नाराज होते हैं। बस, मेरी दशा उस आदमी की-सी है, जो बिना रास्ता जाने इधर-उधर भटकता फिरे। तुम्हें याद होगा, हम दोनों कोई गणित का प्रश्न लगाने के बाद कितनी उत्सुकता से उसका जवाब देखती थी; जब हमारा जवाब किताब के जवाब से मिल जाता था, तो हमें कितना हार्दिक आनन्द मिलता था। मेहनत सफल हुई, इसका विश्वास हो जाता था। जिन गणित की पुस्तकों में प्रश्नों के उत्तर न लिखे होते थे, उसके प्रश्न हल करने की हमारी इच्छा ही न होती थी। सोचते थे, मेहनत अकारथ जायगी। मैं रोज प्रश्न हल करती हूँ, पर नहीं जानती कि जवाब ठीक निकला, या गलत। सोचो, मेरे चित्त की क्या दशा होगी।

एक हफ्ता होता है, लखनऊ की मिस रिग से भेंट हो गई। वह लेडी डाक्टर हैं और मेरे घर बहुत आती-जाती हैं। किसी का सिर भी धमका और मिस रिग बुलायी गयीं। पापा जब मेडिकल कालेज में प्रोफेसर थे, तो उन्होंने इन मिस रिग को पढ़ाया था। उसका एहसान वह अब भी मानती हैं। यहाँ उन्हें देखकर भोजन का निमंत्रण न देना अशिष्टता की हद होती। मिस रिग ने दावत मंजूर कर ली। उस दिन मुझे जितनी कठिनाई हुई, वह बयान नहीं कर सकती। मैंने कभी अँगरेजों के साथ टेबुल पर नहीं खाया। उनमें भोजन के

क्या शिष्टाचार हैं, इसका मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं। मैंने समझा था, विनोद मुझे सारी बातें बता देंगे। वह बरसों अँगरेजों के साथ इंग्लैंड रह चुके हैं। मैंने उन्हें मिस रिग के आने की सूचना भी दे दी। पर उस भले आदमी ने मानो सुना ही नहीं। मैंने भी निश्चय किया, मैं तुमसे कुछ न पूछूँगी, यही न होगा कि मिस रिग हँसेंगी। बला से। अपने ऊपर बार-बार झुँझलाती थी कि कहाँ मिस रिग को बुला बैठी। पड़ोस के बँगलों में कई हमी-जैसे परिवार रहते हैं। उनसे सलाह ले सकती थी। पर यही संकोच होता था कि ये लोग मुझे गँवारिन समझेंगे। अपनी इस विवशता पर थोड़ी देर तक आँसू भी बहाती रही। आखिर निराश होकर अपनी बुद्धि से काम लिया। दूसरे दिन मिस रिग आयीं। हम दोनों भी मेज पर बैठे। दावत शुरू हुई। मैं देखती थी कि विनोद बार-बार झेंपते थे और मिस रिग बार-बार नाक सिकोड़ती थीं, जिससे प्रकट हो रहा था कि शिष्टाचार की मर्यादा भंग हो रही है। मैं शर्म के मारे मरी जाती थी। किसी भाँति विपत्ति सिर सके टली। तब मैंने कान पकड़े कि अब किसी अँगरेज की दावत न करूँगी। उस दिन से देख रही हूँ, विनोद मुझसे कुछ खिंचे हुए हैं। मैं भी नहीं बोल रही हूँ। वह शायद समझते हैं कि मैंने उनकी भद्द करा दी। मैं समझ रही हूँ कि उन्होंने मुझे लज्जित लज्जित किया। सच कहती हूँ, चन्दा, गृहस्थी के इन झंझटों में मुझे अब किसी से हँसने बोलने का अवसर नहीं मिलता। इधर महीनों से कोई नयी पुस्तक नहीं पढ़ सकी। विनोद की विनोदशीलता भी न जाने कहाँ चली गयी। अब वह सिनेमा या थिएटर का नाम भी नहीं लेते। हाँ, मैं चलूँ तो वह तैयार हो जायेंगे। मैं चाहती हूँ, प्रस्ताव उनकी ओर से हो, मैं उसका अनुमोदन करूँ। शायद वह पहिले की आदतें छोड़ रहे हैं। मैं तपस्या का संकल्प उनके मुख पर अंकित पाती हूँ। ऐसा जान पड़ता है, अपने में गृह-संचालन की शक्ति न पाकर उन्होंने सारा भार मुझ पर डाल दिया है। मंसूरी में वह घर के संचालक थे। दो-ढाई महीने में पन्द्रह सौ खर्च किये। कहाँ से लाये, यह मैं अब तक नहीं जानती। पास तो शायद ही कुछ रहा हो। संभव है किसी मित्र से ले लिया हो। तीन सौ रुपये महीने की आमदनी में थिएटर और सिनेमा का जिक्र ही क्या ! पचास रुपये तो मकान ही के निकल जाते हैं। मैं इस जंजाल से तंग आ गयी हूँ। जी चाहता है, विनोद से कह दूँ कि मेरे चलाये यह ठेला न चलेगा। आप तो दो-ढाई घंटा यूनिवर्सिटी में काम करके दिन-भर चैन करें, खूब टेनिस खेलें, खूब उपन्यास पढ़ें, खूब सोयें और मैं सुबह से आधी रात तक घर के झंझटों में मरा करूँ। कई बार छेड़ने का इरादा किया, दिल में ठानकर उनके पास गयी भी, लेकिन उनका सामीप्य मेरे सारे संयम, सारी ग्लानि, सारी विरक्ति को हर लेता है। उनका विकसित मुखमंडल, उनके अनुरक्त नेत्र, उनके कोमल शब्द मुझ पर मोहिनी मंत्र-सा डाल देते हैं। उनके एक आलिंगन में मेरी सारी वेदना विलीन हो जाती है। बहुत अच्छा होता, अगर यह इतने रूपवान्, इतने मधुरभाषी, इतने सौम्य न होते। तब कदाचित् मैं इनसे झगड़ बैठती, अपनी कठिनाइयाँ कह सकती। इस दशा में तो इन्होंने मुझे जैसे भेड़ बना लिया है। मगर माया को तोड़ने का मौका तलाश कर रही हूँ। एक तरह से मैं अपना आत्म-सम्मान खो बैठी हूँ। मैं क्यों हर एक बात में किसी की अप्रसन्नता से डरती रहती हूँ ? मुझमें क्यों यह भाव नहीं आता कि जो कुछ मैं कर रही हूँ, वह ठीक है। मैं इतनी मुखापेक्षा क्यों करती हूँ ? इस मनोवृत्ति पर मुझे विजय पाना है, चाहे जो कुछ हो। अब इस वक्त विदा होती हूँ। अपने यहाँ के समाचार लिखना, जी लगा है।

तुम्हारी,
पद्मा

8

काशी
25-12-25

प्यारी पद्मा,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे कुछ दुःख हुआ, कुछ हँसी आयी, कुछ क्रोध आया। तुम क्या चाहती हो, यह तुम्हें खुद नहीं मालूम। तुमने आदर्श पति पाया है, व्यर्थ की शंकाओं से मन को अशांत न करो। तुम स्वाधीनता चाहती थीं, वह तुम्हें मिल गयी। दो आदमियों के लिए तीन सौ रुपये कम नहीं होते। उस पर अभी तुम्हारे पापा भी सौ रुपये दिये जाते हैं। अब और क्या करना चाहिए? मुझे भय होता है कि तुम्हारा चित्त कुछ अव्यवस्थित हो गया है। मेरे पास तुम्हारे लिए सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं।

मैं पन्द्रह तारीख को काशी आ गयी। स्वामी स्वयं मुझे विदा कराने गये थे। घर से चलते समय बहुत रोई। पहले मैं समझती थी कि लड़कियाँ झूठ-मूठ रोया करती हैं। फिर मेरे लिए तो माता-पिता का वियोग कोई नई बात न थी। गर्मी, दशहरा और बड़े दिन की छुट्टियों के बाद छः सालों से इस वियोग का अनुभव

कर रही हूँ। कभी आँखों में आँसू न आते थे। सहेलियों से मिलने की खुशी होती थी। पर अबकी तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई हृदय को खींचे लेता है। अम्माँजी के गले लिपटकर तो मैं इतना रोई कि मुझे मूर्छा आ गयी। पिताजी के पैरों पर लोट कर रोने की अभिलाषा मन में ही रह गयी। हाय, वह रुदन का आनन्द ! उस समय पिता के चरणों पर गिरकर रोने के लिए मैं अपने प्राण तक दे देती। यही रोना आता था कि मैंने इनके लिए कुछ न किया। मेरा पालन-पोषण करने में इन्होंने क्या कुछ कष्ट न उठाया ! मैं जन्म की रोगिणी हूँ। रोज ही बीमार रहती थी। अम्माँजी रात-रात भर मुझे गोद में लिये बैठी रह जाती थी। पिताजी के कन्धों पर चढ़कर उचकने की याद मुझे अभी तक आती है। उन्होंने कभी मुझे कड़ी निगाह से नहीं देखा। मेरे सिर में दर्द हुआ और उनके हाथों के तोते उड़ जाते थे। दस वर्ष की उम्र तक तो यों गए। छः साल देहरादून में गुजरे। अब, जब इस योग्य हुई कि उनकी कुछ सेवा करूँ, तो यों पर झाड़कर अलग हो गई। कुल आठ महीने तक उनके चरणों की सेवा कर सकी और यही आठ महीने मेरे जीवन की निधि है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मेरा जन्म फिर इसी गोद में हो और फिर इसी अतुल पितृस्नेह का आनन्द भोगूँ।

सन्ध्या समय गाड़ी स्टेशन से चली। मैं जनाना कमरे में थी और लोग दूसरे कमरे में थे। उस वक्त सहसा मुझे स्वामीजी को देखने की प्रबल इच्छा हुई। सान्त्वना, सहानुभूति और आश्रय के लिए हृदय व्याकुल हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई कैदी कालापानी जा रहा हो।

घंटे भर के बाद गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी। मैं पीछे की ओर खिड़की से सिर निकालकर देखने लगी। उसी वक्त द्वार खुला और किसी ने कमरे में कदम रखा। उस कमरे में एक औरत भी न थी। मैंने चौंककर पीछे देखा तो एक पुरुष। मैंने तुरन्त मुँह छिपा लिया और बोली, आप कौन हैं ? यह जनाना कमरा है। मरदाने कमरे में जाइए।

पुरुष ने खड़े-खड़े कहा—मैं तो इसी कमरे में बैठूँगा। मरदाने कमरे में भीड़ बहुत है।

मैंने रोष से कहा—नहीं, आप इसमें नहीं बैठ सकते।

‘मैं तो बैठूँगा।’

‘आपको निकलना पड़ेगा। आप अभी चले जाइये, नहीं तो मैं अभी जंजीर खींच लूँगी।’

‘अरे साहब, मैं भी आदमी हूँ, कोई जानवर नहीं हूँ। इतनी जगह पड़ी हुई है। आपका इसमें हरज क्या है?’

गाड़ी ने सीटी दी। मैं और घबराकर बोली—आप निकलते हैं, या मैं जंजीर खींचूँ ?

पुरुष ने मुस्कराकर कहा—आप तो बड़ी गुस्सावर मालूम होती हैं। एक गरीब आदमी पर आपको जरा भी दया नहीं आती ?

गाड़ी चल पड़ी। मारे क्रोध और लज्जा के मुझे पसीना आ गया। मैंने फौरन द्वार खोल दिया और बोली—अच्छी बात है, आप बैठिए, मैं ही जाती हूँ।

बहन, मैं सच कहती हूँ, मुझे उस वक्त लेशमात्र भी भय न था। जानती थी, गिरते ही मर जाऊँगी, पर एक अजनबी के साथ अकेले बैठने से मर जाना अच्छा था। मैंने एक पैर लटकाया ही था कि उस पुरुष ने मेरी बाँह पकड़ ली और अन्दर खींचता हुआ बोला—अब तक तो आपने मुझे कालेपानी भेजने का सामान कर दिया था। यहाँ और कोई तो है नहीं, फिर आप इतना क्यों घबराती हैं। बैठिए, जरा हँसिए-बोलिए। अगले स्टेशन पर मैं उतर जाऊँगा, इतनी देर तक कृपा-कटाक्ष से वंचित न कीजिए। आपको देखकर दिल काबू से बाहर हुआ जाता है। क्यों एक गरीब का खून सिर पर लीजिएगा।.....

मैंने झटककर अपना हाथ छुटा लिया। सारी देह काँपने लगी। आँखों में आँसू भर आये। उस वक्त अगर मेरे पास कोई छुरी या कटार होती, तो मैंने जरूर उसे निकाल लिया होता और मरने-मारने को तैयार हो गई होती। मगर इस दशा में क्रोध से ओंठ चबाने के सिवा और क्या करती ! आखिर झल्लाना व्यर्थ समझकर मैंने सावधान होने की चेष्टा करके कहा—आप कौन हैं ? उसने उसी ढिठाई से कहा—तुम्हारे प्रेम का इच्छुक।

‘आप तो मजाक करते हैं। सच बतलाइए।’

‘सच बता रहा हूँ, तुम्हारा आशिक हूँ।’

‘अगर आप मेरे आशिक हैं, तो कम-से-कम इतनी बात मानिए कि अगले स्टेशन पर उतर जाइए। मुझे बदनाम करके आप कुछ न पायेंगे। मुझ पर इतनी दया कीजिए।’

मैंने हाथ जोड़कर यह बात कही। मेरा गला भी भर आया था। उस आदमी ने द्वार की ओर जाकर कहा—अगर आपका यही हुक्म है, तो लीजिए, जाता हूँ। याद रखिएगा।

उसने द्वार खोल लिया और एक पाँव आगे बढ़ाया। मुझे मालूम हुआ वह नीचे कूदने जा रहा है। बहन, नहीं कह सकती कि उस वक्त मेरे दिल की क्या दशा हुई। मैंने बिजली की तरह लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और अपनी तरफ जोर से खींच लिया।

उसने ग्लानि से भरे हुए स्वर में कहा—‘क्यों खींच लिया, मैं तो चला जा रहा था।’

‘अगला स्टेशन आने दीजिए।’

‘जब आप भगा ही रही हैं, तो जितनी जल्द भाग जाऊँ उतना ही अच्छा।’

‘मैं यह कब कहती हूँ कि आप चलती गाड़ी से कूद पड़िए।’

‘अगर मुझ पर इतनी दया है, तो एक बार जरा दर्शन ही दे दो।’

‘अगर आपकी स्त्री से कोई दूसरा पुरुष बातें करता, तो आपको कैसा लगता?’

पुरुष ने तयोरियाँ चढ़ाकर कहा—‘मैं उसका खून पी जाता।’

मैंने निस्संकोच होकर कहा—तो फिर आपके साथ मेरे पति क्या व्यवहार करेंगे, यह भी आप समझते होंगे ?

‘तुम अपनी रक्षा आप ही कर सकती हो। प्रिये! तुम्हें पति की मदद की जरूरत ही नहीं। अब आओ, मेरे गले से लग जाओ। मैं ही तुम्हारा भाग्यशाली स्वामी और सेवक हूँ।’

मेरा हृदय उछल पड़ा। एक बार मुँह से निकला—अरे! आप!!’ और मैं दूर हटकर खड़ी हो गयी। एक हाथ लंबा घूँघट खींच लिया। मुँह से एक शब्द न निकला।

स्वामी ने कहा—अब यह शर्म और परदा कैसा?

मैंने कहा—आप बड़े छलिये हैं ! इतनी देर तक मुझे रूलाने में क्या मजा आया?

स्वामी—इतनी देर में मैंने तुम्हें जितना पहचान लिया, उतना घर के अन्दर शायद बरसों में भी न पहचान सकता। यह अपराध क्षमा करो। क्या तुम सचमुच गाड़ी से कूद पड़ती ?

‘अवश्य?’

‘बड़ी खैरियत हुई, मगर यह दिल्लगी बहुत दिनों याद रहेगी।’ मेरे स्वामी औसत कद के, साँवले, चेचकरू, दुबले आदमी हैं। उनसके कहीं रूपवान् पुरुष मैंने देखे हैं: पर मेरा हृदय कितना उल्लसित हो रहा था ! कितनी आनन्दमय सन्तुष्टि का अनुभव कर रही थी, मैं बयान नहीं कर सकती।

मैंने पूछा—गाड़ी कब तक पहुँचेगी ?

‘शाम को पहुँच जायेंगे।’

मैंने देखा, स्वामी का चेहरा कुछ उदास हो गया है। वह दस मिनट तक चुपचाप बैठे बाहर की तरफ ताकते रहे। मैंने उन्हें केवल बात में लगाने ही के लिए यह अनावश्यक प्रश्न पूछा था। पर अब भी जब वह न बोले तो मैंने फिर न छोड़ा। पानदान खोलकर पान बनाने लगी। सहसा, उन्होंने कहा—चन्दा, एक बात कहूँ ?

मैंने कहा—हाँ-हाँ, शौक से कहिए।

उन्होंने सिर झुकाकर शर्माते हुए कहा—मैं जानता कि तुम इतनी रूपवती हो, तो मैं तुमसे विवाह न करता। अब तुम्हें देखकर मुझे मालूम हो रहा है कि मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। मैं किसी तरह तुम्हारे योग्य न था।

मैंने पान का बीड़ा उन्हें देते हुए कहा—ऐसी बातें न कीजिए। आप जैसे हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं आपकी दासी बनकर अपने भाग्य को धन्य मानती हूँ।

दूसरा स्टेशन आ गया। गाड़ी रुकी। स्वामी चले गये। जब-जब गाड़ी रुकती थी, वह आकर दो-चार बातें कर जाते थे। शाम को हम लोग बनारस पहुँच गए। मकान एक गली में है और मेरे घर से बहुत छोटा है। इन कई दिनों में यह भी मालूम हो रहा है कि सासजी स्वभाव की रूखी हैं। लेकिन अभी किसी के बारे में कुछ नहीं कह सकती। सम्भव है, मुझे भ्रम हो रहा हो। फिर लिखूँगी। मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि घर कैसा है, आर्थिक दशा कैसी है, सास-ससुर कैसे हैं। मेरी इच्छा है कि यहाँ सभी मुझ से खुश रहें। पतिदेव को मुझसे प्रेम है, यह मेरे लिए काफी है। मुझे और किसी बात की परवा नहीं। तुम्हारे बहनोईजी का मेरे पास बार-बार आना सासजी को अच्छा नहीं लगता। वह समझती हैं, कहीं यह सिर न चढ़ जाय। क्यों मुझ पर उनकी यह अकृपा है, कह नहीं सकती; पर इतना जानती हूँ कि वह अगर इस बात से नाराज होती हैं, तो हमारे ही भले के लिए। वह ऐसी कोई बात क्यों

करेंगी, जिसमें हमारा हित न हो। अपनी सन्तान का अहित कोई माता नहीं कर सकती। मुझ ही में कोई बुराई उन्हें नजर आई होगी। दो-चार दिन मैं आप ही मालूम हो जाएगा ! अपने यहाँ के समाचार लिखना। जवाब की आशा एक महीने के पहले तो है नहीं, यों तुम्हारी खुशी।

तुम्हारी,
चन्दा

9

दिल्ली
1-2-26

प्यारी बहन,

तुम्हारे प्रथम मिलन की कुतूहलमय कथा पढ़कर, चित्त प्रसन्न हो गया। मुझे तुम्हारे ऊपर हसद हो रहा है। मैंने समझा था, तुम्हें मुझ पर हसद होगा, पर क्रिया उलटी हो गयी, तुम्हें चारों ओर हरियाली ही नजर आती है, मैं जिधर नजर डालती हूँ, सूखे रेत और नग्न टीलों के सिवा और कुछ नहीं। खैर ! अब कुछ मेरा वृत्तान्त सुनो—

“अब जिगर थामकर बैठो, मेरी बारी आयी।”

विनोद की अविचलित दर्शनिकता अब असह्य हो गयी है। कुछ विचित्र जीव हैं, घर में आग लगे, पत्थर पड़े इनकी बला से। इन्हें मुझ पर जरा भी दया नहीं आती। मैं सुबह से शाम तक घर के झंझटों में कुढ़ा करूँ, इन्हें कुछ परवाह नहीं। ऐसा सहानुभूति से खाली आदमी कभी नहीं देखा था। इन्हें तो किसी जंगल में तपस्या करनी चाहिए थी। अभी तो खैर दो ही प्राणी हैं, लेकिन कहीं बाल-बच्चे हो गये तब तो मैं बे-मौत मर जाऊँगी। ईश्वर न करे, वह दारुण विपत्ति मेरे सिर पड़े।

चन्दा, मुझे अब दिल से लगी हुई है कि किसी भाँति इनकी वह समाधि भंग कर दूँ। मगर कोई उपाय सफल नहीं होता, कोई चाल ठीक नहीं पड़ती। एक दिन मैंने उनके कमरे के लंप का बल्ब तोड़ दिया। कमरा अँधेरा पड़ा रहा। आप सैर करके आये, तो कमरा अँधेरा देखा। मुझसे पूछा, मैंने कह दिया बल्ब टूट गया। बस, आपने भोजन किया और मेरे कमरे में आकर लेट रहे। पत्रों और उपन्यासों की ओर देखा तक नहीं, न-जाने वह उत्सुकता कहाँ विलीन हो गयी। दिन-भर गुजर गया, आपको बल्ब लगवाने की कोई फिक्र नहीं। आखिर, मुझी को बाजार से लाना पड़ा।

एक दिन मैंने झुँझलाकर रसोइये को निकाल दिया। सोचा जब लाला रात-भर भूखे सोयेंगे, तब आँखें खुलेंगी। मगर इस भले आदमी ने कुछ पूछा तक नहीं। चाय न मिली, कुछ परवाह नहीं। ठीक दस बजे आपने कपड़े पहने, एक बार रसोई की ओर जाकर देखा, सन्नाटा था। बस, कालेज चल दिये। एक आदमी पूछता है, महाराज कहाँ गया, क्यों गया; अब क्या इन्तजाम होगा, कौन खाना पकायेगा, कम-से-कम इतना तो मुझसे कह सकते थे कि तुम अगर नहीं पका सकती, तो बाजार ही से कुछ खाना मँगवा लो। जब वह चले गए, तो मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। रायल होटल से खाना मँगवाया और बैरे के हाथ कालेज भेज दिया। पर खुद भूखी ही रही। दिन-भर भूख के मारे बुरा हाल था। सिर में दर्द होने लगा। आप कालेज से आए और मुझे पड़े देखा तो ऐसे परेशान हुए मानो मुझे त्रिदोष है। उसी वक्त एक डाक्टर बुला भेजा। डाक्टर आये, आँखें देखी, जबान देखी, हाररत देखी, लगाने की दवा अलग दी, पीने की अलग, आदमी दवा लेने गया। लौटा तो बारह रुपये का बिल भी था। मुझे इन सारी बातों पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि कहाँ भागकर चली जाऊँ। उस पर आप आराम-कुर्सी डालकर मेरी चारपाई के पास बैठ गए और एक-एक पल पर पूछने लगे कैसा जी है ? दर्द कुछ कम हुआ ? यहाँ मारे भूख के आँतें कुलकुला रही थी। दवा हाथ से छुई तक नहीं। आखिर झख मारकर मैंने फिर बैरे से खाना मँगवाया। फिर चाल उलटी पड़ी। मैं डरी कि कहीं सबेरे फिर यह महाशय डाक्टर को न बुला बैठें, इसलिए सबेरा होते ही हारकर फिर घर के काम-धन्धे में लगी। उसी वक्त एक दूसरा महाराज बुलवाया। अपने पुराने महाराज को बेकसूर निकालकर दण्डस्वरूप एक काठ के उल्लू को रखना पड़ा, जो मामूली चपातियाँ भी नहीं पका सकता। उस दिन से एक नयी बला गले पड़ी। दोनों वक्त दो घंटे इस महाराज को सिखाने में लग जाते हैं। इसे अपनी पाक-कला का ऐसा घमण्ड है कि मैं चाहे जितना बकूँ, पर करता अपने ही मन की है। उस पर बीच-बीच में मुस्कराने लगता है, मानो कहता हो कि ‘तुम इन बातों को क्या जानो, चुपचाप बैठी देखती जाव।’ जलाने चली थी विनोद को और खुद जल गयी। रुपये खर्च

हुए, वह तो हुए ही, एक और जंजाल में फँस गयी। मैं खुद जानती हूँ कि विनोद का डाक्टर को बुलाना या मेरे पास बैठे रहना केवल दिखावा था। उनके चेहरे पर जरा भी घबराहट न थी, चित्त जरा भी अशांत न था।

चंदा, मुझे क्षमा करना। मैं नहीं जानती कि ऐसे पुरुष के पाले पड़कर तुम्हारी क्या दशा होती, पर मेरे लिए इस दशा में रहना असह्य है। मैं आगे जो वृत्तान्त कहने वाली हूँ, उसे सुनकर तुम नाक-भौं सिकोड़ोगी, मुझे कोसोगी, कलंकिनी कहोगी; पर जो चाहे कहो, मुझे परवा नहीं। आज चार दिन होते हैं, मैंने त्रिया-चरित्र का एक नया अभिनय किया। हम दोनों सिनेमा देखने गये थे। वहाँ मेरी बगल में एक बंगाली बाबू बैठे हुए थे। विनोद सिनेमा में इस तरह बैठते हैं, मानो ध्यानावस्था में हों। न बोलना, न चालना! फिल्म इतनी सुन्दर थी, ऐक्टिंग इतनी सजीव कि मेरे मुँह से बार-बार प्रशंसा के शब्द निकल जाते थे। बंगाली बाबू को भी बड़ा आनन्द आ रहा था। हम दोनों उस फिल्म पर आलोचनाएँ करने लगे। वह फिल्म के भावों की इतनी रोचक व्याख्या करता था कि मन मुग्ध हो जाता था। फिल्म से ज्यादा मजा मुझे उसकी बातों में आ रहा था। बहन, सच कहती हूँ, शक्ल-सूरत में वह विनोद के तलुओं की बराबरी भी नहीं कर सकता, पर केवल विनोद को जलाने के लिए मैं उससे मुस्करा-मुस्करा कर बातें करने लगी। उसने समझा, कोई शिकार फँस गया। अवकाश के समय वह बाहर जाने लगा, तो मैं भी उठ खड़ी हुई; पर विनोद अपनी जगह पर ही बैठे रहे।

मैंने कहा—बाहर चलते हो, मेरी तो बैठे-बैठे कमर दुख गयी।

विनोद बोले—हाँ-हाँ चलो, इधर-उधर टहल आयें। मैंने लापरवाही से कहा—तुम्हारा जी न चाहे तो मत चलो, मैं मजबूर नहीं करती।

विनोद फिर अपनी जगह पर बैठते हुए बोले—अच्छी बात है।

मैं बाहर आयी तो बंगाली बाबू ने पूछा—क्या आप यहीं की रहने वाली हैं ? ‘मेरे पति यहाँ यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं।’

‘अच्छा! वह आपके पति थे। अजीब आदमी हैं।’

‘आपको तो मैंने शायद यहाँ पहले ही देखा है।’

‘हाँ, मेरा मकान तो बंगाल में है। कंचनपुर के महाराज साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी हूँ। महाराजा साहब वाइसराय से मिलने आये हैं।’

‘तो अभी दो-चार दिन रहिएगा?’

‘जी हाँ, आशा तो करता हूँ। रहूँ तो साल-भर रह जाऊँ। जाऊँ तो दूसरी गाड़ी से चला जाऊँ। हमारे महाराजा साहब का कुछ ठीक नहीं। यों बड़े सज्जन और मिलनसार हैं। आपसे मिलकर बहुत खुश होंगे।

यह बातें करते-करते हम रेस्ट्रॉ में पहुँच गये। बाबू ने चाय और टोस्ट लिया। मैंने सिर्फ चाय ली।

‘तो इसी वक्त आपका महाराजा साहब से परिचय करा दूँ। आपको आश्चर्य होगा कि मुकुटधारियों में भी इतनी नम्रता और विनय हो सकती है। उनकी बातें सुनकर आप मुग्ध हो जायँगी।’

मैंने आईने में अपनी सूरत देखकर कहा—जी नहीं, फिर किसी दिन पर रखिए। आपसे तो अक्सर मुलाकात होती रहेगी। क्या आपकी स्त्री आपके साथ नहीं आयी ?

युवक ने मुस्कराकर कहा—मैं अभी क्वॉरा हूँ और शायद क्वॉरा ही रहूँ?

मैंने उत्सुक होकर पूछा—अच्छा! तो आप भी स्त्रियों से भागने वाले जीवों में हैं। इतनी बातें तो हो गयी और आपका नाम तक न पूछा।

बाबू ने अपना नाम भुवनमोहन दास गुप्त बताया। मैंने अपना परिचय दिया।

‘जी नहीं, मैं उन अभागों में हूँ, जो एक बार निराश होकर फिर उसकी परीक्षा नहीं करते। रूप की तो संसार में कमी नहीं, मगर रूप और गुण का मेल बहुत कम देखने में आता है। जिस रमणी से मेरा प्रेम था, वह आज एक बड़े वकील की पत्नी है। मैं गरीब था। इसकी सजा मुझे ऐसी मिली कि जीवनपर्यन्त न भूलेगी। साल-भर तक जिसकी उपासना की, जब उसने मुझे धन पर बलिदान कर दिया, तो अब और क्या आशा रखूँ?’

मैंने हँसकर कहा—‘आपने बहुत जल्द हिम्मत हार दी।’

भुवन ने सामने द्वार की ओर ताकते हुए कहा—मैंने आज तक ऐसा वीर ही नहीं देखा, जो रमणियों से परास्त न हुआ हो। ये हृदय पर चोट करती हैं और हृदय एक ही गहरी चोट सह सकता है। जिस रमणी ने मेरे प्रेम को तुच्छ समझकर पैरों से कुचल दिया, उसको मैं दिखाना चाहता हूँ कि मेरी आँखों में धन कितनी तुच्छ वस्तु है, यही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। मेरा जीवन उसी दिन सफल होगा, जब

विमला के घर के सामने मेरा विशाल भवन होगा और उसका पति मुझसे मिलने में अपना सौभाग्य समझेगा।

मैंने गम्भीरता से कहा—यह तो कोई बहुत ऊँचा उद्देश्य नहीं है। आप यह क्यों समझते हैं कि विमला ने केवल धन के लिए आपका परित्याग किया। सम्भव है, इसके और भी कारण हों। माता-पिता ने उस पर दबाव डाला हो, या अपने ही में उसे कोई ऐसी त्रुटि दिखलाई दी हो, जिससे आपका जीवन दुःखमय हो जाता। आप यह क्यों समझते हैं कि जिस प्रेम से वंचित होकर आप इतने दुःखी हुए, उसी प्रेम से वंचित होकर वह सुखी हुई होगी। सम्भव था, कोई धनी स्त्री पाकर आप भी फिसल जाते।

भुवन ने जोर देकर कहा—यह असम्भव है, सर्वथा असम्भव है। मैं उसके लिए त्रिलोक का राज्य भी त्याग देता।

मैंने हँसकर कहा—हाँ, इस वक्त आप ऐसा कह सकते हैं; मगर ऐसी परीक्षा में पड़कर आपकी क्या दशा होती, इसे आप निश्चयपूर्वक नहीं बता सकते। सिपाही की बहादुरी का प्रमाण उसकी तलवार है, उसकी जबान नहीं। इसे अपना सौभाग्य समझिए कि आपको उस परीक्षा में नहीं पड़ना पड़ा। वह प्रेम, प्रेम नहीं है, जो प्रत्याघात की शरण ले। प्रेम का आदि भी सहृदयता है और अन्त भी सहृदयता। सम्भव है, आपको अब भी कोई ऐसी बात मालूम हो जाय, जो विमला की तरफ से आपको नर्म कर दे।

भुवन गहरे विचार में डूब गया। एक मिनट के बाद उन्होंने सिर उठाया। और बोले—‘मिसेज विनोद, आपने आज एक ऐसी बात सुझा दी, जो आज तक मेरे ध्यान में आयी ही न थी। यह भाव कभी मेरे मन में उदय ही नहीं हुआ। मैं इतना अनुदार क्यों हो गया, समझ में नहीं आता। मुझे आज मालूम हुआ कि प्रेम के ऊँचे आदर्श का पालन रमणियाँ ही कर सकती हैं। पुरुष कभी प्रेम के लिए आत्म-समर्पण नहीं कर सकता—वह प्रेम को स्वार्थ और वासना से पृथक नहीं कर सकता। अब मेरा जीवन सुखमय हो जायगा। आपने मुझे आज शिक्षा दी है, उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।’

यह कहते-कहते भुवन सहसा चौंक पड़े और बोले—ओह! मैं कितना बड़ा मूर्ख हूँ—सारा रहस्य समझ में आ गया, अब कोई बात छिपी नहीं है। ओह, मैंने विमला के साथ घोर अन्याय किया! महान् अन्याय! मैं बिल्कुल अंधा हो गया था। विमला, मुझे क्षमा करो।

भुवन इसी तरह देर तक विलाप करते रहे। बार-बार मुझे धन्यवाद देते थे और मूर्खता पर पछताते थे। हमें इसकी सुध ही न रही कि कब घंटी बजी, कब खेल शुरू हुआ। यकायक विनोद कमरे में आए। मैं चौंक पड़ी। मैंने उनके मुख की ओर देखा, किसी भाव का पता न था। बोले—तुम अभी यही हो, पद्मा! खेल शुरू हुए तो देर हुई! मैं चारों तरफ तुम्हें खोज रहा था।

मैं हकबकाकर उठ खड़ी हुई और बोली—खेल शुरू हो गया? घंटी की आवाज तो सुनायी ही नहीं दी।

भुवन भी उठे। हम फिर आकर तमाशा देखने लगे। विनोद ने मुझे अगर इस वक्त दो-चार लगने वाली बातें कह दी होतीं, उनकी आँखों में क्रोध की झलक दिखायी देती, तो मेरा अशान्त हृदय सँभल जाता, मेरे मन को ढाढ़स होती, पर उनके अविचलित विश्वास ने मुझे और भी अशांत कर दिया। बहन, मैं चाहती हूँ, वह मुझ पर शासन करें। मैं उनकी कठोरता, उनकी उद्दण्डता, उनकी बलिष्ठता का रूप देखना चाहती हूँ। उनके प्रेम, प्रमोद, विश्वास का रूप देख चुकी। इससे मेरी आत्मा को तृप्ति नहीं होती ! तुम उस पिता को क्यों कहोगी, जो अपने पुत्र को अच्छा खिलाये, अच्छा पहनाये, पर उसकी शिक्षा-दीक्षा की कुछ चिन्ता न करे; वह जिस राह जाय, उस राह जाने दे; जो कुछ करे, वह करने दे। कभी उसे कड़ी आँख से देखे भी नहीं। ऐसा लड़का अवश्य ही आवारा हो जायगा। मेरा भी वही हाल हुआ जाता है। यह उदासीनता मेरे लिए असह्य है। इस भले आदमी ने यहाँ तक न पूछा कि भुवन कौन है ? भुवन ने यही तो समझा होगा कि इसका पति इसकी बिल्कुल परवाह नहीं करता। विनोद खुद स्वाधीन रहना चाहते हैं, मुझे भी स्वाधीन छोड़ देना चाहते हैं। वह मेरे किसी काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। इसी तरह चाहते हैं कि मैं भी उनके किसी काम में हस्तक्षेप न करूँ मैं इस स्वाधीनता को दोनों ही के लिए विष तुल्य समझती हूँ। संसार में स्वाधीनता का चाहे जो भी मूल्य हो, घर में तो पराधीनता ही फलती-फूलती है। मैं जिस तरह अपने एक जेवर को अपना समझती हूँ, उसी तरह विनोद को अपना समझना चाती हूँ। अगर मुझसे पूछे बिना विनोद उसे किसी को दे दें, तो मैं लड़ पड़ूँगी। मैं चाहती हूँ, कहाँ हूँ, क्या पढ़ती हूँ, किस तरह जीवन जीवन व्यतीत करती हूँ, इन सारी बातों पर उनकी तीव्र दृष्टि रहनी चाहिए। जब वह मेरी परवाह नहीं करते, तो मैं उनकी परवाह क्यों करूँ? इस खींचातानी में हम एक-दूसरे से अलग होते चले जा रहे हैं और क्या कहूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम कि वह किन

मित्रों को रोज पत्र लिखते हैं। उन्होंने भी मुझसे कभी कुछ नहीं पूछा। खैर, मैं क्या लिख रही थी, क्या कहने लगी। विनोद ने मुझसे कुछ नहीं पूछा। मैं फिर भुवन से फिल्म के सम्बन्ध में बातें करने लगी।

जब खेल खत्म हो गया और हम लोग बाहर आए और ताँगा ठीक करने लगे, तो भुवन ने कहा—‘मैं अपनी कार में आपको पहुँचा दूँगा।’

हमने कोई आपत्ति नहीं की। हमारे मकान का पता पूछकर भुवन ने कार चला दी। रास्ते में मैंने भुवन से कहा—‘कल मेरे यहाँ दोपहर का खाना खाइएगा।’ भुवन ने स्वीकार कर लिया।

भुवन तो हमें पहुँचाकर चले गए, पर मेरा मन बड़ी देर तक उन्हीं की तरफ लगा रहा। इन दो-तीन घंटों में भुवन को जितना समझी, उतना विनोद को आज तक नहीं समझी। मैंने भी अपने हृदय की जितनी बातें उससे कह दीं, उतनी विनोद से आज तक नहीं कहीं। भुवन उन मनुष्यों में है, जो किसी पर पुरुष को मेरी कुदृष्टि डालते देखकर उसे मार डालेगा। उसी तरह मुझे किसी पुरुष से हँसते देखकर मेरा खून पी लेगा और जरूरत पड़ेगी, तो मेरे लिए आग में कूद पड़ेगा। ऐसा ही पुरुष-चरित्र मेरे हृदय पर विजय पर सकता है। मेरे ही हृदय पर नहीं, नारी-जाति (मेरे विचार में) ऐसे ही पुरुष पर जान देती हैं। वह निर्बल है, इसलिए बलवान् का आश्रय ढूँढ़ती है।

बहन, तुम ऊब गई होगी, खत बहुत लम्बा हो गया; मगर इस काण्ड को समाप्त किए बिना नहीं रहा जाता। मैंने सबेरे ही से भुवन की दावत की तैयारी शुरू कर दी। रसोइया तो काठ का उल्लू है, मैंने सारा काम अपने हाथ से किया। भोजन बनाने में ऐसा आनन्द मुझे और कभी न मिला था।

भुवन बाबू की कार ठीक समय पर आ पहुँची। भुवन उतरे और सीधे मेरे कमरे में आए। दो-चार बातें हुईं। डिनर-टेबल पर जा बैठे। विनोद भी भोजन करने आए। मैंने उन दोनों आदमियों का परिचय करा दिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि विनोद ने भुवन की ओर से कुछ उदासीनता दिखायी। इन्हें राजाओं-रईसों से चिढ़ है, साम्यवादी हैं। जब राजाओं से चिढ़ है तो उनके पिटुओं से क्यों न होती। वह समझते हैं, इन रईसों के दरबार में खुशामदी, निकम्मे, सिद्धान्तहीन, चरित्रहीन लोगों का जमघट रहता है, जिनका इसके सिवाय और कोई काम नहीं कि अपने रईस की हर एक उचित-अनुचित इच्छा पूरी करें और प्रजा का गला काटकर अपना घर भरें। भोजन के समय बातचीत की धारा घूमते-घूमते विवाह और प्रेम-जैसे महत्व के विषय पर आ पहुँची।

विनोद ने कहा—‘नहीं, मैं वर्तमान वैवाहिक प्रथा को पसन्द नहीं करता। इस प्रथा का आविष्कार उस समय हुआ था, जब मनुष्य सभ्यता की प्रारम्भिक दशा में था। तब से दुनियां बहुत आगे बढ़ी है। मगर विवाह प्रथा में जौ-भर भी अन्तर नहीं पड़ा। यह प्रथा वर्तमान काल के लिए इपयोगी नहीं।’

भुवन ने कहा—‘आखिर आपको इसमें क्या दोष दिखाई देते हैं ?’

विनोद ने विचारकर कहा—‘इसमें सबसे बड़ा ऐब यह है कि यह एक सामाजिक प्रश्न को धार्मिक रूप दे देता है।’

‘और दूसरा?’

‘दूसरा यह कि यह व्यक्तियों की स्वाधीनता में बाधक हैं। यह स्त्रीव्रत और पतिव्रत का स्वाँग रचकर हमारी आत्मा को संकुचित कर देता है। हमारी बुद्धि के विकास में जितनी रुकावट इस प्रथा ने डाली है, उतनी और किसी भौतिक या दैविक क्रांति से भी नहीं हुई। इसने मिथ्या आदर्शों को हमारे सामने रख दिया और आज तक हम उन्हीं पुरानी, सड़ी हुई, लज्जाजनक पाशविक लकीरों को पीटते जाते हैं। व्रत केवल एक निरर्थक बंधन का नाम है। इतना महत्वपूर्ण नाम देकर हमने उस कैद को धार्मिक रूप दे दिया है। पुरुष क्यों चाहता है कि स्त्री उसको अपना ईश्वर, अपना सर्वस्व समझे ? केवल इसलिए कि वह उसका भरण-पोषण करता है। क्या स्त्री का कर्तव्य केवल पुरुष की सम्पत्ति के लिए वारिस पैदा करना है? उस सम्पत्ति के लिए जिस पर, हिन्दू नीतिशास्त्र के अनुसार, पति के देहान्त के बाद उसका कोई अधिकार नहीं रहता। समाज की यह सारी व्यवस्था, सारा संगठन सम्पत्ति-रक्षा के आधार पर हुआ है। इसने सम्पत्ति को प्रधान और व्यक्ति को गौण कर दिया है। हमारे ही वीर्य से उत्पन्न सन्तान हमारी कमाई हुई जायदाद का भोग करे, इस मनोभाव में कितनी स्वार्थान्धता, कितना दासत्व छिपा हुआ है, इसका कोई अनुमान नहीं कर सकता। इस कैद में जकड़ी हुई समाज की सन्तान यदि आज घर में, देश में, संसार में, अपने क्रूर स्वार्थ के लिए रक्त की नदियाँ बहा रही है, तो क्या आश्चर्य है। मैं इस वैवाहिक प्रथा को सारी बुराइयों का मूल समझता हूँ।’

भुवन चकित हो गया। मैं खुद चकित हो गई। विनोद ने इस विषय पर मुझसे कभी इतनी स्पष्टता से बातचीत न की थी। मैं यह तो जानती थी, वह साम्यवादी हैं, दो-एक बार इस विषय पर उनसे बहस भी कर चुकी हूँ, पर वैवाहिक प्रथा के वे इतने विरोधी हैं, यह मुझे मालूम न था। भुवन के चेहरे से ऐसा प्रकट होता था कि उन्होंने ऐसे दार्शनिक विचारों की गंध तक नहीं पाई। जरा देर के बाद बोले—प्रोफेसर साहेब, आपने तो मुझे एक बड़े चक्कर में डाल दिया। आखिर आप इस प्रथा की जगह कोई और प्रथा रखना चाहते हैं या विवाह की आवश्यकता ही नहीं समझते ? जिस तरह पशु-पक्षी आपस में मिलते हैं, वह हमें भी करना चाहिए?

विनोद ने तुरंत उत्तर दिया—बहुत कुछ। पशु-पक्षियों में सभी का मानसिक विकास एक-सा नहीं है। कुछ ऐसे हैं, जो जोड़े के चुनाव में कोई विचार नहीं रखते। कुछ ऐसे हैं, जो एक बार बच्चे पैदा करने के बाद अलग हो जाते हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो जीवनपर्यन्त एक साथ रहते हैं। कितनी ही भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। मैं मनुष्य होने के नाते उसी श्रेणी को श्रेष्ठ समझता हूँ, जो जीवनपर्यन्त एक साथ रहते हैं। मगर स्वेच्छा से। उनके यहाँ कोई कैद नहीं, कोई सजा नहीं। दोनों अपने-अपने चारे-दाने की फिक्र करते हैं। दोनों मिलकर रहने का स्थान बनाते हैं, दोनों साथ बच्चों का पालन करते हैं। उनके बीच में कोई तीसरा नर या मादा आ ही नहीं सकता, यहाँ तक कि उनमें से जब एक मर जाता है तो दूसरा मरते दम तक फुट्टैल रहता है। यह अन्धेर मनुष्य-जाति ही में है कि स्त्री ने किसी दूसरे पुरुष से हँसकर बात की और उसके पुरुष की छाती पर साँप लोटने लगा, खून-खराबे के मंसूबे सोचे जाने लगे। पुरुष ने किसी दूसरी स्त्री की ओर रसिक नेत्रों से देखा और अर्धांगिनी ने तयोरियाँ बदलीं, पति के प्राण लेने को तैयार हो गई। यह सब क्या है ? ऐसा मनुष्य-समाज सभ्यता का किस मुँह से दावा कर सकता है ?

भुवन ने सिर सहसलाते हुए कहा—मगर मनुष्यों में भी तो भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। कुछ लोग हर महीने एक नया जोड़ा खोज निकालेंगे।

विनोद ने हँसकर कहा—लेकिन यह इतना आसान काम न होगा। या तो वह ऐसी स्त्री चाहेगा, जो सन्तान का पालन स्वयं कर सकती हो या उसे एक मुश्त सारी रकम अदा करना पड़ेगी !

भुवन भी हँसे—आप अपने को किस श्रेणी में रखेंगे?

विनोद इस प्रश्न के लिए तैयार न था। था भी बेढंगा-सा सवाल। झंपते हुए बोले—परिस्थितियाँ जिस श्रेणी में ले जायँ। मैं स्त्री और पुरुष दोनों के लिए पूर्ण स्वाधीनता का हामी हूँ। कोई कारण नहीं है कि मेरा मन किसी नवयौवना की ओर आकर्षित हो और वह भी मुझे चाहे तो भी मैं समाज और नीति के भय से उसकी ओर ताक न सकूँ। मैं इसे पाप नहीं समझता।

भुवन अभी कुछ उत्तर न देने पाये थे कि विनोद उठ खड़े हुए। कालेज के लिए देर हो रही थी। तुरन्त कपड़े पहने और चल दिये। हम दोनों दीवानखाने में आकर बैठे और बातें करने लगे।

भुवन ने सिगार जलाते हुए कहा—‘कुछ सुना’ कहाँ जाकर तान टूटी?

मैंने मारे शर्म के सिर झुका लिया। क्या जवाब देती। विनोद की अन्तिम बात ने मेरे हृदय पर कठोर आघात किया था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि विनोद ने केवल मुझे सुनाने के लिए विवाह का यह नया खण्डन तैयार किया है। वह मुझसे पिंड छुड़ा लेना चाहते हैं। वह किसी रमणी की ताक में हैं, मुझसे उनका जी भर गया। वह ख्याल करके मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। कदाचित् एकांत में मैं न रोती, पर भुवन के सामने मैं संयत न रह सकी। भुवन ने मुझे बहुत सांत्वना दी—‘आप व्यर्थ इतना शोक करती हैं। मिस्टर विनोद आपका मान न करें; पर संसार में कम-से-कम एक ऐसा व्यक्ति है, जो आपके संकेत पर अपने प्राण तक न्योछावर कर सकता। आप-जैसी रमणी-रत्न पाकर संसार में ऐसा कौन पुरुष है, जो अपने भाग्य को धन्य न मानेगा। आप इसकी बिल्कुल चिन्ता न करें।’

मुझे भुवन की यह बात बुरी मालूम हुई। क्रोध से मेरा मुख लाल हो गया। यह धूर्त मेरी इस दुर्बलता से लाभ उठाकर मेरा सर्वनाश करना चाहता है। अपने दुर्भाग्य पर बराबर रोना आता था। अभी विवाह हुए साल भी नहीं पूरा हुआ, मेरी यह दशा हो गई कि दूसरों को मुझे बहकाने और मुझ पर अपना जादू चलाने का साहस हो रहा है। जिस वक्त मैंने विनोद को देखा था, मेरा हृदय कितना फूल उठा था। मैंने अपने हृदय को कितनी भक्ति से उनके चरणों पर अर्पण किया था। मगर क्या जानती थी कि इतनी जल्द मैं उनकी आँखों से गिर जाऊँगी और मुझे परित्यक्ता समझ, फिर शोहदे मुझ पर डोरे डालेंगे।

मैंने आँसू पोंछते हुए कहा—मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ। मुझे जरा विश्राम लेने दीजिए।

‘हाँ-हाँ, आराम करें; मैं बैठा देखता रहूँगा।’

‘जी नहीं, अब आप कृपा करके जाइए। यों मुझे आराम न मिलेगा।’

‘अच्छी बात है, आप आराम कीजिए। मैं सन्ध्या-समय आकर देख जाऊँगा।’

‘जी नहीं, आपको कष्ट करने की कोई जरूरत नहीं है।’

‘अच्छा तो मैं कल जाऊँगा। शायद महाराजा साहब भी आवें।’

‘नहीं, आप लोग मेरे बुलाने का इन्तजार कीजिएगा। बिना बुलाये न आइएगा।’

‘यह कहती हुई मैं उठकर अपने सोने के कमरे की ओर चली। भुवन एक क्षण मेरी ओर देखता रहा, फिर चुपके से चला गया।

बहन, इसे दो दिन हो गये हैं। पर मैं कमरे से बाहर नहीं निकली। भुवन दो-तीन बार आ चुका है, मगर मैंने उससे मिलने से साफ इनकार कर दिया। अब शायद उसे फिर आने का साहस न होगा। ईश्वर ने बड़े नाजुक मौके पर मुझे सुबुद्धि प्रदान की, नहीं तो मैं अब तक अपना सर्वनाश कर बैठी होती। विनोद प्रायः मेरे पास ही बैठे रहते हैं। लेकिन उनसे बोलने को मेरा जी नहीं चाहता। जो पुरुष व्यभिचार का दार्शनिक सिद्धांतों से समर्थन कर सकता है, जिसकी आँखों में विवाह-जैसे पवित्र बन्धन को कोई मूल्य नहीं, जो न मेरा हो सकता है, न मुझे अपना बना सकता है, उसके साथ मुझ-जैसी मानिनी गर्विणी स्त्री का कै दिन निर्वा होगा!

बस, अब विदा होती हूँ। बहन, क्षमा करना। मैंने तुम्हारा बहुत-सा अमूल्य समय ले लिया। मगर इतना समझ लो कि मैं तुम्हारी दया नहीं, सहानुभूति चाहती हूँ।

तुम्हारी,
पद्मा

10

काशी
5-1-26

बहन,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई उपन्यास पढ़कर उठी हूँ। अगर तुम उपन्यास लिखों, तो मुझे विश्वास है, उसकी धूम मच जाय। तुम आप उसकी नायिका बन जाना। तुम ऐसी-ऐसी बातें कहो सीख गयी, मुझे तो यही आश्चर्य है। उस बंगाली के साथ तुम अकेली कैसी बैठी बातें करती रही, मेरी तो समझ नहीं आता। मैं तो कभी न कर सकती। तुम विनोद को जलाना चाहती हो, उनके चित्त को अशांत करना चाहती हो। उस गरीब के साथ तुम कितना भयंकर अन्याय कर रही हो ! तुम यह क्यों समझती हो कि विनोद तुम्हारी उपेक्षा कर रहे हैं, अपने विचारों में इतने मग्न हैं कि उनकी रुचि ही नहीं रही। संभव है, वह कोई दार्शनिक तत्व खोज रहें हो, कोई थीसिस लिख रही हो, किसी पुस्तक की रचना कर रहे हों। कौन कह सकता है ? तुम जैसी रुपवती स्त्री पाकर यदि कोई मनुष्य चिन्तित रहे, तो समझ लो कि उसके दिल पर कोई बड़ा बोझ है। उनको तुम्हारी सहानुभूति की जरूरत है, तुम उनका बोझ हलका कर सकती हो। लेकिन तुम उल्टे उन्हीं को दोष देती हो। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम एक दिन क्यों विनोद से दिल खोलकर बातें नहीं कर लेती, संदेह को जितनी जल्द हो सकें, दिल से निकाल डालना चाहिए। संदेह वह चोट है, जिसका उपच जल्द न हो, तो नासूर पड़ जाता है और फिर अच्छा नहीं होता। क्यों दो-चार दिनों के लिए यहाँ नहीं चली आती ? तुम शायद कहो, तू ही क्यों नहीं चली आती। लेकिन मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, बिना सास-ससुर से पूछे कोई काम नहीं कर सकती। तुम्हें तो कोई बंधन नहीं है।

बहन, आजकल मेरा जीवन हर्ष और शोक का विचित्र मिश्रण हो रहा है। अकेली होती हूँ, तो रोती हूँ, आनन्द आ जाते हैं तो हँसती हूँ। जी चाहता है, वह हरदम मेरे सामने बैठे रहते। लेकिन रात के बारह बजे के पहले उनके दर्शन नहीं होते। एक दिन दोपहर को आ गये, तो सासजी ने ऐसा डौटा कि कोई बच्चे को क्या डौटेगा। मुझे ऐसा भय हो रहा है कि सासजी को मुझसे चिढ़ हैं। बहन, मैं उन्हें भरसक प्रसन्न रखने की चेष्टा करती हूँ। जो काम कभी न किये थे, वह उनके लिए करती हूँ, उनके स्नान के लिए पानी गर्म करती हूँ, उनकी पूजा के लिए चौकी बिछाती हूँ। वह स्नान कर लेती हैं, तो उनकी धोती छाँटती हूँ, वह लेटती हैं तो उनके पैर दबाती हूँ; जब वह सो जाती है तो उन्हें पंखा झलती हूँ। वह मेरी माता हैं, उन्हीं के गर्भ से वह रत्न उत्पन्न हुआ है जो मेरा प्राणधार है। मैं उनकी कुछ सेवा कर सकूँ, इससे बढ़कर मेरे लिए सौभाग्य की और क्या बात होगी। मैं केवल इतना ही चाहती हूँ कि वह मुझसे हँसकर बोले, मगर न जाने क्यों वह बात-बात पर मुझे कोसने दिया करती हैं। मैं जानती हूँ, दोष मेरा ही हैं। हाँ, मुझे मालूम नहीं, वह क्या हैं।

अगर मेरा यही अपराध है कि मैं अपनी दोनों नन्दों से रुपवती क्यों हूँ, पढ़ी-लिखी क्यों हूँ, आनन्द मुझे इतना क्यों चाहते हैं, तो बहन, यह मेरे बस की बात नहीं। मेरे प्रति सासजी को भ्रम होता होगा कि मैं ही आनन्द को भरमा रही हूँ। शायद वह पछताती है कि क्यों मुझे बहू बनाया ! उन्हे भय होता है कि कहीं मैं उनके बैठे को उनसे छीन न लूँ। दो-एक बार मुझे जादूगरनी कही चुकी हैं। दोनों ननदें अकारण ही मुझसे जलती रहती हैं। बड़ी ननदजी तो अभी कलोर हैं, उनका जलना मेरी समझ में नहीं आता। मैं उनकी जगह होती, तो अपनी भावज से कुछ सीखने की, कुछ पढ़ने की कोशिश करती, उनके चरण धो-धोकर पीती, पर इस छोकरी को मेरा अपमान करने ही में आनन्द आता है। मैं जानती हूँ, थोड़े दिनों में दोनों ननदें लज्जित होंगी। हाँ, अभी वे मुझसे बिचकती हैं। मैं अपनी तरफ से तो उन्हें अप्रसन्न होने को कोई अवसर नहीं देती।

मगर रुप को क्या करूँ। क्या जानती थी कि एक दिन इस रुप के कारण मैं अपराधिनी ठहरायी जाऊँगी। मैं सच कहती हूँ बहन, यहाँ मैंने सिंगार करना एक तरह से छोड़ ही दिया है। मैली-कुचैली बनी बेठी रहती हूँ। इस भय से कि कोई मेरे पढ़ने-लिखने पर नाक न सिकोड़े, पुस्तकों को हाथ नहीं लगाती। घर से पुस्तकों का एक गट्ठर बाँध लायी थी। उसमें कोई पुस्तकें बड़ी सुन्दर हैं। उन्हें पढ़ने के लिए बार-बार जी चाहता है, मगर छरती हूँ कि कोई ताना न दे बैठे। दोनों ननदें मुझे देखती रहती हैं कि यह क्या करती हैं, कैसे बैठती है, कैसे बोलती है, मानो दो-दो जासूस मेरे पीछे लगा दिए गए हों। इन दोनों महिलाओं को मेरी बदगोई में क्यों इतना मजा आता है, नहीं कह सकती। शायद आजकल उन्हे सिवा दूसरा काम ही नहीं। गुस्सा तो ऐसा आता है कि एक बार झिड़क दूँ लेकिन मन को समझाकर रोक लेती हूँ। यह दशा बहुत दिनों नहीं रहेगी। एक नए आदमी से कुछ हिचक होना स्वाभाविक ही है, विशेषकर जब वह नया आदमी शिक्षा और विचार व्यवहार में हमसे अलग हो। मुझी को अगर किसी फ्रेंच लेडी के साथ रहना पड़े, तो शायद मे भी उसकी हरएक बात को आलोचना और कुतूहल की दृष्टि से देखने लगूँ। यह काशीवासी लोग पूजा-पाठ बहुत करते हैं। सासजी तो रोज गंगा-स्नान करने जाती हैं। बड़ी ननद भी उनके साथ जाती है। मैंने कभी पूजा नहीं की। याद है, हम और तुम पूजा करने वालों को कितना बनाया करती थी। अगर मैं पूजा करने वालों का चरित्र कुछ उन्नत पाती, तो शायद अब तक मैं भी पूजा करती होती। लेकिन मुझे तो कभी ऐसा अनुभव प्राप्त नहीं हुआ, पूजा करने वालियाँ भी उसी तरह दूसरों की निन्दा करती हैं, उसी तरह आपस में लड़ती-झगड़ती हैं, जैसे वे जो कभी पूजा नहीं करतीं। खैर, अब मुझे धीरे-धीरे पूजा से श्रद्धा होती जा रही है। मेरे ददिया ससुरजी ने एक छोटा-सा ठाकुरद्वारा बनवा दिया था। वह मेरे घर के सामने ही हैं। मैं अक्सर सासजी के साथ वहाँ जाती हूँ और अब यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि उन विशाल मूर्तियों के दर्शन से मुझे अपने अतस्तल में एक ज्योति का अनुभव होता है। जितनी अश्रद्धा से मैं राम और कृष्ण के जीवन की आलोचना किया करती थी, वह बहुत कुछ मिट चुकी है।

लेकिन रुपवती होने का दण्ड यहीं तक बस नहीं है। ननदें अगर मेरे रुप को देखकर जलती हैं, तो यह स्वाभाविक है। दुःखी तो इस बात का है कि यह दण्ड मुझे उस तरफ से भी मिल रहा है, जिधर से इसकी कोई संभावना न होनी चाहिए—मेरे आनन्द बाबू भी मुझे इसका दण्ड दे रहे हैं। हाँ, उनकी दण्डनीति एक निराले ही ढंग की है। वह मेरे पास नित्य ही कोई-न-कोई सौगात लाते रहते हैं। वह जितनी देर मेरे पास रहते हैं। उनके मन में यह संदेह होता रहता है कि मुझे उनका रहना अच्छा नहीं लगता। वह समझते हैं कि मैं उनसे जो प्रेम करती हूँ, यह केवल दिखावा है, कोशल है। वह मेरे सामने कुछ ऐसे दबे-दबायें, सिमटे-सिमटायें रहते हैं कि मैं मारे लज्जा के मर जाती हूँ। उन्हें मुझसे कुछ कहते हुए ऐसा संकोच होता है, मानो वह कोई अनाधिकार चेष्टा कर रहे हों। जैसे मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए कोई आदमी उज्ज्वल वस्त्र पहनने वालों से दूर ही रहना चाहता है, वही दशा इनकी है। वह शायद समझते हैं कि किसी रुपवती स्त्री को रुपहीन पुरुष से प्रेम हो ही नहीं सकता। शायद वह दिल में पछताते हैं कि क्यों इससे विवाह किया। शायद उन्हें अपने ऊपर ग्लानि होती है। वह मुझे कभी रोते देख लेते हैं, तो समझते हैं। मैं अपने भाग्य को रों रही हूँ, कोई पत्र लिखते देखते हैं, तो समझते हैं, मैं उनकी रुपहीनता ही का रोना रो रही हूँ। क्या कहूँ बहन, यह सौन्दर्य मेरी जान का गाहक हो गया। आनन्द के मन से शंका को निकालने और उन्हें अपनी ओर से आश्वासन देने के लिए मुझे ऐसी-ऐसी बातें करनी पड़ती हैं, ऐसे-ऐसे आचरण करने पड़ते हैं, जिन पर मुझे घृणा होती है। अगर पहले से यह दशा जानती, तो ब्रह्मा से कहती कि मुझे कुरूपा ही बनाना। बड़े असमंजस में पड़ी हूँ! अगर सासजी की सेवा नहीं करती, बड़ी ननदजी का मन नहीं रखती, तो उनकी आँखों से गिरती हूँ। अगर आनन्द बाबू को निराश करती हूँ, तो कदाचित् मुझसे विरक्त ही हो जायँ। मैं तुमसे अपने हृदय की बात कहती हूँ। बहन, तुमसे क्या पर्दा रखना है; मुझे आनन्द बाबू से उतना प्रेम है, जो किसी स्त्री को पुरुष

से हो सकता है, उनकी जगह अब अगर इन्द्र भी सामने आ जायँ, तो मैं उनकी ओर आँख उठाकर न देखूँ। मगर उन्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ। मैं देखती हूँ, वह किसी न किसी बहाने से बार-बार घर में आते हैं और दबी हुई, ललचाई हुई नजरों से मेरे कमरे के द्वार की ओर देखते हैं, तो जी चाहता है, जाकर उनका हाथ पकड़ लूँ और अपने कमरे में खींच ले आऊँ। मगर एक तो डर होता है कि किसी की आँख पड़ गयी, तो छाती पीटने लगेगी, और इससे भी बड़ा डर यह कि कहीं आनन्द इसे भी कौशल ही न समझ बैठे। अभी उनकी आमदनी बहुमूल्य है, लेकिन दो-चार रुपये सौगातों में रोज उड़ाते हैं। अगर प्रेमोपहार-स्वरूप वह धूँ के कोई चीज दें, तो मैं उसे आँखों से लगाऊँ, लेकिन वह कर-स्वरूप देते हैं, मानो उन्हें ईश्वर ने यह दण्ड दिया है। क्या करूँ, अब मुझे भी प्रेम का स्वाँग करना पड़ेगा। प्रेम-प्रदर्शन से मुझे चिढ़ है। तुम्हें याद होगा, मैंने एक बार कहा था कि प्रेम या तो भीतर ही रहेगा या बाहर ही रहेगा। समान रूप से वह भीतर और बाहर दोनों जगह नहीं रह सकता। स्वाँग वेश्याओं के लिए है, कुलवंती तो प्रेम को हृदय ही में संचित रखती हैं।

बहन, पत्र बहुत लम्बा हो गया, तुम पढ़ते-पढ़ते ऊब गयी होगी। मैं भी लिखते-लिखते थक गयी। अब शेष बातें कल लिखूँगी। परसों यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचेगा।

X X X

बहन, क्षमा करना; कल पत्र लिखने का अवसर नहीं मिला। रात एक ऐसी बात हो गयी, जिससे चित्त अशान्त उठा। बड़ी मुश्किलों से यह थोड़ा-सा समय निकाल सकी हूँ। मैंने अभी तक आनन्द से घर के किसी प्राणी की शिकायत नहीं की थी। अगर सासजी ने कोई बात की दी या नन्दजी ने कोई ताना दे दिया; तो इसे उनके कानों तक क्यों पहुँचाऊँ। इसके सिवा कि गृह-कलह उत्पन्न हो, इससे और क्या हाथ आयेगा। इन्हीं जरा-जरा सी बातों को न पेट में डालने से घर बिगड़ते हैं। आपस में वैमनस्य बढ़ता है। मगर संयोग की बात, कल अनायास ही मेरे मुँह से एक बात निकल गयी जिसके लिये मैं अब भी अपने को कोस रही हूँ, और ईश्वर से मनाती हूँ कि वह आगे न बढ़े। बात यह हुई कि कल आनन्द बाबू बहुत देर करके मेरे पास आये। मैं उनके इन्तार में बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी। सहसा सासजी ने आकर पूछा—क्या अभी तक बिजली जल रही है? क्या वह रात-भर न आयें, तो तुम रात-भर बिजली जलाती रहोगी?

मैंने उसी वक्त बत्ती ठण्डी कर दी। आनन्द बाबू थोड़ी ही देर में आयें, तो कमरा अँधेरा पड़ा था न-जाने उस वक्त मेरी मति कितनी मन्द हो गयी थी। अगर मैंने उनकी आहट पाते ही बत्ती जला दी होती, तो कुछ न होता, मगर मैं अँधेरे में पड़ी रहूँ। उन्होंने पूछा—क्या सो गयीं? यह अँधेरा क्यों पड़ा हुआ है?

हाय! इस वक्त भी यदि मैंने कह दिया होता कि मैंने अभी बत्ती गुल कर दी तो बात बन जाती। मगर मेरे मुँह से निकला—‘सासजी का हुक्म हुआ कि बत्ती गुल कर दो, गुल कर दी। तुम रात-भर न आओ, तो क्या रात-भर बत्ती जलती रहें?’

‘तो अब तो जला दो। मैं रोशनी के सामने से आ रहा हूँ। मुझे तो कुछ सूझता ही नहीं।’

‘मैंने अब बटन को हाथ से छूने की कसम खा ली है। जब जरूरत पड़ेगी; तो मोम की बत्ती जला लिया करूँगी। कौन मुफ्त में घुड़कियाँ सहें।’

आनन्द ने बिजली का बटन दबाते हुए कहा—‘और मैंने कसम खा ली कि रात-भर बत्ती जलेगी, चाहे किसी को बुरा लगे या भला। सब कुछ देखता हूँ, अन्धा नहीं हूँ। दूसरी बहू आकर इतनी सेवा करेगी तो देखूँगा; तुम नसीब की खोटी हो कि ऐसे प्राणियों के पाले पड़ी। किसी दूसरी सास की तुम इतनी खिदमत करतीं, तो वह तुम्हें पान की तरह फेरती, तुम्हें हाथों पर लिए रहती, मगर यहाँ चाहे प्राण ही दे दे, किसी के मुँह से सीधी बात न निकलेगी।’

मुझे अपनी भूल साफ मालूम हो गयी। उनका क्रोध शान्त करने के इरादे से बोली—गलती भी तो मेरी ही थी कि व्यर्थ आधी रात तक बत्ती जलायें बैठी रही। अम्माजी ने गुल करने को कहा, तो क्या बुरा कहा ? मुझे समझाना, अच्छी सीख देना, उनका धर्म है। मेरा धर्म यही है कि यथाशक्ति उनकी सेवा करूँ और उनकी शिक्षा को गिरह बाँधूँ।

आनन्द एक क्षण द्वार की ओर ताकते रहे। फिर बोले—मुझे मालूम हो रहा है कि इस घर में मेरा अब गुजर न होगा। तुम नहीं कहतीं, मगर मैं सब कुछ सुनता रहता हूँ। सब समझता हूँ। तुम्हें मेरे पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। मैं कल अम्माजी से साफ-साफ कह दूँगा—‘अगर आपका यही व्यवहार है, तो आप अपना घर लीजिए, मैं अपने लिए कोई दूसरी राह निकाल लूँगा।’

मैंने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—नहीं-नहीं। कहीं ऐसा गजब भी न करना। मेरे मुँह में आग लगे, कहाँ से कहाँ बत्ती का जिक्र कर बैठी। मैं तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ, मुझे न सासजी से कोई

शिकायत है, न नन्दजी से, दोनों मुझसे बड़ी हैं, मेरी माता के तुल्य हैं। अगर एक बात कड़ी भी कह दें, तो मुझे सब्र करना चाहिए! तुम उनसे कुछ न कहना नहीं तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

आनन्द ने रुँधे कंठ से कहा—तुम्हारी-जैसी बहू पाकर भी अम्माजी का कलेजा नहीं पसीजता, अब क्या कोई स्वर्ग की देवी घर में आती? तुम डरो मत, मैं ख्वाहमख्वाह लड़ूँगा नहीं। मगर हाँ, इतना अवश्य कह दूँगा कि जरा अपने मिजाज को काबू में रखें। आज अगर मैं दो-चार सौ रुपये घर में लाता होता, तो कोई चूँ न करता। कुछ कमाकर नहीं लाता, यह उसी का दण्ड है। सच पूछों, तो मुझे विवाह करने का कोई अधिकार ही न था। मुझ-जैसे मन्द बुद्धि को, जो कौड़ी कमा नहीं सकता, उसे अपने साथ किसी महिला को डुबाने का क्या हक था! बहनजी को न-जाने क्या सूझी है कि तुम्हारे पीछे पड़ी रहती हैं। ससुराल का सफाया कर दिया, अब यहाँ भी आग लगाने पर तुली हुई है। बस, पिताजी का लिहाज करता हूँ, नहीं इन्हें तो एक दिन में ठीक कर देता।

बहन, उस वक्त तो मैंने किसी तरह उन्हीं शान्त किया, पर नहीं कह सकती कि कब वह उबल पड़े। मेरे लिए वह सारी दुनियां से लड़ाई मोल ले लेंगे। मैं जिन परिस्थितियों में हूँ, उनका तुम अनुमान कर सकती हो। मुझ पर कितनी ही मार पड़े मुझे रोना न चाहिए, जबान तक न हिलाना चाहिए। मैं रोयी और घर तबाह हुआ। आनन्द फिर कुछ न सुनेगे, कुछ न देखेंगे। कदाचित इस उपाय से वह अपने विचार में मेरे हृदय में अपने प्रेम का अंकुर जमाना चाहते हो। आज मुझे मालूम हुआ कि यह कितने क्रोधी हैं। अगर मैंने जरा-सा पुचार दे दिया होता, तो रात ही को वह सासजी की खोपड़ी पर जा पहुँचते। कितनी युवतियाँ इसी अधिकार के गर्व में अपने को भूल जाती हैं। मैं तो बहन, ईश्वर ने चाहा तो कभी न भूलूँगी। मुझे इस बात का डर नहीं है कि आनन्द अलग घर बना लेंगे, तो गुजर कैसे होगा। मैं उनके साथ सब-कुछ झेल सकती हूँ। लेकिन घर तो तबाह हो जायेगा।

बस, प्यारी पद्मा, आज इतना ही। पत्र का जवाब जल्द देना।

तुम्हारी,
चन्दा

11

दिल्ली
5-2-26

प्यारी चन्दा,

क्या लिखूँ, मुझ पर तो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा! हाय, वह चले गए। मेरे विनोद का तीन दिन से पता नहीं—निर्मोही चला गया, मुझे छोड़कर बिना कुछ कहे-सुने चला गया—अभी तक रोयी नहीं। जो लोग पूछने आते हैं, उनसे बहाना कर देती हूँ कि—दो-चार दिन में आयेंगे, एक काम से काशी गये हैं। मगर जब रोऊँगी तो यह शरीर उन आँसुओं में डूब जायेगा। प्राण उसी में विसर्जित हो जायँगे। छलियें ने मुझसे कुछ भी नहीं कहा, रोज की तरह उठा, भोजन किया, विद्यालय गया; नियत समय पर लौटा, रोज की तरह मुसकराकर मेरे पास आया। हम दोनों ने जलपान किया, फिर वह दैनिक पत्र पढ़ने लगा, मैं टेनिस खेलने चली गयी। इधर कुछ दिनों से उन्हें टेनिस से कुछ प्रेम न रहा था, मैं अकेली ही जाती। लौटी, तो रोज ही की तरह उन्हें बरामदे में टहलते और सिगार पीते देखा। मुझे देखते ही वह रोज की तरह मेरा ओवरकोट लाये और मेरे ऊपर डाल दिया। बरामदे से नीचे उतरकर खुले मैदान में हम टहलने लगे। मगर वह ज्यादा बोले नहीं, किसी विचार में डूबे रहें। जब ओस अधिक पड़ने लगी, तो हम दोनों फिर अन्दर चले आये। उसी वक्त वह बंगाली महिला आ गयी, जिनसे मैंने वीणा सीखना शुरू किया है। विनोद भी मेरे साथ ही बैठे रहे। संगीत उन्हें कितना प्रिय है, यह तुम्हें लिख चुकी हूँ। कोई नयी बात नहीं हुई। महिला के चले जाने के बाद हमने साथ-ही-साथ भोजन किया फिर मैं अपने कमरे में लेटने आयी। वह रोज की तरह अपने कमरे में लिखने-पढ़ने चले गये! मैं जल्द ही सो गयी, लेकिन बेखबर पड़ी रहूँ, उनकी आहट पाते ही आप-ही-आप आँखें खुल गयीं। मैंने देखा, वह अपना हरा शाल ओढ़े खड़े थे। मैंने उनकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा—आओ, खड़े क्यों हो, और फिर सो गयी। बस, प्यारी बहन! वही विनोद के अंतिम दर्शन थे। कह नहीं सकती, वह पलंग पर लेटे या नहीं। इन आँखों में न-जाने कौन-सी महानिद्रा समायी हुई थी। प्रातः उठी तो विनोद को न पाया। मैं उनसे पहले उठती हूँ, वह पड़े सोते रहते हैं। पर आज वह पलंग पर न थे। शाल भी न था। मैंने समझा, शायद अपने कमरे में चले गये हों। स्नान-गृह में चली गयी। आध घंटे में बाहर आयी, फिर भी वह न

दिखायी दिये। उनके कमरे में गयी, वहाँ भी न थी। आश्चर्य हुआ कि इतने सबरे कहाँ चले गये। सहसा खूँटी पर पड़ी—कपड़े ने थे। किसी से मिलने चले गये? या स्नान के पहले सैर करने की ठानी। कम-से-कम मुझसे कह तो देते, संशय में तो जी न पड़ता। क्रोध आया—मुझे लौंडी समझते हैं...

हाजिरी का समय आया। बैरा मेज पर चाय रख गया। विनोद के इंतजार में चाय ठंडी हो गयी। मैं बार-बार झुँझालती थी, कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती, ठान ली थी कि आज ज्योही महाशय आयेंगे, ऐसा लताड़ूंगी कि वह भी याद करेंगे। कह दूँगी, आप अपना घर लीजिए, आपको अपना घर मुबारक रहें, मैं अपने घर चली जाऊँगी। इस तरह तो रोटियाँ वहाँ भी मिल जायेंगी। जाड़े के नौ बजने में देर ही क्या लगती है। विनोद का अभी पता नहीं। झल्लायी हुई कमरे में गयी कि एक पत्र लिखकर मेज पर रख दूँ—साफ-साफ लिख दूँ कि इस तरह अगर रहना है, तो आप रहिए मे नहीं रह सकती। मैं जितना ही तरह देती जाती हूँ, उतना ही तुम मुझे चिढ़ाते हों। बहन, उस क्रोध में सन्तप्त भावों की नदी-सी मन में उमड़ रही थी। अगर लिखने बैठती, तो पन्नों-के-पन्ने लिख डालती। लेकिन आह! मैं तो भाग जान की धमकी ही दे रही थी, वह पहले ही भाग चुके थे। ज्योंही मेज पर बैठी, मुझे पैडी में उनका एक पत्र मिला। मैंने तुरन्त उस पत्र को निकाल लिया और सरसरी निगाह से पढ़ा—मेरे हाथ काँपने लगे, पाँव थरथराने लगे, जान पड़ा कमरा हिल रहा है। एक ठण्डी, लम्बी, हृदय को चीरने वाली आह खींचकर मैं कोच पर गिर पड़ी। पत्र यह था—

‘प्रिये! नौ महीने हुए, जब मुझे पहली बार तुम्हारे दर्शनों का सौभाग्य हुआ था। उस वक्त मैंने अपने को धन्य माना था। आज तुमसे वियोग का दुर्भाग्य हो रहा है फिर भी मैं अपने को धन्य मानता हूँ। मुझे जाने का लोशमात्र भी दुःख नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूँ तुम खुश होगी। जब तुम मेरे साथ सुखी नहीं रह सकती, तो मैं तबरदस्ती क्यों पड़ा रहूँ। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि हम और तुम अलग हो जायँ। मैं जैसा हूँ, वैसा ही रहूँगा। तुम भी जैसी हो, वैसी ही रहोगी। फिर सुखी जीवन की सम्भावना कहाँ? मैं विवाह को आत्म-विकास का पूरी का साधन समझता हूँ। स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का अगर कोई अर्थ है, तो यही है, वर्ना मैं विवाह की कोई जरूरत नहीं समझता। मानव सन्तान बिना विवाह के भी जीवित रहेगी और शायद इससे अच्छे रूप में। वासना भी बिना विवाह के पूरी हो सकती है, घर के प्रबन्ध के लिए विवाह करने की कोई जरूरत नहीं। जीविका एक बहुत ही गौण प्रश्न है। जिसे ईश्वर ने दो हाथ दिये हैं वह कभी भूखा नहीं रह सकता। विवाह का उद्देश्य यही और केवल यही हैं कि स्त्री और पुरुष एक-दूसरे की आत्मोन्नति में सहायक हों। जहाँ अनुराग हों, वहाँ विवाह है और अनुराग ही आत्मोन्नति का मुख्य साधन है। जब अनुराग न हो, तो विवाह भी न रहा। अनुराग के बिना विवाह का अर्थ नहीं।

जिस वक्त मैंने तुम्हें पहली बार देखा था, तुम मुझे अनुराग की सजीव मूर्ति-सी नजर आयी थीं। तुममें सौंदर्य था, शिक्षा थी, प्रेम था, स्फूर्ति थी, उमंग थी। मैं मुग्ध हो गया। उस वक्त मेरी अन्धी आँखों को यह न सूझा कि जहाँ तुममें इतने गुण थे, वहाँ चंचलता भी थी, जो इन सब गुणों पर पर्दा डाल देती। तुम चंचल हो, गजब की चंचल, जो उस वक्त मुझे न सूझा था। तुम ठीक वैसी ही हो, जैसी तुम्हारी दूसरी बहनें होती हैं, न कम, न ज्यादा। मैंने तुमको स्वाधीन बनाना चाहा था, क्योंकि मेरी समझ में अपनी पूरी ऊँचाई तक पहुँचने के लिए इसी की सबसे अधिक जरूरत है। संसार भर में पुरुषों के विरुद्ध क्यों इतना शोर मचा हुआ है? इसीलिए कि हमने औरतों की आजादी छीन ली है और उन्हें अपनी इच्छाओं की लौंडी बना रखा है। मैंने तुम्हें स्वाधीन कर दिया। मैं तुम्हारे ऊपर अपना कोई अधिकार नहीं मानता। तुम अपनी स्वामिनी हो, मुझे कोई चिन्ता न थी। अब मुझे मालूम हो रहा है, तुम स्वेच्छा से नहीं, संकोच या भय या बन्धन के कारण रहती हो। दो ही चार दिन पहले मुझ पर यह बात खुली है। इसीलिए अब मैं तुम्हारे सुख के मार्ग में बाधा नहीं डालना चाहता। मैं कहीं भागकर नहीं जा रहा हूँ। केवल तुम्हारे रास्ते से हटा जा रहा हूँ, और इतनी दूर हटा जा रहा हूँ, कि तुम्हें मेरी ओर से पूरी निश्चिन्तता हो जाय। अगर मेरे बगैर तुम्हारा जीवन अधिक सुन्दर हो सकता है, तो तुम्हें जबरन नहीं रखना चाहता। अगर मैं समझता कि तुम मेरे सुख के मार्ग बाधक हो रही हों, तो मैंने तुमसे साफ-साफ कह दिया होता। मैं धैर्य और नीति का ढोंग नहीं मानता, केवल आत्माका संतोष चाहता हूँ—अपने लिए भी, तुम्हारे लिए भी। जीवन का तत्व यही है; मूल्य यही है। मैंने डेस्क में अपने विभाग के अध्यक्ष के नाम एक पत्र लिखकर रख दिया है। वह उनके पास भेज देना। रुपये की कोई चिन्ता मत करना। मेरे एकाउंट में अभी इतने रुपये हैं, जो तुम्हारे लिए कई महीने को काफी हैं, और उस वक्त तक मिलते रहेंगे, जब तक तुम लेना चाहोगी। मैं समझता हूँ, मैंने अपना भाव स्पष्ट कर दिया है। इससे अधिक स्पष्ट मैं नहीं करना चाहता। जिस वक्त तुम्हारी इच्छा मुझसे मिलने की हो, बैंक से मेरा पता पूछ लेना। मगर दो-चार दिन के बाद। घबराने की कोई बात नहीं। मैं स्त्री को अबला या अपंग

नहीं समझता। वह अपनी रक्षा स्वयं कर सकती हैं—अगर करना चाहें। अगर अब या अब से दो-चार महीना, दो-चार साल पीछे तुम्हें मेरी याद आए और तुम समझों कि मेरे साथ सुखी रह सकती हो, तो मुझे केवल दो शब्द लिखकर डाल देना, मैं तुरन्त आ जाऊँगा, क्योंकि मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। तुम्हारे साथ मेरे जीवन के जितने के जितने दिन कटे हैं, वह मेरे लिए स्वर्ग-स्वप्न के दिन हैं। जब तक जीऊँगी, इस जीवन की आनन्द-स्मृतियों को हृदय में संचित रखूँगा। आह! इतनी देर तक मन को रोके रहने के बाद आँखों से एक बूँद आँसू गिर ही पड़ा। क्षमा करना, मैंने तुम्हें ‘चंचल’ कहा है। अचंचल कौन है? जानता हूँ कि तुमने मुझे अपने हृदय से निकालकर फेंक दिया है, फिर भी इस एक घंटे में कितनी बार तुमको देख-देखकर लौट आया हूँ! मगर इन बातों को लिखकर मैं तुम्हारी दया को उकसाना नहीं चाहता। तुमने वही किया, जिसका मेरी नीति में तुमको अधिकार था, है और रहेगा। मैं विवाह में आत्मा को सर्वोपरी रखना चाहता हूँ। स्त्री और पुरुष में मैं वही प्रेम चाहता हूँ, जो दो स्वाधीन व्यक्तियों में होता है। वह प्रेम नहीं जिसका आधार पराधीनता है।

बस, अब और कुछ न लिखूँगा। तुमको एक चेतावनी देने की इच्छा हो रही है पर दूँगा नहीं; क्योंकि तुम अपना भला और बुरा खुद समझ सकती हो। तुमने सलाह देने का हक मुझसे छीन लिया है। फिर भी इतना कहे बगैर नहीं रहा जाता कि संसार में प्रेम का स्वाँग भरने वाले शोहदों की कमी नहीं है, उनसे बचकर रहना। ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम जहाँ रहो, आनन्द से रहो। अगर कभी तुम्हें मेरी जरूरत पड़े, तो याद करना। तुम्हारी एक तस्वीर का अपहरण किये जाता हूँ। क्षमा करना, क्या मेरा इतना अधिकार भी नहीं? हाय! जी चाहता है, एक बार फिर देख आऊँ, मगर नहीं आऊँगा।’

—तुम्हारा ठुकराया हुआ,
विनोद

बहन, यह पत्र पढ़कर मेरे चित्त की जो दशा हुई, उसका तुम अनुमान कर सकती हो। रोयी तो नहीं; पर दिल बैठा जाता था। बार-बार जी चाहता था कि विष खाकर सो रहूँ। दस बजने में अब थोड़ी ही देर थी। मैं तुरन्त विद्यालय गयी और दर्शन-विभाग के अध्यक्ष को विनोद का पत्र पढ़कर बोले—आपको मालूम है, वह कहाँ गये और कब तक आयेंगे? इसमें तो केवल एक मास की छुट्टी माँगी गयी है। मैंने बहाना किया—वह एक आवश्यक कार्य से काशी गये हैं। और निराश होकर लौट आयी। मेरी अन्तरात्मा संहस्रों जिहवा बनकर मुझे धिक्कार रही थी। कमरे में उनकी तस्वीर के सामने घुटने टेककर मैंने जितने पश्चाताप-पूर्ण शब्दों में क्षमा माँगी है, वह अगर किसी तरह उनके कानों तक पहुँच सकती, तो उन्हें मालूम होता कि उन्हें मेरी ओर से कितना भ्रम हुआ! तब से अब तक मैंने कुछ भोजन नहीं किया और न एक मिनट सोयी। विनोद मेरी क्षुधा और निद्रा भी अपने साथ लेते गये और शायद इसी तरह दस-पाँच दिन उनकी खबर न मिली, तो प्राण भी चले जायेंगे। आज मैं बैंक तर्क गयी थी, यह पूछने कि हिम्मत न पड़ी कि विनोद का कोई पत्र आया। वह सब क्या सोचते कि यह उनकी पत्नी होकर हमसे पूछने आयी हैं!

बहन, अगर विनोद न आये, तो क्या होगा? मैं समझती थी, वह मेरी तरफ से उदासीन हैं, मेरी परवा नहीं करते, मुझसे अपने दिल की बातें छिपाते हैं, उन्हें शायद मैं भारी हो गयी हूँ। अब मालूम हुआ, मैं कैसे भयंकर-भ्रम में पड़ी हुई थी। उनका मन इतना कोमल है, यह मैं जानती, तो उस दिन क्यों भुवन को मुँह लगाती? मैं उस अभागे का मुँह तक न देखती। इस वक्त जो उसे देख पाऊँ, तो शायद गोली मार दूँ। जरा तुम विनोद के पत्र को फिर पढ़ो, बहन—आप मुझे स्वाधीन बनाने चले थे। अगर स्वाधीन बनाते थे, तो भुवन से जरा देर मेरा बातचीत कर लेना क्यों इतना अखरा? मुझे उनकी अविचलित शांति से चिढ़ होती थी। वास्तव में उनके हृदय में इस रात-सी बात ने जितनी अशांति पैदा कर दी, शायद मुझमें न कर सकती। मैं किसी रमणी से उनकी रुचि देखकर शायद मुँह फुला लेती, ताने देती, खुद रोती, उन्हें रुलाती; पर इतनी जल्द भाग न जाती। मर्दों का घर छोड़कर भागना तो आज तक नहीं सुना, औरतें ही घर छोड़कर मैके भागती हैं, या कहीं डूबने जाती हैं, या आत्महत्या करती हैं। पुरुष निर्द्वन्द्व बैठे मूँछों पर ताव देते हैं। मगर यहाँ उल्टी गंगा बह रही है—पुरुष ही भाग खड़ा हुआ! इस अशांति की थाह कौन लगा सकता है? इस प्रेम की गहराई को कौन समझ सकता है? मैं तो अगर इस वक्त विनोद के चरणों पर पड़े-पड़े मर जाऊँ तो समझूँ, मुझे स्वर्ग मिल गया। बस, इसके सिवा मुझे अब और कोई इच्छा नहीं है। इस अगाध-प्रेम ने मुझे तृप्त कर दिया। विनोद मुझसे भागे तो, लेकिन भाग न सके। वह मेरे हृदय से, मेरी धारणा से, इतने निकट कभी न थे। मैं तो अब भी उन्हें अपने सामने बैठा देख रही हूँ। क्या मेरे सामने फिलासफर बनने चले थे? कहाँ गयी आपकी वह दार्शनिक गंभीरता? यों अपने को धोखा देते हो? यों अपनी आत्मा को कुचलते हो? अबकी तो

तुम भागे, लेकिन फिर भागना तो देखूँगी। मैं न जानती थी कि तुम ऐसे चतुर बहुरूपिये हो। अब मैंने समझा, और शायद तुम्हारी दार्शनिक गंभीरता को भी समझ में आया होगा कि प्रेम जितना ही सच्चा जितना ही हार्दिक होता है, उतना ही कोमल होता है वह वपत्ति के उन्मत्त सागर में थपेड़ खा सकता है, पर अवहेलना की एक चोट भी नहीं सह सकता। बहिन, बात विचित्र है, पर है सच्ची, मैं इस समय अपने अन्तस्तल में जितनी उमंग, जितने आनन्द का अनुभव कर रही हूँ, याद नहीं आता कि विनोद के हृदय से लिपटकर भी कभी पाया हो। तब पर्दा बीच में था, अब कोई पर्दा बीच में नहीं रहा। मैं उनको प्रचलित प्रेम व्यापार की कसौटी पर कसना चाहती थी। यह फैशन हो गया कि पुरुष घर में आये, तो स्त्री के वास्ते कोई तोहफा लाये, पुरुष रात-दिन स्त्री के लिए गहने बनवाने, कपड़े सिलवाने, बेल, फीते, लेस खरीदने में मस्त रहे, फिर स्त्री को उससे कोई शिकायत नहीं। वह आदर्श-पति है, उसके प्रेम में किसे संदेह हो सकता है? लेकिन उसकी प्रेयसी की मृत्यु के तीसरे महीने वह फिर नया विवाह रचाता है। स्त्री के साथ अपने प्रेम को भी चिता में जला आता है। फिर वही स्वाँग इस नयी प्रेयसी से होने लगते हैं, फिर वही लीला शुरू हो जाती है। मैंने यही प्रेम देखा था और इसी कसौटी पर विनोद कस रही थी। कितनी मन्दबुद्धि हूँ ! छिछोरेपन को प्रेम समझे बैठी थी। कितनी स्त्रियाँ जानती हैं कि अधिकांश ऐसे ही गहने, कपड़े और हँसने-बोलने में मस्त रहने वाले जीव लम्पट होते हैं। अपनी लम्पटता को छिपाने के लिए वे यह स्वाँग भरते रहते हैं। कुत्ते को चुप रखने के लिए उसके सामने हड्डी के टुकड़े फेंक देते हैं। बेचारी भोली-भाली उसे अपना सर्वस्व देकर खिलौने पाती है और उन्हीं में मग्न रहती है। मैं विनोद को उसी कौटे पर तौल रही थी—हीरे को साग के तराजू पर रख देती थी। मैं जानती हूँ, मेरा दृढ़ विश्वास और वह अटल है कि विनोद की दृष्टि कभी किसी पर स्त्री पर नहीं पड़ सकती। उनके लिए मैं हूँ, अकेली मैं हूँ, अच्छी हूँ या बुरी हूँ, जो कुछ हूँ, मैं हूँ। बहन, मेरी तो मारे गर्व और आनन्द से छाती फूल उठी है। इतना बड़ा साम्राज्य—इतना अचल, इतना स्वरक्षित, किसी हृदयेश्वरी को नसीब हुआ है ! मुझे तो सन्देह है। और मैं इस पर भी असन्तुष्ट थी, यह न जानती थी कि ऊपर बबूले तैरते हैं, मोती समुद्र की तह में मिलते हैं। हाय! मेरी इस मूर्खता के कारण, मेरे प्यारे विनोद को कितनी मानसिक वेदना हो रही है। मेरे जीवन-धन, मेरे जीवन-सर्वस्व न जाने कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे, न जाने किस दशा में होंगे, न-जाने मेरे प्रति उनके मन में कैसी-कैसी शंकाएँ उठ रही होंगी—प्यारे ! तुमने मेरे साथ कुछ कम अन्याय नहीं किया। अगर मैंने तुम्हें निष्ठुर समझा, तो तुमने तो मुझे उससे कहीं बदतर समझा—क्या अब भी पेट नहीं भरा? तुमने मुझे इतनी गयी-गुजरी समझ लिया कि इस अभागे भुवन में ऐसे-ऐसे एक लाख भुवनों को तुम्हारे चरणों पर भेंट कर सकती हूँ। मुझे तो संसार में ऐसा कोई प्राणी ही नहीं नजर आता, जिस पर मेरी निगाह उठ सके। नहीं, तुम मुझे इतनी नीच, इतनी कलंकिनी नहीं समझ सकते—शायद वह नौबत आती, तो तुम और मैं दो में से एक भी इस संसार में न होता।

बहन, मैंने विनोद को बुलाने की, खींच लाने की, पकड़ मँगवाने की एक तरकीब सोची है। क्या कहूँ, पहले ही दिन यह तरकीब क्यों न सूझी ? विनोद को दैनिक पत्र पढ़े बिना चैन नहीं आता और वह कौन-सा पत्र पढ़ते हैं, मैं यह भी जानती हूँ। कल के पत्र में यह खबर छपेगी—‘पद्मा मर रही है’, और परसों विनोद यहाँ होंगे—रुक ही नहीं सकते। फिर खूब झगड़े होंगे, खूब लड़ाइयाँ होंगी।

अब कुछ तुम्हारे विषय में। क्या तुम्हारी बुढ़िया सचमुच तुमसे इसलिए जलती है कि तुम सुन्दर हो, शिक्षित हो ? खूब ! और तुम्हारे आनन्द भी विचित्र जीव मालूम होते हैं। मैंने सुना है कि पुरुष कितना ही कुरूप हो, उसकी निगाह अप्सराओं ही पर जाकर पड़ती है। फिर आनन्द बाबू तुमसे क्यों बिचकते हैं? जरा गौरसे देखना, कहीं राधा और कृष्ण के बीच में कोई कुब्जा तो नहीं? अगर सासजी यों ही नाक में दम करती रहें, तो मैं तो यही सलाह दूँगी कि अपनी झोपड़ी अलग बना लो। मगर जानती हूँ, तुम मेरी यह सलाह न मानोगी, किसी तरह न मानोगी। इस सहिष्णुता के लिए मैं तुम्हें बधाई देती हूँ। पत्र जल्द लिखना। मगर शायद तुम्हारा पत्र आने के पहले ही मेरा दूसरा पत्र पहुँचे।

तुम्हारी,
पद्मा

प्रिय पद्मा,

कई दिन तक तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करने के बाद आज यह खत लिख रही हूँ। मैं अब भी आशा कर रही हूँ कि विनोद बाबू घर आ गये होंगे, मगर अभी वह न आये हों और तुम रो-रोकर अपनी आँखें फोड़े डालती हो, तो मुझे जरा भी दुःख न होगा! तुमने उनके साथ जो अन्याय किया है, उसका यही दण्ड है। मुझे तुमसे जरा भी सहानुभूति नहीं है। तुम गृहिणी होकर वह कुटिल क्रीड़ा करने चली थीं, जो प्रेम का सौदा करने वाली स्त्रियों को ही शोभा देती है। मैं तो जब खुश होती कि विनोद ने तुम्हारा गला घोट दिया होता और भुवन के कुसंस्कारों को सदा के लिए शांत कर देते। तुम चाहे मुझसे रूठ ही क्यों न जाओ पर मैं इतना जरूर कहूँगी कि तुम विनोद के योग्य नहीं हो। शायद तुमने अँग्रेजी किताबों में पढ़ा होगा कि स्त्रियाँ छैले रसिकों पर ही जान देती हैं और यह पढ़कर तुम्हारा सिर फिर गया है। तुम्हें नित्य कोई सनसनी चाहिए, अन्यथा तुम्हारा जीवन शुष्क हो जायेगा। तुम भारत की पतिपरायणा रमणी नहीं, यूरोप की आमोदप्रिय युवती हो। मुझे तुम्हारे ऊपर दया आती है। तुमने अब तक रूप को ही आकर्षण का मूल समझ रखा है। रूप में आकर्षण है, मानती हूँ। लेकिन उस आकर्षण का नाम मोह है, वह स्थायी नहीं, केवल धोखे की टट्टी है। प्रेम का एक ही मूल मंत्र है, और वह है सेवा। यह मत समझो कि जो पुरुष तुम्हारे ऊपर भ्रमर की भाँति मँडराया करता है, वह तुमसे प्रेम करता है। उसकी यह रूपासक्ति बहुत दिनों तक नहीं रहेगी। प्रेम का अंकुर रूप में है, पर उसको पल्लवित और पुष्पित करना सेवा ही का काम है। मुझे विश्वास नहीं आता कि विनोद को बाहर से थके-माँदे, पसीने में तर देखकर तुमने कभी पंखा झला होगा। शायद टेबुल-फैन लगाने की बात भी न सूझी होगी। सच कहना, मेरा अनुमान ठीक या नहीं? बतलाओ, तुमने की उनके पैरों में चंपी की है? कभी उनके सिर में तेज डाला है? तुम कहोगी, यह खिदमतगारों का काम है, लेडियाँ यह मरज नहीं पालतीं। तुमने उस आनन्द का अनुभव ही नहीं किया। तुम विनोद को अपने अधिकार में रखना चाहती हो, मगर उसका साधन नहीं करतीं। विलासनी मनोरंजन कर सकती है, चिरसंगिनी नहीं बन सकती। पुरुष के गले से लिपटी हुई भी वह उससे कोसों दूर रहती है। मानती हूँ, रूपमोह मनुष्य का स्वभाव है, लेकिन रूप से हृदय की प्यास नहीं बुझती, आत्मा की तृप्ति नहीं होती। सेवाभाव रखने वाली रूप-विहीन स्त्री का पति किसी स्त्री के रूप-जाल में फँस जाय, तो बहुत जल्द निकल भागता है, सेवा का चस्का पाया हुआ मन केवल नखरों और चोचलों पर लट्टू नहीं होता। मगर मैं तो तुम्हें उपदेश करने बैठ गयी, हालाँकि तुम मुझसे दो-चार महीने बड़ी होगी। क्षमा करो बहन, यह उपदेश नहीं है। ये बातें हम-तुम सभी जानते हैं, केवल कभी-कभी भूल जाते हैं। मैंने केवल तुम्हें याद दिला दिया है। उपदेश मे हृदय नहीं होता, लेकिन मेरा उपदेश मेरे मन की वह व्यथा है, जो तुम्हारी इस नयी विपत्ति से जागरित हुई है।

अच्छा, अब मेरी रामकहानी सुनो। इस एक महीने में यहाँ बड़ी-बड़ी घटनाएँ हो गयीं। यह तो मैं पहले ही लिख चुकी हूँ कि आनन्द बाबू और अम्माँजी में कुछ मनमुटाव रहने लगा। वह आग भीतर-ही-भीतर सुलगती रहती थी। दिन में दो-एक बार माँ बेटे में चोंचें हो जाती थी। एक दिन मेरी छोटी ननदजी मेरे कमरे से एक पुस्तक उठा ले गयीं। उन्हें पढ़ने का रोग है। मैंने कमरे में किताब न देखी, तो उनसे पूछा। इस जरा-सी बात पर वह भले-मानस बिगड़ गयी और कहने लगी—तुम तो मुझे चोरी लगाती हो। अम्माँ ने उन्हीं का पक्ष लिया और मुझे खूब सुनायी। संयोग की बात, अम्माँजी मुझे कोसने ही दे रही थीं कि आनन्द बाबू घर में आ गये। अम्माँजी उन्हें देखते ही और जोर से बकने लगीं, बहू की इतनी मजाल! वह तूने सिर पर चढ़ा रखा है और कोई बात नहीं। पुस्तक क्या उसके बाप की थी? लड़की लायी, तो उसने कौन गुनाह किया? जरा भी सब्र न हुआ, दौड़ी हुई उसके सिर पर जा पहुँची और उसके हाथों से किताब छीनने लगी।

बहन, मैं यह स्वीकार करती हूँ कि मुझे पुस्तक के लिए इतनी उतावली न करनी चाहिए थी। ननदजी पढ़ चुकने पर आप ही दे जातीं। न भी देतीं तो उस एक पुस्तक के न पढ़ने से मेरा क्या बिगड़ा जाता था। मगर मेरी शामत कि उनके हाथों से किताब छीनने लगी थी। अगर इस बात पर आनन्द बाबू मुझे डाँट बताते, तो मुझे जरा भी दुःख न होता मगर उन्होंने उल्टे मेरा पक्ष लिया और तयोरियाँ चढ़ाकर बोले—किसी की चीज कोई बिना पूछे लाये ही क्यों? यह तो मामूली शिष्टाचार है।

इतना सुनना था कि अम्माँ के सिर पर भूत-सा सवार हो गया। आनन्द बाबू भी बीच-बीच में फुलझड़ियाँ छोड़ते रहे और मैं अपने कमरे में बैठी रोती रही कि कहाँ-से-कहाँ मैंने किताब माँगी। न अम्माँजी ही ने भोजन किया, न आनन्द बाबू ने ही। और मेरा तो बार-बार यही जी चाहता था कि जहर खा लूँ। रात

को जब अम्माँजी लेटी तो मैं अपने नियम के अनुसार उनके पाँव पकड़ लिये। मैं पैताने की ओर तो थी ही। अम्माँजी ने जो पैर से मुझे ढकेला तो मैं चारपाई के नीचे गिर पड़ी। जमीन पर कई कटोरियाँ पड़ी हुई थीं। मैं उन कटोरियों पर गिरी, तो पीठ और कमर में बड़ी चोट आयी। मैं चिल्लाना न चाहती थी, मगर न जाने कैसे मेरे मुँह से चीख निकल गयी। आनन्द बाबू अपने कमरे में आ गये थे, मेरी चीख सुनकर दौड़े पड़े और अम्माँजी के द्वार पर आकर बोले—क्या उसे मारे डालती हो, अम्माँ? अपराधी तो मैं हूँ; उसकी जान क्यों ले रही हो? यह कहते हुए वह कमरे में घुस गये और मेरा हाथ पकड़ कर जबरदस्ती खींच ले गये। मैंने बहुत चाहा कि अपना हाथ छुड़ा लूँ, पर आनन्द ने न छोड़ा! वास्वत में इस समय उनका हम लोगों के बीच में कूद पड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता था। वह न आ जाते, तो मैंने रो-धोकर अम्माँजी को मना लिया होता। मेरे गिर पड़ने से उनका क्रोध कुछ शान्त हो चला था। आनन्द का आ जाना गजब हो गया। अम्माँजी कमरे के बाहर निकल आयीं और मुँह चिढ़ाकर बोली—हाँ, देखो, मरहम-पट्टी कर दो, कहीं कुछ टूट-फूट न गया हो !

आनन्द ने आँगन में रुककर कहा—क्या तुम चाहती हो कि तुम किसी को मार डालो और मैं न बोलूँ ?

‘हाँ, मैं तो डायन हूँ, आदमियों को मार डालना ही तो मेरा काम है। ताज्जुब है कि मैंने तुम्हें क्यों न मार डाला।’

‘तो पछतावा क्यों हो रहा है, धेले की संखिया में तो काम चलता है।’

‘अगर तुम्हें इस तरह औरत को सिर चढ़ाकर रखना है, तो कहीं और ले जाकर रखो। इस घर में उसका निर्वाह अब न होगा।’

‘मैं खुद इसी फ्रिक में हूँ, तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं।’

‘मैं भी समझ लूँगी कि मैंने लड़का ही नहीं जना।’

‘मैं भी समझ लूँगा कि मेरी माता मर गयी।’

मैं आनन्द का हाथ पकड़कर जोर से खींच रही थी कि उन्हें वहाँ से हटा ले जाऊँ, मगर वह बार-बार मेरा हाथ झटक देते थे। आखिर जब अम्माँजी अपने कमरे में चली गयीं, तो वह अपने कमरे में आये और सिर थामकर बैठ गये।

मैंने कहा—यह तुम्हें क्या सूझी ?

आनन्द ने भूमि की ओर ताकते हुए कहा—अम्माँ ने आज नोटिस दे दिया।

‘तुम खुद ही उलझ पड़े, वह बेचारी तो कुछ बोली नहीं।’

‘मैं ही उलझ पड़ा !’

‘और क्या। मैंने तो तुमसे फरियाद न की थी।’

‘पकड़ न लाता, तो अम्माँ ने तुम्हें अधमरा कर दिया होता। तुम उनका क्रोध नहीं जानती।’

‘यह तुम्हारा भ्रम है। उन्होंने मुझे मारा नहीं, अपना पैर छुड़ा रही थीं। मैं पट्टी पर बैठी थी, जरा-सा धक्का खाकर गिर पड़ीं। अम्माँ मुझे उठाने ही जा रही थीं कि तुम पहुँच गये।’

‘नानी के आगे ननिहाल का बखान न करो, मैं अम्माँ को खूब जानता हूँ। मैं कल ही दूसरा घर ले लूँगा, यह मेरा निश्चय है। कहीं-न-कहीं नौकरी मिल ही जायेगी। ये लोग समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर पड़ा हुआ हूँ। इसी से यह मिजाज है !’

मैं जितना ही उनको समझती थी, उतना वह और बफरते थे। आखिर मैंने झुंझलाकर कहा—तो तुम अकेले जाकर दूसरे घर में रहो। मैं न जाऊँगी। मुझे यहीं पड़ी रहने दो।

आनन्द ने मेरी ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—यही लातें खाना अच्छा लगता है?

‘हाँ, मुझे यही अच्छा लगता है।’

‘तो तुम खाओ, मैं नहीं खाना चाहता। यही फायदा क्या थोड़ा है कि तुम्हारी दुर्दशा आँखों से न देखूँगा, न पीड़ा होगी।’

‘अलग रहने लगोगे, तो दुनिया क्या कहेगी।’

‘इसकी परवाह नहीं। दुनियां अन्धी है।’

‘लोग यही कहेंगे कि स्त्री ने यह माया फैलायी है।’

‘इसकी भी परवाह नहीं, इस भय से अपना जीवन संकट में नहीं डालना चाहता।’

मैंने रोकर कहा—तुम मुझे छोड़ दोगे, तुम्हें मेरी जरा भी मुहब्बत नहीं है। बहन, और किसी समय इस प्रेम-आग्रह से भरे हुए शब्दों ने न जाने क्या कर दिया होता। ऐसे ही आग्रहों पर रियासतें मिटती हैं, नाते टूटते हैं, रमणी के पास इससे बढ़कर दूसरा अस्त्र नहीं। मैंने आनन्द के गले में बाँहें डाल दी थीं और उनके

कन्धे पर सिर रखकर रो रही थी। मगर इस समय आनन्द बाबू इतने कठोर हो गये थे कि यह आग्रह भी उन पर कुछ असर न कर सका। जिस माता न जन्म दिया, उसके प्रति इतना रोष ! हम अपनी माता की एक कड़ी बात नहीं सह सकते, इस आत्माभिमान का कोई ठिकाना है। यही वे आशाएँ हैं, जिन पर माता ने अपने जीवन के सारे सुख-विलास अर्पण कर दिये थे, दिन का चैन और रात की नींद अपने ऊपर हराम कर ली थी ! पुत्र पर माता का इतना भी अधिकार नहीं !

आनन्द ने उसी अविचलित कठोरता से कहा—अगर मुहब्बत का यही अर्थ है कि मैं इस घर में तुम्हारी दुर्गति कराऊँ, तो मुझे वह मुहब्बत नहीं है।

प्रातःकाल वह उठकर बाहर जाते हुए मुझसे बोले—मैं जाकर घर ठीक किये आता हूँ। तौंगा भी लेता आऊँगा, तैयार रहना।

मैंने दरवाजा रोककर कहा—क्या अभी तक क्रोध शान्त नहीं हुआ?

‘क्रोध की बात नहीं, केवल दूसरों के सिर से अपना बोझ हटा लेने की बात है।’

‘यह अच्छा काम नहीं कर रहे हो। सोचो, माता जी को कितना दुःख होगा। ससुरजी से भी तुमने कुछ पूछा ?’

‘उनसे पूछने की कोई जरूरत नहीं। कर्ता-धर्ता जो कुछ हैं, वह अम्माँ हैं। दादाजी मिट्टी के लौंदे हैं।’
‘घर के स्वामी तो हैं ?’

‘तुम्हें चलना है या नहीं, साफ कहो।’

‘मैं तो अभी न जाऊँगी।’

‘अच्छी बात है, लात खाओ।’

मैं कुछ नहीं बोली। आनन्द ने एक क्षण के बाद फिर कहा—तुम्हारे पास कुछ रुपये हो, तो मुझे दो।

मेरे पास रुपये थे, मगर मैंने इनकार कर दिया। मैंने समझा, शायद इसी असमंजस में पड़कर वह रूक जायँ। मगर उन्होंने बात मन में ठान ली थी। खिन्न होकर बोले—अच्छी बात है, तुम्हारे रूपों के बगैर भी मेरा काम चल जायगा। तुम्हें यह विशाल भवन, यह सुख-भोग, ये नौकर-चाकर, ये ठाट-बाट मुबारक हों। मेरे साथ क्यों भूखों मरोगी। वहाँ यह सुख कहाँ ! मेरे प्रेम का मूल्य ही क्या !

यह कहते हुए वह चले गये। बहन, क्या कहूँ, उस समय अपनी बेबसी पर कितना दुःख हो रहा था। बस, यही जी में आता था कि यमराज आकर मुझे उठा ले जायँ। मुझे कल-कलंकिनी के कारण माता और पुत्र में यह वैमनस्य हो रहा था। जाकर अम्माँजी के पैरों पर गिर पड़ी और रो-रोकर आनन्द बाबू के चले जाने का समाचार कहा। मगर माताजी का हृदय जरा भी न पसीजा। मुझे आज मालूम हुआ कि माता भी इतनी वज्र-हृदया हो सकती है। फिर आनन्द बाबू का हृदय क्यों न कठोर हो। अपनी माता ही के पुत्र तो हैं।

माताजी ने निर्दयता से कहा—तुम उसके साथ क्यों न चली गयी ? जब वह कहता था तब चला जाना चाहिए था। कौन जाने, यहाँ मैं किसी दिन तुम्हें विष दे दूँ।

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा—अम्माँजी, उन्हें बुला भेजिए, आपके पैरों पड़ती हूँ। नहीं तो कहीं चले जायेंगे।

अम्माँ उसी निर्दयता से बोलीं—जाय चाहे रहे, वह मेरा कौन है। अब तो जो कुछ हो, तुम हो, मुझे कौन गिनता है। आज जरा-सी बात पर यह इतना झल्ला रहा है। और मेरी अम्माँजी ने मुझे सैकड़ों ही बार पीटा होगा। मैं भी छोकरी न थी, तुम्हारी ही उम्र की थी, पर मजाल न थी कि तुम्हारे दादाजी से किसी के सामने बोल सकूँ। कच्चा ही खा जाती ! मार खाकर रात-भर रोती रहती थी, पर इस तरह घर छोड़कर कोई न भागता था। आजकल के लौंडे ही प्रेम करना नहीं जानते, हम भी प्रेम करते थे, पर इस तरह नहीं कि माँ-बाप, छोटे-बड़े किसी को कुछ न समझें।

यह कहती हुई माताजी पूजा करने चली गयी। मैं अपने कमरे में आकर नसीबों को रोने लगी। यही शंका होती थी कि आनन्द किसी तरफ की राह न लें। बार-बार जी मसोसता था कि रुपये क्यों न दे दिये। बेचारे इधर-उधर मारे-मारे फिरते होंगे। अभी हाथ-मुँह भी नहीं धोया, जलपान भी नहीं किया। वक्त पर जलपान न करेंगे तो, जुकाम हो जायेगा, और उन्हें जुकाम होता है, तो हरारत भी हो जाती है। महरी से कहा—जरा जाकर देख तो बाबूजी कमरे में हैं? उसने आकर कहा—कमरे में तो कोई नहीं, खूँटी पर कपड़े भी नहीं है।

मैंने पूछा—क्या और भी कभी इस तरह अम्माँजी से रूठे हैं? महरी बोली—कभी नहीं बहू ऐसा सीधा तो मैंने लड़का ही नहीं देखा। मालकिन के सामने कभी सिर नहीं उठाते थे। आज न-जाने क्यों चले गए।

मुझे आशा थी कि दोपहर को भोजन के समय वह आ जायेंगे। लेकिन दोपहर कौन कहे; शाम भी हो गयी और उनका पति नहीं। सारी रात जागती रही। द्वार की ओर कान लगे हुए थे। मगर रात भी उसी तरह गुजर गयी। बहन, इस प्रकार पूरे तीन बीत गये। उस वक्त तुम मुझे देखतीं, तो पहचान न सकतीं। रोते-रोते आँखें लाल हो गयी थीं। इन तीन दिनों में एक पल भी नहीं सोयी और भूख का तो जिक्र ही क्या, पानी तक न पिया। प्यास ही न लगती थी। मालूम होता था, देह में प्राण ही नहीं हैं। सारे घर में मातम-सा छाया हुआ था। अम्माँजी भोजन करने दोनों वक्त जाती थीं, पर मुँह जूठा करके चली आती थी। दोनों ननदों की हँसी और चुहर भी गायब हो गयी थी। छोटी ननदजी तो मुझसे अपना अपराध क्षमा कराने आयी।

चौथे दिन सबेरे रसोइये ने आकर मुझसे कहा—बाबूजी तो अभी मुझे दशाश्वमेध घाट पर मिले थे। मैं उन्हें देखते ही लपककर उनके पास आ पहुँचा और बोला—भैया, घर क्यों नहीं चलते? सब लोग घबड़ाये हुए हैं। बहूजी ने तीन दिन से पानी तक पिया। उनका हाल बहुत बुरा है। यह सुनकर वह कुछ सोच में पड़ गये, फिर बोले—बहूजी ने क्यों दाना-पानी छोड़ रखा है? जाकर कह देना, जिस आराम के लिए उस घर को न छोड़ सकी, उससे क्या इतनी जल्द जी-भर गया !

अम्माँजी उसी समय आँगन में आ गयी। महाराज की बातों की भनक कानों में पड़ गयी, बोली—क्या है अलगू, क्या आनन्द मिला था ?

महाराज—हाँ, बड़ी बहू, अभी दशाश्वमेध घाट पर मिले थे। मैंने कहा—घर क्यों नहीं चलते, तो बोले—उस घर में मेरा कौन बैठा हुआ है?

अम्माँ—कहा नहीं और कोई अपना नहीं है, तो स्त्री तो अपनी है, उसकी जान क्यों लेते हो?

महाराज—मैंने बहुत समझाया बड़ी बहू, पर वह टस-से-मस न हुए।

अम्माँ—करता क्या है?

महाराज—यह तो मैंने नहीं पूछा, पर चेहरा बहुत उतरा हुआ था।

अम्माँ—ज्यों-ज्यों तुम बूढ़े होते हो, शायद सठियाते जाते हो। इतना तो पूछा होता, कहाँ रहते हो, कहाँ खाते-पीते हो। तुम्हें चाहिए था, उसका हाथ पकड़ लेते और खींचकर ले आते। मगर तुम नकमहरामों को अपने हलवे-मांडे से मतलब, चाहे कोई मरे या जिये। दोनों वक्त बढ़-बढ़कर हाथ मारते हो और मूँछों पर ताव देते हो। तुम्हें इसकी क्या परवाह है कि घर में दूसरा कोई खाता है या नहीं। मैं तो परवाह न करती, वह आये या न आये। मेरा धर्म पालना-पोसना था, पाल पोस दिया। अब जहाँ चाहे रहे। पर इस बहू का क्या करूँ, जो रो-रोकर प्राण दिये डालती है। तुम्हें ईश्वर ने आँखे दी हैं, उसकी हालत देख रहे हो। क्या मुँह से इतना भी न फूटा कि बहू अन्न जल त्याग किये पड़ी हुई।

महाराज—बहूजी, नारायण जानते हैं, मैंने बहुत तरह समझाया, मगर वह तो जैसे भागे जाते थे। फिर मैं क्या करता।

अम्माँ—समझाया नहीं, अपना सिर। तुम समझाते और वह योंही चला जाता। क्या सारी लच्छेदार बातें मुझी से करने को है? इस बहू को मैं क्या कहूँ। मेरे पति ने मुझसे इतनी बेरुखी की होती, तो मैं उसकी सूरत न देखती। पर, इस पर उसने न-जाने कौन-सा जादू कर दिया है। ऐसे उदासियों को तो कुलटा चाहिए, जो उन्हें तिगनी का नाच नचाये।

कोई आध घंटे बाद कहार ने आकर कहा—बाबूजी आकर कमरे में बैठे हुए हैं।

मेरा कलेजा धक-धक करने लगा। जी चाहता था कि जाकर पकड़ लाऊँ, पर अम्माँजी का हृदय सचमुच वज्र है। बोली—जाकर कह दे, यहाँ उनका कौन बैठा हुआ है, जो आकर बैठे हैं !

मैंने हाथ जोड़कर कहा—अम्माँजी, उन्हें अन्दर बुला लीजिए, कहीं फिर न चले जाएँ।

अम्माँ—यहाँ उनका कौन बैठा हुआ है, जो आयेगा। मैं तो अन्दर कदम न रखने दूँगी।

अम्माँजी तो बिगड़ रही थी, उधर छोटी ननदजी जाकर आनन्द बाबू को लायी। सचमुच उनका चेहरा उतरा हुआ था, जैसे महीनों का मरीज हो। ननदजी उन्हें इस तरह खींचें लाती थी, जैसे कोई लड़की ससुराल जा रही हो। अम्माँजी ने मुस्काराकर कहा—इसे यहाँ क्यों लायीं? यहाँ इसका कौन बैठा हुआ है?

आनन्द सिर झुकाये अपराधियों की भाँति खड़े थे। जबान न खुलती थी। अम्माँजी ने फिर पूछा—चार दिन से कहाँ थे?

‘कहीं नहीं, यहीं तो था।’

‘खूब चैन से रहे होगे।’

‘जी हाँ, कोई तकलीफ न थी।’

‘वह तो सूरत ही से मालूम हो रहा है।’

ननदजी जलपान के लिए मिठाई लायीं। आनन्द मिठाई खाते इस तरह झेंप रहे थे मानों ससुराल आये हों, फिर माताजी उन्हें लिए अपने कमरे में चली गयीं। वहाँ आध घंटे तक माता और पुत्र में बातें होती रही। मैं कान लगाये हुए थी, पर साफ कुछ न सुनायी देता था। हॉ, ऐसा मालूम होता था कि कभी माताजी रोती हैं और कभी आनन्द। माताजी जब पूजा करने निकलीं, तो उनकी आँखें लाल थीं। आनन्द वहाँ से निकले, तो सीधे मेरे कमरे में आये। मैं उन्हें आते देख चटपट मुँह ढाँपकर चारपाई पर रही, मानो बेखबर सो रही हूँ। वह कमरे में आये, मुझे चरपाई पर पड़े देखा, मेरे समीप आकर एक बार धीरे पुकारा और लौट पड़े। मुझे जगाने की हिम्मत न पड़ी। मुझे जो कष्ट हो रहा था, इसका एकमात्र कारण अपने को समझकर वह मन-ही-मन दुःखी हो रहे थे। मैंने अनुमान किया था, वह मुझे उठावेंगे, मैं मान करूँगी, वह मनावेंगे, मगर सारे मंसूबे खाक में मिल गए। उन्हें लौटते देखकर मुझसे न रहा गया। मैं हकबकाकर उठ बैठी और चारपाई से नीचे उतरने लगी, मगर न-जाने क्यों, मेरे पैर लड़खड़ाये और ऐसा जान पड़ा मैं गिरी जाती हूँ। सहसा आनन्द ने पीछे फिर कर मुझे संभाल लिया और बोले—लेट जाओ, लेट जाओ, मैं कुरसी पर बैठा जाता हूँ। यह तुमने अपनी क्या गति बना रखी है?

मैंने अपने को संभालकर कहा—मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ। आपने कैसे कष्ट किया?

‘पहले तुम कुछ भोजन कर लो, तो पीछे मैं कुछ बात करूँगा।’

‘मेरे भोजन की आपको क्या फिक्र पड़ी है। आप तो सैर सपाटे कर रहे हैं !’

‘जैसे सैर-सपाटे मैंने किये हैं, मेरा दिल जानता है। मगर बातें पीछे करूँगा, अभी मुँह-हाथ धोकर खा लो। चार दिन से पानी तक मुँह में नहीं डाला। राम ! राम !’

‘यह आपसे किसने कहा कि मैंने चार दिन से पानी तक मुँह में नहीं डाला। जब आपको मेरी परवाह न थी, तो मैं क्यों दाना-पानी छोड़ती?’

‘वह तो सूरत ही कहे देती हैं। फूल से... मुरझा गये।’

‘जरा अपनी सूरत जाकर आईने में देखिए।’

‘मैं पहले ही कौन बड़ा सुन्दर था। ठूठ को पानी मिले तो क्या और न मिले तो क्या। मैं न जानता था कि तुम यह अनशन-व्रत ले लोगी, नहीं तो ईश्वर जानता है, अम्माँ मार-मारकर भगातीं, तो भी न जाता।’

मैंने तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—तो क्या सचमुच तुम समझे थे कि मैं यहाँ केवल आराम के विचार से रह गयी?

आनन्द ने जल्दी से अपनी भूल सुधरी—नहीं, नहीं प्रिये, मैं इतना गधा नहीं हूँ, पर यह मैं कदापि न समझता था कि तुम बिलकुल दाना-पानी छोड़ दोगी। बड़ी कुशल हुई कि मुझे महाराज मिल गया, नहीं तो तुम प्राण ही दे देती। अब ऐसी भूल कभी न होगी। कान पकड़ता हूँ। अम्माँजी तुम्हारा बखान कर-करके रोती रही।

मैंने प्रसन्न होकर कहा—तब तो मेरी तपस्या सफल हो गयी।

‘थोड़ा-सा दूध पी लो, तो बातें हों। जाने कितनी बातें करनी है।’

‘पी लूँगी, ऐसी क्या जल्दी है।’

‘जब तक तुम कुछ खा न लोगी, मैं यही समझूँगा कि तुमने मेरा अपराध क्षमा नहीं किया।’

‘मैं भोजन जभी करूँगी, जब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि फिर कभी इस तरह रूठकर न जाओगे।’

‘मैं सच्चे दिल से यह प्रतिज्ञा करता हूँ।’

बहन, तीन दिन कष्ट तो हुआ, पर मुझे उसके लिए जरा भी पछतावा नहीं है। इन तीन दिनों के अनशन ने दिलों में जो सफाई कर दी, वह किसी दूसरी विधि से कदापि न होती। अब मुझे विश्वास है कि हमारा जीवन शांति से व्यतीत होगा। अपने समाचार शीघ्र, अति शीघ्र लिखना।

तुम्हारी

चन्दा

प्यारी बहन,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे तुम्हारे ऊपर दया आयी। तुम मुझे कितना ही बुरा कहो, पर मैं अपनी यह दुर्गति किसी तरह न सह सकती, किसी तरह नहीं। मैंने या तो अपने प्राण ही दे दिये होते, या फिर उस सास का मुँह न देखती। तुम्हारा सीधापन, तुम्हारी सहनशीलता, तुम्हारी सास-भक्ति तुम्हें मुबारक हो। मैं तो तुरन्त आनन्द के साथ चली जाती और चाहे भीख ही क्यों न माँगनी पड़ती उस घर में कदम न रखती। मुझे तुम्हारे ऊपर दया ही नहीं आती, क्रोध भी आता है, इसलिए कि तुममें स्वाभिमान नहीं है। तुम-जैसी स्त्रियों ने ही सासों और पुरुषों का मिजाज आसमान चढ़ा दिया है। 'जहन्नुम में जाय ऐसा घर—जहाँ अपनी इज्जत नहीं।' मैं पति-प्रेम भी इन दामों न लूँ। तुम्हें उन्नीसवीं सदी में जन्म लेना चाहिए था। उस वक्त तुम्हारे गुणों की प्रशंसा होती। इस स्वाधीनता और नारी-स्वत्व के नवयुग में तुम केवल प्राचीन इतिहास हो। यह सीता और दमयन्ती का युग नहीं। पुरुषों ने बहुत दिनों तक राज्य किया। अब स्त्री-जाति का राज्य होगा। मगर अब तुम्हें अधिक न कोसूँगी।

अब मेरा हाल सुनो। मैंने सोचा था, पत्रों में अपनी बीमारी का समाचार छपवा दूँगी। लेकिन फिर ख्याल आया; यह समाचार छपते ही मित्रों का तौता लग जायेगा। कोई मिजाज पूछने आयेगा। कोई देखने आयेगा। फिर मैं कोई रानी तो हूँ नहीं, जिसकी बिमारी का बुलेटिन रोजाना छापा जाय। न जाने लोगों के दिल में कैसे-कैसे विचार उत्पन्न हों। यह सोचकर मैंने पत्र में छपवाने का विचार छोड़ दिया। दिन-भर मेरे चित्त की क्या दशा रही, लिख नहीं सकती। कभी मन में आता, जहर खा लूँ, कभी सोचती, कहीं उड़ जाऊँ। विनोद के सम्बन्ध में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं। अब मुझे ऐसी कितनी ही बातें याद आने लगीं, जब मैंने विनोद के प्रति उदासीनता का भाव दिखाया था। मैं उनसे सब कुछ लेना चाहती थी; देना कुछ न चाहती थी। मैं चाहती थी कि वह आठों पहर भ्रमर की भाँति मुझ पर मँडराते रहें, पतंग की भाँति मुझे घेरे रहें। उन्हें किताबो और पत्रों में मग्न बैठे देखकर मुझे झुँझलाहट होने लगती थी। मेरा अधिकांश समय अपने ही बनाव-सिंगार में कटता था, उनके विषय में मुझे कोई चिन्ता ही न होती थी। अब मुझे मालूम हुआ कि सेवा का महत्व रूप से कहीं अधिक है। रूप मन को मुग्ध कर सकता है, पर आत्मा को आनन्द पहुँचाने वाली कोई दूसरी ही वस्तु है।

इस तरह एक हफ्ता गुजर गया। मैं प्रातःकाल मैके जाने की तैयारियाँ कर रही थी—यह घर फाड़े खाता था—कि सहसा डाकिये ने मुझे एक पत्र लाकर दिया। मेरा हृदय धक-धक करने लगा। मैंने काँपते हुए हाथों से पत्र लिया, पर सिरनामे पर विनोद की परिचित हस्तलिपि न थी, लिपि किसी स्त्री की थी, इसमें सन्देह न था, पर मैं उससे सर्वथा अपरिचित थी। मैंने तुरन्त पत्र खोला और नीचे की तरफ देखा तो चौंक पड़ी—वह कुसुम का पत्र था। मैंने एक ही साँस में सारा पत्र पढ़ लिया। लिखा था—'बहन, विनोद बाबू तीन दिन यहाँ रहकर बम्बई चले गये। शायद विलायत जाना चाहते हैं। तीन-चार दिन बम्बई रहेंगे। मैंने बहुत चाहा तकि उन्हें दिल्ली वापस कर दूँ, पर वह किसी तरह न राजी हुए। तुम उन्हें नीचे लिखे पते से तार दे दो। मैंने उनसे यह पता पूछ लिया था। उन्होंने मुझे ताकीद कर दी थी कि इस पते को गुप्त रखना, लेकिन तुमसे क्या परदा। तुम तुरन्त तार दे दो, शायद रुक जायँ। वह बात क्या हुई ! मुझसे विनोद ने तो बहुत पूछने पर भी नहीं बताया, पर वह दुःखी बहुत थे। ऐसे आदमी को भी तुम अपना न बना सकी, इसका मुझे आश्चर्य है; पर मुझे इसकी पहले ही शंका थी। रूप और गर्व में दीपक और प्रकाश का सम्बन्ध है। गर्व रूप का प्रकाश है।'...

मैंने पत्र रख दिया और उसी वक्त विनोद के नाम तार भेज दिया कि बहुत बीमार हूँ, तुरन्त आओ। मुझे आशा थी कि विनोद तार द्वारा जवाब देंगे, लेकिन सारा दिन गुजर गया और कोई जवाब न आया। बँगले के सामने से कोई साइकिल निकलती, तो मैं तुरन्त उसकी ओर ताकने लगती थी कि शायद तार का चपरासी हो। रात को भी मैं तार का इन्तजार करती रही। तब मैंने अपने मन को इस विचार से शांत किया कि विनोद आ रहे हैं, इसलिए तार भेजने की जरूरत न समझी।

अब मेरे मन में फिर शंकाएँ उठने लगीं। विनोद कुसुम के पास क्यों गये, कहीं कुसुम से उन्हें प्रेम तो नहीं है? कहीं उसी प्रेम के कारण तो वह मुझसे विरक्त नहीं हो गये? कुसुम कोई कौशल तो नहीं कर रही हैं? उसे विनोद को अपने घर ठहराने का अधिकार ही क्या था? इस विचार से मेरा मन बहुत क्षुब्ध हो उठा। कुसुम पर क्रोध आने लगा। अवश्य दोनों में बहुत दिनों से पत्र-व्यवहार होता रहा होगा। मैंने फिर कुसुम का पत्र पढ़ा और अबकी उसके प्रत्येक शब्द में मेरे लिए कुछ सोचने की सामग्री रखी हुई थी। निश्चय किया कि कुसुम को एक पत्र लिखकर खूब कोसूँ। आधा पत्र लिख भी डाला, पर उसे फाड़ डाला। उसी वक्त विनोद को

एक पत्र लिखा। तुमसे कभी भेंट होगी, तो वह पत्र दिखलाऊँगी; जो कुछ मुँह में आया बक डाला। लेकिन इस पत्र की भी वही दशा हुई जो कुसुम के पत्र की हुई थी। लिखने के बाद मालूम हुआ कि वह किसी विक्षिप्त हृदय की बकवाद है। मेरे मन में यही बात बैठती जाती थी वह कुसुम के पास हैं। वही छलिनी उन पर अपना जादू चला रही है। यह दिन भी बीत गया। डाकिया कई बार आया, पर मैंने उसकी ओर आँख भी नहीं उठायी। चन्दा, मैं नहीं कह सकती, मेरा हृदय कितना तिलतमिला रहा था। अगर कुसुम इस समय मुझे मिल जाती, तो मैं न-जाने क्या कर डालती।

रात को लेटे-लेटे ख्याल आया, कहीं वह यूरोप न चले गये हों। जी बैचेन हो उठा। सिर में ऐसा चक्कर आने लगा, मानों पानी में डूबी जाती हूँ। अगर वह यूरोप चले गये, तो फिर कोई आशा नहीं—मैं उसी वक्त उठी और घड़ी पर नजर डाली। दो बजे थे। नौकर को जगाया और तार-घर जा पहुँची। बाबूजी कुरसी पर लेटे-लेटे सो रहे थे। बड़ी मुश्किल से उनकी नींद खुली। मैंने रसीदी तार दिया। जब बाबूजी तार दे चुके, तो मैंने पूछा—इसका जवाब कब तक आयेगा?

बाबू ने कहा—यह प्रश्न किसी ज्योतिषी से कीजिए। कौन जानता है, वह कब जवाब दें। तार का चपरासी जबरदस्ती तो उनसे जवाब नहीं लिखा सकता। अगर कोई और कारण न हो, तो आठ-नौ बजे तक जवाब आ जाना चाहिए।

घबराहट में आदमी की बुद्धि पलायन कर जाती है। ऐसा निरर्थक प्रश्न करके मैं स्वयं लज्जित हो गयी। बाबूजी ने अपने मन में मुझे कितना मूर्ख समझा होगा; खैर, मैं वहीं एक बेंच पर बैठ गयी और तुम्हें विश्वास न आयेगा, नौ बजे तक वहीं बैठी रही। सोचो, कितने घंटे हुए? पूरे सात घंटे। सैकड़ों आदमी आये और गये, पर मैं वहीं जमी बैठी रही। जब तार का डमी खटकता, मेरे हृदय में धड़कन होने लगती। लेकिन इस भय से कि बाबूजी झल्ला न उठें, कुछ पूछने का साहस न करती थीं। जब दफ्तर की घड़ी में नौ बजे, तो मैंने डरते-डरते बाबू से पूछा—क्या अभी तक जवाब नहीं आया।

बाबू ने कहा—आप तो यहीं बैठी हैं, जवाब आता तो क्या मैं खा डालता? मैंने बेहयाई करके फिर पूछा—तो क्या अब न आवेगा? बाबू ने मुँह फेरकर कहा—और—दो-चार घंटे बैठी रहिए।

बहन, यह वाग्बाण शर के समान हृदय में लगा। आँखे भर आयीं। लेकिन फिर मैं वह टली नहीं। अब भी आशा बँधी हुई थी कि शायद जवाब आता हो। जब दो घंटे और गुजर गये, तब मैं निराश हो गयी। हाय ! विनोद ने मुझे कहीं का न रखा। मैं घर चली, तो आँखें से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। रास्ता न सूझता था।

सहसा पीछे से एक मोटर का हार्न सुनायी दिया। मैं रास्ते से हट गयी। उस वक्त मन में आया, इसी मोटर के नीचे लेट जाऊँ और जीवन का अन्त कर दूँ। मैंने आँखे पोंछकर मोटर की ओर देखा, भुवन बैठा हुआ था और उसकी बगल में बैठी थी कुसुम ! ऐसा जान पड़ा, अग्नि की ज्वाला मेरे पैरों से समाकर सिर से निकल गयी। मैं उन दोनों की निगाहों से बचना चाहती थी, लेकिन मोटर रुक गयी और कुसुम उतर कर मेरे गले से लिपट गयी। भुवन चुपचाप मोटर में बैठा रहा, मानो मुझे जानता ही नहीं। निर्दयी, धूर्त !

कुसुम ने पूछा—मैं तो तुम्हारे पास जाती थी, बहन? वहाँ से कोई खबर आयी? मैंने बात टालने के लिए कहा—तुम कब आयीं?

भुवन के सामने मैं अपनी विपत्ति-कथा न कहना चाहती थी।

कुसुम—आओ, कार में बैठ जाओ।

‘नहीं, मैं चली जाऊँगी। अवकाश मिले, तो एक बार चली आना।’

कुसुम ने मुझसे आग्रह न किया। कार में बैठकर चल दी। मैं खड़ी ताकती रह गयी ! यह वही कुसुम है या कोई और? कितना बड़ा अन्तर हो गया है?

मैं घर चली, तो सोचने लगी—भुवन से इसकी जान-पहचान, कैसे हुई? कहीं ऐसा तो नहीं है कि विनोद ने इसे मेरी टोह लेने को भेजा हो ! भुवन से मेरे विषय में कुछ पूछने तो नहीं आयी हैं?

मैं घर पहुँचकर बैठी ही थी कि कुसुम आ पहुँची। अब की वह मोटर में अकेली न थी—विनोद बैठे हुए थे। मैं उन्हें देखकर ठिठक गयी ! चाहिए तो यह था कि मैं दौड़कर उनका हाथ पकड़ लेती और मोटर से अतार लाती, लेकिन मैं जगह से हिली तक नहीं। मूर्ति की भाँति अचल बैठी रही। मेरी मानिनी प्रकृति अपना उद्दण्ड-स्वरूप दिखाने के लिए विकल हो उठी। एक क्षण में कुसुम ने विनोद को उतारा और उनका हाथ पकड़े हुये ले आयी। उस वक्त मैंने देखा कि विनोद का मुख बिलकुल पीला पड़ गया है और वह इतने

अशक्त हो गये हैं कि अपने सहारे खड़े भी नहीं रह सकते, मैंने घबराकर पूछा, क्यों तुम्हारा यह क्या हाल है?

कुसुम ने कहा—हाल पीछे पूछना, जरा इनकी चौपाई चटपट बिछा दो और थोड़ा-सा दूध मँगवा लो।

मैंने तुरन्त चारपाई बिछायी और विनोद को उस पर लेटा दिया। और दूध तो रखा हुआ था। कुसुम इस वक्त मेरी स्वामिनी बनी हुई थी। मैं उसके इशारे पर नाच रही थी। चन्दा, इस वक्त मुझे ज्ञात हुआ कि कुसुम पर विनोद को जितना विश्वास है, वह मुझ पर नहीं। मैं इस योग्य हूँ ही नहीं। मेरा दिल सैकड़ों प्रश्न पूछने के लिए तड़फड़ा रहा था, लेकिन कुसुम एक पल के लिए भी विनोद के पास से ने टलती थी। मैं इतनी मूर्ख हूँ कि अवसर पाने पर इस दशा में भी मैं विनोद से प्रश्नों का ताँता बाँध देती।

विनोद को जब नींद आ गयी, मैंने आँखों में आँसू भरकर कुसुम से पूछा—बहन, इन्हें क्या शिकायत है? मैंने तार भेजा। उसका जवाब नहीं आया। रात दो बजे एक जरूरी और जवाबी तार भेजा। दस बजे तक तार-घर बैठी जवाब की राह देखती रही। वहीं से लौट रही थी, जब तुम रास्ते में मिली। यह तुम्हें कहाँ मिल गये?

कुसुम मेरा हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में ले गयी और बोली—पहले तुम यह बताओ कि भुवन का क्या मुआमला था? देखो, साफ, कहना।

मैंने आपत्ति करते हुए कहा—कुसुम, तुम यह प्रश्न पूछकर मेरे साथ अन्याय कर रही हो। तुम्हें खुद समझ लेना चाहिए था कि इस बात में कोई सार नहीं है ! विनोद को केवल भ्रम हो गया।

‘बिना किसी कारण के?’

‘हाँ, मेरी समझ में तो कोई कारण न था।’

‘मैं इसे नहीं मानती। यह क्यों नहीं कहती कि विनोद को जलाने, चिढ़ाने और जगाने के लिए तुमने यह स्वाँग रचा था।’

कुसुम की सूझ पर चकित होकर मैंने कहा—वह तो केवल दिल्लगी थी।

‘तुम्हारे लिए दिल्लगी थी, विनोद के लिए वज्रपात था। तुमने इतने दिनों उनके साथ रहकर भी उन्हें नहीं समझा ! तुम्हें अपने बनाव-सँवार के आगे उन्हें समझाने की कहाँ फुरसत ? कदाचित् तुम समझती हो कि तुम्हारी यह मोहनी मूर्ति ही सब कुछ है। मैं कहती हूँ, इसका मूल्य दो-चार महीने के लिए हो सकता है। स्थायी वस्तु कुछ और ही है।’

मैंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा—विनोद को मुझसे कुछ पूछना तो चाहिए था?

कुसुम ने हँसकर कहा—यही तो वह नहीं कर सकते। तुमसे ऐसी बात पूछना उनके लिए असम्भव है। वह उन प्राणियों में है, जो स्त्री की आँखों से गिरकर जीते नहीं रह सकते। स्त्री या पुरुष किसी के लिए भी वह किसी प्रकार का धार्मिक या नैतिक बन्धन नहीं रखना चाहते। वह प्रत्येक प्राणी के लिए पूर्ण स्वाधीनता के समर्थक हैं। मन और इच्छा के सिवा वह कोई बंधन स्वीकार नहीं करते। इस विषय पर मेरी उनसे खूब बातें हुई हैं। खैर—मेरा पता उन्हें मालूम था ही, यहाँ से सीधे मेरे पास पहुँचे। मैं समझ गई कि आपस में पटी नहीं। मुझे तुम्हीं पर सन्देह हुआ।

मैंने पूछा—क्यों? मुझ पर तुम्हें क्यों सन्देह हुआ?

‘इसलिए कि मैं तुम्हें पहले देख चुकी थी।’

‘अब तो तुम्हें मुझ पर सन्देह नहीं।’

‘नहीं, मगर इसका कारण तुम्हारा संयम नहीं, परम्परा है। मैं इस समय स्पष्ट बातें कर रही हूँ, इसके लिए क्षमा करना।’

‘नहीं, विनोद से तुम्हें जितना प्रेम है, उससे अधिक अपने-आपसे है। कम-से-कम दस दिन पहले यही बात थी। अन्यथा यह नौबत ही क्यों आती? विनोद यहाँ से सीधे मेरे पास गये और दो-तीन दिन रहकर बम्बई चले गये। मैंने बहुत पूछा, पर कुछ बतलाया नहीं। वहाँ उन्होंने एक दिन विष खा लिया।’

मेरे चेहरे का रंग उड़ गया।

‘बम्बई पहुँचते ही उन्होंने मेरे पास एक खत लिखा था। उसमें यहाँ की सारी बातें लिखी थीं और अन्त में लिखा था—मैं इस जीवन से तंग आ गया हूँ, अब मेरे लिए मौत के सिवा और कोई उपाय नहीं है।’

मैंने एक ठंडी साँस ली।

‘मैं यह पत्र पाकर घबरा गयी और उसी वक्त बम्बई रवाना हो गयी। जब वहाँ पहुँची, तो विनोद को मरणासन्न पाया। जीवन की कोई आशा नहीं थी। मेरे एक सम्बन्धी वहाँ डाक्टरी करते हैं। उन्हें लाकर

दिखाया तो वह बोले—इन्होंने जहर खा लिया है। तुरन्त दवा दी गयी। तीन दिन तक डाक्टर साहब न दिन-को-दिन और रात-को-रात न समझा, और मैं तो एक क्षण के लिए विनोद के पास से न हटी। बारे तीसरे दिन इनकी आँख खुली। तुम्हारा पहला तार मुझे मिला था, पर उसका जवाब देने की किसे फुरसत थी? तीन दिन और बम्बई रहना पड़ा। विनोद इतने कमजोर हो गये थे कि इतना लम्बा सफर करीनाउनके लिए असम्भव था। चौथे दिन मैंने जब उनसे यहाँ आने का प्रस्ताव किया, तो बोले—मैं अब वहाँ न जाऊँगा। जब मैंने बहुत समझाया, तब इस शर्त पर राजी हुए ताकि मैं पहले आकर यहाँ की परिस्थिति देख जाऊँ।

मेरे मुँह से निकला—‘हा ! ईश्वर, मैं ऐसी अभागिनी हूँ।’

‘अभागिनी नहीं हो बहन, केवल तुमने विनोद को समझा न था। वह चाहते थे कि मैं अकेली जाऊँ, पर मैंने उन्हें इस दशा में वहाँ छोड़ना उचित न समझा। परसों हम दोनों वहाँ चले। यहाँ पहुँचकर विनोद तो वेटिंग-रूम में ठहर गये, मैं पता पूछती हुई भुवन के पास पहुँची। भुवन को मैंने इतना फटकारा कि वह रो पड़ा। उसने मुझसे यहाँ तक कह डाला कि तुमने उसे बुरी तरह दुत्कार दिया है। आँखों का बुरा आदमी है, पर दिल का बुरा नहीं। उधर से जब मुझे सन्तोष हो गया और रास्ते में तुमसे भेंट हो जाने पर रहा-सहा भ्रम भी दूर हो गया, तो मैं विनोद को तुम्हारे पास लायी। अब तुम्हारी वस्तु तुम्हें सौपती हूँ। मुझे आशा है, इस दुर्घटना ने तुम्हें इतना सचेत कर दिया होगा कि फिर नौबत न आयेगी। आत्मसमर्पण करना सीखो। भूल जाओ कि तुम सुन्दरी हो, आनन्दमय जीवन का यही मूल मंत्र है। मैं डींग नहीं मारती, लेकिन चाहूँ तो आज विनोद को तुमसे छीन सकती हूँ। लेकिन रूप में मैं तुम्हारे तलुओं के बराबर भी नहीं। रूप के साथ अगर तुम सेवा-भाव धारण कर सको, तो तुम अजेय हो जाओगी।’

मैं कुसुम के पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—बहन, तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसके लिए मरते दम तक तुम्हारी ऋणी रहूँगी। तुमने न सहायता की होती, तो आज न-जाने क्या गति होती।

बहन, कुसुम कल चली जायगी। मुझे तो अब वह देवी-सी दीखती है। जी चाहता है, उसके चरण धो-धोकर पीऊँ। उसके हाथों मुझे विनोद ही नहीं मिले हैं, सेवा का सच्चा आदर्श और स्त्री का सच्चा कर्तव्य-ज्ञान भी मिला है। आज से मेरे जीवन का नवयुग आरम्भ होता है, जिसमें भोग और विलास की नहीं, सहृदयता और आत्मीयता की प्रधानता होगी।

तुम्हारी,
पद्मा

सोहाग का शव

मध्यप्रदेश के एक पहाड़ी गाँव में एक छोटे-से घर की छत पर एक युवक मानो संध्या की निस्तब्धता में लीन बैठा था। सामने चन्द्रमा के मलिन प्रकाश में ऊदी पर्वतमालाएँ अनन्त के स्वप्न की भाँति

गम्भीर रहस्यमय, संगीतमय, मनोहर मालूम होती थीं, उन पहाड़ियों के नीचे जल-धारा की एक रौप्य रेखा ऐसी मालूम होती थी, मानो उन पर्वतों का समस्त संगीत, समस्त गाम्भीर्य, सम्पूर्ण रहस्य इसी उज्ज्वल प्रवाह में लीन हो गया हो। युवक की वेषभूषा से प्रकट होता था कि उसकी दशा बहुत सम्पन्न नहीं है। हाँ, उसके मुख से तेज और मनस्विता झलक रही थी। उसकी आँखों पर ऐनक न थी, न मूँछें मुड़ी हुई थीं, न बाल सँवारे हुए थे, कलाई पर घड़ी न थी, यहाँ तक कि कोट के जेब में फाउन्टेनपेन भी न था। या तो वह सिद्धान्तों का प्रेमी था, या आडम्बरों का शत्रु।

युवक विचारों में मौन उसी पर्वतमाला की ओर देख रहा था कि सहसा बादल की गरज से भयंकर ध्वनि सुनायी दी। नदी का मधुर गान उस भीषण नाद में डूब गया। ऐसा मालूम हुआ, मानो उस भयंकर नाद ने पर्वतों को भी हिला दिया है, मानो पर्वतों में कोई घोर संग्राम छिड़ गया है। यह रेलगाड़ी थी, जो नदी पर बने हुए पुल से चली आ रही थी।

एक युवती कमरे से निकल कर छत पर आयी और बोली—आज अभी से गाड़ी आ गयी। इसे भी आज ही वैर निभाना था।

युवक ने युवती का हाथ पकड़ कर कहा—प्रिये ! मेरा जी चाहता है; कहीं न जाऊँ; मैंने निश्चय कर लिया है। मैंने तुम्हारी खातिर से हामी भर ली थी, पर अब जाने की इच्छा नहीं होती। तीन साल कैसे कटेंगे।

युवती ने कातर स्वर में कहा—तीन साल के वियोग के बाद फिर तो जीवनपर्यन्त कोई बाधा न खड़ी होगी। एक बार जो निश्चय कर लिया है, उसे पूरा ही कर डालो, अनंत सुख की आशा में मैं सारे कष्ट झेल लूँगी।

यह कहते हुए युवती जलपान लाने के बहाने से फिर भीतर चली गई। आँसुओं का आवेग उसके बाबू से बाहर हो गया। इन दोनों प्राणियों के वैवाहिक जीवन की यह पहली ही वर्षगाँठ थी। युवक बम्बई-विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि लेकर नागपुर के एक कालेज में अध्यापक था। नवीन युग की नयी-नयी वैवाहिक और सामाजिक क्रांतियों ने उसे लेशमात्र भी विचलित न किया था। पुरानी प्रथाओं से ऐसी प्रगाढ़ ममता कदाचित् वृद्धजनों को भी कम होगी। प्रोफेसर हो जाने के बाद उसके माता-पिता ने इस बालिका से उसका विवाह कर दिया था। प्रथानुसार ही उस आँखमिचौनी के खेल में उन्हें प्रेम का रत्न मिल गया। केवल छुट्टियों में यहाँ पहली गाड़ी से आता और आखिरी गाड़ी से जाता। ये दो-चार दिन मीठे स्वप्न के समान कट जाते थे। दोनों बालकों की भाँति रो-रोकर बिदा होते। इसी कोठे पर खड़ी होकर वह उसको देखा करती, जब तक निर्दयी पहाड़ियाँ उसे आड़ में न कर लेतीं। पर अभी साल भी न गुजरने पाया था कि वियोग ने अपना षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया। केशव को विदेश जा कर शिक्षा पूरी करने के लिए एक वृत्ति मिल गयी। मित्रों ने बधाइयाँ दीं। किसके ऐसे भाग्य हैं, जिसे बिना माँगे स्वभाग्य-निर्माण का ऐसा अवसर प्राप्त हो। केशव बहुत प्रसन्न था। वह इसी दुविधा में पड़ा हुआ घर आया। माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों ने इस यात्रा का घोर विरोध किया। नगर में जितनी बधाइयाँ मिली थीं, यहाँ उससे कहीं अधिक बाधाएँ मिलीं। किन्तु सुभद्रा की उच्चाकांक्षाओं की सीमा न थी। वह कदाचित् केशव को इन्द्रासन पर बैठा हुआ देखना चाहती थी। उसके सामने तब भी वही पति सेवा का आदर्श होता था। वह तब भी उसके सिर में तेल डालेगी, उसकी धोती छाँटेगी, उसके पाँव दबायेगी और उसके पंखा झलेगी। उपासक की महत्वाकांक्षा उपास्य ही के प्रति होती है। वह उसको सोने का मन्दिर बनवायेगा, उसके सिंहासन को रत्नों से सजायेगा, स्वर्ग से पुष्प लाकर भेंट करेगा, पर वह स्वयं वही उपासक रहेगा। जटा के स्थान पर मुकुट या कौपीन की जगह पिताम्बर की लालसा उसे कभी नहीं सताती। सुभद्रा ने उस वक्त तक दम न लिया जब तक केशव ने विलायत जाने का वादा न कर लिया, माता-पिता ने उसे कलकिनी और न जाने क्या-क्या कहा, पर अन्त में सहमत हो गए। सब तैयारियाँ हो गयीं। स्टेशन समीप ही था। यहाँ गाड़ी देर तक खड़ी रहती थी। स्टेशनों के समीपस्थ गाँव के निवासियों के लिए गाड़ी का आना शत्रु का धावा नहीं, मित्र का पदार्पण है। गाड़ी आ गयी। सुभद्रा जलपान बना कर पति का हाथ धुलाने आयी थी। इस समय केशव की प्रेम-कातर आपत्ति ने उसे एक क्षण के लिए विचलित कर दिया। हा ! कौन जानता है, तीन साल में क्या हो जाय ! मन में एक आवेश उठा—कह दूँ, प्यारे मत जाओ। थोड़ी ही खायेंगे, मोटा ही पहनेंगे, रो-रोकर दिन तो न कटेंगे। कभी केशव के आने में एक-आधा महीना लग जाता था, तो वह विकल हो जाया करता था। यही जी चाहता था, उड़कर उनके पास पहुँच जाऊँ। फिर ये निर्दयी तीन वर्ष कैसे कटेंगे ! लेकिन उसने कठोरता से इन निराशाजनक भावों को ठुकरा दिया और काँपते कंठ से बोली—जी तो मेरा भी यही चाहता है। जब तीन साल का अनुमान करती हूँ, तो एक कल्प-सा मालूम होता है। लेकिन जब विलायत में तुम्हारे सम्मान और आदर का ध्यान

करती हूँ, तो ये तीन साल तीन दिन से मालूम होते हैं। तुम तो जहाज पर पहुँचते ही मुझे भूल जाओगे। नये-नये दृश्य तुम्हारे मनोरंजन के लिए आ खड़े होंगे। यूरोप पहुँचकर विद्वानों के सत्संग में तुम्हें घर की याद भी न आयेगी। मुझे तो रोने के सिवा और कोई धंधा नहीं है। यही स्मृतियाँ ही मेरे जीवन का आधार होंगी। लेकिन क्या करूँ, जीवन की भोग-लालसा तो नहीं मानती। फिर जिस वियोग का अंत जीवन की सारी विभूतियाँ अपने साथ लायेगा, वह वास्तव में तपस्या है। तपस्या के बिना तो वरदान नहीं मिलता।

केशव को भी अब ज्ञात हुआ कि क्षणिक मोह के आवेश में स्वभाग्य निर्माण का ऐसा अच्छा अवसर त्याग देना मूर्खता है। खड़े होकर बोले—रोना-धोना मत, नहीं तो मेरा जी न लगेगा।

सुभद्रा ने उसका हाथ पकड़कर हृदय से लगाते हुए उनके मुँह की ओर सजल नेत्रों से देखा और बोली—पत्र बराबर भेजते रहना।

सुभद्रा ने फिर आँखें में आँसू भरे हुए मुस्करा कर कहा—देखना विलायती मिसों के जाल में न फँस जाना।

केशव फिर चारपाई पर बैठ गया और बोला—तुम्हें यह संदेह है, तो लो, मैं जाऊँगा ही नहीं।

सुभद्रा ने उसके गले में बाँहे डाल कर विश्वास-पूर्ण दृष्टि से देखा और बोली—मैं दिल्लगी कर रही थी।

‘अगर इन्द्रलोक की अप्सरा भी आ जाये, तो आँख उठाकर न देखूँ। ब्रह्मा ने ऐसी दूसरी सृष्टी की ही नहीं।’

‘बीच में कोई छुट्टी मिले, तो एक बार चले आना।’

‘नहीं प्रिये, बीच में शायद छुट्टी न मिलेगी। मगर जो मैंने सुना कि तुम रो-रोकर घुली जाती हो, दाना-पानी छोड़ दिया है, तो मैं अवश्य चला आऊँगा ये फूल जरा भी कुम्हलाने न पायें।’

दोनों गले मिल कर बिदा हो गये। बाहर सम्बन्धियों और मित्रों का एक समूह खड़ा था। केशव ने बड़ों के चरण छुए, छोटी को गले लगाया और स्टेशन की ओर चले। मित्रगण स्टेशन तक पहुँचाने गये। एक क्षण में गाड़ी यात्री को लेकर चल दी।

उधर केशव गाड़ी में बैठा हुआ पहाड़ियों की बहार देख रहा था; इधर सुभद्रा भूमि पर पड़ी सिसकियाँ भर रही थी।

2

दिन गुजरने लगे। उसी तरह, जैसे बीमारी के दिन कटते हैं—दिन पहाड़ रात काली बला। रात-भर मनाते गुजरती थी कि किसी तरह भोर होता, तो मनाने लगती कि जल्दी शाम हो। मैके गयी कि वहाँ जी बहलेगा। दस-पाँच दिन परिवर्तन का कुछ असर हुआ, फिर उनसे भी बुरी दशा हुई, भाग कर ससुराल चली आयी। रोगी करवट बदलकर आराम का अनुभव करता है।

पहले पाँच-छह महीनों तक तो केशव के पत्र पंद्रहवें दिन बराबर मिलते रहे। उसमें वियोग के दुःख कम, नये-नये दृश्यों का वर्णन अधिक होता था। पर सुभद्रा संतुष्ट थी। पत्र लिखती, तो विरह-व्यथा के सिवा उसे कुछ सूझता ही न था। कभी-कभी जब जी बेचैन हो जाता, तो पछताती कि व्यर्थ जाने दिया। कहीं एक दिन मर जाऊँ, तो उनके दर्शन भी न हों।

लेकिन छठे महीने से पत्रों में भी विलम्ब होने लगा। कई महीने तक तो महीने में एक पत्र आता रहा, फिर वह भी बंद हो गया। सुभद्रा के चार-छह पत्र पहुँच जाते, तो एक पत्र आ जाता; वह भी बेदिली से लिखा हुआ—काम की अधिकता और समय के अभाव के रोने से भरा हुआ। एक वाक्य भी ऐसा नहीं, जिससे हृदय को शांति हो, जो टपकते हुए दिल पर मरहम रखे। हा ! आदि से अन्त तक ‘प्रिये’ शब्द का नाम नहीं। सुभद्रा अधीर हो उठी। उसने योरप-यात्रा का निश्चय कर लिया। वह सारे कष्ट सह लेगी, सिर पर जो कुछ पड़ेगी सह लेगी; केशव को आँखों से देखती रहेगी। वह इस बात को उनसे गुप्त रखेगी, उनकी कठिनाइयों को और न बढ़ायेगी, उनसे बोलेगी भी नहीं ! केवल उन्हें कभी-कभी आँख भर कर देख लेगी। यही उसकी शांति के लिए काफी होगा। उसे क्या मालूम था कि उसका केशव उसका नहीं रहा। वह अब एक दूसरी ही कामिनी के प्रेम का भिखारी है।

सुभद्रा कई दिनों तक इस प्रस्ताव को मन में रखे हुए सेती रही। उसे किसी प्रकार की शंका न होती थी। समाचार-पत्रों के पढ़ते रहने से उसे समुद्री यात्रा का हाल मालूम होता रहता था। एक दिन उसने अपने सास-ससुर के सामने अपना निश्चय प्रकट किया। उन लोगों ने बहुत समझाया; रोकने की बहुत चेष्टा की; लेकिन सुभद्रा ने अपना हठ न छोड़ा। आखिर जब लोगों ने देखा कि यह किसी तरह नहीं मानती, तो राजी

हो गये। मैकेवाले समझा कर हार गये। कुछ रुपये उसने स्वयं जमा कर रखे थे, कुछ ससुराल में मिले। माँ-बाप ने भी मदद की। रास्ते के खर्च की चिंता न रही। इंग्लैंड पहुँचकर वह क्या करेगी, इसका अभी उसने कुछ निश्चय न किया। इतना जानती थी कि परिश्रम करने वाले को रोटियों की कहीं कमी नहीं रहती।

विदा होते समय सास और ससुर दोनों स्टेशन तक आए। जब गाड़ी ने सीटी दी, तो सुभद्रा ने हाथ जोड़कर कहा—मेरे जाने का समाचार वहाँ न लिखिएगा। नहीं तो उन्हें चिंता होगी और पढ़ने में उनका जी न लगेगा।

ससुर ने आश्वासन दिया। गाड़ी चल दी।

3

लंदन के उस हिस्से में, जहाँ इस समृद्धि के समय में भी दरिद्रता का राज्य है, ऊपर के एक छोटे से कमरे में सुभद्रा एक कुर्सी पर बैठी है। उसे यहाँ आये आज एक महीना हो गया है। यात्रा के पहले उसके मन में जितनी शंकाएँ थी, सभी शान्त होती जा रही हैं। बम्बई-बंदर में जहाज पर जगह पाने का प्रश्न बड़ी आसानी से हल हो गया। वह अकेली औरत न थी जो योरोप जा रही हो। पाँच-छह स्त्रियाँ और भी उसी जहाज से जा रही थीं। सुभद्रा को न जगह मिलने में कोई कठिनाई हुई, न मार्ग में। यहाँ पहुँचकर और स्त्रियों से संग छूट गया। कोई किसी विद्यालय में चली गयी; दो-तीन अपने पतियों के पास चली गयीं, जो यहाँ पहले आ गये थे। सुभद्रा ने इस मुहल्ले में एक कमरा ले लिया। जीविका का प्रश्न भी उसके लिए बहुत कठिन न रहा। जिन महिलाओं के साथ वह आयी थी, उनमें कई उच्च-अधिकारियों की पत्नियाँ थी। कई अच्छे-अच्छे अँगरेज घरनों से उनका परिचय था। सुभद्रा को दो महिलाओं को भारतीय संगीत और हिन्दी-भाषा सिखाने का काम मिल गया। शेष समय में वह कई भारतीय महिलाओं के कपड़े सीने का काम कर लेती है। केशव का निवास-स्थान यहाँ से निकट है, इसीलिए सुभद्रा ने इस मुहल्ले को पसंद किया है। कल केशव उसे दिखायी दिया था। ओह ! उन्हें 'बस' से उतरते देखकर उसका चित्त कितना आतुर हो उठा था। बस यही मन में आता था कि दौड़कर उनके गले से लिपट जाय और पूछे—क्यों जी, तुम यहाँ आते ही बदल गए। याद है, तुमने चलते समय क्या-क्या वादा किये थे? उसने बड़ी मुश्किल से अपने को रोका था। तब से इस वक्त तक उसे मानो नशा-सा छाया हुआ है, वह उनके इतने समीप है ! चाहे रोज उन्हें देख सकती है, उनकी बातें सुन सकती है; हाँ, स्पर्श तक कर सकती है। अब यह उससे भाग कर कहाँ जायेंगे? उनके पत्रों की अब उसे क्या चिन्ता है। कुछ दिनों के बाद सम्भव है वह उनसे होटल के नौकरों से जो चाहे, पूछ सकती है।

संध्या हो गयी थी। धुएँ में बिजली की लालटनें रोती आँखों की भाँति ज्योतिहीन-सी हो रही थीं। गली में स्त्री-पुरुष सैर करने जा रहे थे। सुभद्रा सोचने लगी—इन लोगों को आमोद से कितना प्रेम है, मानो किसी को चिन्ता ही नहीं, मानो सभी सम्पन्न हैं, जब ही ये लोग इतने एकाग्र होकर सब काम कर सकते हैं। जिस समय जो काम करने है जी-जान से करते हैं। खेलने की उमंग है, तो काम करने की भी उमंग है और एक हम हैं कि न हँसते हैं, न रोते हैं, मौन बने बैठे रहते हैं। स्फूर्ति का कहीं नाम नहीं, काम तो सारे दिन करते हैं, भोजन करने की फुरसत भी नहीं मिलती, पर वास्तव में चौथाई समय भी काम में नहीं लगते। केवल काम करने का बहाना करते हैं। मालूम होता है, जाति प्राण-शून्य हो गयी हैं।

सहसा उसने केशव को जाते देखा। हाँ, केशव ही था। कुर्सी से उठकर बरामदे में चली आयी। प्रबल इच्छा हुई कि जाकर उनके गले से लिपट जाय। उसने अगर अपराध किया है, तो उन्हीं के कारण तो। यदि वह बराबर पत्र लिखते जाते, तो वह क्यों आती?

लेकिन केशव के साथ यह युवती कौन है? अरे ! केशव उसका हाथ पकड़े हुए है। दोनों मुस्करा-मुस्करा कर बातें करते चले जाते हैं। यह युवती कौन है?

सुभद्रा ने ध्यान से देखा। युवती का रंग साँवला था। वह भारतीय बालिका थी। उसका पहनावा भारतीय था। इससे ज्यादा सुभद्रा को और कुछ न दिखायी दिया। उसने तुरंत जूते पहने, द्वार बन्द किया और एक क्षण में गली में आ पहुँची। केशव अब दिखायी न देता था, पर वह जिधर गया था, उधर ही वह बड़ी तेजी से लपकी चली जाती थी। यह युवती कौन है? वह उन दोनों की बातें सुनना चाहती थी, उस युवती को देखना चाहती थी उसके पाँव इतनी तेज से उठ रहे थे मानो दौड़ रही हो। पर इतनी जल्दी दोनों कहाँ अदृश्य हो गये? अब तक उसे उन लोगों के समीप पहुँच जाना चाहिए था। शायद दोनों किसी 'बस' पर जा बैठे।

अब वह गली समाप्त करके एक चौड़ी सड़क पर आ पहुँची थी। दोनों तरफ बड़ी-बड़ी जगमगाती हुई दुकानें थी, जिनमें संसार की विभूतियाँ गर्व से फूली उठी थी। कदम-कदम पर होटल और रेस्ट्रॉ थे। सुभद्रा दोनों ओर नेत्रों से ताकती, पगपग पर भ्रांति के कारण मचलती कितनी दूर निकल गयी, कुछ खबर नहीं।

फिर उसने सोचा—यों कहाँ तक चली जाऊँगी? कौन जाने किधर गये। चलकर फिर अपने बरामदे से देखूँ। आखिर इधर से गये हैं, तो इधर से लौटेंगे भी। यह ख्याल आते ही वह घूम पड़ी ओर उसी तरह दौड़ती हुई अपने स्थान की ओर चली। जब वहाँ पहुँची, तो बारह बज गये थे। और इतनी देर उसे चलते ही गुजरा ! एक क्षण भी उसने कहीं विश्राम नहीं किया।

वह ऊपर पहुँची, तो गृह-स्वामिनी ने कहा—तुम्हारे लिए बड़ी देर से भोजन रखा हुआ है।

सुभद्रा ने भोजन अपने कमरे में मँगा लिया पर खाने की सुधि किसे थी ! वह उसी बरामदे में उसी तरफ टकटकी लगाये खड़ी थी, जिधर से केशव गया।

एक बज गया, दो बजा, फिर भी केशव नहीं लौटा। उसने मन में कहा—वह किसी दूसरे मार्ग से चले गये। मेरा यहाँ खड़ा रहना व्यर्थ है। चलूँ, सो रहूँ। लेकिन फिर ख्याल आ गया, कहीं आ न रहे हों।

मालूम नहीं, उसे कब नींद आ गयी।

4

दूसरे दिन प्रातःकाल सुभद्रा अपने काम पर जाने को तैयार हो रही थी कि एक युवती रेशमी साड़ी पहने आकर खड़ी हो गयी और मुस्कराकर बोली—क्षमा कीजिएगा, मैंने बहुत सबेरे आपको कष्ट दिया। आप तो कहीं जाने को तैयार मामूल होती हैं।

सुभद्रा ने एक कुर्सी बढ़ाते हुए कहा—हाँ, एक काम से बाहर जा रही थी। मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?

यह कहते हुए सुभद्रा ने युवती को सिर से पाँव तक उसी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, जिससे स्त्रियाँ ही देख सकती हैं। सौंदर्य की किसी परिभाषा से भी उसे सुन्दरी न कहा जा सकता था। उसका रंग साँवला, मुँह कुछ चौड़ा, नाक कुछ चिपटी, कद भी छोटा और शरीर भी कुछ स्थूल था। आँखों पर ऐनक लगी हुई थी। लेकिन इन सब कारणों के होते हुए भी उसमें कुछ ऐसी बात थी, जो आँखों को अपनी ओर खींच लेती थी। उसकी वाणी इतनी मधुर, इतनी संयमित, इतनी विनम्र थी कि जान पड़ता था किसी देवी के वरदान हों। एक-एक अंग से प्रतिमा विकीर्ण हो रही थी। सुभद्रा उसके सामने हलकी एवं तुच्छ मालूम होती थी। युवती ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—

‘अगर मैं भूलती हूँ, तो मुझे क्षमा कीजिएगा। मैंने सुना है कि आप कुछ कपड़े भी सीती हैं, जिसका प्रमाण यह है कि यहाँ सीविंग मशीन मौजूद है।’

सुभद्रा—मैं दो लेड़ियों को भाषा पढ़ाने जाया करती हूँ, शेष समय मैं कुछ सिलाई भी कर लेती हूँ। आप कपड़े लायी हैं।

युवती—नहीं, अभी कपड़े नहीं लायी। यह कहते हुए उसने लज्जा से सिर झुका कर मुस्काराते हुए कहा—बात यह है कि मेरी शादी होने जा रही है। मैं वस्त्राभूषण सब हिंदुस्तानी रखना चाहती हूँ। विवाह भी वैदिक रीति से ही होगा। ऐसे कपड़े यहाँ आप ही तैयार कर सकती हैं।

सुभद्रा ने हँसकर कहा—मैं ऐसे अवसर पर आपके जोड़े तैयार करके अपने को धन्य समझूँगी। वह शुभ तिथि कब है?

युवती ने सकुचाते हुए कहा—वह तो कहते हैं, इसी सप्ताह में हो जाय; पर मैं उन्हें टालती आती हूँ। मैंने तो चाहा था कि भारत लौटने पर विवाह होता, पर वह इतने उतावले हो रहे हैं कि कुछ कहते नहीं बनता। अभी तो मैंने यही कह कर टाला है कि मेरे कपड़े सिल रहे हैं।

सुभद्रा—तो मैं आपके जोड़े बहुत जल्द दे दूँगी।

युवती ने हँसकर कहा—मैं तो चाहती थी आप महीनों लगा देतीं।

सुभद्रा—वाह, मैं इस शुभ कार्य में क्यों विघ्न डालने लगी? मैं इसी सप्ताह में आपके कपड़े दे दूँगी, और उनसे इसका पुरस्कार लूँगी।

युवती खिलखिलाकर हँसी। कमरे में प्रकाश की लहरें-सी उठ गयीं। बोली—इसके लिए तो पुरस्कार वह देंगे, बड़ी खुशी से देंगे और तुम्हारे कृतज्ञ होंगे। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि विवाह के बंधन में पड़ूँगी ही नहीं; पर

उन्होंने मेरी प्रतिज्ञा तोड़ दी। अब मुझे मालूम हो रहा है कि प्रेम की बेड़ियाँ कितनी आनंदमय होती हैं। तुम तो अभी हाल ही में आयी हो। तुम्हारे पति भी साथ होंगे?

सुभद्रा ने बहाना किया। बोली—वह इस समय जर्मनी में हैं। संगीत से उन्हें बहुत प्रेम है। संगीत ही का अध्ययन करने के लिए वहाँ गये हैं।

‘तुम भी संगीत जानती हो?’

‘बहुत थोड़ा।’

‘केशव को संगीत बहुत प्रेम है।’

केशव का नाम सुनकर सुभद्रा को ऐसा मालूम हुआ, जैसे बिच्छू ने काट लिया हो। वह चौंक पड़ी।

युवती ने पूछा—आप चौंक कैसे गयीं? क्या केशव को जानती हो?

सुभद्रा ने बात बनाकर कहा—नहीं, मैंने यह नाम कभी नहीं सुना। वह यहाँ क्या करते हैं?

सुभद्रा का खयाल आया, क्या केशव किसी दूसरे आदमी का नाम नहीं हो सकता? इसलिए उसने यह प्रश्न किया। उसी जवाब पर उसकी जिंदगी का फैसला था।

युवती ने कहा—यहाँ विद्यालय में पढ़ते हैं। भारत सरकार ने उन्हें भेजा है। अभी साल-भर भी तो आए नहीं हुआ। तुम देखकर प्रसन्न होगी। तेज और बुद्धि की मूर्ति समझ लो। यहाँ के अच्छे-अच्छे प्रोफेसर उनका आदर करते हैं। ऐसा सुन्दर भाषण तो मैंने किसी के मुँह से सुना ही नहीं। जीवन आदर्श है। मुझसे उन्हें क्यों प्रेम हो गया है, मुझे इसका आश्चर्य है। मुझमें न रूप है, न लावण्य। ये मेरा सौभाग्य है। तो मैं शाम को कपड़े लेकर आऊँगी।

सुभद्रा ने मन में उठते हुए वेग को सभाल कर कहा—अच्छी बात है।

जब युवती चली गयी, तो सुभद्रा फूट-फूटकर रोने लगी। ऐसा जान पड़ता था, मानो देह में रक्त ही नहीं, मानो प्राण निकल गये हैं वह कितनी निःसहाय, कितनी दुर्बल है, इसका आज अनुभव हुआ। ऐसा मालूम हुआ, मानों संसार में उसका कोई नहीं है। अब उसका जीवन व्यर्थ है। उसके लिए अब जीवन में रोने के सिवा और क्या है? उनकी सारी ज्ञानेंद्रियाँ शिथिल-सी हो गयी थीं मानों वह किसी ऊँचे वृक्ष से गिर पड़ी हो। हा ! यह उसके प्रेम और भक्ति का पुरस्कार है। उसने कितना आग्रह करके केशव को यहाँ भेजा था? इसलिए कि यहाँ आते ही उसका सर्वनाश कर दें?

पुरानी बातें याद आने लगी। केशव की वह प्रेमातुर आँखें सामने आ गयीं। वह सरल, सहज मूर्ति आँखों के सामने नाचने लगी। उसका जरा सिर धमकता था, तो केशव कितना व्याकुल हो जाता था। एक बार जब उसे फसली बुखार आ गया था, तो केशव घबरा कर, पंद्रह दिन की छुट्टी लेकर घर आ गया था और उसके सिरहाने बैठा रात-भर पंखा झलता रहा था। वही केशव अब इतनी जल्द उससे ऊब उठा! उसके लिए सुभद्रा ने कौन-सी बात उठा रखी। वह तो उसी का अपना प्राणाधार, अपना जीवन धन, अपना सर्वस्व समझती थी। नहीं-नहीं, केशव का दोष नहीं, सारा दोष इसी का है। इसी ने अपनी मधुर बातों से उन्हें वशीभूत कर लिया है। इसकी विद्या, बुद्धि और वाक्पटुता ही ने उनके हृदय पर विजय पायी है। हाय! उसने कितनी बार केशव से कहा था, मुझे भी पढ़ाया करो, लेकिन उन्होंने हमेशा यही जवाब दिया, तुम जैसी हो, मुझे वैसी ही पसन्द हो। मैं तुम्हारी स्वाभाविक सरलता को पढ़ा-पढ़ा कर मिटाना नहीं चाहता। केशव ने उसके साथ कितना बड़ा अन्याय किया है! लेकिन यह उनका दोष नहीं, यह इसी यौवन-मतवाली छोकरी की माया है।

सुभद्रा को इस ईर्ष्या और दुःख के आवेश में अपने काम पर जाने की सुध न रही। वह कमरे में इस तरह टहलने लगी, जैसे किसी ने जबरदस्ती उसे बन्द कर दिया हो। कभी दोनों मुट्ठियाँ बँध जातीं, कभी दाँत पीसने लगती, कभी आँठ काटती। उन्माद की-सी दशा हो गयी। आँखों में भी एक तीव्र ज्वाला चमक उठी। ज्यों-ज्यों केशव के इस निष्ठुर आघात को सोचती, उन कष्टों को याद करती, जो उसने उसके लिए झेले थे, उसका चित्त प्रतिकार के लिए विकल होता जाता था। अगर कोई बात हुई होती, आपस में कुछ मनोमालिन्य का लेश भी होता, तो उसे इतना दुःख न होता। यह तो उसे ऐसा मालूम होता था कि मानों कोई हँसते-हँसते अचानक गले पर चढ़ बैठे। अगर वह उनके योग्य नहीं थी, तो उन्होंने उससे विवाह ही क्यों किया था? विवाह करने के बाद भी उसे क्यों न ठुकरा दिया था? क्यों प्रेम का बीज बोया था? और आज जब वह बीच पल्लवों से लहराने लगा, उसकी जड़ें उसके अन्तस्तल के एक-एक अणु में प्रविष्ट हो गयीं, उसका रक्त उसका सारा उत्सर्ग वृक्ष को सींचने और पालने में प्रवृत्त हो गया, तो वह आज उसे उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं। क्या हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए बिना वृक्ष उखड़ जायगा?

सहसा उसे एक बात याद आ गयी। हिंसात्मक संतोष से उसका उत्तेजित मुख-मण्डल और भी कठोर हो गया। केशव ने अपने पहले विवाह की बात इस युवती से गुप्त रखी होगी ! सुभद्रा इसका भंडाफोड़ करके केशव के सारे मंसूबों को धूल में मिला देगी। उसे अपने ऊपर क्रोध आया कि युवती का पता क्यों न पूछ लिया। उसे एक पत्र लिखकर केशव की नीचता, स्वार्थपरता और कायरता की कलई खोल देती—उसके पांडित्य, प्रतिभा और प्रतिष्ठा को धूल में मिला देती। खैर, संध्या-समय तो वह कपड़े लेकर आयेगी ही। उस समय उससे सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दूँगी।

5

सुभद्रा दिन-भर युवती का इन्तजार करती रही। कभी बरामदे में आकर इधर-उधर निगाह दौड़ाती, कभी सड़क पर देखती, पर उसका कहीं पता न था। मन में झुंझलाती थी कि उसने क्यों उसी वक्त सारा वृत्तांत न कह सुनाया।

केशव का पता उसे मालूम था। उस मकान और गली का नम्बर तक याद था, जहाँ से वह उसे पत्र लिखा करता था। ज्यों-ज्यों दिन ढलने लगा और युवती के आने में विलम्ब होने लगा, उसके मन में एक तरंगी-सी उठने लगी कि जाकर केशव को फटकारे, उसका सारा नशा उतार दे, कहे—तुम इतने भयंकर हिंसक हो, इतने महान धूर्त हो, यह मुझे मालूम न था। तुम यही विद्या सीखने यहाँ आये थे। तुम्हारे पांडित्य की यही फल है ! तुम एक अबला को जिसने तुम्हारे ऊपर अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, यों छल सकते हो। तुममें क्या मनुष्यता नाम को भी नहीं रह गयी? आखिर तुमने मेरे लिए क्या सोचा है। मैं सारी जिंदगी तुम्हारे नाम को रोती रहूँ ! लेकिन अभिमान हर बार उसके पैरों को रोक लेता। नहीं, जिसने उसके साथ ऐसा कपट किया है, उसका इतना अपमान किया है, उसके पास वह न जायगी। वह उसे देखकर अपने आँसुओं को रोक सकेगी या नहीं, इसमें उसे संदेह था, और केशव के सामने वह रونا नहीं चाहती थी। अगर केशव उससे घृणा करता है, तो वह भी केशव से घृणा करेगी। संध्या भी हो गयी, पर युवती न आयी। बतियाँ भी जलीं, पर उसका पता नहीं।

एकाएक उसे अपने कमरे के द्वार पर किसी के आने की आहट मालूम हुई। वह कूदकर बाहर निकल आई। युवती कपड़ों का एक पुलिंदा लिए सामने खड़ी थी। सुभद्रा को देखते ही बोली—क्षमा करना, मुझे आने में देर हो गयी। बात यह है कि केशव को किसी बड़े जरूरी काम से जर्मनी जाना है। वहाँ उन्हें एक महीने से ज्यादा लग जायगा। वह चाहते हैं कि मैं भी उनके साथ चलूँ। मुझसे उन्हें अपनी थीसिस लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी। बर्लिन के पुस्तकालयों को छानना पड़ेगा। मैंने भी स्वीकार कर लिया है। केशव की इच्छा है कि जर्मनी जाने के पहले हमारा विवाह हो जाय। कल संध्या समय संस्कार हो जायगा। अब ये कपड़े मुझे आप जर्मनी से लौटने पर दीजिएगा। विवाह के अवसर पर हम मामूली कपड़े पहन लेंगे। और क्या करती? इसके सिवा कोई उपाय न था, केशव का जर्मन जाना अनिवार्य है।

सुभद्रा ने कपड़ों को मेज पर रख कर कहा—आपको धोखा दिया गया है।

युवती ने घबरा कर पूछा—धोखा? कैसा धोखा? मैं बिल्कुल नहीं समझती। तुम्हारा मतलब क्या है?

सुभद्रा ने संकोच के आवरण को हटाने की चेष्टा करते हुए कहा—केशव तुम्हें धोखा देकर तुमसे विवाह करना चाहता है।

‘केशव ऐसा आदमी नहीं है, जो किसी को धोखा दे। क्या तुम केशव को जानती हो?’

‘केशव ने तुमसे अपने विषय में सब-कुछ कह दिया है?’

‘सब-कुछ।’

‘मेरा तो यही विचार है कि उन्होंने एक बात भी नहीं छिपाई?’

‘तुम्हें मालूम है कि उसका विवाह हो चुका है?’

युवती की मुख-ज्योति कुछ मलिन पड़ गयी, उसकी गर्दन लज्जा से झुक गयी। अटक-अटक कर बोली—हाँ, उन्होंने मुझसे... यह बात कही थी।

सुभद्रा परास्त हो गयी। घृणा-सूचक नेत्रों से देखती हुई बोली—यह जानते हुए भी तुम केशव से विवाह करने पर तैयार हो।

युवती ने अभिमान से देखकर कहा—तुमने केशव को देखा है?

‘नहीं, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।’

‘फिर, तुम उन्हें कैसे जानती हो?’

‘मेरे एक मित्र ने मुझसे यह बात कही है, वह केशव को जानता है।’

‘अगर तुम एक बार केशव को देख लेतीं, एक बार उससे बातें कर लेतीं, तो मुझसे यह प्रश्न न करती। एक नहीं, अगर उन्होंने एक सौ विवाह किये होते, तो मैं इनकार न करती। उन्हें देखकर मैं अपने को बिलकुल भूल जाती हूँ। अगर उनसे विवाह न करूँ, तो फिर मुझे जीवन-भर अविवाहित ही रहना पड़ेगा। जिस समय वह मुझसे बातें करने लगते हैं, मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरी आत्मा पुष्पकी भाँति खिली जा रही है। मैं उसमें प्रकाश और विकास का प्रत्यक्ष अनुभव करती हूँ। दुनिया चाहे जितना हँसे, चाहे जितनी निन्दा करे, मैं केशव को अब नहीं छोड़ सकती। उनका विवाह हो चुका है, वह सत्य है; पर उस स्त्री से उनका मन कभी न मिला। यथार्थ मैं उनका विवाह अभी नहीं हुआ। वह कोई साधारण, अर्द्धशिक्षिता बालिका है। तुम्हीं सोचो, केशव जैसा विद्वान, उदारचेता, मनस्वी पुरुष ऐसी बालिका के साथ कैसे प्रसन्न रह सकता है? तुम्हें कल मेरे विवाह में चलना पड़ेगा।

सुभद्रा का चेहरा तमतमाया जा रहा था। केशव ने उसे इतने काले रंगों में रंगा है, यह सोच कर उसका रक्त खौल रहा था। जी मैं आता था, इसी क्षण इसको दुत्कार दूँ, लेकिन उसके मन में कुछ और ही मंसूबे पैदा होने लगे थे। उसने गंभीर, पर उदासीनता के भाव से पूछा—केशव ने कुछ उस स्त्री के विषय में नहीं कहा?

युवती ने तत्परता से कहा—घर पहुँचने पर वह उससे केवल यही कह देंगे कि हम और तुम अब स्त्री और पुरुष नहीं रह सकते। उसके भरण-पोषण का वह उसके इच्छानुसार प्रबंध कर देंगे, इसके सिवा वह और क्या कर सकते हैं। हिन्दू-नीति में पति-पत्नी में विच्छेद नहीं हो सकता। पर केवल स्त्री को पूर्ण रीति से स्वाधीन कर देने के विचार से वह ईसाई या मुसलमान होने पर भी तैयार हैं। वह तो अभी उसे इसी आशय का एक पत्र लिखने जा रहे थे, पर मैंने ही रोक लिया। मुझे उस अभागिनी पर बड़ी दया आती है, मैं तो यहाँ तक तैयार हूँ कि अगर उसकी इच्छा हो तो वह भी हमारे साथ रहे। मैं उसे अपनी बहन समझूँगी। किंतु केशव इससे सहमत नहीं होते।

सुभद्रा ने व्यंग्य से कहा—रोटी-कपड़ा देने को तैयार ही हैं, स्त्री को इसके सिवा और क्या चाहिए?

युवती ने व्यंग्य की कुछ परवाह न करके कहा—तो मुझे लौटने पर कपड़े तैयार मिलेंगे न?

सुभद्रा—हाँ, मिल जायेंगे।

युवती—कल तुम संध्या समय आओगी?

सुभद्रा—नहीं, खेद है, अवकाश नहीं है।

युवती ने कुछ न कहा। चली गयी।

6

सुभद्रा कितना ही चाहती थी कि समस्या पर शांतचित्त होकर विचार करे, पर हृदय में मानों ज्वाला-सी दहक रही थी! केशव के लिए वह अपने प्राणों का कोई मूल्य नहीं समझी थी। वही केशव उसे पैरों से ठुकरा रहा है। यह आघात इतना आकस्मिक, इतना कठोर था कि उसकी चेतना की सारी कोमलता मूर्च्छित हो गयी ! उसके एक-एक अणु प्रतिकार के लिए तड़पने लगा। अगर यही समस्या इसके विपरीत होती, तो क्या सुभद्रा की गरदन पर छुरी न फिर गयी होती? केशव उसके खून का प्यासा न हो जाता? क्या पुरुष हो जाने से ही सभी बातें क्षम्य और स्त्री हो जाने से सभी बातें अक्षम्य हो जाती है? नहीं, इस निर्णय को सुभद्रा की विद्रोही आत्मा इस समय स्वीकार नहीं कर सकती। उसे नारियों के ऊँचे आदर्शों की परवाह नहीं है। उन स्त्रियों में आत्माभिमान न होगा? वे पुरुषों के पैरों की जूतियाँ बनकर रहने ही में अपना सौभाग्य समझती होंगी। सुभद्रा इतनी आत्मभिमान-शून्य नहीं है। वह अपने जीते-जी यह नहीं देख सकती थी कि उसका पति उसके जीवन की सर्वनाश करके चैन की बंशी बजाये। दुनिया उसे हत्यारिनी, पिशाचिनी कहेगी, कहे—उसको परवाह नहीं। रह-रहकर उसके मन में भयंकर प्रेरणा होती थी कि इसी समय उसके पास चली जाय, और इसके पहिले कि वह उस युवती के प्रेम का आन्नद उठाये, उसके जीवन का अन्त कर दे। वह केशव की निष्ठुरता को याद करके अपने मन को उत्तेजित करती थी। अपने को धिक्कार-धिक्कार कर नारी सुलभ शंकाओं को दूर करती थी। क्या वह इतनी दुर्बल है? क्या उसमें इतना साहस भी नहीं है? इस वक्त यदि कोई दुष्ट उसके कमरे में घुस आए और उसके सतीत्व का अपहरण करना चाहे, तो क्या वह उसका प्रतिकार न करेगी? आखिर आत्म-रक्षा ही के लिए तो उसने यह पिस्तौल ले रखी है। केशव ने उसके सत्य का

अपहरण ही तो किया है। उसका प्रेम-दर्शन केवल प्रवंचना थी। वह केवल अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए सुभद्रा के साथ प्रेम-स्वर्ग भरता था। फिर उसका वध करना क्या सुभद्रा का कर्तव्य नहीं?

इस अन्तिम कल्पना से सुभद्रा को वह उत्तेजना मिल गयी, जो उसके भयंकर संकल्प को पूरा करने के लिए आवश्यक थी। यही वह अवस्था है, जब स्त्री-पुरुष के खून की प्यासी हो जाती है।

उसने खूँटी पर लटकाती हुई पिस्तौल उतार ली और ध्यान से देखने लगी, मानो उसे कभी देखा न हो। कल संध्या-समय जब कार्य-मंदिर के केशव और उसकी प्रेमिका एक-दूसरे के सम्मुख बैठे हुए होंगे, उसी समय वह इस गोली से केशव की प्रेम-लीलाओं का अन्त कर देगी। दूसरी गोली अपनी छाती में मार लेगी। क्या वह रो-रो कर अपना अधम जीवन काटेगी?

7

संध्या का समय था। आर्य-मंदिर के आँगन में वर और वधू इष्ट-मित्रों के साथ बैठे हुए थे। विवाह का संस्कार हो रहा था। उसी समय सुभद्रा पहुँची और बदामदे में आकर एक खम्भे की आड़ में इस भाँति खड़ी हो गई कि केशव का मुँह उसके सामने था। उसकी आँखें में वह दृश्य खिंच गया, जब आज से तीन साल पहले उसने इसी भाँति केशव को मंडप में बैठे हुए आड़ से देखा था। तब उसका हृदय कितना उछवासित हो रहा था। अंतस्तल में गुदगुदी-सी हो रही थी, कितना अपार अनुराग था, कितनी असीम अभिलाषाएँ थीं, मानों जीवन-प्रभात का उदय हो रहा हो। जीवन मधुर संगीत की भाँति सुखद था, भविष्य उषा-स्वप्न की भाँति सुन्दर। क्या यह वही केशव है? सुभद्रा को ऐसा भ्रम हुआ, मानों यह केशव नहीं है। हाँ, यह वह केशव नहीं था। यह उसी रूप और उसी नाम का कोई दूसरा मनुष्य था। अब उसकी मुस्कुराहट में, उनके नेत्रों में, उसके शब्दों में, उसके हृदय को आकर्षित करने वाली कोई वस्तु न थी। उसे देखकर वह उसी भाँति निःस्पंद, निश्चल खड़ी है, मानों कोई अपरिचित व्यक्ति हो। अब तक केशव का-सा रूपवान, तेजस्वी, सौम्य, शीलवान, पुरुष संसार में न था; पर अब सुभद्रा को ऐसा जान पड़ा कि वहाँ बैठे हुए युवकों में और उसमें कोई अन्तर नहीं है। वह ईर्ष्याग्नि, जिसमें वह जली जा रही थी, वह हिंसा-कल्पना, जो उसे वहाँ तक लायी थी, मानो एगदम शांत हो गयी। विरिक्त हिंसा से भी अधिक हिंसात्मक होती है—सुभद्रा की हिंसा-कल्पना में एक प्रकार का ममत्व था—उसका केशव, उसका प्राणवल्लभ, उसका जीवन-सर्वस्व और किसी का नहीं हो सकता। पर अब वह ममत्व नहीं है। वह उसका नहीं है, उसे अब परवा नहीं, उस पर किसका अधिकार होता है।

विवाह-संस्कार समाप्त हो गया, मित्रों ने बधाइयाँ दीं, सहेलियों ने मंगलगान किया, फिर लोग मेजों पर जा बैठे, दावत होने लगी, रात के बारह बज गये; पर सुभद्रा वहीं पाषाण-मूर्ति की भाँति खड़ी रही, मानो कोई विचित्र स्वप्न देख रही हो। हाँ, जैसे कोई बस्ती उजड़ गई हो, जैसे कोई संगीत बन्द हो गया हो, जैसे कोई दीपक बुझ गया है।

जब लोग मंदिर से निकले, तो वह भी निकले, तो वह भी निकल आयी; पर उसे कोई मार्ग न सूझता था। परिचित सड़कें उसे भूली हुई-सी जान पड़ने लगीं। सारा संसार ही बदल गया था। वह सारी रात सड़कों पर भटकती फिरी। घर का कहीं पता नहीं। सारी दुकानें बन्द हो गयीं, सड़कों पर सन्नाटा छा गया, फिर भी वह अपना घर ढूँढती हुई चली जा रही थी। हाय! क्या इसी भाँति उसे जीवन-पथ में भी भटकना पड़ेगा?

सहसा एक पुलिसमैन ने पुकारा—मैडम, तुम कहाँ जा रही हो?

सुभद्रा ने ठिठक कर कहा—कहीं नहीं।

‘तुम्हारा स्थान कहाँ है?’

‘मेरा स्थान?’

‘हाँ, तुम्हारा स्थान कहाँ है? मैं तुम्हें बड़ी देर से इधर-उधर भटकते देख रहा हूँ। किस स्ट्रीट में रहती हो?’

सुभद्रा को उस स्ट्रीट का नाम तक न याद था।

‘तुम्हें अपने स्ट्रीट का नाम तक याद नहीं?’

‘भूल गयी, याद नहीं आता।’

सहसा उसकी दृष्टि सामने के एक साइन बोर्ड की तरफ उठी, ओह! यही तो उसकी स्ट्रीट है। उसने सिर उठाकर इधर-उधर देखा। सामने ही उसका डेरा था। और इसी गली में, अपने ही घर के सामने, न-जाने कितनी देर से वह चक्कर लगा रही थी।

अभी प्रातःकाल ही था कि युवती सुभद्रा के कमरे में पहुँची। वह उसके कपड़े सी रही थी। उसका सारा तन-मन कपड़ों में लगा हुआ था। कोई युवती इतनी एकाग्रचित होकर अपना श्रृंगार भी न करती होगी। न-जाने उससे कौन-सा पुरस्कार लेना चाहती थी। उसे युवती के आने की खबर न हुई।

युवती ने पूछा—तुम कल मंदिर में नहीं आयीं?

सुभद्रा ने सिर उठाकर देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानो किसी कवि की कोमल कल्पना मूर्तिमयी हो गयी है। उसकी उप छवि अनिन्द्य थी। प्रेम की विभूति रोम-रोम से प्रदर्शित हो रही थी। सुभद्रा दौड़कर उसके गले से लिपट गई, जैसे उसकी छोटी बहन आ गयी हो, और बोली —हाँ, गयी तो थी।

‘मैंने तुम्हें नहीं देखा।’

‘हाँ, मैं अलग थी।’

‘केशव को देखा?’

‘हाँ देखा।’

‘धीरे से क्यों बोली? मैंने कुछ झूठ कहा था?’

सुभद्रा ने सहृदयता से मुस्कराकर कहा — मैंने तुम्हारी आँखों से नहीं, अपनी आँखों से देखा। मझे तो वह तुम्हारे योग्य नहीं जंचे। तुम्हें ठग लिया।

युवती खिलखिलाकर हँसी और बोली—वह ! मैं समझती हूँ, मैंने उन्हें ठगा है।

एक बार वस्त्राभूषणों से सजकर अपनी छवि आईने में देखी तो मालूम हो जायेगा।

‘तब क्या मैं कुछ और हो जाऊँगी।’

‘अपने कमरे से फर्श, तसवीरें, हॉडियॉ, गमले आदि निकाल कर देख लो, कमरे की शोभा वही रहती है!’

युवती ने सिर हिला कर कहा—ठीक कहती हो। लेकिन आभूषण कहाँ से लाऊँ। न-जाने अभी कितने दिनों में बनने की नौबत आये।

‘मैं तुम्हें अपने गहने पहना दूँगी।’

‘तुम्हारे पास गहने हैं?’

‘बहुत। देखो, मैं अभी लाकर तुम्हें पहनाती हूँ।’

युवती ने मुँह से तो बहुत ‘नहीं-नहीं’ किया, पर मन में प्रसन्न हो रही थी। सुभद्रा ने अपने सारे गहने पहना दिये। अपने पास एक छल्ला भी न रखा। युवती को यह नया अनुभव था। उसे इस रूप में निकलते शर्म तो आती थी; पर उसका रूप चमक उठा था। इसमें संदेह न था। उसने आईने में अपनी सूरत देखी तो उसकी सूरत जगमगा उठी, मानो किसी वियोगिनी को अपने प्रियतम का संवाद मिला हो। मन में गुदगुदी होने लगी। वह इतनी रूपवती है, उसे उसकी कल्पना भी न थी।

कहीं केशव इस रूप में उसे देख लेते; वह आकांक्षा उसके मन में उदय हुई, पर कहे कैसे। कुछ देर में बाद लज्जा से सिर झुका कर बोली—केशव मुझे इस रूप में देख कर बहुत हँसेंगे।

सुभद्रा —हँसेंगे नहीं, बलैया लेंगे, आँखें खुल जायेगी। तुम आज इसी रूप में उसके पास जाना।

युवती ने चकित होकर कहा —सच! आप इसकी अनुमति देती हैं!

सुभद्रा ने कहा—बड़े हर्ष से।

‘तुम्हें संदेह न होगा?’

‘बिल्कुल नहीं।’

‘और जो मैं दो-चार दिन पहने रहूँ?’

‘तुम दो-चार महीने पहने रहो। आखिर, पड़े ही तो है!’

‘तुम भी मेरे साथ चलो।’

‘नहीं, मुझे अवकाश नहीं है।’

‘अच्छा, लो मेरे घर का पता नोट कर लो।’

‘हाँ, लिख दो, शायद कभी आऊँ।’

एक क्षण में युवती वहाँ से चली गयी। सुभद्रा अपनी खिड़की पर उसे इस भाँति प्रसन्न-मुख खड़ी देख रही थी, मानो उसकी छोटी बहन हो, ईर्ष्या या द्वेष का लेश भी उसके मन में न था।

मुश्किल से, एक घंटा गुजरा होगा कि युवती लौट कर बोली—सुभद्रा क्षमा करना, मैं तुम्हारा समय बहुत खराब कर रही हूँ। केशव बाहर खड़े हैं। बुला लूँ?

एक क्षण, केवल एक क्षण के लिए, सुभद्रा कुछ घबड़ा गयी। उसने जल्दी से उठ कर मेज पर पड़ी हुई चीजें इधर-उधर हटा दीं, कपड़े करीने से रख दिये। उसने जल्दी से उलझे हुए बाल सँभाल लिये, फिर उदासीन भाव से मुस्करा कर बोली—उन्हें तुमने क्यों कष्ट दिया। जाओ, बुला लो।

एक मिनट में केशव ने कमरे में कदम रखा और चौंक कर पीछे हट गये, मानो पाँव जल गया हो। मुँह से एक चीख निकल गयी। सुभद्रा गम्भीर, शांत, निश्चल अपनी जगह पर खड़ी रही। फिर हाथ बढ़ा कर बोली, मानो किसी अपरिचित व्यक्ति से बोल रही थी—आइये, मिस्टर केशव, मैं आपको ऐसी सुशील, ऐसी सुन्दरी, ऐसी विदुषी रमणी पाने पर बधाई देती हूँ।

केशव के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह पथ-भ्रष्ट-सा बना खड़ा था। लज्जा और ग्लानि से उसके चेहरे पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। यह बात एक दिन होनेवाली थी अवश्य, पर इस तरह अचानक उसकी सुभद्रा से भेंट होगी, इसका उसे स्वप्न में भी गुमान न था। सुभद्रा से यह बात कैसे कहेगा, इसको उसने खूब सोच लिया था। उसके आक्षेपों का उत्तर सोच लिया था, पत्र के शब्द तक मन में अंकित कर लिये थे। ये सारी तैयारियाँ धरी रह गयीं और सुभद्रा से साक्षात् हो गया। सुभद्रा उसे देख कर जरा सी नहीं चौंकी, उसके मुख पर आश्चर्य, घबराहट या दुःख का एक चिह्न भी न दिखायी दिया। उसने उसी भँति उससे बात की; मानो वह कोई अजनबी हो। यहाँ कब आयी, कैसे आयी, क्यों आयी, कैसे गुजर करती है; यह और इस तरह के असंख्य प्रश्न पूछने के लिए केशव का चित्त चंचल हो उठा। उसने सोचा था, सुभद्रा उसे धिक्कारेगी; विष खाने की धमकी देगी—निष्ठुर; निर्दय और न-जाने क्या-क्या कहेगी। इन सब आपदाओं के लिए वह तैयार था; पर इस आकस्मिक मिलन, इस गर्वयुक्त उपेक्षा के लिए वह तैयार न था। वह प्रेम-व्रतधारिणी सुभद्रा इतनी कठोर, इतनी हृदय-शून्य हो गयी है? अवश्य ही इस सारी बातें पहले ही मालूम हो चुकी हैं। सब से तीव्र आघात यह था कि इसने अपने सारे आभूषण इतनी उदारता से दे डाले, और कौन जाने वापस भी न लेना चाहती हो। वह परास्त और अप्रतिम होकर एक कुर्सी पर बैठ गया। उत्तर में एक शब्द भी उसके मुख से न निकला।

युवती ने कृतज्ञता का भाव प्रकट करके कहा—इनके पति इस समय जर्मनी में है।

केशव ने आँखें फाड़ कर देखा, पर कुछ बोल न सका।

युवती ने फिर कहा—बेचारी संगीत के पाठ पढ़ा कर और कुछ कपड़े सी कर अपना निर्वाह करती है। वह महाशय यहाँ आ जाते, तो उन्हें उनके सौभाग्य पर बधाई देती।

केशव इस पर भी कुछ न बोल सका, पर सुभद्रा ने मुस्करा कर कहा—वह मुझसे रूठे हुए हैं, बधाई पाकर और भी झल्लाते। युवती ने आश्चर्य से कहा—तुम उन्हीं के प्रेम में यहाँ आयीं, अपना घर-बार छोड़ा, यहाँ मेहनत-मजदूरी करके निर्वाह कर रही हो, फिर भी वह तुमसे रूठे हुए हैं? आश्चर्य!

सुभद्रा ने उसी भाँति प्रसन्न-मुख से कहा—पुरुष-प्रकृति ही आश्चर्य का विषय है, चाहे मि. केशव इसे स्वीकार न करें।

युवती ने फिर केशव की ओर प्रेरणा-पूर्ण दृष्टि से देखा, लेकिन केशव उसी भाँति अप्रतिम बैठा रहा। उसके हृदय पर यह नया आघात था। युवती ने उसे चुप देख कर उसकी तरफ से सफाई दी—केशव, स्त्री और पुरुष, दोनों को ही समान अधिकार देना चाहते हैं।

केशव डूब रहा था, तिनके का सहारा पाकर उसकी हिम्मत बँध गयी। बोला—विवाह एक प्रकार का समझौता है। दोनों पक्षों को अधिकार है, जब चाहे उसे तोड़ दें।

युवती ने हामी भरी—सभ्य-समाज में यह आन्दोलन बड़े जोरों पर है।

सुभद्रा ने शंका की—किसी समझौते को तोड़ने के लिए कारण भी तो होना चाहिए?

केशव ने भावों की लाठी का सहारा लेकर कहा—जब इसका अनुभव हो जाय कि हम इस बन्धन से मुक्त होकर अधिक सुखी हो सकते हैं, तो यही कारण काफी है। स्त्री को यदि मालूम हो जाय कि वह दूसरे पुरुष के साथ ...

सुभद्रा ने बात काट कर कहा—क्षमा कीजिए मि. केशव, मुझमें इतनी बुद्धि नहीं कि इस विषय पर आपसे बहस कर सकूँ। आदर्श समझौता वही है, जो जीवन-पर्यन्त रहे। मैं भारत की नहीं कहती। वहाँ तो स्त्री पुरुष की लौंडी है, मैं इंग्लैंड की कहती हूँ। यहाँ भी कितनी ही औरतों से मेरी बातचीत हुई है। वे तलाकों की बढ़ती हुई संख्या को देख कर खुश नहीं होती। विवाह सबसे ऊँचा आदर्श उसकी पवित्रता और स्थिरता है।

पुरुषों ने सदैव इस आदर्श को तोड़ा है, स्त्रियों ने निबाहा है। अब पुरुषों का अन्याय स्त्रियों को किस ओर ले जायेगा, नहीं कह सकती।

इस गम्भीर और संयत कथन ने विवाद का अन्त कर दिया। सुभद्रा ने चाय मँगवायी। तीनों आदमियों ने पी। केशव पूछना चाहता था, अभी आप यहाँ कितने दिनों रहेंगी। लेकिन न पूछ सका। वह यहाँ पंद्रह मिनट और रहा, लेकिन विचारों में डूबा हुआ। चलते समय उससे न रहा गया। पूछ ही बैठा—अभी आप यहाँ कितने दिन और रहेगी?

‘सुभद्रा ने जमीन की ओर ताकते हुए कहा—कह नहीं सकती।’

‘कोई जरूरत हो, तो मुझे याद कीजिए।’

‘इस आश्वासन के लिए आपको धन्यवाद।’

केशव सारे दिन बेचैन रहा। सुभद्रा उसकी आँखों में फिरती रही। सुभद्रा की बातें उसके कानों में गूँजती रहीं। अब उसे इसमें कोई सन्देह न था कि उसी के प्रेम में सुभद्रा यहाँ आयी थी। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गयी थी। उस भीषण त्याग का अनुमान करके उसके रोयें खड़े हो गये। यहाँ सुभद्रा ने क्या-क्या कष्ट झेले होंगे, कैसी-कैसी यातनाएँ सही होंगी, सब उसी के कारण? वह उस पर भार न बनना चाहती थी। इसलिए तो उसने अपने आने की सूचना तक उसे न दी। अगर उसे पहले मालूम होती कि सुभद्रा यहाँ आ गयी है, तो कदाचित् उसे उस युवती की ओर इतना आकर्षण ही न होता। चौकीदार के सामने चोर को घर में घुसने का साहस नहीं होता। सुभद्रा को देखकर उसकी कर्तव्य-चेतना जाग्रत हो गयी। उसके पैरों पर गिर कर उससे क्षमा माँगने के लिए उसका मन अधीर हो उठा; वह उसके मुँह से सारा वृत्तांत सुनेगा। यह मौन उपेक्षा उसके लिए असह्य थी। दिन तो केशव ने किसी तरह काटा, लेकिन ज्यों ही रात के दस बजे, वह सुभद्रा से मिलने चला। युवती ने पूछा—कहाँ जाते हो?

केशव ने बूट का लेस बाँधते हुए कहा—जरा एक प्रोफेसर से मिलना है, इस वक्त आने का वादा कर चुका हूँ?

‘जल्द आना।’

‘बहुत जल्द आऊँगा।’

केशव घर से निकला, तो उसके मन में कितनी ही विचार-तंरगें उठने लगीं। कहीं सुभद्रा मिलने से इनकार कर दे, तो? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। वह इतनी अनुदार नहीं है। हाँ, यह हो सकता है कि वह अपने विषय में कुछ न कहे। उसे शांत करने के लिए उसने एक कृपा की कल्पना कर डाली। ऐसा बीमार था कि बचने की आशा न थी। उर्मिला ने ऐसी तन्मय होकर उसकी सेवा-सुश्रुषा की कि उसे उससे प्रेम हो गया। कथा का सुभद्रा पर जो असर पड़ेगा, इसके विषय में केशव को कोई संदेह न था। परिस्थिति का बोध होने पर वह उसे क्षमा कर देगी। लेकिन इसका फल क्या होगा लेकिन इसका फल क्या होगा? क्या वह दोनों के साथ एक-सा प्रेम कर सकता है? सुभद्रा को देख लेने के बाद उर्मिला को शायद उसके साथ-साथ रहने में आपत्ति हो। आपत्ति हो ही कैसे सकती है! उससे यह बात छिपी नहीं है। हाँ, यह देखना है कि सुभद्रा भी इसे स्वीकार करती है कि नहीं। उसने जिस उपेक्षा का परिचय दिया है, उसे देखते हुए तो उसके मान में संदेह ही जान पड़ता है। मगर वह उसे मनायेगा, उसकी विनती करेगा, उसके पैरों पड़ेगा और अंत में उसे मनाकर ही छोड़ेगा। सुभद्रा से प्रेम और अनुराग का नया प्रमाण पा कर वह मानो एक कठोर निद्रा से जाग उठा था। उसे अब अनुभव हो रहा था कि सुभद्रा के लिए उसके हृदय जो स्थान था, वह खाली पड़ा हुआ है। उर्मिला उस स्थान पर अपना आधिपत्य नहीं जमा सकती। अब उसे ज्ञात हुआ कि उर्मिला के प्रति उसका प्रेम केवल वह तृष्णा थी, जो स्वादयुक्त पदार्थों को देख कर ही उत्पन्न होती है। वह सच्ची क्षुधा न थी अब फिर उसे सरल सामान्य भोजन की इच्छा हो रही थी। विलासिनी उर्मिला कभी इतना त्याग कर सकती है, इसमें उसे संदेह था।

सुभद्रा के घर के निकट पहुँच कर केशव का मन कुछ कातर होने लगा। लेकिन उसने जी कड़ा करके जीने पर कदम रक्खा और क्षण में सुभद्रा के द्वार पर पहुँचा, लेकिन कमरे का द्वार बंद था। अंदर भी प्रकाश न था। अवश्य ही वह कही गयी है, आती ही होगी। तब तक उसने बरामदे में टहलने का निश्चय किया।

सहसा मालकिन आती हुई दिखायी दी। केशव ने बढ़ कर पूछा—आप बता सकती हैं कि यह महिला कहाँ गयी हैं?

मालकिन ने उसे सिर से पाँव तक देख कर कहा—वह तो आज यहाँ से चली गयीं।

केशव ने हकबका कर पूछा—चली गयीं! कहाँ चली गयीं?

‘यह तो मुझसे कुछ नहीं बताया।’

‘कब गयीं?’

‘वह तो दोपहर को ही चली गयीं?’

‘अपना असबाव ले कर गयीं?’

‘असबाव किसके लिए छोड़ जाती? हाँ, एक छोटा-सा पैकेट अपनी एक सहेली के लिए छोड़ गयी हैं। उस पर मिसेज केशव लिखा हुआ है। मुझसे कहा था कि यदि वह आ भी जायँ, तो उन्हें दे देना, नहीं तो डाक से भेज देना।’

केशव को अपना हृदय इस तरह बैठता हुआ मालूम हुआ जैसे सूर्य का अस्त होना। एक गहरी साँस लेकर बोला—

‘आप मुझे वह पैकेट दिखा सकती हैं? केशव मेरा ही नाम है।’

मालकिन ने मुस्करा कर कहा—मिसेज केशव को कोई आपत्ति तो न होगी?

‘तो फिर मैं उन्हें बुला लाऊँ?’

‘हाँ, उचित तो यही है!’

‘बहुत दूर जाना पड़ेगा!’

केशव कुछ ठिठकता हुआ जीने की ओर चला, तो मालकिन ने फिर कहा—मैं समझती हूँ, आप इसे लिये ही जाइये, व्यर्थ आपको क्यों दौड़ाऊँ। मगर कल मेरे पास एक रसीद भेज दीजिएगा। शायद उसकी जरूरत पड़े!

यह कहते हुए उसने एक छोटा-सा पैकेट लाकर केशव को दे दिया। केशव पैकेट लेकर इस तरह भागा, मानों कोई चोर भागा जा रहा हो। इस पैकेट में क्या है, यह जानने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। इसे इतना विलम्ब असह्य था कि अपने स्थान पर जाकर उसे खोले। समीप ही एक पार्क था। वहाँ जाकर उसने बिजली के प्रकाश में उस पैकेट को खोला डाला। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे और हृदय इतने वेग से धड़क रहा था, मानों किसी बंधु की बीमारी के समाचार के बाद मिला हो।

पैकेट का खुलना था कि केशव की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। उसमें एक पीले रंग की साड़ी थी, एक छोटी-सी सेंदुर की डिबिया और एक केशव का फोटा-चित्र के साथ ही एक लिफाफा भी था। केशव ने उसे खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था—

‘बहन मैं जाती हूँ। यह मेरे सोहाग का शव है। इसे टेम्स नदी में विसर्जित कर देना। तुम्हीं लोगों के हाथों यह संस्कार भी हो जाय, तो अच्छा।

तुम्हारी,

सुभद्रा

केशव मर्माहत-सा पत्र हाथ में लिये वहीं घास पर लेट गया और फूट-फूट कर रोने लगा।

आधी रात थी। नदी का किनारा था। आकाश के तारे स्थिर थे और नदी में उनका प्रतिबिम्ब लहरों के साथ चंचल। एक स्वर्गीय संगीत की मनोहर और जीवनदायिनी, प्राण-पोषिणी ध्वनियाँ इस निस्तब्ध और तमोमय दृश्य पर इस प्रकाश छा रही थी, जैसे हृदय पर आशाएँ छाई रहती हैं, या मुखमंडल पर शोक।

रानी मनोरमा ने आज गुरु-दीक्षा ली थी। दिन-भर दान और व्रत में व्यस्त रहने के बाद मीठी नींद की गोद में सो रही थी। अकस्मात् उसकी आँखें खुलीं और ये मनोहर ध्वनियाँ कानों में पहुँची। वह व्याकुल हो गयी—जैसे दीपक को देखकर पतंग; वह अधीर हो उठी, जैसे खाँड़ की गंध पाकर चींटी। वह उठी और द्वारपालों एवं चौकीदारों की दृष्टियाँ बचाती हुई राजमहल से बाहर निकल आयी—जैसे वेदनापूर्ण क्रन्दन सुनकर आँखों से आँसू निकल जाते हैं।

सरिता-तट पर कँटीली झाड़िया थीं। ऊँचे कगारे थे। भयानक जंतु थे। और उनकी डरावनी आवाजें! शव थे और उनसे भी अधिक भयंकर उनकी कल्पना। मनोरमा कोमलता और सुकुमारता की मूर्ति थी। परंतु उस मधुर संगीत का आकर्षण उसे तन्मयता की अवस्था में खींचे लिया जाता था। उसे आपदाओं का ध्यान न था।

वह घंटों चलती रही, यहाँ तक कि मार्ग में नदी ने उसका गतिरोध किया।

2

मनोरमा ने विवश होकर इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी। किनारे पर एक नौका दिखाई दी। निकट जाकर बोली—माँझी, मैं उस पार जाऊँगी, इस मनोहर राग ने मुझे व्याकुल कर दिया है।

माँझी—रात को नाव नहीं खोल सकता। हवा तेज है और लहरें डरावनी। जान-जोखिम हैं

मनोरमा—मैं रानी मनोरमा हूँ। नाव खोल दे, मुँहमाँगी मजदूरी दूँगी।

माँझी—तब तो नाव किसी तरह नहीं खोल सकता। रानियों का इस में निबाह नहीं।

मनोरमा—चौधरी, तेरे पाँव पड़ती हूँ। शीघ्र नाव खोल दे। मेरे प्राण खिंचे चले जाते हैं।

माँझी—क्या इनाम मिलेगा?

मनोरमा—जो तू माँगे।

‘माँझी—आप ही कह दें, गँवार क्या जानूँ, कि रानियों से क्या चीज माँगनी चाहिए। कहीं कोई ऐसी चीज न माँग बैठूँ, जो आपकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध हो?’

मनोरमा—मेरा यह हार अत्यन्त मूल्यवान है। मैं इसे खेवे में देती हूँ। मनोरमा ने गले से हार निकाला, उसकी चमक से माँझी का मुख-मंडल प्रकाशित हो गया—वह कठोर, और काला मुख, जिस पर झुर्रियाँ पड़ी थी।

अचानक मनोरमा को ऐसा प्रतीत हुआ, मानों संगीत की ध्वनि और निकट हो गयी हो। कदाचित कोई पूर्ण ज्ञानी पुरुष आत्मानंद के आवेश में उस सरिता-तट पर बैठा हुआ उस निस्तब्ध निशा को संगीत-पूर्ण कर रहा है। रानी का हृदय उछलने लगा। आह ! कितना मनोमुग्धकर राग था ! उसने अधीर होकर कहा—माँझी, अब देर न कर, नाव खोल, मैं एक क्षण भी धीरज नहीं रख सकती।

माँझी—इस हार हो लेकर मैं क्या करूँगा?

मनोरमा—सच्चे मोती हैं।

माँझी—यह और भी विपत्ति हैं माँझिन गले में पहन कर पड़ोसियों को दिखायेगी, वह सब डाह से जलेंगी, उसे गालियाँ देंगी। कोई चोर देखेगा, तो उसकी छाती पर साँप लोटने लगेगा। मेरी सुनसान झोपड़ी पर दिन-दहाड़े डाका पड़ जायगा। लोग चोरी का अपराध लगायेंगे। नहीं, मुझे यह हार न चाहिए।

मनोरमा—तो जो कुछ तू माँग, वही दूँगी। लेकिन देर न कर। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रतीक्षा करने की तनिक भी शक्ति नहीं है। इन राग की एक-एक तान मेरी आत्मा को तड़पा देती है।

माँझी—इससे भी अच्छी कोई चीज दीजिए।

मनोरमा—अरे निर्दयी! तू मुझे बातों में लगाये रखना चाहता है मैं जो देती है, वह लेता नहीं, स्वयं कुछ माँगता नहीं। तुझे क्या मालूम मेरे हृदय की इस समय क्या दशा हो रही है। मैं इस आत्मिक पदार्थ पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकती हूँ।

माँझी—और क्या दीजिएगा?

मनोरमा—मेरे पास इससे बहुमूल्य और कोई वस्तु नहीं है, लेकिन तू अभी नाव खोल दे, तो प्रतिज्ञा करती हूँ कि तुझे अपना महल दे दूँगी, जिसे देखने के लिए कदाचित तू भी कभी गया हो। विशुद्ध श्वेत पत्थर से बना है, भारत में इसकी तुलना नहीं।

माँझी—(हँस कर) उस महल में रह कर मुझे क्या आनन्द मिलेगा? उलटे मेरे भाई-बंधु शत्रु हो जायँगे। इस नौका पर अँधेरी रात में भी मुझे भय न लगता। आँधी चलती रहती है, और मैं इस पर पड़ा रहता हूँ। किंतु वह महल तो दिन ही में फाड़ खायगा। मेरे घर के आदमी तो उसके एक कोने में समा जायँगे। और आदमी कहाँ से लाऊँगा; मेरे नौकर-चाकर कहाँ? इतना माल-असबाब कहाँ? उसकी सफाई और मरम्मत कहाँ से कराऊँगा? उसकी फुलवारियाँ सूख जायँगी, उसकी क्यारियों में गीदड़ बोलेंगे और अटारियों पर कबूतर और अबाबीलें घोंसले बनायँगी।

मनोरमा अचानक एक तन्मय अवस्था में उछल पड़ी। उसे प्रतीत हुआ कि संगीत निकटतर आ गया है। उसकी सुन्दरता और आनन्द अधिक प्रखर हो गया था—जैसे बत्ती उकसा देने से दीपक अधिक प्रकाशवान हो जाता है। पहले चित्ताकर्षक था, तो अब आवेशजनक हो गया था। मनोरमा ने व्याकुल होकर कहा—आह! तू फिर अपने मुँह से क्यों कुछ नहीं माँगता? आह! कितना विरागजनक राग है, कितना विह्वल करने वाला! मैं अब तनिक धीरज नहीं धर सकती। पानी उतार में जाने के लिए जितना व्याकुल होता है, श्वास हवा के लिए जितनी विकल होती है, गंध उड़ जाने के लिए जितनी व्याकुल होती है, मैं उस स्वर्गीय संगीत के लिए उतनी व्याकुल हूँ। उस संगीत में कोयल की-सी मस्ती है, पपीहे की-सी वेदना है, श्यामा की-सी विह्वलता है, इससे झरनों का-सा जोर है, आँधी का-सा बल! इसमें वह सब कुछ है, इससे विवेकाग्नि प्रज्ज्वलित होती, जिससे आत्मा समाहित होती है, और अंतःकरण पवित्र होता है। माँझी, अब एक क्षण का भी विलम्ब मेरे लिए मृत्यु की यंत्रणा है। शीघ्र नौका खोल। जिस सुमन की यह सुगंध है, जिस दीपक की यह दीप्ति है, उस तक मुझे पहुँचा दे। मैं देख नहीं सकती इस संगीत का रचयिता कहीं निकट ही बैठा हुआ है, बहुत निकट।

माँझी—आपका महल मेरे काम का नहीं है, मेरी झोपड़ी उससे कहीं सुहावनी है।

मनोरमा—हाय! तो अब तुझे क्या दूँ? यह संगीत नहीं है, यह इस सुविशाल क्षेत्र की पवित्रता है, यह समस्त सुमन-समूह का सौरभ है, समस्त मधुरताओं की माधुरताओं की माधुरी है, समस्त अवस्थाओं का सार है। नौका खोल। मैं जब तक जीऊँगी, तेरी सेवा करूँगी, तेरे लिए पानी भरूँगी, तेरी झोपड़ी बहारूँगी। हाँ, मैं तेरे मार्ग के कंकड़ चुनूँगी, तेरे झोंपड़े को फूलों से सजाऊँगी, तेरी माँझिन के पैर मलूँगी। प्यारे माँझी, यदि मेरे पास सौ जानें होती, तो मैं इस संगीत के लिए अर्पण करती। ईश्वर के लिए मुझे निराश न कर। मेरे धैर्य का अन्तिम बिंदु शुष्क हो गया। अब इस चाह में दाह है, अब यह सिर तेरे चरणों में है।

यह कहते-कहते मनोरमा एक विक्षिप्त की अवस्था में माँझी के निकट जाकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों वह संगीत आत्मा पर किसी प्रज्ज्वलित प्रदीप की तरह ज्योति बरसाता हुआ मेरी ओर आ रहा है। उसे रोमांच हो आया। वह मस्त होकर झूमने लगी। ऐसा ज्ञात हुआ कि मैं हवा में उड़ी जाती हूँ। उसे अपने पार्श्व-देश में तारे झिलमिलाते हुए दिखायी देते थे। उस पर एक आमविस्मृत का भावावेश छा गया और अब वही मस्ताना संगीत, वही मनोहर राग उसके मुँह से निकलने लगा। वही अमृत की बूँदें, उसके अधरों से टपकने लगीं। वह स्वयं इस संगीत की स्रोत थी। नदी के पास से आने वाली ध्वनियाँ, प्राणपोषिणी ध्वनियाँ उसी के मुँह से निकल रही थीं।

मनोरमा का मुख-मंडल चन्द्रमा के तरह प्रकाशमान हो गया था, और आँखों से प्रेम की किरणें निकल रही थीं।

रंगमंच का परदा गिर गया। तारा देवी ने शकुंतला का पार्ट खेलकर दर्शकों को मुग्ध कर दिया था। जिस वक्त वह शकुंतला के रूप में राजा दुष्यन्त के सम्मुख खड़ी ग्लानि, वेदना, और तिरस्कार से उत्तेजित भावों को आग्नेय शब्दों में प्रकट कर रही थी, दर्शक-वृन्द शिष्टता के नियमों की उपेक्षा करके मंच की ओर उन्मत्तों की भाँति दौड़ पड़े थे और तारादेवी का यशोगान करने लगे थे। कितने ही तो स्टेज पर चढ़ गये और तारादेवी के चरणों पर गिर पड़े। सारा स्टेज फूलों से पट गया, आभूषणों की वर्षा होने लगी। यदि उसी क्षण मेनका का विमान नीचे आ कर उसे उड़ा न ले जाता, तो कदाचित्त उस धक्कम-धक्के में दस-पाँच आदमियों की जान पर बन जाती। मैनेजर ने तुरन्त आकर दर्शकों को गुण-ग्राहकता का धन्यवाद दिया और वादा भी किया कि दूसरे दिन फिर वही तमाशा होगा। तब लोगों का मोहान्माद शांत हुआ। मगर एक युवक उस वक्त भी मंच पर खड़ा रहा। लम्बे कद का था, तेजस्वी मुद्रा, कुन्दन का-सा देवताओं का-सा स्वरूप, गठी हुई देह, मुख से एक ज्योति-सी प्रस्फुटित हो रही थी। कोई राजकुमार मालूम होता था।

जब सारे दर्शकगण बाहर निकल गये, उसने मैनेजर से पूछा—क्या तारादेवी से एक क्षण के लिए मिल सकता हूँ?

मैनेजर ने उपेक्षा के भाव से कहा—हमारे यहाँ ऐसा नियम नहीं है।

युवक ने फिर पूछा—क्या आप मेरा कोई पत्र उसके पास भेज सकते हैं?

मैनेजर ने उसी उपेक्षा के भाव से कहा—जी नहीं। क्षमा कीजिएगा। यह हमारे नियमों के विरुद्ध है।

युवक ने और कुछ न कहा, निराश होकर स्टेज के नीचे उतर पड़ा और बाहर जाना ही चाहता था कि मैनेजर ने पूछा—जरा ठहर जाइये, आपका कार्ड?

युवक ने जेब से कागज का एक टुकड़ा निकल कर कुछ लिखा और दे दिया। मैनेजर ने पुर्जे को उड़ती हुई निगाह से देखा—कुंवर निर्मलकान्त चौधरी ओ. बी. ई.। मैनेजर की कठोर मुद्रा कोमल हो गयी। कुंवर निर्मलकान्त—शहर के सबसे बड़े रईस और ताल्लुकेदार, साहित्य के उज्ज्वल रत्न, संगीत के सिद्धहस्त आचार्य, उच्च-कोटि के विद्वान, आठ-दस लाख सालाना के नफेदार, जिनके दान से देश की कितनी ही संस्थाएँ चलती थीं—इस समय एक क्षुद्र प्रार्थी के रूप में खड़े थे। मैनेजर अपने उपेक्षा-भाव पर लज्जित हो गया। विनम्र शब्दों में बोला—क्षमा कीजिएगा, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैं अभी तारादेवी के पास हुजूर का कार्ड लिए जाता हूँ।

कुंवर साहब ने उससे रुकने का इशारा करके कहा—नहीं, अब रहने ही दीजिए, मैं कल पाँच बजे आऊँगा। इस वक्त तारादेवी को कष्ट होगा। यह उनके विश्राम का समय है।

मैनेजर—मुझे विश्वास है कि वह आपकी खातिर इतना कष्ट सहर्ष सह लेंगी, मैं एक मिनट में आता हूँ।

किन्तु कुंवर साहब अपना परिचय देने के बाद अपनी आतुरता पर संयम का परदा डालने के लिए विवश थे। मैनेजर को सज्जनता का धन्यवाद दिया। और कल आने का वादा करके चले गये।

2

तारा एक साफ-सुथरे और सजे हुए कमरे में मेज के सामने किसी विचार में मग्न बैठी थी। रात का वह दृश्य उसकी आँखों के सामने नाच रहा था। ऐसे दिन जीवन में क्या बार-बार आते हैं? कितने मनुष्य उसके दर्शनों के लिए विकल हो रहे हैं? बस, एक-दूसरे पर फाट पड़ते थे। कितनों को उसने पैरों से ठुकरा दिया था—हाँ, ठुकरा दिया था। मगर उस समूह में केवल एक दिव्यमूर्ति अविचलित रूप से खड़ी थी। उसकी आँखों में कितना गम्भीर अनुराग था, कितना दृढ़ संकल्प ! ऐसा जान पड़ता था मानों दोनों नेत्र उसके हृदय में चुभे जा रहे हों। आज फिर उस पुरुष के दर्शन होंगे या नहीं, कौन जानता है। लेकिन यदि आज उनके दर्शन हुए, तो तारा उनसे एक बार बातचीत किये बिना न जाने देगी।

यह सोचते हुए उसने आईने की ओर देखा, कमल का फूल-सा खिला था, कौन कह सकता था कि वह नव-विकसित पुष्प तैंतीस बसंतों की बहार देख चुका है। वह कांति, वह कोमलता, वह चपलता, वह माधुर्य किसी नवयौवना को लज्जित कर सकता था। तारा एक बार फिर हृदय में प्रेम दीपक जला बैठी। आज से

बीस साल पहले एक बार उसको प्रेम का कटु अनुभव हुआ था। तब से वह एक प्रकार का वैधव्य-जीवन व्यतीत करती रही। कितने प्रेमियों ने अपना हृदय उसको भेंट करना चाहा था; पर उसने किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखा था। उसे उनके प्रेम में कपट की गन्ध आती थी। मगर आह! आज उसका संयम उसके हाथ से निकल गया। एक बार फिर आज उसे हृदय में उसी मधुर वेदना का अनुभव हुआ, जो बीस साल पहले हुआ था। एक पुरुष का सौम्य स्वरूप उसकी आँखों में बस गया, हृदय पट पर खिंच गया। उसे वह किसी तरह भूल न सकती थी। उसी पुरुष को उसने मोटर पर जाते देखा होता, तो कदाचित उधर ध्यान भी न करती। पर उसे अपने सम्मुख प्रेम का उपहार हाथ में लिए देखकर वह स्थिर न रह सकी।

सहसा दाई ने आकर कहा—बाई जी, रात की सब चीजें रखी हुई हैं, कहिए तो लाऊँ?

तारा ने कहा—नहीं, मेरे पास चीजें लाने की जरूरत नहीं; मगर ठहरो, क्या-क्या चीजें हैं।

‘एक ढेर का ढेर तो लगा है बाई जी, कहाँ तक गिनाऊँ—अशर्फियाँ हैं, ब्रूचेज बाल के पिन, बटन, लाकेट, अँगूठियाँ सभी तो हैं। एक छोटे-से डिब्बे में एक सुन्दर हार है। मैंने आज तक वैसा हार नहीं देखा। सब संदूक में रख दिया है।’

‘अच्छा, वह संदूक मेरे पास ला।’ दाई ने संदूक लाकर मेज रख दिया। उधर एक लड़के ने एक पत्र लाकर तारा को दिया। तारा ने पत्र को उत्सुक नेत्रों से देखा—कुंवर निर्मलकान्त ओ. बी. ई.। लड़के से पूछा—यह पत्र किसने दिया। वह तो नहीं, जो रेशमी साफा बाँधे हुए थे?

लड़के ने केवल इतना कहा—मैनेजर साहब ने दिया है। और लपका हुआ बाहर चला गया।

संदूक में सबसे पहले डिब्बा नजर आया। तारा ने उसे खोला तो सच्चे मोतियों का सुन्दर हार था। डिब्बे में एक तरफ एक कार्ड भी था। तारा ने लपक कर उसे निकाल लिया और पढ़ा—कुंवर निर्मलकान्त...। कार्ड उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ा। वह झपट कर कुर्सी से उठी और बड़े वेग से कई कमरों और बरामदों को पार करती मैनेजर के सामने आकर खड़ी हो गयीं। मैनेजर ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और बोला—मैं रात की सफलता पर आपको बधाई देता हूँ।

तारा ने खड़े-खड़े पूछा—कुंवर निर्मलकान्त क्या बाहर हैं? लड़का पत्र दे कर भाग गया। मैं उससे कुछ पूछ न सकी।

‘कुंवर साहब का रुक्का तो रात ही तुम्हारे चले आने के बाद मिला था।’

‘तो आपने उसी वक्त मेरे पास क्यों न भेज दिया?’

मैनेजर ने दबी जबान से कहा—मैंने समझा, तुम आराम कर रही होगी, कष्ट देना उचित न समझा। और भाई, साफ बात यह है कि मैं डर रहा था, कहीं कुंवर साहब को तुमसे मिला कर तुम्हें खो न बैठूँ। अगर मैं औरत होता, तो उसी वक्त उनके पीछे हो लेता। ऐसा देवरूप पुरुष मैंने आज तक नहीं देखा। वही जो रेशमी साफा बाँधे खड़े थे तुम्हारे सामने। तुमने भी तो देखा था।

तारा ने मानो अर्धनिद्रा की दशा में कहा—हाँ, देखा तो था—क्या यह फिर आयेंगे?

हाँ, आज पाँच बजे शाम को। बड़े विद्वान आदमी हैं, और इस शहर के सबसे बड़े रईस।’

‘आज मैं रिहर्सल में न आऊँगी।’

3

कुंवर साहब आ रहे होंगे। तारा आईने के सामने बैठी है और दाई उसका श्रृंगार कर रही है। श्रृंगार भी इस जमाने में एक विद्या है। पहले परिपाटी के अनुसार ही श्रृंगार किया जाता था। कवियों, चित्रकारों और रसिकों ने श्रृंगार की मर्यादा-सी बाँध दी थी। आँखों के लिए काजल लाजमी था, हाथों के लिए मेंहदी, पाँव के लिए महावर। एक-एक अंग एक-एक आभूषण के लिए निर्दिष्ट था। आज वह परिपाटी नहीं रही। आज प्रत्येक रमणी अपनी सुरुचि सुबुद्धि और तुलनात्मक भाव से श्रृंगार करती है। उसका सौंदर्य किस उपाय से आकर्षकता की सीमा पर पहुँच सकता है, यही उसका आदर्श होता है तारा इस कला में निपुण थी। वह पन्द्रह साल से इस कम्पनी में थी और यह समस्त जीवन उसने पुरुषों के हृदय से खेलने ही में व्यतीत किया था। किस चिवतन से, किस मुस्कान से, किस अँगड़ाई से, किस तरह केशों के बिखेर देने से दिलों का कत्लेआम हो जाता है; इस कला में कौन उससे बढ़ कर हो सकता था! आज उसने चुन-चुन कर आजमाये हुए तीर तरकस से निकाले, और जब अपने अस्त्रों से सज कर वह दीवानखाने में आयी, तो जान पड़ा मानों संसार का सारा माधुर्य उसकी बलाएँ ले रहा है। वह मेज के पास खड़ी होकर कुंवर साहब का कार्ड देख रही थी, उसके कान मोटर की आवाज की ओर लगे हुए थे। वह चाहती थी कि कुंवर साहब इसी वक्त आ जाएँ

और उसे इसी अन्दाज से खड़े देखें। इसी अन्दाज से वह उसके अंग प्रत्यंगों की पूर्ण छवि देख सकते थे। उसने अपनी श्रृंगार कला से काल पर विजय पा ली थी। कौन कह सकता था कि यह चंचल नवयौवन उस अवस्था को पहुँच चुकी है, जब हृदय को शांति की इच्छा होती है, वह किसी आश्रम के लिए आतुर हो उठता है, और उसका अभिमान नम्रता के आगे सिर झुका देता है।

तारा देवी को बहुत इन्तजार न करना पड़ा। कुँवर साहब शायद मिलने के लिए उससे भी उत्सुक थे। दस ही मिनट के बाद उनकी मोटर की आवाज आयी। तारा सँभल गयी। एक क्षण में कुँवर साहब ने कमरे में प्रवेश किया। तारा शिष्टाचार के लिए हाथ मिलाना भी भूल गयी, प्रौढ़ावस्था में भी प्रेमी की उद्विग्नता और असावधानी कुछ कम नहीं होती। वह किसी सलज्जा युवती की भाँति सिर झुकाए खड़ी रही।

कुँवर साहब की निगाह आते ही उसकी गर्दन पर पड़ी। वह मोतियों का हार, जो उन्होंने रात को भेंट किया था, चमक रहा था। कुँवर साहब को इतना आनन्द और कभी न हुआ। उन्हें एक क्षण के लिए ऐसा जान पड़ा मानों उसके जीवन की सारी अभिलाषा पूरी हो गयी। बोले—मैंने आपको आज इतने सबेरे कष्ट दिया, क्षमा कीजिएगा। यह तो आपके आराम का समय होगा? तारा ने सिर से खिसकती हुई साड़ी को सँभाल कर कहा—इससे ज्यादा आराम और क्या हो सकता कि आपके दर्शन हुए। मैं इस उपहार के लिए और क्या आपको मनो धन्यवाद देती हूँ। अब तो कभी-कभी मुलाकात होती रहेगी?

निर्मलकान्त ने मुस्कराकर कहा—कभी-कभी नहीं, रोज। आप चाहे मुझसे मिलना पसन्द न करें, पर एक बार इस डयोढ़ी पर सिर को झुका ही जाऊँगा।

तारा ने भी मुस्करा कर उत्तर दिया—उसी वक्त तक जब तक कि मनोरंजन की कोई नयी वस्तु नजर न आ जाय! क्यों?

‘मेरे लिए यह मनोरंजन का विषय नहीं, जिंदगी और मौत का सवाल है। हाँ, तुम इसे विनोद समझ सकती हो, मगर कोई पहवाह नहीं। तुम्हारे मनोरंजन के लिए मेरे प्राण भी निकल जायें, तो मैं अपना जीवन सफल समझूँगा।

दोनों तरफ से इस प्रीति को निभाने के वादे हुए, फिर दोनों ने नाश्ता किया और कल भोज का न्योता दे कर कुँवर साहब विदा हुए।

4

एक महीना गुजर गया, कुँवर साहब दिन में कई-कई बार आते। उन्हें एक क्षण का वियोग भी असह्य था। कभी दोनों बजरे पर दरिया की सैर करते, कभी हरी-हरी घास पर पार्कों में बैठे बातें करते, कभी गाना-बजाना होता, नित्य नये प्रोग्राम बनते थे। सारे शहर में मशहूर था कि ताराबाई ने कुँवर साहब को फाँस लिया और दोनों हाथों से सम्पत्ति लूट रही है। पर तारा के लिए कुँवर साहब का प्रेम ही एक ऐसी सम्पत्ति थी, जिसके सामने दुनिया-भर की दौलत देय थी। उन्हें अपने सामने देखकर उसे किसी वस्तु की इच्छा न होती थी।

मगर एक महीने तक इस प्रेम के बाजार में घूमने पर भी तारा को वह वस्तु न मिली, जिसके लिए उसकी आत्मा लोलुप हो रही थी। वह कुँवर साहब से प्रेम की, अपार और अतुल प्रेम की, सच्चे और निष्कपट प्रेम की बातें रोज सुनती थी, पर उसमें ‘विवाह’ का शब्द न आने पाता था, मानो प्यासे को बाजार में पानी छोड़कर और सब कुछ मिलता हो। ऐसे प्यासे को पानी के सिवा और किस चीज से तृप्ति हो सकती है? प्यास बुझाने के बाद, सम्भव है, और चीजों की तरफ उसकी रुचि हो, पर प्यासे के लिए तो पानी सबसे मूल्यवान पदार्थ है। वह जानती थी कि कुँवर साहब उसके इशारे पर प्राण तक दे देंगे, लेकिन विवाह की बात क्यों उनकी जबान से नहीं मिलती? क्या इस विषय का कोई पत्र लिख कर अपना आशय कह देना सम्भव था? फिर क्या वह उसको केवल विनोद की वस्तु बना कर रखना चाहते हैं? यह अपमान उससे न सहा जाएगा। कुँवर के एक इशारे पर वह आग में कूद सकती थी, पर यह अपमान उसके लिए असह्य था। किसी शौकीन रईस के साथ वह इससे कुछ दिन पहले शायद एक-दो महीने रह जाती और उसे नोच-खसोट कर अपनी राह लेती। किन्तु प्रेम का बदला प्रेम है, कुँवर साहब के साथ वह यह निर्लज्ज जीवन न व्यतीत कर सकती थी।

उधर कुँवर साहब के भाई बन्द भी गाफिल न थे, वे किसी भाँति उन्हें ताराबाई के पंजे से छुड़ाना चाहते थे। कहीं कुँवर साहब का विवाह ठीक कर देना ही एक ऐसा उपाय था, जिससे सफल होने की आशा थी और यही उन लोगों ने किया। उन्हें यह भय तो न था कि कुँवर साहब इस ऐक्ट्रेस से विवाह करेंगे। हाँ,

यह भय अवश्य था कि कहीं रियासत का कोई हिस्सा उसके नाम कर दें, या उसके आने वाले बच्चों को रियासत का मालिक बना दें। कुँवर साहब पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगे। यहाँ तक कि योरोपियन अधिकारियों ने भी उन्हें विवाह कर लेने की सलाह दी। उस दिन संध्या समय कुँवर साहब ने ताराबाई के पास जाकर कहा—तारा, देखो, तुमसे एक बात कहता हूँ, इनकार न करना। तारा का हृदय उछलने लगा। बोली—कहिए, क्या बात है? ऐसी कौन वस्तु है, जिसे आपकी भेंट करके मैं अपने को धन्य समझूँ?

बात मुँह से निकलने की देर थी। तारा ने स्वीकार कर लिया और हर्षोन्माद की दशा में रोती हुई कुँवर साहब के पैरों पर गिर पड़ी।

5

एक क्षण के बाद तारा ने कहा—मैं तो निराश हो चली थी। आपने बड़ी लम्बी परीक्षा ली।

कुँवर साहब ने जबान दाँतों-तले दबाई, मानो कोई अनुचित बात सुन ली हो!

‘यह बात नहीं है तारा! अगर मुझे विश्वास होता कि तुम मेरी याचना स्वीकार कर लोगी, तो कदाचित् पहले ही दिन मैंने भिक्षा के लिए हाथ फैलाया होता, पर मैं अपने को तुम्हारे योग्य नहीं पाता था। तुम सदगुणों की खान हो, और मैं...मैं जो कुछ हूँ, वह तुम जानती ही हो। मैंने निश्चय कर लिया था कि उम्र भर तुम्हारी उपासना करता रहूँगा। शायद कभी प्रसन्न हो कर तुम मुझे बिना माँगे ही वरदान दे दो। बस, यही मेरी अभिलाषा थी! मुझमें अगर कोई गुण है, तो यही कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। जब तुम साहित्य या संगीत या धर्म पर अपने विचार प्रकट करने लगती हो, तो मैं दंग रह जाता हूँ और अपनी क्षुद्रता पर लज्जित हो जाता हूँ। तुम मेरे लिए सांसारिक नहीं, स्वर्गीय हो। मुझे आश्चर्य यही है कि इस समय मैं मारे खुशी के पागल क्यों नहीं हो जाता।’

कुँवर साहब देर तक अपने दिल की बातें कहते रहे। उनकी वाणी कभी इतनी प्रगल्भ न हुई थी!

तारा सिर झुकाये सुनती थी, पर आनंद की जगह उसके मुख पर एक प्रकार का क्षोभ—लज्जा से मिला हुआ—अंकित हो रहा था। यह पुरुष इतना सरल हृदय, इतना निष्कपट है? इतना विनीत, इतना उदार!

सहसा कुँवर साहब ने पूछा—तो मेरे भाग्य किस किस दिन उदय होंगे, तारा? दया करके बहुत दिनों के लिए न टालना।

तारा ने कुँवर साहब की सरलता से परास्त होकर चिंतित स्वर में कहा—कानून का क्या कीजिएगा? कुँवर साहब ने तत्परता से उत्तर दिया—इस विषय में तुम निश्चंत रहो तारा, मैंने वकीलों से पूछ लिया है। एक कानून ऐसा है जिसके अनुसार हम और तुम एक प्रेम-सूत्र में बँध सकते हैं। उसे सिविल-मैरिज कहते हैं। बस, आज ही के दिन वह शुभ मुहूर्त आयेगा, क्यों?

तारा सिर झुकाये रही। बोल न सकी।

‘मैं प्रातःकाल आ जाऊँगा। तैयार रहना।’

तारा सिर झुकाये रही। मुँह से एक शब्द न निकला।

कुँवर साहब चले गये, पर तारा वहीं मूर्ति की भाँति बैठी रही। पुरुषों के हृदय से क्रीड़ा करनेवाली चतुर नारी क्यों इतनी विमूढ़ हो गयी है!

6

विवाह का एक दिन और बाकी है। तारा को चारों ओर से बधाइयाँ मिल रही हैं। थिएटर के सभी स्त्री-पुरुषों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसे अच्छे-अच्छे उपहार दिये हैं, कुँवर साहब ने भी आभूषणों से सजा हुआ एक सिंगारदान भेंट किया है, उनके दो-चार अंतरंग मित्रों ने भाँति-भाँति के सौगात भेजे हैं; पर तारा के सुन्दर मुख पर हर्ष की रेखा भी नहीं नजर आती। वह क्षुब्ध और उदास है। उसके मन में चार दिनों से निरंतर यही प्रश्न उठ रहा है—क्या कुँवर के साथ विश्वासघात करें? जिस प्रेम के देवता ने उसके लिए अपने कुल-मर्यादा को तिलांजलि दे दी, अपने बंधुजनों से नाता तोड़ा, जिसका हृदय हिमकण के समान निष्कलंक है, पर्वत के समान विशाल, उसी से कपट करे! नहीं, वह इतनी नीचता नहीं कर सकती, अपने जीवन में उसने कितने ही युवकों से प्रेम का अभिनय किया था, कितने ही प्रेम के मतवालों को वह सब्ज बाग दिखा चुकी थी, पर कभी उसके मन में ऐसी दुविधा न हुई थी, कभी उसके हृदय ने उसका तिरस्कार न किया था। क्या इसका कारण इसके सिवा कुछ और था कि ऐसा अनुराग उसे और कहीं न मिला था।

क्या वह कुँवर साहब का जीवन सुखी बना सकती है? हाँ, अवश्य। इस विषय में उसे लेशमात्र भी संदेह नहीं था। भक्ति के लिए ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो असाध्य हो; पर क्या वह प्रकृति को धोखा दे सकती है। ढलते हुए सूर्य में मध्याह्न का-सा प्रकाश हो सकता है? असम्भव। वह स्फूर्ति, वह चपलता, वह विनोद, वह सरल छवि, वह तल्लीनता, वह त्याग, वह आत्मविश्वास वह कहाँ से लायेगी, जिसके सम्मिश्रण को यौवन कहते हैं? नहीं, वह कितना ही चाहे, पर कुँवर साहब के जीवन को सुखी नहीं बना सकती बूढ़ा बैल कभी जवान बछड़ों के साथ नहीं चल सकता।

आह! उसने यह नौबत ही क्यों आने दी? उसने क्यों कृत्रिम साधनों से, बनावटी सिंगार से कुँवर को धोखे में डाला? अब इतना सब कुछ हो जाने पर वह किस मुँह से कहेगी कि मैं रंगी हुई गुड़िया हूँ, जबानी मुझसे कब की विदा हो चुकी, अब केवल उसका पद-चिह्न रह गया है।

रात के बारह बज गये थे। तारा मेज के सामने इन्हीं चिंताओं में मग्न बैठी हुई थी। मेज पर उपहारों के ढेर लगे हुए थे; पर वह किसी चीज की ओर आँख उठा कर भी न देखती थी। अभी चार दिन पहले वह इन्हीं चीजों पर प्राण देती थी, उसे हमेशा ऐसी चीजों की तलाश रहती थी, जो काल के चिह्नों को मिटा सकें, पर अब उन्हीं चीजों से उसे घृणा हो रही है। प्रेम सत्य है—और सत्य और मिथ्या, दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

तारा ने सोचा—क्यों न यहाँ से कहीं भाग जाय? किसी ऐसी जगह चली जाय, जहाँ कोई उसे जानता भी न हो। कुछ दिनों के बाद जब कुँवर का विवाह हो जाय, तो वह फिर आकर उनसे मिले और यह सारा वृत्तांत उनसे कह सुनाए। इस समय कुँवर पर वज्रपात-सा होगा—हाय न-जाने उनकी दशा होगी; पर उसके लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है। अब उनके दिन रो-रोकर कटेंगे, लेकिन उसे कितना ही दुःख क्यों न हो, वह अपने प्रियतम के साथ छल नहीं कर सकती। उसके लिए इस स्वर्गीय प्रेम की स्मृति, इसकी वेदना ही बहुत है। इससे अधिक उसका अधिकार नहीं।

दाई ने आकर कहा—बाई जी, चलिए कुछ थोड़ा-सा भोजन कर लीजिए अब तो बारह बज गए।

तारा ने कहा—नहीं, जरा भी भूख नहीं। तुम जाकर खा लो।

दाई—देखिए, मुझे भूल न जाइएगा। मैं भी आपके साथ चलूँगी।

तारा—अच्छे-अच्छे कपड़े बनवा रखे हैं न?

दाई—अरे बाई जी, मुझे अच्छे कपड़े लेकर क्या करना है? आप अपना कोई उतारा दे दीजिएगा।

दाई चली गई। तारा ने घड़ी की ओर देखा। सचमुच बारह बज गए थे। केवल छह घंटे और हैं। प्रातःकाल कुँवर साहब उसे विवाह-मंदिर में ले-जाने के लिए आ जायेंगे। हाय! भगवान, जिस पदार्थ से तुमने इतने दिनों तक उसे वंचित रखा, वह आज क्यों सामने लाये? यह भी तुम्हारी क्रीड़ा है।

तारा ने एक सफ़द साड़ी पहन ली। सारे आभूषण उतार कर रख दिये। गर्म पानी मौजूद था। साबुन और पानी से मुँह धोया और आईने के सम्मुख जा कर खड़ी हो गयी—कहाँ थी वह छवि, वह ज्योति, जो आँखों को लुभा लेती थी! रूप वही था, पर क्रांति कहाँ? अब भी वह यौवन का स्वाँग भर सकती है?

तारा को अब वहाँ एक क्षण भी और रहना कठिन हो गया। मेज पर फैले हुए आभूषण और विलास की सामग्रियाँ मानों उसे काटने लगी। यह कृत्रिम जीवन असह्य हो उठा, खस की टटिटियाँ और बिजली के पंखों से सजा हुआ शीतल भवन उसे भट्टी के समान तपाने लगा।

उसने सोचा—कहाँ भाग कर जाऊँ। रेल से भागती हूँ, तो भागने ना पाऊँगी। सबरे ही कुँवर साहब के आदमी छूटेंगे और चारों तरफ मेरी तलाश होने लगेगी। वह ऐसे रास्ते से जायगी, जिधर किसी का ख्याल भी न जाय।

तारा का हृदय इस समय गर्व से छलका पड़ता था। वह दुःखी न थी, निराश न थी। फिर कुँवर साहब से मिलेगी, किंतु वह निस्वार्थ संयोग होगा। प्रेम के बनाये हुए कर्तव्य मार्ग पर चल रही है, फिर दुःख क्यों हो और निराश क्यों हो?

सहसा उसे ख्याल आया—ऐसा न हो, कुँवर साहब उसे वहाँ न पा कर शेक-विह्वलता की दशा में अनर्थ कर बैठें। इस कल्पना से उसके रोंगटे खड़े हो गये। एक क्षण के लिए उसका मन कातर हो उठा। फिर वह मेज पर जा बैठी, और यह पत्र लिखने लगी—

प्रियतम, मुझे क्षमा करना। मैं अपने को तुम्हारी दासी बनने के योग्य नहीं पाती। तुमने मुझे प्रेम का वह स्वरूप दिखा दिया, जिसकी इस जीवन में मैं आशा न कर सकती थी। मेरे लिए इतना ही बहुत है। मैं जब जीऊँगी, तुम्हारे प्रेम में मग्न रहूँगी। मुझे ऐसा जान पड़ रहा है कि प्रेम की स्मृति में प्रेम के भोग से

कही अधिक माधुर्य और आनन्द है। मैं फिर आऊँगी, फिर तुम्हारे दर्शन करूँगी; लेकिन उसी दशामें जब तुम विवाह कर लोगे। यही मेरे लौटने की शर्त है। मेरे प्राणों के प्राण, मुझसे नाराज न होना। ये आभूषण जो तुमने मेरे लिए भेजे थे, अपनी ओर से नववधू के लिए छोड़े जाती हूँ। केवल वह मोतियों को हार, जो तुम्हारे प्रेम का पहला उपहार है, अपने साथ लिये जाती हूँ। तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, मेरी तलाश न करना। मैं तुम्हारी हूँ और सदा तुम्हारी रहूँगा.....।

तुम्हारी,
तारा

यह पत्र लिखकर तारा ने मेज पर रख दिया, मोतियों का हार गले में डाला और बाहर निकल आयी। थिएटर हाल से संगीत की ध्वनि आ रही थी। एक क्षण के लिए उसके पैर बँध गये। पन्द्रह वर्षों का पुराना सम्बन्ध आज टूट रहा था। सहसा उसने मैनेजर को आते देखा। उसका कलेजा धक से हो गया। वह बड़ी तेजी से लपककर दीवार की आड़ में खड़ी हो गयी। ज्यों ही मैनेजर निकल गया, वह हाते के बाहर आयी और कुछ दूर गलियों में चलने के बाद उसने गंगा का रास्ता पकड़ा।

गंगा-तट पर सन्नाटा छाया हुआ था। दस-पाँच साधु-बैरागी धूनियों के सामने लेटे थे। दस-पाँच यात्री कम्बल जमीन पर बिछाये सो रहे थे। गंगा किसी विशाल सर्प की भाँति रेंगती चली जाती थी। एक छोटी-सी नौका किनारे पर लगी हुई थी। मल्लाहा नौका में बैठा हुआ था।

तारा ने मल्लाहा को पुकारा—ओ माँझी, उस पार नाव ले चलेगा?

माँझी ने जवाब दिया—इतनी रात गये नाव न जाई।

मगर दूनी मजदूरी की बात सुनकर उसे डाँड़ उठाया और नाव को खोलता हुआ बोला—सरकार, उस पार कहाँ जैहें?

‘उस पार एक गाँव में जाना है।’

‘मुदा इतनी रात गये कौनों सवारी-सिकारी न मिली।’

‘कोई हर्ज नहीं, तुम मझे उस पर पहुँचा दो।’

माँझी ने नाव खोल दी। तारा उस पार जा बैठी और नौका मंद गति से चलने लगी, मानों जीव स्वप्न-साम्राज्य में विचर रहा हो।

इसी समय एकादशी का चॉद, पृथ्वी से उस पार, अपनी उज्ज्वल नौका खेता हुआ निकला और व्योम-सागर को पार करने लगा।

ईश्वरीय न्याय

कानपुर जिले में पंडित भृगुदत्त नामक एक बड़े जमींदार थे। मुंशी सत्यनारायण उनके कारिंदा थे। वह बड़े स्वामिभक्त और सच्चरित्र मनुष्य थे। लाखों रुपये की तहसील और हजारों मन अनाज का लेन-देन उनके हाथ में था; पर कभी उनकी नियत डावाँडोल न होती। उनके सुप्रबंध से रियासत दिनोंदिन उन्नति करती जाती थी। ऐसे कर्तव्यपरायण सेवक का जितना सम्मान होना चाहिए, उससे अधिक ही होता था। दुःख-सुख के प्रत्येक अवसर पर पंडित जी उनके साथ बड़ी उदारता से पेश आते। धीरे-धीरे मुंशी जी का विश्वास इतना बढ़ा कि पंडित जी ने हिसाब-किताब का समझना भी छोड़ दिया। सम्भव है, उनसे आजीवन इसी तरह निभ जाती, पर भावी प्रबल है। प्रयाग में कुम्भ लगा, तो पंडित जी भी स्नान करने गये। वहाँ से लौटकर फिर वे घर न आये। मालूम नहीं, किसी गढ़े में फिसल पड़े या कोई जल-जंतु उन्हें खींच ले गया, उनका फिर कुछ पता ही न चला। अब मुंशी सत्यनारायण के अधिकार और भी बढ़े। एक हतभागिनी विधवा और दो छोटे-छोटे बच्चों के सिवा पंडित जी के घर में और कोई न था। अंत्येष्टि-क्रिया से निवृत्त होकर एक

दिन शोकातुर पंडिताइन ने उन्हें बुलाया और रोकर कहा—लाला, पंडित जी हमें मँझाधार में छोड़कर सुरपुर को सिधर गये, अब यह नैया तुम्हीं पार लगाओगे तो लग सकती है। यह सब खेती तुम्हारी लगायी हुई है, इसे तुम्हारे ही ऊपर छोड़ती हूँ। ये तुम्हारे बच्चे हैं, इन्हें अपनाओ। जब तक मालिक जिये, तुम्हें अपना भाई समझते रहे। मुझे विश्वास है कि तुम उसी तरह इस भार को सँभाले रहोगे।

सत्यनाराण ने रोते हुए जवाब दिया—भाभी, भैया क्या उठ गये, मेरे तो भाग्य ही फूट गये, नहीं तो मुझे आदमी बना देते। मैं उन्हीं का नमक खाकर जिया हूँ और उन्हीं की चाकरी में मरूँगा भी। आप धीरज रखें। किसी प्रकार की चिंता न करें। मैं जीते-जी आपकी सेवा से मुँह न मोड़ूँगा। आप केवल इतना कीजिएगा कि मैं जिस किसी की शिकायत करूँ, उसे डाँट दीजिएगा; नहीं तो ये लोग सिर चढ़ जायेंगे।

2

इस घटना के बाद कई वर्षों तक मुंशीजी ने रियासत को सँभाला। वह अपने काम में बड़े कुशल थे। कभी एक कौड़ी का भी बल नहीं पड़ा। सारे जिले में उनका सम्मान होने लगा। लोग पंडित जी को भूल-सा गये। दरबारों और कमेटियों में वे सम्मिलित होते, जिले के अधिकारी उन्हीं को जमींदार समझते। अन्य रईसों में उनका आदर था; पर मान-वृद्धि की महँगी वस्तु है। और भानुक्कुरि, अन्य स्त्रियों के सदृश पैसे को खूब पकड़ती। वह मनुष्य की मनोवृत्तियों से परिचित न थी। पंडित जी हमेशा लाला जी को इनाम इकराम देते रहते थे। वे जानते थे कि ज्ञान के बाद ईमान का दूसरा स्तम्भ अपनी सुदृशा है। इसके सिवा वे खुद भी कभी कागजों की जाँच कर लिया करते थे। नाममात्र ही को सही, पर इस निगरानी का डर जरूर बना रहता था; क्योंकि ईमान का सबसे बड़ा शत्रु अवसर है। भानुक्कुरि इन बातों को जानती न थी। अतएव अवसर तथा धनाभाव-जैसे प्रबल शत्रुओं के पंजे में पड़ कर मुंशीजी का ईमान कैसे बेदाग बचता?

कानपुर शहर से मिला हुआ, ठीक गंगा के किनारे, एक बहुत आजाद और उपजाऊ गाँव था। पंडित जी इस गाँव को लेकर नदी-किनारे पक्का घाट, मंदिर, बाग, मकान आदि बनवाना चाहते थे; पर उनकी यह कामना सफल न हो सकी। संयोग से अब यह गाँव बिकने लगा। उनके जमींदार एक ठाकुर साहब थे। किसी फौजदारी के मामले में फँसे हुए थे। मुकदमा लड़ने के लिए रुपये की चाह थी। मुंशीजी ने कचहरी में यह समाचार सुना। चटपट मोल-तोल हुआ। दोनों तरफ गरज थी। सौदा पटने में देर न लगी, बैनामा लिखा गया। रजिस्ट्री हुई। रुपये मौजूद न थे, पर शहर में साख थी। एक महाजन के यहाँ से तीस हजार रुपये मँगवाये गये और ठाकुर साहब को नजर किये गये। हाँ, काम-काज की आसानी के खयाल से यह सब लिखा-पढ़ी मुंशीजी ने अपने ही नाम की; क्योंकि मालिक के लड़के अभी नाबालिग थे। उनके नाम से लेने में बहुत झंझट होती और विलम्ब होने से शिकार हाथ से निकल जाता। मुंशीजी बैनामा लिये असीम आनंद में मग्न भानुक्कुरि के पास आये। पर्दा कराया और यह शुभ-समाचार सुनाया। भानुक्कुरि ने सजल नेत्रों से उनको धन्यवाद दिया। पंडित जी के नाम पर मन्दिर और घाट बनवाने का इरादा पक्का हो गया।

मुंशी जी दूसरे ही दिन उस गाँव में आये। आसामी नजराने लेकर नये स्वामी के स्वागत को हाजिर हुए। शहर के रईसों की दावत हुई। लोगों के नावों पर बैठ कर गंगा की खूब सैर की। मन्दिर आदि बनवाने के लिए आबादी से हट कर रमणीक स्थान चुना गया।

3

यद्यपि इस गाँव को अपने नाम लेते समय मुंशी जी के मन में कपट का भाव न था, तथापि दो-चार दिन में ही उनका अंकुर जम गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मुंशी जी इस गाँव के आय-व्यय का हिसाब अलग रखते और अपने स्वामिनों को उसका ब्योरो समझाने की जरूरत न समझते। भानुक्कुरि इन बातों में दखल देना उचित न समझती थी; पर दूसरे कारिंदों से बातें सुन-सुन कर उसे शंका होती थी कि कहीं मुंशी जी दगा तो न देंगे। अपने मन का भाव मुंशी से छिपाती थी, इस खयाल से कि कहीं कारिंदों ने उन्हें हानि पहुँचाने के लिए यह षड़यंत्र न रचा हो।

इस तरह कई साल गुजर गये। अब उस कपट के अंकुर ने वृक्ष का रूप धारण किया। भानुक्कुरि को मुंशी जी के उस मार्ग के लक्षण दिखायी देने लगे। उधर मुंशी जी के मन ने कानून से नीति पर विजय पायी, उन्होंने अपने मन में फैसला किया कि गाँव मेरा है। हाँ, मैं भानुक्कुरि का तीस हजार का ऋणी अवश्य हूँ। वे बहुत करेंगी तो अपने रुपये ले लेंगी और क्या कर सकती हैं? मगर दोनों तरफ यह आग अन्दर ही

अन्दर सुलगती रही। मुंशी जी अस्त्रसज्जित होकर आक्रमण के इंतजार में थे और भानुक्कुरि इसके लिए अवसर ढूँढ़ रही थी। एक दिन उसने साहस करके मुंशी जी को अन्दर बुलाया और कहा—लाला जी ‘बरगदा’ के मन्दिर का काम कब से लगवाइएगा? उसे लिये आठ साल हो गये, अब काम लग जाय तो अच्छा हो। जिंदगी का कौन ठिकाना है, जो काम करना है; उसे कर ही डालना चाहिए।

इस ढंग से इस विषय को उठा कर भानुक्कुरि ने अपनी चतुराई का अच्छा परिचय दिया। मुंशी जी भी दिल में इसके कायल हो गये। जरा सोच कर बोले—इरादा तो मेरा कई बार हुआ, पर मौके की जमीन नहीं मिलती। गंगातट की जमीन असामियों के जोत में है और वे किसी तरह छोड़ने पर राजी नहीं।

भानुक्कुरि—यह बात तो आज मुझे मालूम हुई। आठ साल हुए, इस गाँव के विषय में आपने कभी भूल कर भी दी तो चर्चा नहीं की। मालूम नहीं, कितनी तहसील है, क्या मुनाफा है, कैसा गाँव है, कुछ सीर होती है या नहीं। जो कुछ करते हैं, आप ही करते हैं और करेंगे। पर मुझे भी तो मालूम होना चाहिए?

मुंशी जी सँभल उठे। उन्हें मालूम हो गया कि इस चतुर स्त्री से बाजी ले जाना मुश्किल है। गाँव लेना ही है तो अब क्या डर। खुल कर बोले—आपको इससे कोई सरोकार न था, इसलिए मैंने व्यर्थ कष्ट देना मुनासिब न समझा।

भानुक्कुरि के हृदय में कुठार-सा लगा। पर्दे से निकल आयी और मुंशी जी की तरफ तेज आँखों से देख कर बोली—आप क्या कहते हैं! आपने गाँव मेरे लिये लिया था या अपने लिए! रुपये मैंने दिये या आपने? उस पर जो खर्च पड़ा, वह मेरा था या आपका? मेरी समझ में नहीं आता कि आप कैसी बातें करते हैं।

मुंशी जी ने सावधानी से जवाब दिया—यह तो आप जानती हैं कि गाँव हमारे नाम से बसा हुआ है। रुपया जरूर आपका लगा, पर मैं उसका देनदार हूँ। रहा तहसील-वसूल का खर्च, यह सब मैंने अपने पास से दिया है। उसका हिसाब-किताब, आय-व्यय सब रखता गया हूँ।

भानुक्कुरि ने क्रोध से काँपते हुए कहा—इस कपट का फल आपको अवश्य मिलेगा। आप इस निर्दयता से मेरे बच्चों का गला नहीं काट सकते। मुझे नहीं मालूम था कि आपने हृदय में छुरी छिपा रखी है, नहीं तो यह नौबत ही क्यों आती। खैर, अब से मेरी रोकड़ और बही खाता आप कुछ न छुएँ। मेरा जो कुछ होगा, ले लूँगी। जाइए, एकांत में बैठ कर सोचिए। पाप से किसी का भला नहीं होता। तुम समझते होगे कि बालक अनाथ हैं, इनकी सम्पत्ति हजम कर लूँगा। इस भूल में न रहना, मैं तुम्हारे घर की ईंट तक बिकवा लूँगी।

यह कहकर भानुक्कुरि फिर पर्दे की आड़ में आ बैठी और रोने लगी। स्त्रियाँ क्रोध के बाद किसी न किसी बहाने रोया करती हैं। लाला साहब को कोई जवाब न सूझा। यहाँ से उठ आये और दफ्तर जाकर कागज उलट-पलट करने लगे, पर भानुक्कुरि भी उनके पीछे-पीछे दफ्तर में पहुँची और डॉट कर बोली—मेरा कोई कागज मत छूना। नहीं तो बुरा होगा। तुम विषैले साँप हो, मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहती।

मुंशी जी कागजों में कुछ काट-छाँट करना चाहते थे, पर विवश हो गये। खजाने की कुन्जी निकाल कर फेंक दी, बही-खाते पटक दिये, किवाड़ धड़ाके-से बंद किये और हवा की तरह सन्न-से निकल गये। कपट में हाथ तो डाला, पर कपट मन्त्र न जाना।

दूसरें कारिंदों ने यह कैफियत सुनी, तो फूले न समाये। मुंशी जी के सामने उनकी दाल न गलने पाती। भानुक्कुरि के पास आकर वे आग पर तेल छिड़कने लगे। सब लोग इस विषय में सहमत थे कि मुंशी सत्यनारायण ने विश्वासघात किया है। मालिक का नमक उनकी हड्डियों से फूट-फूट कर निकलेगा।

दोनों ओर से मुकदमेबाजी की तैयारियाँ होने लगीं! एक तरफ न्याय का शरीर था, दूसरी ओर न्याय की आत्मा। प्रकृति का पुरुष से लड़ने का साहस हुआ।

भानुक्कुरि ने लाला छक्कन लाल से पूछा—हमारा वकील कौन है? छक्कन लाल ने इधर-उधर झाँक कर कहा—वकील तो सेठ जी हैं, पर सत्यनारायण ने उन्हें पहले गाँठ रखा होगा। इस मुकदमे के लिए बड़े होशियार वकील की जरूरत है। मेहरा बाबू की आजकल खूब चल रही है। हाकिम की कलम पकड़ लेते हैं। बोलते हैं तो जैसे मोटरकार छूट जाती है सरकार! और क्या कहें, कई आदमियों को फाँसी से उतार लिया है, उनके सामने कोई वकील जबान तो खोल नहीं सकता। सरकार कहें तो वही कर लिये जायँ।

छक्कन लाल की अत्युक्ति से संदेह पैदा कर लिया। भानुक्कुरि ने कहा—नहीं, पहले सेठ जी से पूछ लिया जाय। उसके बाद देखा जायगा। आप जाइए, उन्हें बुला लाइए।

छक्कनलाल अपनी तकदीर को ठँकते हुए सेठ जी के पास गये। सेठ जी पंडित भृगुदत्त के जीवन-काल से ही उनका कानून-सम्बन्धी सब काम किया करते थे। मुकदमे का हाल सुना तो सन्नाटे में आ गये। सत्यनारायण को यह बड़ा नेकनीयत आदमी समझते थे। उनके पतन से बड़ा खेद हुआ। उसी वक्त आये।

भानुकुँवरि ने रो-रो कर उनसे अपनी विपत्ति की कथा कही और अपने दोनों लड़कों को उनके सामने खड़ा करके बोली—आप इन अनाथों की रक्षा कीजिए। इन्हें मैं आपको सौंपती हूँ।

सेठ जी ने समझौते की बात छोड़ी। बोले—आपस की लड़ाई अच्छी नहीं।

भानुकुँवरि—अन्यायी के साथ लड़ना ही अच्छा है।

सेठ जी—पर हमारा पक्ष निर्बल है।

भानुकुँवरि फिर पर्दे से निकल आयी और विस्मित होकर बोली—क्या हमारा पक्ष निर्बल है? दुनिया जानती है कि गाँव हमारा है। उसे हमसे कौन ले सकता है? नहीं, मैं सुलह कभी न करूँगी, आप कागजों को देखें। मेरे बच्चों की खातिर यह कष्ट उठायें। आपका परिश्रम निष्फल न जायगा। सत्यनारायण की नीयत पहले खराब न थी। देखिए जिस मिती में गाँव लिया गया है, उस मिती में तीस हजार का क्या खर्च दिखाया गया है। अगर उसने अपने नाम उधार लिखा हो, तो देखिए, वार्षिक सूद चुकाया गया या नहीं। ऐसे नरपिशाच से मैं कभी सुलह न करूँगी।

सेठ जी ने समझ लिया कि इस समय समझाने-बुझाने से कुछ काम न चलेगा। कागजात देखें, अभियोग चलाने की तैयारियाँ होने लगीं।

4

मुंशी सत्यनारायणलाल खिसियाये हुए मकान पहुँचे। लड़के ने मिठाई माँगी। उसे पीटा। स्त्री पर इसलिए बरस पड़े कि उसने क्यों लड़के को उनके पास जाने दिया। अपनी वृद्धा माता को डाँट कर कहा—तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जरा लड़के को बहलाओ? एक तो मैं दिन-भर का थका-माँदा घर आऊँ और फिर लड़के को खेलाऊँ? मुझे दुनिया में न और कोई काम है, न धंधा। इस तरह घर में बावैला मचा कर बाहर आये, सोचने लगे—मुझसे बड़ी भूल हुई। मैं कैसा मूर्ख हूँ। और इतने दिन तक सारे कागज-पत्र अपने हाथ में थे। चाहता, कर सकता था, पर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहा। आज सिर पर आ पड़ी, तो सूझी। मैं चाहता तो बही-खाते सब नये बना सकता था, जिसमें इस गाँव का और रुपये का जिक्र ही न होता, पर मेरी मूर्खता के कारण घर में आयी हुई लक्ष्मी रुठी जाती हैं। मुझे क्या मालूम था कि वह चुड़ैल मुझसे इस तरह पेश आयेगी, कागजों में हाथ तक न लगाने देगी।

इसी उधेड़बुन में मुंशी जी एकाएक उछल पड़े। एक उपाय सूझ गया—क्यों न कार्यकर्ताओं को मिला लूँ? यद्यपि मेरी सख्ती के कारण वे सब मुझसे नाराज थे और इस समय सीधे बात भी न करेंगे, तथापि उनमें ऐसा कोई भी नहीं, जो प्रलोभन से मुठ्ठी में न आ जाय। हाँ, इसमें रुपये पानी की तरह बहाना पड़ेगा, पर इतना रुपया आयेगा कहाँ से? हाय दुर्भाग्य! दो-चार दिन पहले चेत गया होता, तो कोई कठिनाई न पड़ती। क्या जानता था कि वह डाइन इस तरह वज्र-प्रहार करेगी। बस, अब एक ही उपाय है। किसी तरह कागजात गुम कर दूँ। बड़ी जोखिम का काम है, पर करना ही पड़ेगा।

दुष्कामनाओं के सामने एक बार सिर झुकाने पर फिर संभलना कठिन हो जाता है। पाप के अथाह दलदल में जहाँ एक बार पड़े कि फिर प्रतिक्षण नीचे ही चले जाते हैं। मुंशी सत्यनारायण-सा विचारशील मनुष्य इस समय इस फिक्र में था कि कैसे सेंध लगा पाऊँ!

मुंशी जी ने सोचा—क्या सेंध लगाना आसान है? इसके वास्ते कितनी चतुरता, कितना साहब, कितनी बुद्धि, कितनी वीरता चाहिए! कौन कहता है कि चोरी करना आसान काम है? मैं जो कहीं पकड़ा गया, तो मरने के सिवा और कोई मार्ग न रहेगा।

बहुत सोचने-विचारने पर भी मुंशी जी को अपने ऊपर ऐसा दुस्साहस कर सकने का विश्वास न हो सका। हाँ, इसमें सुगम एक दूसरी तदबीर नजर आयी—क्यों न दफ्तर में आग लगा दूँ? एक बोतल मिट्टी का तेल और दियासलाई की जरूरत हैं किसी बदमाश को मिला लूँ, मगर यह क्या मालूम कि वही उसी कमरे में रखी है या नहीं। चुड़ैल ने उसे जरूर अपने पास रख लिया होगा। नहीं; आग लगाना गुनाह बेलज्जत होगा।

बहुत देर मुंशी जी करवटें बदलते रहे। नये-नये मनसूबे सोचते; पर फिर अपने ही तर्कों से काट देते। वर्षाकाल में बादलों की नयी-नयी सूरतें बनती और फिर हवा के वेग से बिगड़ जाती हैं; वही दशा इस समय उनके मनसूबों की हो रही थी।

पर इस मानसिक अशांति में भी एक विचार पूर्णरूप से स्थिर था—किसी तरह इन कागजात को अपने हाथ में लाना चाहिए। काम कठिन है—माना! पर हिम्मत न थी, तो रार क्यों मोल ली? क्या तीस हजार की जायदाद दाल-भात का कौर है?—चाहे जिस तरह हो, चोर बने बिना काम नहीं चल सकता। आखिर जो लोग

चोरियाँ करते हैं, वे भी तो मनुष्य ही होते हैं। बस, एक छल्लाँग का काम है। अगर पार हो गये, तो राज करेंगे, गिर पड़े, तो जान से हाथ धोयेंगे।

5

रात के दस बज गये। मुंशी सत्यनाराण कुंजियों का एक गुच्छा कमर में दबाये घर से बाहर निकले। द्वार पर थोड़ा-सा पुआल रखा हुआ था। उसे देखते ही वे चौंक पड़े। मारे डर के छाती धड़कने लगी। जान पड़ा कि कोई छिपा बैठा है। कदम रुक गये। पुआल की तरफ ध्यान से देखा। उसमें बिलकुल हरकत न हुई! तब हिम्मत बाँधी, आगे बढ़े और मन को समझाने लगे—मैं कैसा बौखल हूँ

अपने द्वार पर किसका डर और सड़क पर भी मुझे किसका डर है? मैं अपनी राह जाता हूँ। कोई मेरी तरफ तिरछी आँख से नहीं देख सकता। हाँ, जब मुझे सेंध लगाते देख ले—नहीं, पकड़ ले तब अलबते डरने की बात है। तिस पर भी बचाव की युक्ति निकल सकती है।

अकस्मात उन्होंने भानुकुँवरि के एक चपरासी को आते हुए देखा। कलेजा धड़क उठा। लपक कर एक अँधेरी गली में घुस गये। बड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे। जब वह सिपाही आँखों से ओझल हो गया, तब फिर सड़क पर आये। वह सिपाही आज सुबह तक इनका गुलाम था, उसे उन्होंने कितनी ही बार गालियाँ दी थीं, लातें मारी थीं, पर आज उसे देखकर उनके प्राण सूख गये।

उन्होंने फिर तर्क की शरण ली। मैं मानों भंग खाकर आया हूँ। इस चपरासी से इतना डरा मानो कि वह मुझे देख लेता, पर मेरा कर क्या सकता था? हजारों आदमी रास्ता चल रहे हैं। उन्हीं में मैं भी एक हूँ। क्या वह अंतर्दामी है? सबके हृदय का हाल जानता है? मुझे देखकर वह अदब से सलाम करता और वहाँ का कुछ हाल भी कहता; पर मैं उससे ऐसा डरा कि सूरत तक न दिखायी। इस तरह मन को समझा कर वे आगे बढ़े। सच है, पाप के पंजों में फँसा हुआ मन पतझड़ का पता है, जो हवा के जरा-से झोंके से गिर पड़ता है।

मुंशी जी बाजार पहुँचे। अधिकतर दूकानें बंद हो चुकी थीं। उनमें साँड़ और गायें बैठी हुई जुगाली कर रही थीं। केवल हलवाईयों की दूकानें खुली थी और कहीं-कहीं गजरेवाले हार की हाँक लगाते फिरते थे। सब हलवाई मुंशी जी को पहचानते थे, अतएव मुंशी जी ने सिर झुका लिया। कुछ चाल बदली और लपकते हुए चले। एकाएक उन्हें एक बग्गी आती दिखायी दी। यह सेठ बल्लभदास सवकील की बग्गी थी। इसमें बैठकर हजारों बार सेठ जी के साथ कचहरी गये थे, पर आज वह बग्गी कालदेव के समान भयंकर मालूम हुई। फौरन एक खाली दूकान पर चढ़ गये। वहाँ विश्राम करने वाले साँड़ ने समझा, वे मुझे पदच्युत करने आये हैं! माथा झुकाये फुंकारता हुआ उठ बैठा; पर इसी बीच में बग्गी निकल गयी और मुंशी जी की जान में जान आयी। अबकी उन्होंने तर्क का आश्रय न लिया। समझ गये कि इस समय इससे कोई लाभ नहीं, खैरियत यह हुई कि वकील ने देखा नहीं। यह एक घाघ हैं। मेरे चेहरे से ताड़ जाता।

कुछ विद्वानों का कथन है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाप की ओर होती है, पर यह कोरा अनुमान ही अनुमान है, अनुभव-सिद्ध बात नहीं। सच बात तो यह है कि मनुष्य स्वभावतः पाप-भीरु होता है और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पाप से उसे कैसी घृणा होती है।

एक फर्लांग आगे चल कर मुंशी जी को एक गली मिली। वह भानुकुँवरि के घर का एक रास्ता था। धुँधली-सी लालटेन जल रही थी। जैसा मुंशी जी ने अनुमान किया था, पहरेदार का पता न था। अस्तबल में चमारों के यहाँ नाच हो रहा था। कई चमारिनें बनाव-सिंगार करके नाच रही थीं। चमार मृदंग बजा-बजा कर गाते थे—

‘नाहीं घरे श्याम, घेरि आये बदरा।

सोवत रहेउँ, सपन एक देखेउँ, रामा।

खुलि गयी नींद, ढरक गये कजरा।

नाहीं घरे श्याम, घेरि आये बदरा।’

दोनों पहरेदार वही तमाशा देख रहे थे। मुंशी जी दबे-पाँव लालटेन के पास गए और जिस तरह बिल्ली चूहे पर झपटती है, उसी तरह उन्होंने झपट कर लालटेन को बुझा दिया। एक पड़ाव पूरा हो गया, पर वे उस कार्य को जितना दुष्कर समझते थे, उतना न जान पड़ा। हृदय कुछ मजबूत हुआ। दफ्तर के बरामदे में पहुँचे और खूब कान लगाकर आहट ली। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल चमारों का कोलाहल सुनायी देता था। इस समय मुंशी जी के दिल में धड़कन थी, पर सिर धमधम कर रहा था; हाथ-पाँव काँप रहे थे, साँस बड़े वेग से चल रही थी। शरीर का एक-एक रोम आँख और कान बना हुआ था। वे सजीवता की मूर्ति

हो रहे थे। उनमें जितना पौरुष, जितनी चपलता, जितना-साहस, जितनी चेतना, जितनी बुद्धि, जितना औसान था, वे सब इस वक्त सजग और सचेत होकर इच्छा-शक्ति की सहायता कर रहे थे।

दफ्तर के दरवाजे पर वही पुराना ताला लगा हुआ था। इसकी कुंजी आज बहुत तलाश करके वे बाजार से लाये थे। ताला खुल गया, किवाड़ो ने बहुत दबी जबान से प्रतिरोध किया। इस पर किसी ने ध्यान न दिया। मुंशी जी दफ्तर में दाखिल हुए। भीतर चिराग जल रहा था। मुंशी जी को देख कर उसने एक दफे सिर हिलाया, मानो उन्हें भीतर आने से रोका।

मुंशी जी के पैर थर-थर काँप रहे थे। एड़ियाँ जमीन से उछली पड़ती थीं। पाप का बोझ उन्हें असह्य था।

पल-भर में मुंशी जी ने बहियों को उलटा-पलटा। लिखावट उनकी आँखों में तैर रही थी। इतना अवकाश कहाँ था कि जरूरी कागजात छाँट लेते। उन्होंने सारी बहियों को समेट कर एक गट्ठर बनाया और सिर पर रख कर तीर के समान कमरे के बाहर निकल आये। उस पाप की गठरी को लादे हुए वह अँधेरी गली से गायब हो गए।

तंग, अँधेरी, दुर्गन्धपूर्ण कीचड़ से भरी हुई गलियों में वे नंगे पाँव, स्वार्थ, लोभ और कपट का बोझ लिए चले जाते थे। मानो पापमय आत्मा नरक की नालियों में बही चली जाती थी।

बहुत दूर तक भटकने के बाद वे गंगा किनारे पहुँचे। जिस तरह कलुषित हृदयों में कहीं-कहीं धर्म का धुँधला प्रकाश रहता है, उसी तरह नदी की काली सतह पर तारे झिलमिला रहे थे। तट पर कई साधु धूनी जमाये पड़े थे। ज्ञान की ज्वाला मन की जगह बाहर दहक रही थी। मुंशी जी ने अपना गट्ठर उतारा और चादर से खूब मजबूत बाँध कर बलपूर्वक नदी में फेंक दिया। सोती हुई लहरों में कुछ हलचल हुई और फिर सन्नाटा हो गया।

6

मुंशी सतयनाराणलाल के घर में दो स्त्रियाँ थीं—माता और पत्नी। वे दोनों अशिक्षिता थीं। तिस पर भी मुंशी जी को गंगा में डूब मरने या कहीं भाग जाने की जरूरत न होती थी ! न वे बाँडी पहनती थी, न मोजे-जूते, न हारमोनियम पर गा सकती थी। यहाँ तक कि उन्हें साबुन लगाना भी न आता था। हेयरपिन, ब्रुचेज, जाकेट आदि परमावश्यक चीजों का तो नाम ही नहीं सुना था। बहू में आत्म-सम्मान जरा भी नहीं था; न सास में आत्म-गौरव का जोश। बहू अब तक सास की घुड़कियाँ भीगी बिल्ली की तरह सह लेती थी—हा मूर्ख ! सास को बच्चे के नहलाने-धुलाने, यहाँ तक कि घर में झाड़ू देने से भी घृणा न थी, हा ज्ञानांधे! बहू स्त्री क्या थी, मिट्टी का लौंदा थी। एक पैसे की जरूरत होती तो सास से माँगती। सारांश यह कि दोनों स्त्रियाँ अपने अधिकारों से बेखबर, अंधकार में पड़ी हुई पशुवत् जीवन व्यतीत करती थीं। ऐसी फूहड़ थी कि रोटियां भी अपने हाथों से बना लेती थी। कंजूसी के मारे दालमोट, समोसे कभी बाजार से न मँगातीं। आगरे वाले की दूकान की चीजें खायी होती तो उनका मजा जानतीं। बुढ़िया खूसट दवा-दरपन भी जानती थी। बैठी-बैठी घास-पात कूटा करती।

मुंशी जी ने माँ के पास जाकर कहा—अम्माँ ! अब क्या होगा? भानुक्कुरि ने मुझे जवाब दे दिया।

माता ने घबरा कर पूछा—जवाब दे दिया?

मुंशी—हाँ, बिलकुल बेकसूर!

माता—क्या बात हुई? भानुक्कुरि का मिजाज तो ऐसा न था।

मुंशी—बात कुछ न थी। मैंने अपने नाम से जो गाँव लिया था, उसे मैंने अपने अधिकार में कर लिया। कल मुझसे और उनसे साफ-साफ बातें हुई। मैंने कह दिया कि गाँव मेरा है। मैंने अपने नाम से लिया है, उसमें तुम्हारा कोई इजारा नहीं। बस, बिगड़ गयीं, जो मुँह में आया, बकती रहीं। उसी वक्त मुझे निकाल दिया और धमका कर कहा—मैं तुमसे लड़ कर अपना गाँव ले लूँगी। अब आज ही उनकी तरफ से मेरे ऊपर मुकदमा दायर होगा; मगर इससे होता क्या है? गाँव मेरा है। उस पर मेरा कब्जा है। एक नहीं, हजार मुकदमें चलाएं, डिगरी मेरी होगी?

माता ने बहू की तरफ मर्मांतक दृष्टि से देखा और बोली—क्यों भैया? वह गाँव लिया तो था तुमने उन्हीं के रुपये से और उन्हीं के वास्ते?

मुंशी—लिया था, तब लिया था। अब मुझसे ऐसा आबाद और मालदार गाँव नहीं छोड़ा जाता। वह मेरा कुछ नहीं कर सकती। मुझसे अपना रुपया भी नहीं ले सकती। डेढ़ सौ गाँव तो हैं। तब भी हवस नहीं मानती।

माना—बेटा, किसी के धन ज्यादा होता है, तो वह उसे फेंक थोड़े ही देता है? तुमने अपनी नीयत बिगाड़ी, यह अच्छा काम नहीं किया। दुनिया तुम्हें क्या कहेगी? और दुनिया चाहे कहे या न कहे, तुमको भला ऐसा करना चाहिए कि जिसकी गोद में इतने दिन पले, जिसका इतने दिनों तक नमक खाया, अब उसी से दगा करो? नारायण ने तुम्हें क्या नहीं दिया? मजे से खाते हो, पहनते हो, घर में नारायण का दिया चार पैसा है, बाल-बच्चे हैं, और क्या चाहिए? मेरा कहना मानो, इस कलंक का टीका अपने माथे न लगाओ। यह अपजस मत लो। बरक्कत अपनी कमाई में होती है; हराम की कौड़ी कभी नहीं फलती।

मुंशी—ऊँह! ऐसी बातें बहुत सुन चुका हूँ। दुनिया उन पर चलने लगे, तो सारे काम बन्द हो जायँ। मैंने इतने दिनों इनकी सेवा की, मेरी ही बदौलत ऐसे-ऐसे चार-पाँच गाँव बढ़ गए। जब तक पंडित जी थे, मेरी नीयत का मान था। मुझे आँख में धूल डालने की जरूरत न थी, वे आप ही मेरी खातिर कर दिया करते थे। उन्हें मरे आठ साल हो गए; मगर मुसम्मात के एक बीड़े पान की कसम खाता हूँ; मेरी जात से उनको हजारों रुपये-मासिक की बचत होती थी। क्या उनको इतनी भी समझ न थी कि यह बेचारा, जो इतनी ईमानदारी से मेरा काम करता है, इस नफे में कुछ उसे भी मिलना चाहिए? यह कह कर न दो, इनाम कह कर दो, किसी तरह दो तो, मगर वे तो समझती थी कि मैंने इसे बीस रुपये महीने पर मोल ले लिया है। मैंने आठ साल तक सब किया, अब क्या इसी बीस रुपये में गुलामी करता रहूँ और अपने बच्चों को दूसरों का मुँह ताकने के लिए छोड़ जाऊँ? अब मुझे यह अवसर मिला है। इसे क्यों छोड़ूँ? जमींदारी की लालसा लिये हुए क्यों मरूँ? जब तक जीऊँगा, खुद खाऊँगा। मेरे पीछे मेरे बच्चे चैन उड़ायेंगे।

माता की आँखों में आँसू भर आये। बोली—बेटा, मैंने तुम्हारे मुँह से ऐसी बातें कभी नहीं सुनी थीं, तुम्हें क्या हो गया है? तुम्हारे आगे बाल-बच्चे हैं। आग में हाथ न डालो।

बहू ने सास की ओर देख कर कहा—हमको ऐसा धन न चाहिए, हम अपनी दाल-रोटी में मगन हैं।

मुंशी—अच्छी बात है, तुम लोग रोटी-दाल खाना, गाढ़ा पहनना, मुझे अब हल्वे-पूरी की इच्छा है।

माता—यह अधर्म मुझसे न देखा जायगा। मैं गंगा में डूब मरूँगी।

पत्नी—तुम्हें यह सब काँटा बोना है, तो मुझे मायके पहुँचा दो, मैं अपने बच्चों को लेकर इस घर में न रहूँगी!

मुंशी ने झुंझला कर कहा—तुम लोगों की बुद्धि तो भाँग खा गयी है। लाखों सरकारी नौकर रात-दिन दूसरों का गला दबा-दबा कर रिश्वतें लेते हैं और चैन करते हैं। न उनके बाल-बच्चों ही को कुछ होता है, न उन्हीं को हैजा पकड़ता है। अधर्म उनको क्यों नहीं खा जाता, जो मुझी को खा जायगा। मैंने तो सत्यवादियों को सदा दुःख झेलते ही देखा है। मैंने जो कुछ किया है, सुख लूटूँगा। तुम्हारे मन में जो आये, करो।

प्रातःकाल दफ्तर खुला तो कागजात सब गायब थे। मुंशी छक्कनलाल बौखलाये से घर में गये और मालकिन से पूछा—कागजात आपने उठवा लिए हैं।

भानुकुँवरि ने कहा—मुझे क्या खबर, जहाँ आपने रखे होंगे, वहीं होंगे।

फिर सारे घर में खलबली पड़ गयी। पहरेदारों पर मार पड़ने लगी। भानुकुँवरि को तुरन्त मुंशी सत्यनारायण पर संदेह हुआ, मगर उनकी समझ में छक्कनलाल की सहायता के बिना यह काम होना असम्भव था। पुलिस में रपट हुई। एक ओझा नाम निकालने के लिए बुलाया गया। मौलवी साहब ने कुरा फेंका। ओझा ने बताया, यह किसी पुराने बैरी का काम है। मौलवी साहब ने फरमाया, किसी घर के भेदिये ने यह हरकत की है। शाम तक यह दौड़-धूप रही। फिर यह सलाह होने लगी कि इन कागजातों के बगैर मुकदमा कैसे चले। पक्ष तो पहले से ही निर्बल था। जो कुछ बल था, वह इसी बही-खाते का था। अब तो सबूत भी हाथ से गये। दावे में कुछ जान ही न रही, मगर भानुकुँवरि ने कहा—बला से हार जाएँगे। हमारी चीज कोई छीन ले, तो हमारा धर्म है कि उससे यथाशक्ति लड़ें, हार कर बैठना कायरों का काम है। सेठ जी (वकील) को इस दुर्घटना का समाचार मिला तो उन्होंने भी यही कहा कि अब दावे में जरा भी जान नहीं है। केवल अनुमान और तर्क का भरोसा है। अदालत ने माना तो माना, नहीं तो हार माननी पड़ेगी। पर भानुकुँवरि ने एक न मानी। लखनऊ और इलाहाबाद से दो होशियार बैरिस्टर बुलाये। मुकदमा शुरू हो गया।

सारे शहर में इस मुकदमे की धूम थी। कितने ही रईसों को भानुकुँवरि ने साथी बनाया था। मुकदमा शुरू होने के समय हजारों आदमियों की भीड़ हो जाती थी। लोगों के इस खिंचाव का मुख्य कारण यह था

कि भानुक्वुरि एक पर्दे की आड़ में बैठी हुई अदालत की कारवाई देखा करती थी, क्योंकि उसे अब अपने नौकरों पर जरा भी विश्वास न था।

वादी बैरिस्टर ने एक बड़ी मार्मिक वक्तृता दी। उसने सत्यनाराण की पूर्वावस्था का खूब अच्छा चित्र खींचा। उसने दिखलाया कि वे कैसे स्वामिभक्त, कैसे कार्य-कुशल, कैसे कर्म-शील थे; और स्वर्गवासी पंडित भृगुदत्त का उस पर पूर्ण विश्वास हो जाना, किस तरह स्वाभाविक था। इसके बाद उसने सिद्ध किया कि मुंशी सत्यनाराण की आर्थिक व्यवस्था कभी ऐसी न थी कि वे इतना धन-संचय करते। अंत में उसने मुंशी जी की स्वार्थपरता, कूटनीति, निर्दयता और विश्वास-घातकता का ऐसा घृणोत्पादक चित्र खींचा कि लोग मुंशी जी को गोलिएँ देने लगे। इसके साथ ही उसने पंडित जी के अनाथ बालकों की दशा का बड़ा करुणोत्पादक वर्णन किया—कैसे शोक और लज्जा की बात है कि ऐसा चरित्रवान, ऐसा नीति-कुशल मनुष्य इतना गिर जाय कि अपने स्वामी के अनाथ बालकों की गर्दन पर छुरी चलाने पर संकोच न करे। मानव-पतन का ऐसा करुण, ऐसा हृदय-विदारक उदाहरण मिलना कठिन है। इस कुटिल कार्य के परिणाम की दृष्टि से इस मनुष्य के पूर्व परिचित सदगुणों का गौरव लुप्त हो जाता है। क्योंकि वे असली मोती नहीं, नकली काँच के दाने थे, जो केवल विश्वास जमाने के निमित्त दर्शाये गये थे। वह केवल सुंदर जाल था, जो एक सरल हृदय और छल-छंद से दूर रहने वाले रईस को फँसाने के लिए फैलाया गया था। इस नर-पशु का अंतःकरण कितना अंधकारमय, कितना कपटपूर्ण, कितना कठोर है; और इसकी दुष्टता कितनी घोर, कितनी अपावन है। अपने शत्रु के साथ दया करना एक बार तो क्षम्य है, मगर इस मलिन हृदय मनुष्य ने उन बेकसों के साथ दगा दिया है, जिन पर मानव-स्वभाव के अनुसार दया करना उचित है! यदि आज हमारे पास बही-खाते मौजूद होते, अदालत पर सत्यनाराण की सत्यता स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती, पर मुंशी जी के बरखास्त होते ही दफ्तर से उनका लुप्त हो जाना भी अदालत के लिए एक बड़ा सबूत है।

शहर में कई रईसों ने गवाही दी, पर सुनी-सुनायी बातें जिरह में उखड़ गयीं। दूसरे दिन फिर मुकदमा पेश हुआ।

प्रतिवादी के वकील ने अपनी वक्तृता शुरू की। उसमें गंभीर विचारों की अपेक्षा हास्य का आधिक्य था—यह एक विलक्षण न्याय-सिद्धांत है कि किसी धनाढ्य मनुष्य का नौकर जो कुछ खरीदे, वह उसके स्वामी की चीज समझी जाय। इस सिद्धांत के अनुसार हमारी गवर्नमेंट को अपने कर्मचारियों की सारी सम्पत्ति पर कब्जा कर लेना चाहिए। यह स्वीकार करने में हमको कोई आपत्ति नहीं कि हम इतने रुपयों का प्रबंध न कर सकते थे और यह धन हमने स्वामी ही से ऋण लिया; पर हमसे ऋण चुकाने का कोई तकाजा न करके वह जायदाद ही माँगी जाती है। यदि हिसाब के कागजात दिखलाये जायँ, तो वे साफ बता देंगे कि मैं सारा ऋण दे चुका। हमारे मित्र ने कहा कि ऐसी अवस्था में बहियों का गुम हो जाना भी अदालत के लिये एक सबूत होना चाहिए। मैं भी उनकी युक्ति का समर्थन करता हूँ। यदि मैं आपसे ऋण ले कर अपना विवाह करूँ तो क्या मुझसे मेरी नव-विवाहित वधू को छीन लेंगे?

‘हमारे सुयोग मित्र ने हमारे ऊपर अनाथों के साथ दगा करने का दोष लगाया है। अगर मुंशी सत्यनाराण की नीयत खराब होती, तो उनके लिए सबसे अच्छा अवसर वह था जब पंडित भृगुदत्त का स्वर्गवास हुआ था। इतने विलम्ब की क्या जरूरत थी? यदि आप शेर को फँसा कर उसके बच्चे को उसी वक्त नहीं पकड़ लेते, उसे बढ़ने और सबल होने का अवसर देते हैं, तो मैं आपको बुद्धिमान न कहूँगा। यथार्थ बात यह है कि मुंशी सत्यनाराण ने नमक का जो कुछ हक था, वह पूरा कर दिया। आठ वर्ष तक तन-मन से स्वामी के संतान की सेवा की। आज उन्हें अपनी साधुता का जो फल मिल रहा है, वह बहुत ही दुःखजनक और हृदय-विदारक है। इसमें भानुक्वुरि का दोष नहीं। वे एक गुण-सम्पन्न महिला हैं; मगर अपनी जाति के अवगुण उनमें भी विद्यमान हैं! ईमानदार मनुष्य स्वभावतः स्पष्टभाषी होता है; उसे अपनी बातों में नमक-मिर्च लगाने की जरूरत नहीं होती। यही कारण है कि मुंशी जी के मृदुभाषी मातहतों को उन पर आक्षेप करने का मौका मिल गया। इस दावे की जड़ केवल इतनी ही है, और कुछ नहीं। भानुक्वुरि यहाँ उपस्थित हैं। क्या वे कह सकती हैं कि इस आठ वर्ष की मुद्दत में कभी इस गाँव का जिक्र उनके सामने आया? कभी उसके हानि-लाभ, आय-व्यय, लेन-देन की चर्चा उनसे की गयी? मान लीजिए कि मैं गवर्नमेंट का मुलाजिम हूँ। यदि मैं आज दफ्तर में आकर अपनी पत्नी के आय-व्यय और अपने टहलुओं के टैक्सों का पचड़ा गाने लगूँ, तो शायद मुझे शीघ्र ही अपने पद से पृथक होना पड़े, और सम्भव है, कुछ दिनों तक बरेली की अतिथिशाला में भी रखा जाऊँ। जिस गाँव से भानुक्वुरि का सरोवार न था, उसकी चर्चा उनसे क्यों की जाती?’

इसके बाद बहुत से गवाह पेश हुए; जिनमें अधिकांश आस-पास के देहातों के जमींदार थे। उन्होंने बयान किया कि हमने मुंशी सत्यनारायण असामियों को अपनी दस्तखती रसीदें और अपने नाम से खजाने में रुपया दाखिल करते देखा है।

इतने में संध्या हो गयी। अदालत ने एक सप्ताह में फैसला सुनाने का हुक्म दिया।

7

सत्यनारायण को अब अपनी जीत में कोई सन्देह न था। वादी पक्ष के गवाह भी उखड़ गये थे और बहस भी सबूत से खाली थी। अब इनकी गिनती भी जमींदारों में होगी और सम्भव है, यह कुछ दिनों में रईस कहलाने लगेंगे। पर किसी न किसी कारण से अब शहर के गणमान्य पुरुषों से आँखें मिलाते शर्माते थे। उन्हें देखते ही उनका सिर नीचा हो जाता था। वह मन में डरते थे कि वे लोग कहीं इस विषय पर कुछ पूछ-ताछ न कर बैठें। वह बाजार में निकलते तो दूकानदारों में कुछ कानाफूसी होने लगती और लोग उन्हें तिरछी दृष्टि से देखने लगते। अब तक लोग उन्हें विवेकशील और सच्चरित्र मनुष्य समझते, शहर के धनी-मानी उन्हें इज्जत की निगाह से देखते और उनका बड़ा आदर करते थे। यद्यपि मुंशी जी को अब तक इनसे टेढ़ी-तिरछी सुनने का संयोग न पड़ा था, तथापि उनका मन कहता था कि सच्ची बात किसी से छिपी नहीं है। चाहे अदालत से उनकी जीत हो जाय, पर उनकी साख अब जाती रही। अब उन्हें लोग स्वार्थी, कपटी और दगाबाज समझेंगे। दूसरों की बात तो अलग रही, स्वयं उनके घरवाले उनकी उपेक्षा करते थे। बूढ़ी माता ने तीन दिन से मुँह में पानी नहीं डाला! स्त्री बार-बार हाथ जोड़ कर कहती थी कि अपने प्यारे बालकों पर दया करो। बुरे काम का फल कभी अच्छा नहीं होता! नहीं तो पहले मुझी को विष खिला दो।

जिस दिन फैसला सुनाया जानेवाला था, प्रातःकाल एक कुंजड़िन तरकारियाँ लेकर आयी और मुंशियाइन से बोली—

‘बहू जी! हमने बाजार में एक बात सुनी है। बुरा न मानों तो कहूँ? जिसको देखो, उसके मुँह से यही बात निकलती है कि लाला बाबू ने जालसाजी से पंडिताइन का कोई हलका ले लिया। हमें तो इस पर यकीन नहीं आता। लाला बाबू ने न सँभाला होता, तो अब तक पंडिताइन का कहीं पता न लगता। एक अंगुल जमीन न बचती। इन्हीं में एक सरदार था कि सबको सँभाल लिया। तो क्या अब उन्हीं के साथ बदी करेंगे? अरे बहू! कोई कुछ साथ लाया है कि ले जायगा? यही नेक-बदी रह जाती है। बुरे का फल बुरा होता है। आदमी न देखे, पर अल्लाह सब कुछ देखता है।’

बहू जी पर घड़ों पानी पड़ गया। जी चाहता था कि धरती फट जाती, तो उसमें समा जाती। स्त्रियाँ स्वभावतः लज्जावती होती हैं। उनमें आत्माभिमान की मात्रा अधिक होती है। निन्दा-अपमान उनसे सहन नहीं हो सकता है। सिर झुकाये हुए बोली—बुआ! मैं इन बातों को क्या जानूँ? मैंने तो आज ही तुम्हारे मुँह से सुनी है। कौन-सी तरकारियाँ हैं?

मुंशी सत्यनारायण अपने कमरे में लेटे हुए कुंजड़िन की बातें सुन रहे थे, उसके चले जाने के बाद आकर स्त्री से पूछने लगे—यह शैतान की खाला क्या कह रही थी।

स्त्री ने पति की ओर से मुँह फेर लिया और जमीन की ओर ताकते हुए बोली—क्या तुमने नहीं सुना? तुम्हारा गुन-गान कर रही थी। तुम्हारे पीछे देखो, किस-किसके मुँह से ये बातें सुननी पड़ती हैं और किस-किससे मुँह छिपाना पड़ता है।

मुंशी जी अपने कमरे में लौट आये। स्त्री को कुछ उत्तर नहीं दिया। आत्मा लज्जा से परास्त हो गयी। जो मनुष्य सदैव सर्व-सम्मानित रहा हो; जो सदा आत्माभिमान से सिर उठा कर चलता रहा हो, जिसकी सुकृति की सारे शहर में चर्चा होती हो, वह कभी सर्वथा लज्जाशून्य नहीं हो सकता; लज्जा कुपथ की सबसे बड़ी शत्रु है। कुवासनाओं के भ्रम में पड़ कर मुंशी जी ने समझा था, मैं इस काम को ऐसी गुप्त-रीति से पूरा कर ले जाऊँगा कि किसी को कानों-कान खबर न होगी, पर उनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ। बाधाएँ आ खड़ी हुईं। उनके हटाने में उन्हें बड़े दुस्साहस से काम लेना पड़ा; पर यह भी उन्होंने लज्जा से बचने के निमित्त किया। जिसमें यह कोई न कहे कि अपनी स्वामिनी को धोखा दिया। इतना यत्न करने पर भी निन्दा से न बच सके। बाजार का सौदा बेचनेवालियाँ भी अब अपमान करती हैं। कुवासनाओं से दबी हुई लज्जा-शक्ति इस कड़ी चोट को सहन न कर सकी। मुंशी जी सोचने लगे, अब मुझे धन-सम्पत्ति मिल जायगी, ऐश्वर्यवान् हो जाऊँगा, परन्तु निन्दा से मेरा पीछा न छूटेगा। अदालत का फैसला मुझे लोक-निन्दा से न बचा सकेगा। ऐश्वर्य का फल क्या है?—मान और मर्यादा। उससे हाथ धो बैठा, तो ऐश्वर्य को लेकर क्या करूँगा?

चित्त की शक्ति खोकर, लोक-लज्जा सहकर, जनसमुदाय में नीच बन कर और अपने घर में कलह का बीज बोकर यह सम्पत्ति मेरे किस काम आयेगी? और यदि वास्तव में कोई न्याय-शक्ति हो और वह मुझे इस कुकृत्य का दंड दे, तो मेरे लिए सिवा मुख में कालिख लगा कर निकल जाने के और कोई मार्ग न रहेगा। सत्यवादी मनुष्य पर कोई विपत्ति पड़ती है, तो लोग उनके साथ सहानुभूति करते हैं। दुष्टों की विपत्ति लोगों के लिए व्यंग्य की सामग्री बन जाती है। उस अवस्था में ईश्वर अन्यायी ठहराया जाता है; मगर दुष्टों की विपत्ति ईश्वर के न्याय को सिद्ध करती है। परमात्मन! इस दुर्दशा से किसी तरह मेरा उद्धार करो! क्यों न जाकर मैं भानुक्वुरि के पैरों पर गिर पड़ूँ और विनय करूँ कि यह मुकदमा उठा लो? शोक! पहले यह बात मुझे क्यों न सूझी? अगर कल तक मैं उनके पास चला गया होता, तो बात बन जाती; पर अब क्या हो सकता है। आज तो फैसला सुनाया जायगा।

मुंशी जी देर तक इसी विचार में पड़े रहे, पर कुछ निश्चय न कर सके कि क्या करें।

भानुक्वुरि को भी विश्वास हो गया कि अब गाँव हाथ से गया। बेचारी हाथ मल कर रह गयी। रात-भर उसे नींद न आयी, रह-रह कर मुंशी सत्यनारायण पर क्रोध आता था। हाय पापी! ढोल बजा कर मेरा पचास हजार का माल लिए जाता है और मैं कुछ नहीं कर सकती। आजकल के न्याय करने वाले बिलकुल आँख के अँधे हैं। जिस बात को सारी दुनिया जानती है, उसमें भी उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। बस, दूसरों को आँखों से देखते हैं। कोरे कागजों के गुलाम हैं। न्याय वह है जो दूध का दूध, पानी का पानी कर दे; यह नहीं कि खुद ही कागजों के धोखे में आ जाय, खुद ही पाखंडियों के जाल में फँस जाय। इसी से तो ऐसी छली, कपटी, दगाबाज, और दुरात्माओं का साहस बढ़ गया है। खैर, गाँव जाता है तो जाय; लेकिन सत्यनारायण, तुम शहर में कहीं मुँह दिखाने के लायक भी न रहे।

इस खयाल से भानुक्वुरि को कुछ शान्ति हुई। शत्रु की हानि मनुष्य को अपने लाभ से भी अधिक प्रिय होती है, मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है। तुम हमारा एक गाँव ले गये, नारायण चाहेंगे तो तुम भी इससे सुख न पाओगे। तुम आप नरक की आग में जलोगे, तुम्हारे घर में कोई दिया जलाने वाला न रह जायगा।

फैसले का दिन आ गया। आज इजलास में बड़ी भीड़ थी। ऐसे-ऐसे महानुभाव उपस्थित थे, जो बगुलों की तरह अफसरों की बधाई और बिदाई के अवसरों ही में नजर आया करते हैं। वकीलों और मुख्तारों की पलटन भी जमा थी। नियत समय पर जज साहब ने इजलास सुशोभित किया। विस्तृत न्याय भवन में सन्नाटा छा गया। अहलमद ने संदूक से तजबीज निकाली। लोग उत्सुक होकर एक-एक कदम और आगे खिसक गए।

जज ने फैसला सुनाया—मुद्दई का दावा खारिज। दोनों पक्ष अपना-अपना खर्च सह लें।

यद्यपि फैसला लोगों के अनुमान के अनुसार ही था, तथापि जज के मुँह से उसे सुन कर लोगों में हलचल-सी मच गयी। उदासीन भाव से फैसले पर आलोचनाएँ करते हुए लोग धीरे-धीरे कमरे से निकलने लगे।

एकाएक भानुक्वुरि घूँघट निकाले इजलास पर आ कर खड़ी हो गयी। जानेवाले लौट पड़े। जो बाहर निकल गये थे, दौड़ कर आ गये। और कौतूहलपूर्वक भानुक्वुरि की तरफ ताकने लगे।

भानुक्वुरि ने कंपित स्वर में जज से कहा—सरकार, यदि हुकम दें, तो मैं मुंशी जी से कुछ पूछूँ।

यद्यपि यह बात नियम के विरुद्ध थी, तथापि जज ने दयापूर्वक आज्ञा दे दी।

तब भानुक्वुरि ने सत्यनारायण की तरफ देख कर कहा—लाला जी, सरकार ने तुम्हारी डिग्री तो कर ही दी। गाँव तुम्हें मुबारक रहे; मगर ईमान आदमी का सब कुछ है। ईमान से कह दो, गाँव किसका है?

हजारों आदमी यह प्रश्न सुन कर कौतूहल से सत्यनारायण की तरफ देखने लगे। मुंशी जी विचार-सागर में डूब गये। हृदय में संकल्प और विकल्प में घोर संग्राम होने लगा। हजारों मनुष्यों की आँखें उनकी तरफ जमी हुई थीं। यथार्थ बात अब किसी से छिपी न थी। इतने आदमियों के सामने असत्य बात मुँह से निकल न सकी। लज्जा से जबान बंद कर ली—‘मेरा’ कहने में काम बनता था। कोई बात न थी; किंतु घोरतम पाप का दंड समाज दे सकता है, उसके मिलने का पूरा भय था। ‘आपका’ कहने से काम बिगड़ता था। जीती-जितायी बाजी हाथ से निकली जाती थी, सर्वोत्कृष्ट काम के लिए समाज से जो इनाम मिल सकता है, उसके मिलने की पूरी आशा थी। आशा के भय को जीत लिया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ईश्वर ने मुझे अपना मुख उज्ज्वल करने का यह अंतिम अवसर दिया है। मैं अब भी मानव-सम्मान का पात्र बन सकता हूँ। अब अपनी आत्मा की रक्षा कर सकता हूँ। उन्होंने आगे बढ़ कर भानुक्वुरि को प्रणाम किया और काँपते हुए स्वर से बोले—आपका!

हजारों मनुष्यों के मुँह से एक गगनस्पर्शी ध्वनि निकली—सत्य की जय!

जज ने खड़े होकर कहा—यह कानून का न्याय नहीं, ईश्वरीय न्याय है! इसे कथा न समझिएगा; यह सच्ची घटना है। भानुक्कुर और सत्य नारायण अब भी जीवित हैं। मुंशी जी के इस नैतिक साहस पर लोग मुग्ध हो गए। मानवीय न्याय पर ईश्वरीय न्याय ने जो विलक्षण विजय पायी, उसकी चर्चा शहर भर में महीनों रही। भानुक्कुर मुंशी जी के घर गयी, उन्हें मना कर लायीं। फिर अपना सारा कारोबार उन्हें सौंपा और कुछ दिनों उपरांत यह गाँव उन्हीं के नाम हिब्बा कर दिया। मुंशी जी ने भी उसे अपने अधिकार में रखना उचित न समझा, कृष्णार्पण कर दिया। अब इसकी आमदनी दीन-दुखियों और विद्यार्थियों की सहायता में खर्च होती है।

बाबू रामरक्षादास दिल्ली के एक ऐश्वर्यशाली खत्री थे, बहुत ही ठाठ-बाट से रहनेवाले। बड़े-बड़े अमीर उनके यहाँ नित्य आते-आते थे। वे आयें हुआँ का आदर-सत्कार ऐसे अच्छे ढंग से करते थे कि इस बात की धूम सारे मुहल्ले में थी। नित्य उनके दरवाजे पर किसी न किसी बहाने से इष्ट-मित्र एकत्र हो जाते, टेनिस खेलते, ताश उड़ता, हारमोनियम के मधुर स्वरों से जी बहलाते, चाय-पानी से हृदय प्रफुल्लित करते, अधिक और क्या चाहिए? जाति की ऐसी अमूल्य सेवा कोई छोटी बात नहीं है। नीची जातियों के सुधार के लिये दिल्ली में एक सोसायटी थी। बाबू साहब उसके सेक्रेटरी थे, और इस कार्य को असाधारण उत्साह से पूर्ण करते थे। जब उनका बूढ़ा कहार बीमार हुआ और क्रिश्चियन मिशन के डाक्टरों ने उसकी सुश्रुषा की, जब उसकी विधवा स्त्री ने निर्वाह की कोई आशा न देख कर क्रिश्चियन-समाज का आश्रय लिया, तब इन दोनों अवसरों पर बाबू साहब ने शोक के रेजल्यूशन्स पास किये। संसार जानता है कि सेक्रेटरी का काम सभाएँ करना और रेजल्यूशन बनाना है। इससे अधिक वह कुछ नहीं कर सकता।

मिस्टर रामरक्षा का जातीय उत्साह यही तक सीमाबद्ध न था। वे सामाजिक कुप्रथाओं तथा अंध-विश्वास के प्रबल शत्रु थे। होली के दिनों में जब कि मुहल्ले में चमार और कहार शराब से मतवाले होकर फाग गाते और डफ बजाते हुए निकलते, तो उन्हें, बड़ा शोक होता। जाति की इस मूर्खता पर उनकी आँखों में आँसू भर आते और वे प्रातः इस कुरीति का निवारण अपने हंटर से किया करते। उनके हंटर में जाति-हितैषिता की उमंग उनकी वक्तृता से भी अधिक थी। यह उन्हीं के प्रशंसनीय प्रयत्न थे, जिन्होंने मुख्य होली के दिन दिल्ली में हलचल मचा दी, फाग गाने के अपराध में हजारों आदमी पुलिस के पंजे में आ गये। सैकड़ों घरों में मुख्य होली के दिन मुहर्रम का-सा शोक फैल गया। इधर उनके दरवाजे पर हजारों पुरुष-स्त्रियाँ अपना दुखड़ा रो रही थीं। उधर बाबू साहब के हितैषी मित्रगण अपने उदारशील मित्र के सद्व्यवहार की प्रशंसा करते। बाबू साहब दिन-भर में इतने रंग बदलते थे कि उस पर 'पेरिस' की परियों को भी ईर्ष्या हो सकती थी। कई बैंकों में उनके हिस्से थे। कई दुकानें थीं; किंतु बाबू साहब को इतना अवकाश न था कि उनकी कुछ देखभाल करते। अतिथि-सत्कार एक पवित्र धर्म है। ये सच्ची देशहितैषिता की उमंग से कहा करते थे—अतिथि-सत्कार आदिकाल से भारतवर्ष के निवासियों का एक प्रधान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतों का आदर-सम्मान करने में हम अद्वितीय हैं। हम इससे संसार में मनुष्य कहलाने योग्य हैं। हम सब कुछ खो बैठे हैं, किन्तु जिस दिन हममें यह गुण शेष न रहेगा; वह दिन हिंदू-जाति के लिए लज्जा, अपमान और मृत्यु का दिन होगा।

मिस्टर रामरक्षा जातीय आवश्यकताओं से भी बेपरवाह न थे। वे सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में पूर्णरूपेण योग देते थे। यहाँ तक कि प्रतिवर्ष दो, बल्कि कभी-कभी तीन वक्तृताएँ अवश्य तैयार कर लेते। भाषणों की भाषा अत्यंत उपयुक्त, ओजस्वी और सर्वांग सुंदर होती थी। उपस्थित जन और इष्टमित्र उनके एक-एक शब्द पर प्रशंसासूचक शब्दों की ध्वनि प्रकट करते, तालियाँ बजाते, यहाँ तक कि बाबू साहब को व्याख्यान का क्रम स्थिर रखना कठिन हो जाता। व्याख्यान समाप्त होने पर उनके मित्र उन्हें गोद में उठा लेते और आश्चर्यचकित होकर कहते—तेरी भाषा में जादू है! सारांश यह कि बाबू साहब के यह जातीय प्रेम और उद्योग केवल बनावटी, सहायता-शून्य तथ फैंशनेबिल था। यदि उन्होंने किसी सदुद्योग में भाग लिया था, तो वह सम्मिलित कुटुम्ब का विरोध था। अपने पिता के पश्चात् वे अपनी विधवा माँ से अलग हो गए थे। इस जातीय सेवा में उनकी स्त्री विशेष सहायक थी। विधवा माँ अपने बेटे और बहू के साथ नहीं रह सकती थी। इससे बहू की सवाधीनता में विघ्न पड़ने से मन दुर्बल और मस्तिष्क शक्तिहीन हो जाता है। बहू को जलाना और कुढ़ाना सास की आदत है। इसलिए बाबू रामरक्षा अपनी माँ से अलग हो गये थे। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने मातृ-ऋण का विचार करके दस हजार रुपये अपनी माँ के नाम जमा कर दिये थे, कि उसके ब्याज से उनका निर्वाह होता रहे; किंतु बेटे के इस उत्तम आचरण पर माँ का दिल ऐसा टूटा कि वह दिल्ली छोड़कर अयोध्या जा रही। तब से वहीं रहती हैं। बाबू साहब कभी-कभी मिसेज रामरक्षा से छिपकर उससे मिलने अयोध्या जाया करते थे, किंतु वह दिल्ली आने का कभी नाम न लेतीं। हाँ, यदि कुशल-क्षेम की चिट्ठी पहुँचने में कुछ देर हो जाती, तो विवश होकर समाचार पूछ देती थीं।

3 सी मुहल्ले में एक सेठ गिरधारी लाल रहते थे। उनका लाखों का लेन-देन था। वे हीरे और रत्नों का व्यापार करते थे। बाबू रामरक्षा के दूर के नाते में साढ़ू होते थे। पुराने ढंग के आदमी थे—प्रातःकाल यमुना-स्नान करनेवाले तथा गाय को अपने हाथों से झाड़ने-पोंछनेवाले! उनसे मिस्टर रामरक्षा का स्वभाव न मिलता था; परन्तु जब कभी रुपयों की आवश्यकता होती, तो वे सेठ गिरधारी लाल के यहाँ से बेखटके मँगा लिया करते थे। आपस का मामला था, केवल चार अंगुल के पत्र पर रुपया मिल जाता था, न कोई दस्तावेज, न स्टाम्प, न साक्षियों की आवश्यकता। मोटरकार के लिए दस हजार की आवश्यकता हुई, वह वहाँ से आया। घुड़दौड़ के लिए एक आस्ट्रेलियन घोड़ा डेढ़ हजार में लिया गया। उसके लिए भी रुपया सेठ जी के यहाँ से आया। धीरे-धीरे कोई बीस हजार का मामला हो गया। सेठ जी सरल हृदय के आदमी थे। समझते थे कि उसके पास दुकानें हैं, बैंकों में रुपया है। जब जी चाहेगा, रुपया वसूल कर लेंगे; किन्तु जब दो-तीन वर्ष व्यतीत हो गये और सेठ जी तकाजों की अपेक्षा मिस्टर रामरक्षा की माँग ही का अधिक्य रहा तो गिरधारी लाल को सन्देह हुआ। वह एक दिन रामरक्षा के मकान पर आये और सभ्य-भाव से बोले—भाई साहब, मुझे एक हुण्डी का रुपया देना है, यदि आप मेरा हिसाब कर दें तो बहुत अच्छा हो। यह कह कर हिसाब के कागजात और उनके पत्र दिखलाये। मिस्टर रामरक्षा किसी गार्डन-पार्टी में सम्मिलित होने के लिए तैयार थे। बोले—इस समय क्षमा कीजिए; फिर देख लूँगा, जल्दी क्या है?

गिरधारी लाल को बाबू साहब की रुखाई पर क्रोध आ गया, वे रुष्ट होकर बोले—आपको जल्दी नहीं है, मुझे तो है! दो सौ रुपये मासिक की मेरी हानि हो रही है! मिस्टर के असंतोष प्रकट करते हुए घड़ी देखी। पार्टी का समय बहुत करीब था। वे बहुत विनीत भाव से बोले—भाई साहब, मैं बड़ी जल्दी में हूँ। इस समय मेरे ऊपर कृपा कीजिए। मैं कल स्वयं उपस्थित हूँगा।

सेठ जी एक माननीय और धन-सम्पन्न आदमी थे। वे रामरक्षा के कुरुचिपूर्ण व्यवहार पर जल गए। मैं इनका महाजन हूँ—इनसे धन में, मान में, ऐश्वर्य में, बढ़ा हुआ, चाहूँ तो ऐसों को नौकर रख लूँ, इनके दरवाजों पर आऊँ और आदर-सत्कार की जगह उलटे ऐसा रुखा बर्ताव? वह हाथ बाँधे मेरे सामने न खड़ा रहे; किन्तु क्या मैं पान, इलायची, इत्र आदि से भी सम्मान करने के योग्य नहीं? वे तिनक कर बोले—अच्छा, तो कल हिसाब साफ हो जाय।

रामरक्षा ने अकड़ कर उत्तर दिया—हो जायगा।

रामरक्षा के गौरवशाल हृदय पर सेठ जी के इस बर्ताव के प्रभाव का कुछ खेद-जनक असर न हुआ। इस काठ के कुन्दे ने आज मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। वह मेरा अपमान कर गया। अच्छा, तुम भी इसी दिल्ली में रहते हो और हम भी यही हैं। निदान दोनों में गाँठ पड़ गयी। बाबू साहब की तबीयत ऐसी गिरी और हृदय में ऐसी चिन्ता उत्पन्न हुई कि पार्टी में आने का ध्यान जाता रहा, वे देर तक इसी उलझन में पड़े रहे। फिर सूट उतार दिया और सेवक से बोले—जा, मुनीम जी को बुला ला। मुनीम जी आये, उनका हिसाब देखा गया, फिर बैंकों का एकाउंट देखा; किन्तु ज्यों-ज्यों इस घाटी में उतरते गये, त्यों-त्यों अँधेरा बढ़ता गया। बहुत कुछ टटोला, कुछ हाथ न आया। अन्त में निराश होकर वे आराम-कुर्सी पर पड़ गए और उन्होंने एक ठंडी साँस ले ली। दुकानों का माल बिका; किन्तु रुपया बकाया में पड़ा हुआ था। कई ग्राहकों की दुकानें टूट गयीं। और उन पर जो नकद रुपया बकाया था, वह डूब गया। कलकत्ते के आढ़तियों से जो माल मँगाया था, रुपये चुकाने की तिथि सिर पर आ पहुँची और यहाँ रुपया वसूल न हुआ। दुकानों का यह हाल, बैंकों का इससे भी बुरा। रात-भर वे इन्हीं चिन्ताओं में करवटें बदलते रहे। अब क्या करना चाहिए? गिरधारी लाल सज्जन पुरुष हैं। यदि सारा हाल उसे सुना दूँ, तो अवश्य मान जायगा, किन्तु यह कष्टप्रद कार्य होगा कैसे? ज्यों-ज्यों प्रातःकाल समीप आता था, त्यों-त्यों उनका दिल बैठा जाता था। कच्चे विद्यार्थी की जो दशा परीक्षा के सन्निकट आने पर होती है, यही हाल इस समय रामरक्षा का था। वे पलंग से न उठे। मुँह-हाथ भी न धोया, खाने को कौन कहे। इतना जानते थे कि दुःख पड़ने पर कोई किसी का साथी नहीं होता। इसलिए एक आपत्ति से बचने के लिए कई आपत्तियों का बोझा न उठाना पड़े, इस खयाल से मित्रों को इन मामलों की खबर तक न दी। जब दोपहर हो गया और उनकी दशा ज्यों की त्यों रही, तो उनका छोटा लड़का बुलाने आया। उसने बाप का हाथ पकड़ कर कहा—लाला जी, आज दाने क्यों नहीं तलते?

रामरक्षा—भूख नहीं है।

‘क्या काया है?’

‘मन की मिठाई।’

‘और क्या काया है?’

‘मारा।’

‘किसने मारा है?’

‘गिरधारीलाल ने।’

लड़का रोता हुआ घर में गया और इस मार की चोट से देर तक रोता रहा। अन्त में तश्तरी में रखी हुई दूध की मलाई ने उसकी चोट पर मरहम का काम किया।

3

रोगी को जब जीने की आशा नहीं रहती, तो औषधि छोड़ देता है। मिस्टर रामरक्षा जब इस गुत्थी को न सुलझा सके, तो चादर तान ली और मुँह लपेट कर सो रहे। शाम को एकाएक उठ कर सेठ जी के यहाँ पहुँचे और कुछ असावधानी से बोले—महाशय, मैं आपका हिसाब नहीं कर सकता।

सेठ जी घबरा कर बोले—क्यों?

रामरक्षा—इसलिए कि मैं इस समय दरिद्र-निहंग हूँ। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। आप का रुपया जैसे चाहें वसूल कर लें।

सेठ—यह आप कैसी बातें कहते हैं?

रामरक्षा—बहुत सच्ची।

सेठ—दुकानें नहीं हैं?

रामरक्षा—दुकानें आप मुफ्त लो जाइए।

सेठ—बैंक के हिस्से?

रामरक्षा—वह कब के उड़ गये।

सेठ—जब यह हाल था, तो आपको उचित नहीं था कि मेरे गले पर छुरी फेरते?

रामरक्षा—(अभिमान) मैं आपके यहाँ उपदेश सुनने के लिए नहीं आया हूँ।

यह कह कर मिस्टर रामरक्षा वहाँ से चल दिए। सेठ जी ने तुरन्त नालिश कर दी। बीस हजार मूल, पाँच हजार ब्याज। डिगरी हो गयी। मकान नीलाम पर चढ़ा। पन्द्रह हजार की जायदाद पाँच हजार में निकल गयी। दस हजार की मोटर चार हजार में बिकी। सारी सम्पत्ति उड़ जाने पर कुल मिला कर सोलह हजार से अधिक रमक न खड़ी हो सकी। सारी गृहस्थी नष्ट हो गयी, तब भी दस हजार के ऋणी रह गये। मान-बड़ाई, धन-दौलत सभी मिट्टी में मिल गये। बहुत तेज दौड़ने वाला मनुष्य प्रायः मुँह के बल गिर पड़ता है।

4

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् दिल्ली म्युनिसिपैलिटी के मेम्बरों का चुनाव आरम्भ हुआ। इस पद के अभिलाषी वोटों की सजाएँ करने लगे। दलालों के भाग्य उदय हुए। सम्मतियाँ मोतियों की तोल बिकने लगीं। उम्मीदवार मेम्बरों के सहायक अपने-अपने मुवक्किल के गुण गान करने लगे। चारों ओर चहल-पहल मच गयी। एक वकील महाशय ने भरी सभा में मुवक्किल साहब के विषय में कहा—

‘मैं जिस बुजरुग का पैरोकार हूँ, वह कोई मामूली आदमी नहीं है। यह वह शख्स है, जिसने फरजंद अकबर की शादी में पचीस हजार रुपया सिर्फ रक्स व सरुर में सर्फ कर दिया था।’

उपस्थित जनों में प्रशंसा की उच्च ध्वनि हुई

एक दूसरे महाशय ने अपने मुहल्ले के वोटों के सम्मुख मुवक्किल की प्रशंसा यों की—

‘मैं यह नहीं कह सकता कि आप सेठ गिरधारीलाल को अपना मेम्बर बनाइए। आप अपना भला-बुरा स्वयं समझते हैं, और यह भी नहीं कि सेठ जी मेरे द्वारा अपनी प्रशंसा के भूखें हों। मेरा निवेदन केवल यही है कि आप जिसे मेम्बर बनायें, पहले उसके गुण-दोषों का भली भाँति परिचय ले लें। दिल्ली में केवल एक मनुष्य है, जो गत वर्षों से आपकी सेवा कर रहा है। केवल एक आदमी है, जिसने पानी पहुँचाने और स्वच्छता-प्रबंधों में हार्दिक धर्म-भाव से सहायता दी है। केवल एक पुरुष है, जिसको श्रीमान वायसराय के दरबार में कुर्सी पर बैठने का अधिकार प्राप्त है, और आप सब महाशय उसे जानते भी हैं।’

उपस्थित जनों ने तालियाँ बजायीं।

सेठ गिरधारीलाल के मुहल्ले में उनके एक प्रतिवादी थे। नाम था मुंशी फैजुलरहमान खाँ। बड़े जमींदार और प्रसिद्ध वकील थे। बाबू रामरक्षा ने अपनी दृढ़ता, साहस, बुद्धिमत्ता और मृदु भाषण से मुंशी जी साहब की सेवा करनी आरम्भ की। सेठ जी को परास्त करने का यह अपूर्व अवसर हाथ आया। वे रात और दिन इसी धुन में लगे रहते। उनकी मीठी और रोचक बातों का प्रभाव उपस्थित जनों पर बहुत अच्छा पड़ता। एक

बार आपने असाधारण श्रद्धा-उमंग में आ कर कहा—मैं डंके की चोट पर कहता हूँ कि मुंशी फैजुल रहमान से अधिक योग्य आदमी आपको दिल्ली में न मिल सकेगा। यह वह आदमी है, जिसकी गजलों पर कविजनों में ‘वाह-वाह’ मच जाती है। ऐसे श्रेष्ठ आदमी की सहायता करना मैं अपना जातीय और सामाजिक धर्म समझता हूँ। अत्यंत शोक का विषय है कि बहुत-से लोग इस जातीय और पवित्र काम को व्यक्तिगत लाभ का साधन बनाते हैं; धन और वस्तु है, श्रीमान वायसराय के दरबार में प्रतिष्ठित होना और वस्तु, किंतु सामाजिक सेवा तथा जातीय चाकरी और ही चीज है। वह मनुष्य, जिसका जीवन ब्याज-प्राप्ति, बेईमानी, कठोरता तथा निर्दयता और सुख-विलास में व्यतीत होता हो, इस सेवा के योग्य कदापि नहीं है।

5

सेठ गिरधारीलाल इस अन्योक्तिपूर्ण भाषण का हाल सुन कर क्रोध से आग हो गए। मैं बेईमान हूँ! ब्याज का धन खानेवाला हूँ! विषयी हूँ! कुशल हुई, जो तुमने मेरा नाम नहीं लिया; किंतु अब भी तुम मेरे हाथ में हो। मैं अब भी तुम्हें जिस तरह चाहूँ, नचा सकता हूँ। खुशामदियों ने आग पर तेल डाला। इधर रामरक्षा अपने काम में तत्पर रहे। यहाँ तक कि ‘वोटिंग-डे’ आ पहुँचा। मिस्टर रामरक्षा को उद्योग में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई थी। आज वे बहुत प्रसन्न थे। आज गिरधारीलाल को नीचा दिखाऊँगा, आज उसको जान पड़ेगा कि धन संसार के सभी पदार्थों को इकट्ठा नहीं कर सकता। जिस समय फैजुलरहमान के वोट अधिक निकलेंगे और मैं तालियाँ बजाऊँगा, उस समय गिरधारीलाल का चेहरा देखने योग्य होगा, मुँह का रंग बदल जायगा, हवाइयाँ उड़ने लगेंगी, आँखें न मिला सकेगा। शायद, फिर मुझे मुँह न दिखा सके। इन्हीं विचारों में मग्न रामरक्षा शाम को टाउनहाल में पहुँचे। उपस्थित जनों ने बड़ी उमंग के साथ उनका स्वागत किया। थोड़ी देर के बाद ‘वोटिंग’ आरम्भ हुआ। मेम्बरी मिलने की आशा रखनेवाले महानुभाव अपने-अपने भाग्य का अंतिम फल सुनने के लिए आतुर हो रहे थे। छह बजे चेयरमैन ने फैसला सुनाया। सेठ जी की हार हो गयी। फैजुलरहमान ने मैदान मार लिया। रामरक्षा ने हर्ष के आवेग में टोपी हवा में उछाल दी और स्वयं भी कई बार उछल पड़े। मुहल्लेवालों को अचम्भा हुआ। चाँदनी चौक से सेठ जी को हटाना मेरु को स्थान से उखाड़ना था। सेठ जी के चेहरे से रामरक्षा को जितनी आशाएँ थीं, वे सब पूरी हो गयीं। उनका रंग फीका पड़ गया था। खेद और लज्जा की मूर्ति बने हुए थे। एक वकील साहब ने उनसे सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—सेठ जी, मुझे आपकी हार का बहुत बड़ा शोक है। मैं जानता कि खुशी के बदले रंज होगा, तो कभी यहाँ न आता। मैं तो केवल आपके ख्याल से यहाँ आया था। सेठ जी ने बहुत रोकना चाहा, परंतु आँखों में आँसू डबडबा ही गये। वे निःस्पृह बनाने का व्यर्थ प्रयत्न करके बोले—वकील साहब, मुझे इसकी कुछ चिंता नहीं, कौन रियासत निकल गयी? व्यर्थ उलझन, चिंता तथा झंझट रहती थी, चलो, अच्छा हुआ। गला छूटा। अपने काम में हरज होता था। सत्य कहता हूँ, मुझे तो हृदय से प्रसन्नता ही हुई। यह काम तो बेकाम वालों के लिए है, घर न बैठे रहे, यही बेगार की। मेरी मूर्खता थी कि मैं इतने दिनों तक आँखें बंद किये बैठा रहा। परंतु सेठ जी की मुखाकृति ने इन विचारों का प्रमाण न दिया। मुखमंडल हृदय का दर्पण है, इसका निश्चय अलबत्ता हो गया।

किंतु बाबू रामरक्षा बहुत देर तक इस आनन्द का मजा न लूटने पाये और न सेठ जी को बदला लेने के लिए बहुत देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। सभा विसर्जित होते ही जब बाबू रामरक्षा सफलता की उमंग में ऐंठते, माँछ पर ताव देते और चारों ओर गर्व की दृष्टि डालते हुए बाहर आये, तो दीवानी की तीन सिपाहियों ने आगे बढ़ कर उन्हें गिरफ्तारी का वारंट दिखा दिया। अबकी बाबू रामरक्षा के चेहरे का रंग उतर जाने की, और सेठ जी के इस मनोवांछित दृश्य से आनन्द उठाने की बारी थी। गिरधारीलाल ने आनन्द की उमंग में तालियाँ तो न बजायीं, परंतु मुस्करा कर मुँह फेर लिया। रंग में भंग पड़ गया।

आज इस विषय के उपलक्ष्य में मुंशी फैजुलरहमान ने पहले ही से एक बड़े समारोह के साथ गार्डन पार्टी की तैयारियाँ की थीं। मिस्टर रामरक्षा इसके प्रबंधकर्ता थे। आज की ‘आफ्टर डिनर’ स्पीच उन्होंने बड़े परिश्रम से तैयार की थी; किंतु इस वारंट ने सारी कामनाओं का सत्यानाश कर दिया। यों तो बाबू साहब के मित्रों में ऐसा कोई भी न था, जो दस हजार रुपये जमानत दे देता; अदा कर देने का तो जिक्र ही क्या; किंतु कदाचित ऐसा होता भी तो सेठ जी अपने को भाग्यहीन समझते। दस हजार रुपये और म्युनिस्पैलिटी की प्रतिष्ठित मेम्बरी खोकर इन्हें इस समय यह हर्ष हुआ था।

मिस्टर रामरक्षा के घर पर ज्योंही यह खबर पहुँची, कुहराम मच गया। उनकी स्त्री पछाड़ खा कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब कुछ होश में आयी तो रोने लगी। और रोने से छुट्टी मिली तो उसने गिरधारीलाल

को कोसना आरम्भ किया। देवी-देवता मनाने लगी। उन्हें रिश्वतें देने पर तैयार हुई कि ये गिरधारीलाल को किसी प्रकार निगल जायँ। इस बड़े भारी काम में वह गंगा और यमुना से सहायता माँग रही थी, प्लेग और विसूचिका की खुशामदें कर रही थी कि ये दोनों मिल कर उस गिरधारीलाल को हड़प ले जायँ! किंतु गिरधारी का कोई दोष नहीं। दोष तुम्हारा है। बहुत अच्छा हुआ! तुम इसी पूजा के देवता थे। क्या अब दावतें न खिलाओगे? मैंने तुम्हें कितना समझाया, रोयी, रुठी, बिगड़ी; किन्तु तुमने एक न सुनी। गिरधारीलाल ने बहुत अच्छा किया। तुम्हें शिक्षा तो मिल गयी; किन्तु तुम्हारा भी दोष नहीं। यह सब आग मैंने ही लगायी। मखमली स्लीपर्स के बिना मेरे पाँव ही नहीं उठते थे। बिना जड़ाऊ कड़ों के मुझे नींद न आती थी। सेजगाड़ी मेरे ही लिए मँगवायी थी। अंगरेजी पढ़ने के लिए मेम साहब को मैंने ही रखा। ये सब काँटे मैंने ही बोये हैं।

मिसेज रामरक्षा बहुत देर तक इन्हीं विचारों में डूबी रही। जब रात भर करवटें बदलने के बाद वह सबरे उठी, तो उसके विचार चारों ओर से ठोकर खा कर केवल एक केन्द्र पर जम गये। गिरधारीलाल बड़ा बदमाश और घमंडी है। मेरा सब कुछ ले कर भी उसे संतोष नहीं हुआ। इतना भी इस निर्दयी कसाई से न देखा गया। भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों ने मिल कर एक रूप धारण किया और क्रोधाग्नि को दहला कर प्रबल कर दिया। ज्वालामुखी शीशे में जब सूर्य की किरणें एक होती हैं, तब अग्नि प्रकट हो जाती हैं। स्त्री के हृदय में रह-रह कर क्रोध की एक असाधारण लहर उत्पन्न होती थी। बच्चे ने मिठाई के लिए हठ किया; उस पर बरस पड़ीं; महरी ने चौका-बरतन करके चूल्हें में आग जला दी, उसके पीछे पड़ गयी—मैं तो अपने दुःखों को रो रही हूँ, इस चुड़ैल को रोटियों की धुन सवार है। निदान नौ बजे उससे न रहा गया। उसने यह पत्र लिख कर अपने हृदय की ज्वाला ठंडी की—

‘सेठ जी, तुम्हें अब अपने धन के घमंड ने अंधा कर दिया है, किन्तु किसी का घमंड इसी तरह सदा नहीं रह सकता। कभी न कभी सिर अवश्य नीचा होता है। अफसोस कि कल शाम को, जब तुमने मेरे प्यारे पति को पकड़वाया है, मैं वहाँ मौजूद न थी; नहीं तो अपना और तुम्हारा रक्त एक कर देती। तुम धन के मद में भूले हुए हो। मैं उसी दम तुम्हारा नशा उतार देती! एक स्त्री के हाथों अपमानित हो कर तुम फिर किसी को मुँह दिखाने लायक न रहते। अच्छा, इसका बदला तुम्हें किसी न किसी तरह जरूर मिल जायगा। मेरा कलेजा उस दिन ठंडा होगा, जब तुम निर्वंश हो जाओगे और तुम्हारे कुल का नाम मिट जायगा।

सेठ जी पर यह फटकार पड़ी तो वे क्रोध से आग हो गये। यद्यपि क्षुद्र हृदय मनुष्य न थे, परंतु क्रोध के आवेग में सौजन्य का चिह्न भी शेष नहीं रहता। यह ध्यान न रहा कि यह एक दुःखिनी की क्रंदन-ध्वनि है, एक सतायी हुई स्त्री की मानसिक दुर्बलता का विचार है। उसकी धन-हीनता और विवशता पर उन्हें तनिक भी दया न आयी। मरे हुए को मारने का उपाय सोचने लगे।

6

इसके तीसरे दिन सेठ गिरधारीलाल पूजा के आसन पर बैठे हुए थे, महारा ने आकर कहा—सरकार, कोई स्त्री आप से मिलने आयी है। सेठ जी ने पूछा—कौन स्त्री है? महारा ने कहा—सरकार, मुझे क्या मालूम? लेकिन है कोई भलेमानुस! रेशमी साड़ी पहने हुए हाथ में सोने के कड़े हैं। पैरों में टाट के स्लीपर हैं। बड़े घर की स्त्री जान पड़ती हैं।

यों साधारणतः सेठ जी पूजा के समय किसी से नहीं मिलते थे। चाहे कैसा ही आवश्यक काम क्यों न हो, ईश्वरोपासना में सामाजिक बाधाओं को घुसने नहीं देते थे। किन्तु ऐसी दशा में जब कि किसी बड़े घर की स्त्री मिलने के लिए आये, तो थोड़ी देर के लिए पूजा में विलम्ब करना निंदनीय नहीं कहा जा सकता, ऐसा विचार करके वे नौकर से बोले—उन्हें बुला लाओ

जब वह स्त्री आयी तो सेठ जी स्वागत के लिए उठ कर खड़े हो गये। तत्पश्चात् अत्यंत कोमल वचनों के कारुणिक शब्दों से बोले—माता, कहाँ से आना हुआ? और जब यह उत्तर मिला कि वह अयोध्या से आयी है, तो आपने उसे फिर से दंडवत किया और चीनी तथा मिश्री से भी अधिक मधुर और नवनीत से भी अधिक चिकने शब्दों में कहा—अच्छा, आप श्री अयोध्या जी से आ रही हैं? उस नगरी का क्या कहना! देवताओं की पुरी हैं। बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए। यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ? स्त्री ने उत्तर दिया—घर तो मेरा यहीं है। सेठ जी का मुख पुनः मधुरता का चित्र बना। वे बोले—अच्छा, तो मकान आपका इसी शहर में है? तो आपने माया-जंजाल को त्याग दिया? यह तो मैं पहले ही समझ गया था। ऐसी पवित्र आत्माएँ संसार में बहुत थोड़ी हैं। ऐसी देवियों के दर्शन दुर्लभ होते हैं। आपने मुझे दर्शन दिया, बड़ी कृपा की। मैं इस योग्य नहीं, जो आप-जैसी विदुषियों की कुछ सेवा कर सकूँ? किंतु जो काम मेरे योग्य हो—जो कुछ

मेरे किए हो सकता हो—उसे करने के लिए मैं सब भाँति से तैयार हूँ। यहाँ सेठ-साहूकारों ने मुझे बहुत बदनाम कर रखा है, मैं सबकी आँखों में खटकता हूँ। उसका कारण सिवा इसके और कुछ नहीं कि जहाँ वे लोग लाभ का ध्यान रखते हैं, वहाँ मैं भलाई पर रखता हूँ। यदि कोई बड़ी अवस्था का वृद्ध मनुष्य मुझसे कुछ कहने-सुनने के लिए आता है, तो विश्वास मानों, मुझसे उसका वचन टाला नहीं जाता। कुछ बुढ़ापे का विचार; कुछ उसके दिल टूट जाने का डर; कुछ यह ख्याल कि कहीं यह विश्वासघातियों के फंदे में न फँस जाय, मुझे उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए विवश कर देता है। मेरा यह सिद्धान्त है कि अच्छी जायदाद और कम ब्याज। किंतु इस प्रकार बातें आपके सामने करना व्यर्थ है। आप से तो घर का मामला है। मेरे योग्य जो कुछ काम हो, उसके लिए मैं सिर आँखों से तैयार हूँ।

वृद्ध स्त्री—मेरा काम आप ही से हो सकता है।

सेठ जी—(प्रसन्न हो कर) बहुत अच्छा; आज्ञा दो।

स्त्री—मैं आपके सामने भिखारिन बन कर आयी हूँ। आपको छोड़कर कोई मेरा सवाल पूरा नहीं कर सकता।

सेठ जी—कहिए, कहिए।

स्त्री—आप रामरक्षा को छोड़ दीजिए।

सेठ जी के मुख का रंग उतर गया। सारे हवाई किले जो अभी-अभी तैयार हुए थे, गिर पड़े। वे बोले—उसने मेरी बहुत हानि की है। उसका घमंड तोड़ डालूँगा, तब छोड़ूँगा।

स्त्री—तो क्या कुछ मेरे बुढ़ापे का, मेरे हाथ फैलाने का, कुछ अपनी बड़ाई का विचार न करोगे? बेटा, ममता बुरी होती है। संसार से नाता टूट जाय; धन जाय; धर्म जाय, किंतु लड़के का स्नेह हृदय से नहीं जाता। संतोष सब कुछ कर सकता है। किंतु बेटे का प्रेम माँ के हृदय से नहीं निकल सकता। इस पर हाकिम का, राजा का, यहाँ तक कि ईश्वर का भी बस नहीं है। तुम मुझ पर तरस खाओ। मेरे लड़के की जान छोड़ दो, तुम्हें बड़ा यश मिलेगा। मैं जब तक जीऊँगी, तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी।

सेठ जी का हृदय कुछ पसीजा। पत्थर की तह में पानी रहता है; किंतु तत्काल ही उन्हें मिसेस रामरक्षा के पत्र का ध्यान आ गया। वे बोले—मुझे रामरक्षा से कोई उतनी शत्रुता नहीं थी, यदि उन्होंने मुझे न छोड़ा होता, तो मैं न बोलता। आपके कहने से मैं अब भी उनका अपराध क्षमा कर सकता हूँ! परन्तु उसकी बीबी साहबा ने जो पत्र मेरे पास भेजा है, उसे देखकर शरीर में आग लग जाती है। दिखाऊँ आपको! रामरक्षा की माँ ने पत्र ले कर पढ़ा तो उनकी आँखों में आँसू भर आये। वे बोलीं—बेटा, उस स्त्री ने मुझे बहुत दुःख दिया है। उसने मुझे देश से निकाल दिया। उसका मिजाज और जबान उसके वश में नहीं; किंतु इस समय उसने जो गर्व दिखाया है; उसका तुम्हें ख्याल नहीं करना चाहिए। तुम इसे भुला दो। तुम्हारा देश-देश में नाम है। यह नेकी तुम्हारे नाक को और भी फैला देगी। मैं तुमसे प्रण करती हूँ कि सारा समाचार रामरक्षा से लिखवा कर किसी अच्छे समाचार-पत्र में छपवा दूँगी। रामरक्षा मेरा कहना नहीं टालेगा। तुम्हारे इस उपकार को वह कभी न भूलेगा। जिस समय ये समाचार संवादपत्रों में छपेंगे, उस समय हजारों मनुष्यों को तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा होगी। सरकार में तुम्हारी बड़ाई होगी और मैं सच्चे हृदय से कहती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें कोई न कोई पदवी मिल जायगी। रामरक्षा की अँगरेजों से बहुत मित्रता है, वे उसकी बात कभी न टालेंगे।

सेठ जी के हृदय में गुदगुदी पैदा हो गयी। यदि इस व्यवहार में वह पवित्र और माननीय स्थान प्राप्त हो जाय—जिसके लिए हजारों खर्च किये, हजारों डालियाँ दीं, हजारों अनुनय-विनय कीं, हजारों खुशामदें कीं, खानसामों की झिड़कियाँ सहीँ, बँगलों के चक्कर लगाये—तो इस सफलता के लिए ऐसे कई हजार में खर्च कर सकता हूँ। निःसंदेह मुझे इस काम में रामरक्षा से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है; किंतु इन विचारों को प्रकट करने से क्या लाभ? उन्होंने कहा—माता, मुझे नाम-नमूद की बहुत चाह नहीं है। बड़ों ने कहा है—नेकी कर दरियां में डाल। मुझे तो आपकी बात का ख्याल है। पदवी मिले तो लेने से इनकार नहीं; न मिले तो तृष्णा नहीं, परंतु यह तो बताइए कि मेरे रुपयों का क्या प्रबंध होगा? आपको मालूम होगा कि मेरे दस हजार रुपये आते हैं।

रामरक्षा की माँ ने कहा—तुम्हारे रुपये की जमानत में करती हूँ। यह देखो, बंगाल-बैंक की पास बुक है। उसमें मेरा दस हजार रुपया जमा है। उस रुपये से तुम रामरक्षा को कोई व्यवसाय करा दो। तुम उस दुकान के मालिक रहोगे, रामरक्षा को उसका मैनेजर बना देना। जब तक तुम्हारे कहे पर चले, निभाया; नहीं तो दूकान तुम्हारी है। मुझे उसमें से कुछ नहीं चाहिए। मेरी खोज-खबर लेनेवाला ईश्वर है। रामरक्षा अच्छी तरह रहे, इससे अधिक मुझे और न चाहिए। यह कहकर पास-बुक सेठ जी को दे दी। माँ के इस अथाह प्रेम ने

सेठ जी को विहवल कर दिया। पानी उबल पड़ा, और पत्थर के नीचे ढँक गया। ऐसे पवित्र दृश्य देखने के लिए जीवन में कम अवसर मिलते हैं। सेठ जी के हृदय में परोपकार की एक लहर-सी उठी; उनकी आँखें डबडबा आयीं। जिस प्रकार पानी के बहाव से कभी-कभी बाँध टूट जाता है; उसी प्रकार परोपकार की इस उमंग ने स्वार्थ और माया के बाँध को तोड़ दिया। वे पास-बुक वृद्ध स्त्री को वापस देकर बोले—माता, यह अपनी किताब लो। मुझे अब अधिक लज्जित न करो। यह देखो, रामरक्षा का नाम बही से उड़ा देता हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैंने अपना सब कुछ पा लिया। आज तुम्हारा रामरक्षा तुम को मिल जायगा।

इस घटना के दो वर्ष उपरांत टाउनहाल में फिर एक बड़ा जलसा हुआ। बैंड बज रहा था, झंडियाँ और ध्वजाएँ वायु-मंडल में लहरा रही थीं। नगर के सभी माननीय पुरुष उपस्थित थे। लैंडो, फिटन और मोटरों से सारा हाता भरा हुआ था। एकाएक मुश्ती घोड़ों की एक फिटन ने हाते में प्रवेश किया। सेठ गिरधारीलाल बहुमूल्य वस्त्रों से सजे हुए उसमें से उतरे। उनके साथ एक फैशनेबुल नवयुवक अंग्रेजी सूट पहने मुस्कराता हुआ उतरा। ये मिस्टर रामरक्षा थे। वे अब सेठ जी की एक खास दुकान का मैनेजर हैं। केवल मैनेजर ही नहीं, किंतु उन्हें मैनेजिंग प्रोप्राइटर समझना चाहिए। दिल्ली-दरबार में सेठ जी को राबहादुर का पद मिला है। आज डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट नियमानुसार इसकी घोषणा करेंगे और सूचित करेंगे कि नगर के माननीय पुरुषों की ओर से सेठ जी को धन्यवाद देने के लिए बैठक हुई है। सेठ जी की ओर से धन्यवाद का वक्तव्य रामरक्षा करेंगे। जिल लोगों ने उनकी वक्तृताएँ सुनी हैं, वे बहुत उत्सुकता से उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बैठक समाप्त होने पर सेठ जी रामरक्षा के साथ अपने भवन पर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि आज वही वृद्धा उनसे फिर मिलने आयी है। सेठ जी दौड़कर रामरक्षा की माँ के चरणों से लिपट गये। उनका हृदय इस समय नदी की भाँति उमड़ा हुआ था।

‘रामरक्षा ऐंड फ्रेडस’ नामक चीनी बनाने का कारखाना बहुत उन्नति पर हैं। रामरक्षा अब भी उसी ठाट-बाट से जीवन व्यतीत कर रहे हैं; किंतु पार्टियाँ कम देते हैं और दिन-भर में तीन से अधिक सूट नहीं बदलते। वे अब उस पत्र को, जो उनकी स्त्री ने सेठ जी को लिखा था, संसार की एक बहुत अमूल्य वस्तु समझते हैं और मिसेज रामरक्षा को भी अब सेठ जी के नाम को मिटाने की अधिक चाह नहीं है। क्योंकि अभी हाल में जब लड़का पैदा हुआ था, मिसेज रामरक्षा ने अपना सुवर्ण-कंकण धाय को उपहार दिया था मनों मिठाई बाँटी थी।

यह सब हो गया; किंतु वह बात, जो अब होनी चाहिए थी, न हुई। रामरक्षा की माँ अब भी अयोध्या में रहती हैं और अपनी पुत्रवधू की सूरत नहीं देखना चाहतीं।

मंत्र

संध्या का समय था। डाक्टर चड्ढा गोल्फ खेलने के लिए तैयार हो रहे थे। मोटर द्वार के सामने खड़ी थी कि दो कहार एक डोली लिये आते दिखायी दिये। डोली के पीछे एक बूढ़ा लाठी टेकता चला आता था। डोली औषाधालय के सामने आकर रुक गयी। बूढ़े ने धीरे-धीरे आकर द्वार पर पड़ी हुई चिक से झाँका।

ऐसी साफ-सुथरी जमीन पर पैर रखते हुए भय हो रहा था कि कोई घुड़क न बैठे। डाक्टर साहब को खड़े देख कर भी उसे कुछ कहने का साहस न हुआ।

डाक्टर साहब ने चिक के अंदर से गरज कर कहा—कौन है? क्या चाहता है?

डाक्टर साहब ने हाथ जोड़कर कहा—हुजूर बड़ा गरीब आदमी हूँ। मेरा लड़का कई दिन से.....

डाक्टर साहब ने सिगार जला कर कहा—कल सबेरे आओ, कल सबेरे, हम इस वक्त मरीजों को नहीं देखते।

बूढ़े ने घुटने टेक कर जमीन पर सिर रख दिया और बोला—दुहाई है सरकार की, लड़का मर जायगा! हुजूर, चार दिन से आँखें नहीं.....

डाक्टर चड़्ढा ने कलाई पर नजर डाली। केवल दस मिनट समय और बाकी था। गोल्फ-स्टिक खूँटी से उतारने हुए बोले—कल सबेरे आओ, कल सबेरे; यह हमारे खेलने का समय है।

बूढ़े ने पगड़ी उतार कर चौखट पर रख दी और रो कर बोला—हुजूर, एक निगाह देख लें। बस, एक निगाह! लड़का हाथ से चला जायगा हुजूर, सात लड़कों में यही एक बच रहा है, हुजूर। हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे, सरकार! आपकी बढ़ती होय, दीनबंदु!

ऐसे उजड़ड देहाती यहाँ प्रायः रोज आया करते थे। डाक्टर साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे। कोई कितना ही कुछ कहे; पर वे अपनी ही रट लगाते जायेंगे। किसी की सुनेंगे नहीं। धीरे से चिक उठाई और बाहर निकल कर मोटर की तरफ चले। बूढ़ा यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा—सरकार, बड़ा धरम होगा। हुजूर, दया कीजिए, बड़ा दीन-दुखी हूँ; संसार में कोई और नहीं है, बाबू जी!

मगर डाक्टर साहब ने उसकी ओर मुँह फेर कर देखा तक नहीं। मोटर पर बैठ कर बोले—कल सबेरे आना।

मोटर चली गयी। बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवाह नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने की जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कंधा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शांत करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। जब तक बूढ़े को मोटर दिखायी दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी। फिर उसने कहारों से डोली उठाने को कहा। डोली जिधर से आयी थी, उधर ही चली गयी। चारों ओर से निराश हो कर वह डाक्टर चड़्ढा के पास आया था। इनकी बड़ी तारीफ सुनी थी। यहाँ से निराश हो कर फिर वह किसी दूसरे डाक्टर के पास न गया। किस्मत ठोक ली!

उसी रात उसका हँसता-खेलता सात साल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार से सिधार गया। बूढ़े माँ-बाप के जीवन का यही एक आधार था। इसी का मुँह देख कर जीते थे। इस दीपक के बुझते ही जीवन की अँधेरी रात भाँय-भाँय करने लगी। बुढ़ापे की विशाल ममता टूटे हुए हृदय से निकल कर अंधकार आर्त-स्वर से रोने लगी।

2

कई साल गुजर गये। डाक्टर चड़्ढा ने खूब यश और धन कमाया; लेकिन इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी की, जो एक साधारण बात थी। यह उनके नियमित जीवन का आर्शीवाद था कि पचास वर्ष की अवस्था में उनकी चुस्ती और फुर्ती युवकों को भी लज्जित करती थी। उनके हरएक काम का समय नियत था, इस नियम से वह जौ-भर भी न टलते थे। बहुधा लोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन उस समय करते हैं, जब रोगी हो जाते हैं। डाक्टर चड़्ढा उपचार और संयम का रहस्य खूब समझते थे। उनकी संतान-संध्या भी इसी नियम के अधीन थी। उनके केवल दो बच्चे हुए, एक लड़का और एक लड़की। तीसरी संतान न हुई, इसीलिए श्रीमती चड़्ढा भी अभी जवान मालूम होती थीं। लड़की का तो विवाह हो चुका था। लड़का कालेज में पढ़ता था। वही माता-पिता के जीवन का आधार था। शील और विनय का पुतला, बड़ा ही रसिक, बड़ा ही उदार, विद्यालय का गौरव, युवक-समाज की शोभा। मुखमंडल से तेज की छटा-सी निकलती थी। आज उसकी बीसवीं सालगिरह थी।

संध्या का समय था। हरी-हरी घास पर कुर्सियाँ बिछी हुई थी। शहर के रईस और हुक्काम एक तरफ, कालेज के छात्र दूसरी तरफ बैठे भोजन कर रहे थे। बिजली के प्रकाश से सारा मैदान जगमगा रहा था।

आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था। छोटा-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलाशनाथ ने लिखा था। वही मुख्य एक्टर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज पहने, नंगे सिर, नंगे पाँव, इधर से उधर मित्रों की आव भगत में लगा हुआ था। कोई पुकारता—कैलाश, जरा इधर आना; कोई उधर से बुलाता—कैलाश, क्या उधर ही रहोगे? सभी उसे छोड़ते थे, चुहलें करते थे, बेचारे को जरा दम मारने का अवकाश न मिलता था। सहसा एक रमणी ने उसके पास आकर पूछा—क्यों कैलाश, तुम्हारे साँप कहाँ हैं? जरा मुझे दिखा दो।

कैलाश ने उससे हाथ मिला कर कहा—मृणालिनी, इस वक्त क्षमा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने आग्रह किया—जी नहीं, तुम्हें दिखाना पड़ेगा, मैं आज नहीं मानने की। तुम रोज 'कल-कल' करते हो।

मृणालिनी और कैलाश दोनों सहपाठी थे और एक-दूसरे के प्रेम में पगे हुए। कैलाश को साँपों के पालने, खेलाने और नचाने का शौक था। तरह-तरह के साँप पाल रखे थे। उनके स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करता रहता था। थोड़े दिन हुए, उसने विद्यालय में 'साँपों' पर एक मार्क का व्याख्यान दिया था। साँपों को नचा कर दिखाया भी था! प्राणिशास्त्र के बड़े-बड़े पंडित भी यह व्याख्यान सुन कर दंग रह गये थे! यह विद्या उसने एक बड़े सँपेरे से सीखी थी। साँपों की जड़ी-बूटियाँ जमा करने का उसे मरज था। इतना पता भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था। उसे लेकर ही छोड़ता था। यही व्यसन था। इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था। मृणालिनी कई बार आ चुकी थी; पर कभी साँपों को देखने के लिए इतनी उत्सुक न हुई थी। कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गयी थी, या वह कैलाश पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी; पर उसका आग्रह बेमौका था। उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायगी, भीड़ को देख कर साँप कितने चौकेंगे और रात के समय उन्हें छोड़ा जाना कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे जरा भी ध्यान न आया।

कैलाश ने कहा—नहीं, कल जरूर दिखा दूँगा। इस वक्त अच्छी तरह दिखा भी तो न सकूँगा, कमरे में तिल रखने को भी जगह न मिलेगी।

एक महाशय ने छेड़ कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते, जरा-सी बात के लिए इतना टाल-मटोल कर रहे हो? मिस गोविंद, हर्गिज न मानना। देखें कैसे नहीं दिखाते!

दूसरे महाशय ने और रद्दा चढ़ाया—मिस गोविंद इतनी सीधी और भोली हैं, तभी आप इतना मिजाज करते हैं; दूसरे सुंदरी होती, तो इसी बात पर बिगड़ खड़ी होती।

तीसरे साहब ने मजाक उड़ाया—अजी बोलना छोड़ देती। भला, कोई बात है! इस पर आपका दावा है कि मृणालिनी के लिए जान हाजिर है।

मृणालिनी ने देखा कि ये शोहदे उसे रंग पर चढ़ा रहे हैं, तो बोली—आप लोग मेरी वकालत न करें, मैं खुद अपनी वकालत कर लूँगी। मैं इस वक्त साँपों का तमाशा नहीं देखना चाहती। चलो, छुट्टी हुई।

इस पर मित्रों ने ठट्ठा लगाया। एक साहब बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहें, पर दिखाये भी तो?

कैलाश को मृणालिनी की झेंपी हुई सूरत को देखकर मालूम हुआ कि इस वक्त उनका इनकार वास्तव में उसे बुरा लगा है। ज्योंही प्रीति-भोज समाप्त हुआ और गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरबे के सामने ले जाकर महुअर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोलकर एक-एक साँप को निकालने लगा। वाह! क्या कमाल था! ऐसा जान पड़ता था कि वे कीड़े उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-एक भाव समझते हैं। किसी को उठा लिया, किसी को गरदन में डाल लिया, किसी को हाथ में लपेट लिया। मृणालिनी बार-बार मना करती कि इन्हें गर्दन में न डालों, दूर ही से दिखा दो। बस, जरा नचा दो। कैलाश की गरदन में साँपों को लिपटते देख कर उसकी जान निकली जाती थी। पछता रही थी कि मैंने व्यर्थ ही इनसे साँप दिखाने को कहा; मगर कैलाश एक न सुनता था। प्रेमिका के सम्मुख अपने सर्प-कला-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कब चूकता! एक मित्र ने टीका की—दाँत तोड़ डाले होंगे।

कैलाश हँसकर बोला—दाँत तोड़ डालना मदारियों का काम है। किसी के दाँत नहीं तोड़ गये। कहिए तो दिखा दूँ? कह कर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला—'मेरे पास इससे बड़ा और जहरीला साँप दूसरा नहीं है, अगर किसी को काट ले, तो आदमी आनन-फानन में मर जाय। लहर भी न आये। इसके काटे पर मन्त्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ?'

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—नहीं-नहीं, कैलाश, ईश्वर के लिए इसे छोड़ दो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

इस पर एक-दूसरे मित्र बोले—मुझे तो विश्वास नहीं आता, लेकिन तुम कहते हो, तो मान लूँगा।

कैलाश ने साँप की गर्दन पकड़कर कहा—नहीं साहब, आप आँखों से देख कर मानिए। दाँत तोड़कर वश में किया, तो क्या। साँप बड़ा समझदार होता है! अगर उसे विश्वास हो जाय कि इस आदमी से मुझे कोई हानि न पहुँचेगी, तो वह उसे हर्गिज न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलाश पर इस वक्त भूत सवार है, तो उसने यह तमाशा न करने के विचार से कहा—अच्छा भाई, अब यहाँ से चलो। देखा, गाना शुरू हो गया है। आज मैं भी कोई चीज सुनाऊँगी। यह कहते हुए उसने कैलाश का कंधा पकड़ कर चलने का इशारा किया और कमरे से निकल गयी; मगर कैलाश विरोधियों का शंका-समाधान करके ही दम लेना चाहता था। उसने साँप की गर्दन पकड़ कर जोर से दबायी, इतनी जोर से इबायी कि उसका मुँह लाल हो गया, देह की सारी नसें तन गयीं। साँप ने अब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझसे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि मुझे मार डालना चाहते हैं, अतएव वह आत्मरक्षा के लिए तैयार हो गया।

कैलाश ने उसकी गर्दन खूब दबा कर मुँह खोल दिया और उसके जहरीले दाँत दिखाते हुए बोला—जिन सज्जनों को शक हो, आकर देख लें। आया विश्वास या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दाँत देखे और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने सन्देह को स्थान कहाँ। मित्रों का शंका-निवारण करके कैलाश ने साँप की गर्दन ढीली कर दी और उसे जमीन पर रखना चाहा, पर वह काला गेहूँवन क्रोध से पागल हो रहा था। गर्दन नरम पड़ते ही उसने सिर उठा कर कैलाश की उँगली में जोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलाश की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उसने जोर से उँगली दबा ली और अपने कमरे की तरफ दौड़ा। वहाँ मेज की दराज में एक जड़ी रखी हुई थी, जिसे पीस कर लगा देने से घतक विष भी रफू हो जाता था। मित्रों में हलचल पड़ गई। बाहर महफिल में भी खबर हुई। डाक्टर साहब घबरा कर दौड़े। फौरन उँगली की जड़ कस कर बाँधी गयी और जड़ी पीसने के लिए दी गयी। डाक्टर साहब जड़ी के कायल न थे। वह उँगली का डसा भाग नशतर से काट देना चाहते, मगर कैलाश को जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृणालिनी प्यानों पर बैठी हुई थी। यह खबर सुनते ही दौड़ी, और कैलाश की उँगली से टपकते हुए खून को रुमाल से पोंछने लगी। जड़ी पीसी जाने लगी; पर उसी एक मिनट में कैलाश की आँखें झपकने लगीं, ओठों पर पीलापन दौड़ने लगा। यहाँ तक कि वह खड़ा न रह सका। फर्श पर बैठ गया। सारे मेहमान कमरे में जमा हो गए। कोई कुछ कहता था। कोई कुछ। इतने में जड़ी पीसकर आ गयी। मृणालिनी ने उँगली पर लेप किया। एक मिनट और बीता। कैलाश की आँखें बन्द हो गयीं। वह लेट गया और हाथ से पंखा झलने का इशारा किया। माँ ने दौड़कर उसका सिर गोद में रख लिया और बिजली का टेबुल-फैन लगा दिया।

डाक्टर साहब ने झुक कर पूछा कैलाश, कैसी तबीयत है? कैलाश ने धीरे से हाथ उठा लिए; पर कुछ बोल न सका। मृणालिनी ने करुण स्वर में कहा—क्या जड़ी कुछ असर न करेंगी? डाक्टर साहब ने सिर पकड़ कर कहा—क्या बतलाऊँ, मैं इसकी बातों में आ गया। अब तो नशतर से भी कुछ फायदा न होगा।

आध घंटे तक यही हाल रहा। कैलाश की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि उसकी आँखें पथरा गयी, हाथ-पाँव ठंडे पड़ गये, मुख की कांति मलिन पड़ गयी, नाड़ी का कहीं पता नहीं। मौत के सारे लक्षण दिखायी देने लगे। घर में कुहराम मच गया। मृणालिनी एक ओर सिर पीटने लगी; माँ अलग पछाड़े खाने लगी। डाक्टर चड्ढा को मित्रों ने पकड़ लिया, नहीं तो वह नशतर अपनी गर्दन पर मार लेते।

एक महाशय बोले—कोई मंत्र झाड़ने वाला मिले, तो सम्भव है, अब भी जान बच जाय।

एक मुसलमान सज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब कब्र में पड़ी हुई लाशें जिन्दा हो गयी हैं। ऐसे-ऐसे बाकमाल पड़े हुए हैं।

डाक्टर चड्ढा बोले—मेरी अकल पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी बातों में आ गया। नशतर लगा देता, तो यह नौबत ही क्यों आती। बार-बार समझाता रहा कि बेटा, साँप न पालो, मगर कौन सुनता था! बुलाइए, किसी झाड़-फूँक करने वाले ही को बुलाइए। मेरा सब कुछ ले ले, मैं अपनी सारी जायदाद उसके पैरों पर रख दूँगा। लँगोटी बाँध कर घर से निकल जाऊँगा; मगर मेरा कैलाश, मेरा प्यारा कैलाश उठ बैठे। ईश्वर के लिए किसी को बुलवाइए।

एक महाशय का किसी झाड़ने वाले से परिचय था। वह दौड़कर उसे बुला लाये; मगर कैलाश की सूरत देखकर उसे मंत्र चलाने की हिम्मत न पड़ी। बोला—अब क्या हो सकता है, सरकार? जो कुछ होना था, हो चुका?

अरे मूर्ख, यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ न होना था, वह कहाँ हुआ? माँ-बाप ने बेटे का सेहरा कहाँ देखा? मृणालिनी का कामना-तरु क्या पल्लव और पुष्प से रंजित हो उठा? मन के वह स्वर्ण-स्वप्न जिनसे जीवन आनंद का स्रोत बना हुआ था, क्या पूरे हो गये? जीवन के नृत्यमय तारिका-मंडित सागर में आमोद की बहार लूटते हुए क्या उनकी नौका जलमग्न नहीं हो गयी? जो न होना था, वह हो गया।

वही हरा-भरा मैदान था, वही सुनहरी चाँदनी एक निःशब्द संगीत की भाँति प्रकृति पर छायी हुई थी; वही मित्र-समाज था। वही मनोरंजन के सामान थे। मगर जहाँ हास्य की ध्वनि थी, वहाँ करुण क्रन्दन और अश्रु-प्रवाह था।

3

शहर से कई मील दूर एक छोट-से घर में एक बूढ़ा और बुढ़िया अगीठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे। बूढ़ा नारियल पीता था और बीच-बीच में खाँसता था। बुढ़िया दोनों घुटनियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी। एक मिट्टी के तेल की कुप्पी ताक पर जल रही थी। घर में न चारपाई थी, न बिछौना। एक किनारे थोड़ी-सी पुआल पड़ी हुई थी। इसी कोठरी में एक चूल्हा था। बुढ़िया दिन-भर उपले और सूखी लकड़ियाँ बटोरती थी। बूढ़ा रस्सी बट कर बाजार में बेच आता था। यही उनकी जीविका थी। उन्हें न किसी ने रोते देखा, न हँसते। उनका सारा समय जीवित रहने में कट जाता था। मौत द्वार पर खड़ी थी, रोने या हँसने की कहाँ फुरसत! बुढ़िया ने पूछा—कल के लिए सन तो है नहीं, काम क्या करेंगे?

‘जा कर झगड़ू साह से दस सेर सन उधार लाऊँगा?’

‘उसके पहले के पैसे तो दिये ही नहीं, और उधार कैसे देगा?’

‘न देगा न सही। घास तो कहीं नहीं गयी। दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा?’

इतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज दी—भगत, भगत, क्या सो गये? जरा किवाड़ खोलो।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये। एक आदमी ने अन्दर आकर कहा—कुछ सुना, डाक्टर चड्ढा बाबू के लड़के को साँप ने काट लिया।

भगत ने चौंक कर कहा—चड्ढा बाबू के लड़के को! वही चड्ढा बाबू हैं न, जो छावनी में बँगले में रहते हैं?

‘हाँ-हाँ वही। शहर में हल्ला मचा हुआ है। जाते हो तो जाओ, आदमी बन जाओगे।’

बूढ़े ने कठोर भाव से सिर हिला कर कहा—मैं नहीं जाता! मेरी बला जाय! वही चड्ढा है। खूब जानता हूँ। भैया लेकर उन्हीं के पास गया था। खेलने जा रहे थे। पैरों पर गिर पड़ा कि एक नजर देख लीजिए; मगर सीधे मुँह से बात तक न की। भगवान बैठे सुन रहे थे। अब जान पड़ेगा कि बेटे का गम कैसा होता है। कई लड़के हैं।

‘नहीं जी, यही तो एक लड़का था। सुना है, सबने जवाब दे दिया है।’

‘भगवान बड़ा कारसाज है। उस बखत मेरी आँखें से आँसू निकल पड़े थे, पर उन्हें तनिक भी दया न आयी थी। मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता।’

‘तो न जाओगे? हमने जो सुना था, सो कह दिया।’

‘अच्छा किया—अच्छा किया। कलेजा ठंडा हो गया, आँखें ठंडी हो गयीं। लड़का भी ठंडा हो गया होगा! तुम जाओ। आज चैन की नींद सोऊँगा। (बुढ़िया से) जरा तम्बाकू ले ले! एक चिलम और पीऊँगा। अब मालूम होगा लाला को! सारी साहबी निकल जायगी, हमारा क्या बिगड़ा। लड़के के मर जाने से कुछ राज तो नहीं चला गया? जहाँ छः बच्चे गये थे, वहाँ एक और चला गया, तुम्हारा तो राज सुना हो जायगा। उसी के वास्ते सबका गला दबा-दबा कर जोड़ा था न। अब क्या करेंगे? एक बार देखने जाऊँगा; पर कुछ दिन बाद मिजाज का हाल पूछूँगा।’

आदमी चला गया। भगत ने किवाड़ बन्द कर लिये, तब चिलम पर तम्बाखू रख कर पीने लगा।

बुढ़िया ने कहा—इतनी रात गए जाड़े-पाले में कौन जायगा?

‘अरे, दोपहर ही होता तो मैं न जाता। सवारी दरवाजे पर लेने आती, तो भी न जाता। भूल नहीं गया हूँ। पन्ना की सूरत आँखों में फिर रही है। इस निर्दयी ने उसे एक नजर देखा तक नहीं। क्या मैं न जानता था कि वह न बचेगा? खूब जानता था। चड्ढा भगवान नहीं थे, कि उनके एक निगाहदेख लेने से अमृत बरस जाता। नहीं, खाली मन की दौड़ थी। अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा—क्यों साहब, कहिए, क्या रंग है?’

दुनिया बुरा कहेगी, कहे; कोई परवाह नहीं। छोटे आदमियों में तो सब ऐव हैं। बड़ों में कोई ऐब नहीं होता, देवता होते हैं।

भगत के लिए यह जीवन में पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पा कर वह बैठा रह गया हो। अस्सी वर्ष के जीवन में ऐसा कभी न हुआ था कि साँप की खबर पाकर वह दौड़ न गया हो। माघ-पूस की अँधेरी रात, चैत-बैसाख की धूप और लू, सावन-भादों की चढ़ी हुई नदी और नाले, किसी की उसने कभी परवाह न की। वह तुरन्त घर से निकल पड़ता था—निःस्वार्थ, निष्काम! लेन-देन का विचार कभी दिल में आया नहीं। यह सा काम ही न था। जान का मूल्य कोन दे सकता है? यह एक पुण्य-कार्य था। सैकड़ों निराशों को उसके मंत्रों ने जीवन-दान दे दिया था; पर आप वह घर से कदम नहीं निकाल सका। यह खबर सुन कर सोने जा रहा है।

बुढ़िया ने कहा—तमाखू अँगीठी के पास रखी हुई है। उसके भी आज ढाई पैसे हो गये। देती ही न थी।

बुढ़िया यह कह कर लेटी। बूढ़े ने कुप्पी बुझायी, कुछ देर खड़ा रहा, फिर बैठ गया। अन्त को लेट गया; पर यह खबर उसके हृदय पर बोझ की भाँति रखी हुई थी। उसे मालूम हो रहा था, उसकी कोई चीज खो गयी है, जैसे सारे कपड़े गीले हो गये हैं या पैरों में कीचड़ लगा हुआ है, जैसे कोई उसके मन में बैठा हुआ उसे घर से लिकालने के लिए कुरेद रहा है। बुढ़िया जरा देर में खर्राटे लेनी लगी। बूढ़े बातें करते-करते सोते हैं और जरा-सा खटा होते ही जागते हैं। तब भगत उठा, अपनी लकड़ी उठा ली, और धीरे से किवाड़ खोले।

बुढ़िया ने पूछा—कहाँ जाते हो?

‘कहीं नहीं, देखता था कि कितनी रात है।’

‘अभी बहुत रात है, सो जाओ।’

‘नींद, नहीं आती।’

‘नींद काहे आवेगी? मन तो चड़ढा के घर पर लगा हुआ है।’

‘चड़ढा ने मेरे साथ कौन-सी नेकी कर दी है, जो वहाँ जाऊँ? वह आ कर पैरों पड़े, तो भी न जाऊँ।’

‘उठे तो तुम इसी इरादे से ही?’

‘नहीं री, ऐसा पागल नहीं हूँ कि जो मुझे काँटे बोये, उसके लिए फूल बोता फिरूँ।’

बुढ़िया फिर सो गयी। भगत ने किवाड़ लगा दिए और फिर आकर बैठा। पर उसके मन की कुछ ऐसी दशा थी, जो बाजे की आवाज कान में पड़ते ही उपदेश सुनने वालों की होती हैं। आँखें चाहे उपदेशक की ओर हों; पर कान बाजे ही की ओर होते हैं। दिल में भी बापे की ध्वनि गूँजती रहती है। शर्म के मारे जगह से नहीं उठता। निर्दयी प्रतिघात का भाव भगत के लिए उपदेशक था, पर हृदय उस अभागे युवक की ओर था, जो इस समय मर रहा था, जिसके लिए एक-एक पल का विलम्ब घातक था।

उसने फिर किवाड़ खोले, इतने धीरे से कि बुढ़िया को खबर भी न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव को चौकीदार गश्त लगा रहा था, बोला—कैसे उठे भगत? आज तो बड़ी सरदी है! कहीं जा रहे हो क्या?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहाँ! देखता था, अभी कितनी रात है। भला, के बजे होंगे।

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या, अभी थाने से आ रहा था, तो डाक्टर चड़ढा बाबू के बँगले पर बड़ी भड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने सुना होगा, कीड़े ने छू लिया है। चाहे मर भी गया हो। तुम चले जाओ तो साइत बच जाय। सुना है, इस हजार तक देने को तैयार हैं।

भगत—मैं तो न जाऊँ चाहे वह दस लाख भी दें। मुझे दस हजार या दस लाख लेकर करना क्या हैं? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगनेवाला बैठा हुआ है।

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह अपने काबू में नहीं रहती, पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जबान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था; पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलायी, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं।

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था। चेतना रोकती थी, पर उपचेतना ठेलती थी। सेवक स्वामी पर हावी था।

आधी राह निकल जाने के बाद सहसा भगत रुक गया। हिंसा ने क्रिया पर विजय पायी—मैं यों ही इतनी दूर चला आया। इस जाड़े-पाले में मरने की मुझे क्या पड़ी थी? आराम से सोया क्यों नहीं? नींद न आती, न सही; दो-चार भजन ही गाता। व्यर्थ इतनी दूर दौड़ा आया। चड़ढा का लड़का रहे या मरे, मेरी कला

से। मेरे साथ उन्होंने ऐसा कौन-सा सलूक किया था कि मैं उनके लिए मरूँ? दुनिया में हजारों मरते हैं, हजारों जीते हैं। मुझे किसी के मरने-जीने से मतलब!

मगर उपचेतन ने अब एक दूसरा रूप धारण किया, जो हिंसा से बहुत कुछ मिलता-जुलता था—वह झाड़-फूँक करने नहीं जा रहा है; वह देखेगा, कि लोग क्या कर रहे हैं। डाक्टर साहब का रोना-पीटना देखेगा, किस तरह सिर पीटते हैं, किस तरह पछाड़े खाते हैं! वे लोग तो विद्वान होते हैं, सबर कर जाते होंगे! हिंसा-भाव को यों धीरज देता हुआ वह फिर आगे बढ़ा।

इतने में दो आदमी आते दिखायी दिये। दोनों बातें करते चले आ रहे थे—चड़ढा बाबू का घर उजड़ गया, वही तो एक लड़का था। भगत के कान में यह आवाज पड़ी। उसकी चाल और भी तेज हो गयी। थकान के मारे पाँव न उठते थे। शिरोभाग इतना बढ़ा जाता था, मानों अब मुँह के बल गिर पड़ेगा। इस तरह वह कोई दस मिनट चला होगा कि डाक्टर साहब का बँगला नजर आया। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं; मगर सन्नाटा छाया हुआ था। रोने-पीटने के आवाज भी न आती थी। भगत का कलेजा धक-धक करने लगा। कहीं मुझे बहुत देर तो नहीं हो गयी? वह दौड़ने लगा। अपनी उम्र में वह इतना तेज कभी न दौड़ा था। बस, यही मालूम होता था, मानो उसके पीछे मोत दौड़ी आ रही है।

4

दो बज गये थे। मेहमान विदा हो गये। रोने वालों में केवल आकाश के तारे रह गये थे। और सभी रो-रो कर थक गये थे। बड़ी उत्सुकता के साथ लोग रह-रह आकाश की ओर देखते थे कि किसी तरह सुहि हो और लाश गंगा की गोद में दी जाय।

सहसा भगत ने द्वार पर पहुँच कर आवाज दी। डाक्टर साहब समझे, कोई मरीज आया होगा। किसी और दिन उन्होंने उस आदमी को दुत्कार दिया होता; मगर आज बाहर निकल आये। देखा एक बूढ़ा आदमी खड़ा है—कमर झुकी हुई, पोपला मुँह, भौंहे तक सफेद हो गयी थीं। लकड़ी के सहारे काँप रहा था। बड़ी नम्रता से बोले—क्या है भई, आज तो हमारे ऊपर ऐसी मुसीबत पड़ गयी है कि कुछ कहते नहीं बनता, फिर कभी आना। इधर एक महीना तक तो शायद मैं किसी भी मरीज को न देख सकूँगा।

भगत ने कहा—सुन चुका हूँ बाबू जी, इसीलिए आया हूँ। भैया कहाँ है? जरा मुझे दिखा दीजिए। भगवान बड़ा कारसाज है, मुरदे को भी जिला सकता है। कौन जाने, अब भी उसे दया आ जाय।

चड़ढा ने व्यथित स्वर से कहा—चलो, देख लो; मगर तीन-चार घंटे हो गये। जो कुछ होना था, हो चुका। बहुतेर झाड़ने-फूँकने वाले देख-देख कर चले गये।

डाक्टर साहब को आशा तो क्या होती। हाँ बूढ़े पर दया आ गयी। अन्दर ले गये। भगत ने लाश को एक मिनट तक देखा। तब मुस्करा कर बोला—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, बाबू जी! यह नारायण चाहेंगे, तो आध घंटे में भैया उठ बैठेंगे। आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। जरा कहारों से कहिए, पानी तो भरें।

कहारों ने पानी भर-भर कर कैलाश को नहलाना शुरू किया पाइप बन्द हो गया था। कहारों की संख्या अधिक न थी, इसलिए मेहमानों ने अहाते के बाहर के कुएँ से पानी भर-भर कर कहानों को दिया, मृणालिनी कलासा लिए पानी ला रही थी। बूढ़ा भगत खड़ा मुस्करा-मुस्करा कर मंत्र पढ़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है। जब एक बार मंत्र समाप्त हो जाता, वब वह एक जड़ी कैलाश के सिर पर डाले गये और न-जाने कितनी बार भगत ने मंत्र फूँका। आखिर जब उषा ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलीं तो कैलाश की भी लाल-लाल आँखें खुल गयीं। एक क्षण में उसने अंगड़ाई ली और पानी पीने को माँगा। डाक्टर चड़ढा ने दौड़ कर नारायणी को गले लगा लिया। नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलाश के सामने आँखों में आँसू-भरे पूछने लगी—अब कैसी तबियत है!

एक क्षण में चारों तरफ खबर फैल गयी। मित्रगण मुबारकवाद देने आने लगे। डाक्टर साहब बड़े श्रद्धा-भाव से हर एक के हसामने भगत का यश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे; मगर अन्दर जा कर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—अभी तो यहीं बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली, अपने पास से तमाखू निकाल कर भरी।

यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले पहुँच जाऊँ!

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब ने नारायणी से कहा—बुड़ढा न-जाने कहाँ चला गया। एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ।

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूँगी।

चड़ढा—रात को तो मैंने नहीं पहचाना, पर जरा साफ हो जाने पर पहचान गया। एक बार यह एक मरीज को लेकर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज को देखने से इनकार कर दिया था। आप उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पेरों पर गिर कर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ, उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है। उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब से जीवनपर्यन्त मेरे सामने रहेगा।

प्रायश्चित

दफ्तर में जरा देर से आना अफसरों की शान है। जितना ही बड़ा अधिकारी होता है, उत्तरी ही देर में आता है; और उतने ही सबेरे जाता भी है। चपरासी की हाजिरी चौबीसों घंटे की। वह छुट्टी पर भी नहीं जा सकता। अपना एवज देना पड़ता है। खैर, जब बरेली जिला-बोर्ड के हेड क्लर्क बाबू मदारीलाल ग्यारह बजे दफ्तर आये, तब मानो दफ्तर नींद से जाग उठा। चपरासी ने दौड़ कर पैरगाड़ी ली, अरदली ने दौड़कर कमरे की चिक उठा दी और जमादार ने डाक की किश्त मेज जर ला कर रख दी। मदारीलाल ने पहला ही सरकारी लिफाफा खोला था कि उनका रंग फक हो गया। वे कई मिनट तक आश्चर्यान्वित हालत में खड़े रहे, मानो सारी जानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयी हों। उन पर बड़े-बड़े आघात हो चुके थे; पर इतने बहदवास वे कभी न हुए थे। बात यह थी कि बोर्ड के सेक्रेटरी की जो जगह एक महीने से खाली थी, सरकार ने सुबोधचन्द्र को वह जगह दी थी और सुबोधचन्द्र वह व्यक्ति था, जिसके नाम ही से मदारीलाल को घृणा थी। वह सुबोधचन्द्र, जो उनका सहपाठी था, जिस जक देने को उन्होंने कितनी ही चेष्टा की; पर कभी सफल न हुए थे। वही सुबोध आज उनका अफसर होकर आ रहा था। सुबोध की इधर कई सालों से कोई खबर न थी। इतना मालूम था कि वह फौज में भरती हो गया था। मदारीलाल ने समझा—वहीं मर गया होगा; पर आज वह मानों जी उठा और सेक्रेटरी होकर आ रहा था। मदारीलाल को उसकी मातहत में काम करना पड़ेगा। इस अपमान से तो मर जाना कहीं अच्छा था। सुबोध को स्कूल और कालेज की सारी बातें अवश्य ही याद होंगी। मदारीलाल ने उसे कालेज से निकलवा देने के लिए कई बार मंत्र चलाए, झूठे आरोज किये, बदनाम किया। क्या सुबोध सब कुछ भूल गया होगा? नहीं, कभी नहीं। वह आते ही पुरानी कसर निकालेगा। मदारी बाबू को अपनी प्राणरक्षा का कोई उपाय न सूझता था।

मदारी और सुबोध के ग्रहों में ही विरोध था दोनों एक ही दिन, एक ही शाला में भरती हुए थे, और पहले ही दिन से दिल में ईर्ष्या और द्वेष की वह चिनगारी पड़ गयी, जो आज बीस वर्ष बीतने पर भी न बुझी थी। सुबोध का अपराध यही था कि वह मदारीलाल से हर एक बात में बढ़ा हुआ था डी-डौल,

रंग-रूप, रीति-व्यवहार, विद्या-बुद्धि ये सारे मैदान उसके हाथ थे। मदारीलाल ने उसका यह अपराध कभी क्षमा नहीं किया। सुबोध बीस वर्ष तक निरन्तर उनके हृदय का काँटा बना रहा। जब सुबोध डिग्री लेकर अपने घर चला गया और मदारी फेल होकर इस दफ्तर में नौकर हो गये, तब उनका चित शांत हुआ। किन्तु जब यह मालूम हुआ कि सुबोध बसरे जा रहा है, जब तो मदारीलाल का चेहरा खिल उठा। उनके दिल से वह पुरानी फाँस निकल गयी। पर हा हतभाग्य! आज वह पुराना नासूर शतगुण टीस और जलन के साथ खुल गया। आज उनकी किस्मत सुबोध के हाथ में थी। ईश्वर इतना अन्यायी है! विधि इतना कठोर!

जब जरा चित शांत हुआ, तब मदारी ने दफ्तर के क्लर्कों को सरकारी हुक्म सुनाते हुए कहा—अब आप लोग जरा हाथ-पाँव सँभाल कर रहिएगा। सुबोधचन्द्र वे आदमी नहीं हैं, जो भूलो को क्षम कर दें?

एक क्लर्क ने पूछा—क्या बहुत सख्त है।

मदारीलाल ने मुस्करा कर कहा—वह तो आप लोगों को दो-चार दिन ही में मालूम हो जाएगा। मैं अपने मुँह से किसी की क्यों शिकायत करूँ? बस, चेतावनी देदी कि जरा हाथ-पाँव सँभाल कर रहिएगा। आदमी योग्य है, पर बड़ा ही क्रोधी, बड़ा दम्भी। गुस्सा तो उसकी नाक पर रहता है। खुद हजारों हजम कर जाय और डकार तक न ले; पर क्या मजाल कि कोड़ मातहत एक कौड़ी भी हजम करने जाये। ऐसे आदमी

से ईश्वर ही बचाये! मैं तो सोच रहा हूँ कि छुट्टी लेकर घर चला जाऊँ। दोनों वक्त घर पर हाजिरी बजानी होगी। आप लोग आज से सरकार के नौकर नहीं, सेक्रेटरी साहब के नौकर हैं। कोई उनके लड़के को पढ़ायेगा। कोई बाजास से सौदा-सुलुफ लायेगा और कोई उन्हें अखबार सुनायेगा। ओर चपरासियों के तो शायद दफ्तर में दर्शन ही न हों।

इस प्रकार सारे दफ्तर को सुबोधचन्द्र की तरफ से भड़का कर मदारीलाल ने अपना कलेजा ठंडा किया।

2

इसके एक सप्ताह बाद सुबोधचन्द्र गाड़ी से उतरे, तब स्टेशन पर दफ्तर के सब कर्मचारियों को हाजिर पाया। सब उनका स्वागत करने आये थे। मदारीलाल को देखते ही सुबोध लपक कर उनके गले से लिपट गये और बोले—तुम खूब मिले भाई। यहाँ कैसे आये? ओह! आज एक युग के बाद भेंट हुई!

मदारीलाल बोले—यहाँ जिला-बोर्ड के दफ्तर में हेड क्लर्क हूँ। आप तो कुशल से है?

सुबोध—अजी, मेरी न पूछो। बसरा, फ्रांस, मिश्र और न-जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा। तुम दफ्तर में हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। मेरी तो समझ ही मे न आता था कि कैसे काम चलेगा। मैं तो बिलकुल कोरा हूँ; मगर जहाँ जाता हूँ, मेरा सौभाग्य ही मेरे साथ जाता है। बसरे में सभी अफसर खूश थे। फ्रांस में भी खूब चैन किये। दो साल में कोई पचीस हजार रुपये बना लाया और सब उड़ा दिया। तौ से आकर कुछ दिनों को-आपरेशन दफ्तर में मटरगश्त करता रहा। यहाँ आया तब तुम मिल गये। (क्लर्क को देख कर) ये लोग कौन हैं?

मदारीलाल के हृदय में बछिया-सी चल रही थी। दुष्ट पचीस हजार रुपये बसरे में कमा लाया! यहाँ कलम घिसते-घिसते मर गये और पाँच सौ भी न जमा कर सके। बोले—कर्मचारी हैं। सलाम करने आये हैं।

सुबोध ने उन सब लोगों से बारी-बारी से हाथ मिलाया और बोला—आप लोगों ने व्यर्थ यह कष्ट किया। बहुत आभारी हूँ। मुझे आशा है कि आप सब सज्जनों को मुझसे कोई शिकायत न होगी। मुझे अपना अफसर नहीं, अपना भाई समझिए। आप सब लोग मिल कर इस तरह काम कीजिए कि बोर्ड की नेकनामी हो और मैं भी सुखरू रहूँ। आपके हेड क्लर्क साहब तो मेरे पुराने मित्र और लँगोटिया यार है।

एक वाकचतुर क्लर्क ने कहा—हम सब हुजूर के ताबेदार हैं। यथाशक्ति आपको असंतुष्ट न करेंगे; लेकिनह आदमी ही है, अगर कोई भूल हो भी जाय, तो हुजूर उसे क्षमा करेंगे।

सुबोध ने नम्रता से कहा—यही मेरा सिद्धान्त है और हमेशा से यही सिद्धान्त रहा है। जहाँ रहा, मतहतों से मित्रों का-सा बर्ताव किया। हम और आज दोनों ही किसी तीसरे के गुलाम हैं। फिर रोब कैसा और अफसरी कैसी? हाँ, हमें नेकनीयत के साथ अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

जब सुबोध से विदा होकर कर्मचारी लोग चले, तब आपस में बातें होनी लगीं—

‘आदमी तो अच्छा मालूम होता है।’

‘हेड क्लर्क के कहने से तो ऐसा मालूम होता था कि सबको कच्चा ही खा जायगा।’

‘पहले सभी ऐसे ही बातें करते हैं।’

‘ये दिखाने के दाँत हैं।’

3

सुबोध को आये एक महीना गुजर गया। बोर्ड के क्लर्क, अरदली, चपरासी सभी उसके बर्ताव से खुश हैं। वह इतना प्रसन्नचित है, इतना नम्र है कि जो उससे एक बार मिला है, सदैव के लिए उसका मित्र हो जाता है। कठोर शब्द तो उनकी जबान पर आता ही नहीं। इनकार को भी वह अप्रिय नहीं होने देता; लेकिन द्वेष की आँखों में गुण ओर भी भयंकर हो जाता है। सुबोध के ये सारे सदगुण मदारीलाल की आँखों में खटकते रहते हैं। उसके विरुद्ध कोई न कोई गुप्त षडयंत्र रचते ही रहते हैं। पहले कर्मचारियों को भड़काना चाहा, सफल न हुए। बोर्ड के मेम्बरों को भड़काना चाहा, मुँह की खायी। ठेकेदारों को उभारने का बीड़ा उठाया, लज्जित होना पड़ा। वे चाहते थे कि भुस में आग लगा कर दूर से तमाशा देखें। सुबोध से यों हँस कर मिलते, यों चिकनी-चुपड़ी बातें करते, मानों उसके सच्चे मित्र हैं, पर घात में लगे रहते। सुबोध में सब गुण थे, पर आदमी पहचानना न जानते थे। वे मदारीलाल को अब भी अपना दोस्त समझते हैं।

एक दिन मदारीलाल सेक्रेटरी साहब के कमरे में गए तब कुर्सी खाली देखी। वे किसी काम से बाहर चले गए थे। उनकी मेज पर पाँच हजार के नोट पुलिदों में बँधे हुए रखे थे। बोर्ड के मदरसों के लिए कुछ

लकड़ी के सामान बनवाये गये थे। उसी के दाम थे। ठेकेदार वसूली के लिए बुलया गया था। आज ही सेक्रेटरी साहब ने चेक भेज कर खजाने से रुपये मँगवाये थे। मदारीलाल ने बरामदे में झाँक कर देखा, सुबोध का कहीं जता नहीं। उनकी नीयत बदल गयी। दर्प्प्या में लोभ का सम्मिश्रण हो गया। काँपते हुए हाथों से पुलिंदे उठाये; पतलून की दोनों जेबों में भर कर तुरन्त कमरे से निकले और चपरासी को पुकार कर बोले—बाबू जी भीतर है? चपरासी आप ठेकेदार से कुछ वसूल करने की खुशी में फूला हुआ था। सामने वाले तमोली के दूकान से आकर बोला—जी नहीं, कचहरी में किसी से बातें कर रहे हैं। अभी-अभी तो गये हैं।

मदारीलाल ने दफ्तर में आकर एक क्लर्क से कहा—यह मिसिल ले जाकर सेक्रेटरी साहब को दिखाओ।

क्लर्क मिसिल लेकर चला गया। जरा देर में लौट कर बोला—सेक्रेटरी साहब कमरे में न थे। फाइल मेज पर रख आया हूँ।

मदारीलाल ने मुँह सिकोड़ कर कहा—कमरा छोड़ कर कहाँ चले जाया करते हैं? किसी दिन धोखा उठायेंगे।

क्लर्क ने कहा—उनके कमरे में दफ्तरवालों के सिवा और जाता ही कौन है?

मदारीलाल ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या दफ्तरवाले सब के सब देवता हैं? कब किसकी नीयत बदल जाय, कोई नहीं कह सकता। मैंने छोटी-छोटी रकमों पर अच्छों-अच्छों की नीयतें बदलते देखी हैं। इस वक्त हम सभी साह हैं; लेकिन अवसर पाकर शायद ही कोई चूके। मनुष्य की यही प्रकृति है। आप जाकर उनके कमरे के दोनों दरवाजे बन्द कर दीजिए।

क्लर्क ने टाल कर कहा—चपरासी तो दरवाजे पर बैठा हुआ है।

मदारीलाल ने झुँझला कर कहा—आप से मैं जो कहता हूँ, वह कीजिए। कहने लगें, चपरासी बैठा हुआ है। चपरासी कोई ऋषि है, मुनि है? चपरासी ही कुछ उड़ा दे, तो आप उसका क्या कर लेंगे? जमानत भी है तो तीन सौ की। यहाँ एक-एक कागज लाखों का है।

यह कह कर मदारीलाल खुद उठे और दफ्तर के द्वार दोनों तरफ से बन्द कर दिये। जब चित् शांत हुआ तब नोटों के पुलिंदे जेब से निकाल कर एक आलमारी में कागजों के नीचे छिपा कर रख दिये फिर आकर अपने काम में व्यस्त हो गये।

सुबोधचन्द्र कोई घंटे-भर में लौटे। तब उनके कमरे का द्वार बन्द था। दफ्तर में आकर मुस्कराते हुए बोले—मेरा कमरा किसने बन्द कर दिया है, भाई क्या मेरी बेदखली हो गयी?

मदारीलाल ने खड़े होकर मृदु तिरस्कार दिखाते हुए कहा—साहब, गुस्ताखी माफ हो, आप जब कभी बाहर जायँ, चाहे एक ही मिनट के लिए क्यों न हो, तब दरवाजा-बन्द कर दिया करें। आपकी मेज पर रुपये-पैसे और सरकारी कागज-पत्र बिखरे पड़े रहते हैं, न जाने किस वक्त किसकी नीयत बदल जाय। मैंने अभी सुना कि आप कहीं गये हैं, जब दरवाजे बन्द कर दिये।

सुबोधचन्द्र द्वार खोल कर कमरे में गये और सिगार पीने लगें मेज पर नोट रखे हुए हैं, इसके खबर ही न थी।

सहसा ठेकेदार ने आकर सलाम किया। सुबोध कुर्सी से उठ बैठे और बोले—तुमने बहुत देर कर दी, तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था। दस ही बजे रुपये मँगवा लिये थे। रसीद लिखवा लाये हो न?

ठेकेदार—हुजूर रसीद लिखवा लाया हूँ।

सुबोध—तो अपने रुपये ले जाओ। तुम्हारे काम से मैं बहुत खुश नहीं हूँ। लकड़ी तुमने अच्छी नहीं लगायी और काम में सफाई भी नहीं है। अगर ऐसा काम फिर करेंगे, तो ठेकेदारों के रजिस्टर से तुम्हारा नाम निकाल दिया जायगा।

यह कह कर सुबोध ने मेज पर निगाह डाली, तब नोटों के पुलिंदे न थे। सोचा, शायद किसी फाइल के नीचे दब गये हों। कुरसी के समीप के सब कागज उलट-पुलट डाले; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। ऐं नोट कहाँ गये! अभी तो यही मेने रख दिये थे। जा कहाँ सकते हैं। फिर फाइलों को उलटने-पुलटने लगे। दिल में जरा-जरा धड़कन होने लगी। सारी मेज के कागज छान डाले, पुलिंदों का पता नहीं। तब वे कुरसी पर बैठकर इस आध घंटे में होने वाली घटनाओं की मन में आलोचना करने लगे—चपरासी ने नोटों के पुलिंदे लाकर मुझे दिये, खूब याद है। भला, यह भी भूलने की बात है और इतनी जल्द! मैंने नोटों को लेकर यहीं मेज पर रख दिया, गिना तक नहीं। फिर वकील साहब आ गये, पुराने मुलाकाती हैं। उनसे बातें करता जरा उस पेड़ तक चला गया। उन्होंने पान मँगवाये, बस इतनी ही देर हुई। जब गया हूँ तब पुलिंदे रखे हुए थे। खूब अच्छी तरह याद है। तब ये नोट कहाँ गायब हो गये? मैंने किसी संदूक, दराज या आलमारी में नहीं रखे। फिर गये

तो कहाँ? शायद दफ्तर में किसी ने सावधानी के लिए उठा कर रख दिये हों, यही बात है। मैं व्यर्थ ही इतना घबरा गया। छिः!

तुरन्त दफ्तर में आकर मदारीलाल से बोले—आपने मेरी मेज पर से नोट तो उठा कर नहीं रख दिये?

मदारीलाल ने भौंचक्के होकर कहा—क्या आपकी मेज पर नोट रखे हुए थे? मुझे तो खबर ही नहीं। अभी पंडित सोहनलाल एक फाइल लेकर गये थे, तब आपको कमरे में न देखा। जब मुझे मालूम हुआ कि आप किसी से बातें करने चले गये हैं, वब दरवाजे बन्द करा दिये। क्या कुछ नोट नहीं मिल रहे हैं?

सुबोध आँखें फैला कर बोले—अरे साहब, पूरे पाँच हजार के हैं। अभी-अभी चेक भुनाया है।

मदारीलाल ने सिर पीट कर कहा—पूरे पाँच हजार! हा भगवान! आपने मेज पर खूब देख लिया है?

‘अजी पंद्रह मिनट से तलाश कर रहा हूँ।’

‘चपरासी से पूछ लिया कि कौन-कौन आया था?’

‘आइए, जरा आप लोग भी तलाश कीजिए। मेरे तो होश उड़े हुए हैं।’

सारा दफ्तर सेक्रेटरी साहब के कमरे की तलाशी लेने लगा। मेज, आलमारियाँ, संदूक सब देखे गये। रजिस्ट्रों के वर्क उलट-पुलट कर देखे गये; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। कोई उड़ा ले गया, अब इसमें कोई शबहा न था। सुबोध ने एक लम्बी साँस ली और कुर्सी पर बैठ गये। चेहरे का रंग फक हो गया। जर-सा मुँह निकल आया। इस समय कोई उन्हें देखत तो समझता कि महीनों से बीमार है।

मदारीलाल ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—गजब हो गया और क्या! आज तक कभी ऐसा अंधेर न हुआ था। मुझे यहाँ काम करते दस साल हो गये, कभी धेले की चीज भी गायब न हुई। मैं आपको पहले दिन सावधान कर देना चाहता था कि रुपये-पैसे के विषय में होशियार रहिएगा; मगर शुदनी थी, खयाल न रहा। जरूर बाहर से कोई आदमी आया और नोट उड़ा कर गायब हो गया। चपरासी का यही अपराध है कि उसने किसी को कमरे में जोने ही क्यों दिया। वह लाख कसम खाये कि बाहर से कोई नहीं आया; लेकिन मैं इसे मान नहीं सकता। यहाँ से तो केवल पण्डित सोहनलाल एक फाइल लेकर गये थे; मगर दरवाजे ही से झाँक कर चले आये।

सोहनलाल ने सफाई दी—मैंने तो अन्दर कदम ही नहीं रखा, साहब! अपने जवान बेटे की कसम खाता हूँ, जो अन्दर कदम रखा भी हो।

मदारीलाल ने माथा सिकोड़कर कहा—आप व्यर्थ मैं कसम क्यों खाते हैं। कोई आपसे कुछ कहता? (सुबोध के कान में) बैंक में कुछ रुपये हों तो निकाल कर ठेकेदार को दे लिये जायँ, वरना बड़ी बदनामी होगी। नुकसान तो हो ही गया, अब उसके साथ अपमान क्यों हो।

सुबोध ने करुण-स्वर में कहा—बैंक में मुश्किल से दो-चार सौ रुपये होंगे, भाईजान! रुपये होते तो क्या चिन्ता थी। समझ लेता, जैसे पचीस हजार उड़ गये, वैसे ही तीस हजार भी उड़ गये। यहाँ तो कफन को भी कौड़ी नहीं।

उसी रात को सुबोधचन्द्र ने आत्महत्या कर ली। इतने रूपयों का प्रबन्ध करना उनके लिए कठिन था। मृत्यु के परदे के सिवा उन्हें अपनी वेदना, अपनी विवशता को छिपाने की और कोई आड़ न थी।

4

दूसरे दिन प्रातः चपरासी ने मदारीलाल के घर पहुँच कर आवाज दीं मदारी को रात-भर नींद न आयी थी। घबरा कर बाहर आया। चपरासी उन्हें देखते ही बोला—हुजूर! बड़ा गजब हो गया, सिक्रेटरी साहब ने रात को गर्दन पर छुरी फेर ली।

मदारीलाल की आँखे ऊपर चढ़ गयीं, मुँह फैल गया और सारी देह सिहर उठी, मानों उनका हाथ बिजली के तार पर पड़ गया हो।

‘छुरी फेर ली?’

‘जी हाँ, आज सबेरे मालूम हुआ। पुलिसवाले जमा हैं। आपाके बुलाया है।’

‘लाश अभी पड़ी हुई है?’

‘जी हाँ, अभी डाक्टरी होने वाली हैं।’

‘बहुत से लोग जमा हैं?’

‘सब बड़े-बड़े अफसर जमा हैं। हुजूर, लहास की ओर ताकते नहीं बनता। कैसा भलामानुष हीरा आदमी था! सब लोग रो रहे हैं। छोड़े-छोटे दो बच्चे हैं, एक सायानी लड़की है ब्याहने लायक। बहू जी को लोग

कितना रोक रहे हैं, पर बार-बार दौड़ कर लहास के पास आ जाती हैं। कोई ऐसा नहीं है, जो रूमाल से आँखें न पोछ रहा हो। अभी इतने ही दिन आये हुए, पर सबसे कितना मेल-जोल हो गया था। रुपये की तो कभी परवा ही नहीं थी। दिल दरियाब था।

मदारीलाल के सिर में चक्कर आने लगा। द्वारा की चौखट पकड़ कर अपने को सँभाल न लेते, तो शायद गिर पड़ते। पूछा—बहू जी बहुत रो रही थीं?

‘कुछ न पूछिए, हुजूर। पेड़ की पत्तियाँ झड़ी जाती हैं। आँख फूल गर गूलर हो गयी है।’

‘कितने लड़के बतलाये तुमने?’

‘हुजूर, दो लड़के हैं और एक लड़की।’

‘नोटों के बारे में भी बातचीत हो रही होगी?’

‘जी हाँ, सब लोग यही कहते हैं कि दफ्तर के किसी आदमी का काम है। दारोगा जी तो सोहनलाल को गिरफ्तार करना चाहते थे; पर साइत आपसे सलाइ लेकर करेंगे। सिकटरी साहब तो लिख गए हैं कि मेरा किसी पर शक नहीं है।’

‘क्या सेक्रेटरी साहब कोई खत लिख कर छोड़ गये हैं?’

‘हाँ, मालूम होता है, छुरी चलाते बखत याद आयी कि शुबहे में दफ्तर के सब लोग पकड़ लिए जायेंगे। बस, कलक्टर साहब के नाम चिट्ठी लिख दी।’

‘चिट्ठी में मेरे बारे में भी कुछ लिखा है? तुम्हें यक क्या मालूम होगा?’

‘हुजूर, अब मैं क्या जानूँ, मुदा इतना सब लोग कहते थे कि आपकी बड़ी तारीफ लिखी है।’

मदारीलाल की साँस और तेज हो गयी। आँखें से आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदे गिर पड़ी। आँखें पोंछते हुए बोले—वे ओर मैं एक साथ के पढ़े थे, नन्दू! आठ-दस साल साथ रहा। साथ उठते-बैठते, साथ खाते, साथ खेलते। बस, इसी तरह रहते थे, जैसे दो सगे भाई रहते हों। खत में मेरी क्या तारीफ लिखी है? मगर तुम्हें क्या मालूम होगा?

‘आप तो चल ही रहे हैं, देख लीजिएगा।’

‘कफन का इन्ताजाम हो गया है?’

‘नहीं हुजूर, काह न कि अभी लहास की डाक्टरी होगी। मुदा अब जल्दी चलिए। ऐसा न हो, कोई दूसरा आदमी बुलाने आता हो।’

‘हमारे दफ्तर के सब लोग आ गये होंगे?’

‘जी हाँ; इस मुहल्लेवाले तो सभी थे।’

‘मदारीलाल जब सुबोधचन्द्र के घर पहुँचे, तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि सब लोग उनकी तरफ संदेह की आँखें से देख रहे हैं। पुलिस इंस्पेक्टर ने तुरन्त उन्हें बुला कर कहा—आप भी अपना बयान लिखा दें और सबके बयान तो लिख चुका हूँ।’

मदारीलाल ने ऐसी सावधानी से अपना बयान लिखाया कि पुलिस के अफसर भी दंग रह गये। उन्हें मदारीलाल पर शुबहा होता था, पर इस बयान ने उसका अंकुर भी निकाल डाला।

इसी वक्त सुबोध के दोनों बालक रोते हुए मदारीलाल के पास आये और कहा—चलिए, आपको अम्माँ बुलाती हैं। दोनों मदारीलाल से परिचित थे। मदारीलाल यहाँ तो रोज ही आते थे; पर घर में कभी नहीं गये थे। सुबोध की स्त्री उनसे पर्दा करती थी। यह बुलावा सुन कर उनका दिल धड़क उठा—कहीं इसका मुझ पर शुबहा न हो। कहीं सुबोध ने मेरे विषय में कोई संदेह न प्रकट किया हो। कुछ झिझकते और कुछ डरते हुए भीतर गए, तब विधवा का करुण-विलाप सुन कर कलेजा काँप उठा। इन्हें देखते ही उस अबला के आँसुओं का कोई दूसरा स्रोत खुल गया और लड़की तो दौड़ कर इनके पैरों से लिपट गई। दोनों लड़को ने भी घेर लिया। मदारीलाल को उन तीनों की आँखें में ऐसी अथाह वेदना, ऐसी विदारक याचना भरी हुई मालूम हुई कि वे उनकी ओर देख न सके। उनकी आत्मा अन्हें धिक्कारने लगी। जिन बेचारों को उन पर इतना विश्वास, इतना भरोसा, इतनी अत्मीयता, इतना स्नेह था, उन्हीं की गर्दन पर उन्होंने छुरी फेरी! उन्हीं के हाथों यह भरा-पूरा परिवार धूल में मिल गया! इन असाहायों का अब क्या हाल होगा? लड़की का विवाह करना है; कौन करेगा? बच्चों के लालन-पालन का भार कौन उठाएगा? मदारीलाल को इतनी आत्मग्लानि हुई कि उनके मुँह से तसल्ली का एक शब्द भी न निकला। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मेरे मुख में कालिख पुती है, मेरा कद कुछ छोटा हो गया है। उन्होंने जिस वक्त नोट उड़ये थे, उन्हें गुमान भी न था कि उसका यह फल होगा। वे केवल सुबोध को जिच करना चाहते थे उनका सर्वनाश करने की इच्छा न थी।

शोकातुर विधवा ने सिसकते हुए कहा। भैया जी, हम लोगों को वे मझधार में छोड़ गए। अगर मुझे मालूम होता कि मन में यह बात ठान चुके हैं तो अपने पास जो कुछ था; वह सब उनके चरणों पर रख देती। मुझसे तो वे यही कहते रहे कि कोई न कोई उपाय हो जायगा। आप ही के मार्फत वे कोई महाजन ठीक करना चाहते थे। आपके ऊपर उन्हें कितना भरोसा था कि कह नहीं सकती।

मदारीलाल को ऐसा मालूम हुआ कि कोई उनके हृदय पर नशतर चला रहा है। उन्हें अपने कंठ में कोई चीज फँसी हुई जान पड़ती थी।

रामेश्वरी ने फिर कहा—रात सोये, तब खूब हँस रहे थे। रोज की तरह दूध पिया, बच्चों को प्यार किया, थोड़ीदेर हारमोनियम चाया और तब कुल्ला करके लेटे। कोई ऐसी बात न थी जिससे लेशमात्र भी संदेह होता। मुझे चिन्तित देखकर बोले—तुम व्यर्थ घबराती हों बाबू मदारीलाल से मेरी पुरानी दोस्ती है। आखिर वह किस दिन काम आयेगी? मेरे साथ के खेले हुए हैं। इन नगर में उनका सबसे परिचय है। रूपयों का प्रबन्ध आसानी से हो जायगा। फिर न जाने कब मन में यह बात समायी। मैं नसीबों-जली ऐसी सोयी कि रात को मिनकी तक नहीं। क्या जानती थी कि वे अपनी जान पर खेले जाएँगे?

मदारीलाल को सारा विश्व आँखों में तैरता हुआ मालूम हुआ। उन्होंने बहुत जब्त किया; मगर आँसुओं के प्रभाव को न रोक सके।

रामेश्वरी ने आँखे पोंछ कर फिर कहा—मैया जी, जो कुछ होना था, वह तो हो चुका; लेकिन आप उस दुष्ट का पता जरूर लगाइए, जिसने हमारा सर्वनाश कर लिदया है। यह दफ्तर ही के किसी आदमी का काम है। वे तो देवता थे। मुझसे यही कहते रहे कि मेरा किसी पर संदेह नहीं है, पर है यह किसी दफ्तरवाले का ही काम। आप से केवल इतनी विनती करती हूँ कि उस पापी को बच कर न जाने दीजिएगा। पुलिसताले शायद कुछ रिश्वत लेकर उसे छोड़ दें। आपको देख कर उनका यह हौसला न होगा। अब हमारे सिर पर आपके सिवा कौन है। किससे अपना दुःख कहें? लाश की यह दुर्गति होनी भी लिखी थी।

मदारीलाल के मन में एक बार ऐसा उबाल उठा कि सब कुछ खोल दें। साफ कह दें, मैं ही वह दुष्ट, वह अधम, वह पामर हूँ। विधवा के पेरों पर गिर पड़े और कहें, वही छुरी इस हत्यारे की गर्दन पर फेर दो। पर जबान न खुली; इसी दशा में बैठे-बैठे उनके सिर में ऐसा चक्कर आया कि वे जमीन पर गिर पड़े।

5

तीसरे पहर लाश की परीक्षा समाप्त हुई। अर्थी जलाशय की ओर चली। सारा दफ्तर, सारे हुक्काम और हजारों आदमी साथ थे। दाह-संस्कार लड़को को करना चाहिए था पर लड़के नाबालिग थे। इसलिए विधवा चलने को तैयार हो रही थी कि मदारीलाल ने जाकर कहा—बहू जी, यह संस्कार मुझे करने दो। तुम क्रिया पर बैठ जाओगी, तो बच्चों को कौन सँभालेगा। सुबोध मेरे भाई थे। जिंदगी में उनके साथ कुछ सलूक न कर सका, अब जिंदगी के बाद मुझे दोस्ती का कुछ हक अदा कर लेने दो। आखिर मेरा भी तो उन पर कुछ हक था। रामेश्वरी ने रोकर कहा—आपको भगवान ने बड़ा उदार हृदय दिया है भैया जी, नहीं तो मरने पर कौन किसको पूछता है। दफ्तर के ओर लोग जो आधी-आधी रात तक हाथ बाँधे खड़े रहते थे झूठी बात पूछने न आये कि जरा ढाढ़स होता।

मदारीलाल ने दाह-संस्कार किया। तेरह दिन तक क्रिया पर बैठे रहे। तेरहवें दिन पिंडदान हुआ; ब्रह्मणों ने भोजन किया, भिखरियों को अन्न-दान दिया गया, मित्रों की दावत हुई, और यह सब कुछ मदारीलाल ने अपने खर्च से किया। रामेश्वरी ने बहुत कहा कि आपने जितना किया उतना ही बहुत है। अब मैं आपको और जेरबार नहीं करना चाहती। दोस्ती का हक इससे ज्यादा और कोई क्या अदा करेगा, मगर मदारीलाल ने एक न सुनी। सारे शहर में उनके यश की धूम मच गयी, मित्र हो तो ऐसा हो।

सोलहवें दिन विधवा ने मदारीलाल से कहा—भैया जी, आपने हमारे साथ जो उपकार और अनुग्रह किये हैं, उनसे हम मरते दम तक उऋण नहीं हो सकते। आपने हमारी पीठ पर हाथ न रखा होता, तो न-जाने हमारी क्या गति होती। कहीं रुख की भी छाँह तो नहीं थी। अब हमें घर जाने दीजिए। वहाँ देहात में खर्च भी कम होगा और कुछ खेती बारी का सिलसिला भी कर लूँगी। किसी न किसी तरह विपत्ति के दिन कट ही जायँगे। इसी तरह हमारे ऊपर दया रखिएगा।

मदारीलाल ने पूछा—घर पर कितनी जायदाद है?

रामेश्वरी—जायदाद क्या है, एक कच्चा मकान है और दर-बारह बीघे की काश्तकारी है। पक्का मकान बनवाना शुरू किया था; मगर रुपये पूरे न पड़े। अभी अधूरा पड़ा हुआ है। दस-बारह हजार खर्च हो गये और अभी छत पड़ने की नौबत नहीं आयी।

मदारीलाल—कुछ रुपये बैंक में जमा हैं, या बस खेती ही का सहारा है?

विधवा—जमा तो एक पाई भी नहीं हैं, भैया जी! उनके हाथ में रुपये रहने ही नहीं पाते थे। बस, वही खेती का सहारा है।

मदारी0—तो उन खेतों में इतनी पैदावार हो जायगी कि लगान भी अदा हो जाय और तुम लोगो की गुजर-बसर भी हो?

रामेश्वरी—और कर ही क्या सकते हैं, भैया जी! किसी न किसी तरह जिंदगी तो काटशनी ही है। बच्चे न होते तो मैं जहर खा लेती।

मदारी0—और अभी बेटा का विवाह भी तो करना है।

विधवा—उसके विवाह की अब कोई चिंता नहीं। किसानों में ऐसे बहुत से मिल जायेंगे, जो बिना कुछ लिये-दिये विवाह कर लेंगे।

मदारीलाल ने एक क्षण सोचकर कहा—अगर मैं कुछ सलाह दूँ, तो उसे मानेंगी आप?

रामेश्वरी—भैया जी, आपकी सलाह न मानूँगी तो किसकी सलाह मानूँगी और दूसरा है ही कौन?

मदारी0—तो आप अपने घर जाने के बदले मेरे घर चलिए। जैसे मेरे बाल-बच्चे रहेंगे, वैसे ही आप के भी रहेंगे। आपको कष्ट न होगा। ईश्वर ने चाहा तो कन्या का विवाह भी किसी अच्छे कुल में हो जायगा। विधवा की आँखें सजल हो गयीं। बोली—मगर भैया जी, सोचिए.....मदारीलाल ने बात काट कर कहा—मैं कुछ न सोचूँगा और न कोई उज्र सुनूँगा। क्या दो भाइयों के परिवार एक साथ नहीं रहते? सुबोध को मैं अपना भाई समझता था और हमेशा समझूँगा।

विधवा का कोई उज्र न सुना गया। मदारीलाल सबको अपने साथ ले गये और आज दस साल से उनका पालन कर रहे हैं। दोनों बच्चे कालेज में पढ़ते हैं और कन्या का एक प्रतिष्ठित कुल में विवाह हो गया है। मदारीलाल और उनकी स्त्री तन-मन से रामेश्वरी की सेवा करते हैं और उनके इशारों पर चलते हैं। मदारीलाल सेवा से अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

कप्तान साहब

जगत सिंह को स्कूल जान कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था। वह सैलानी, आवारा, घुमक्कड़ युवक था। कभी अमरूद के बागों की ओर निकल जाता और अमरूदों के साथ माली की गालियाँ बड़े शौक से खाता। कभी दरिया की सैर करता और मल्लाहों को डोंगियों में बैठकर उस पार के देहातों में निकल जाता। गालियाँ खाने में उसे मजा आता था। गालियाँ खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता। सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एकको को पीछे से पकड़ कर अपनी ओर खींचना, बूढ़ों की चाल की नकल करना, उसके मनोरंजन के विषय थे। आलसी काम तो नहीं करता; पर दुर्व्यसनों का दास होता है, और दुर्व्यसन धन के बिना पूरे नहीं होते। जगतसिंह को जब अवसर मिलता घर से रुपये उड़ा ले जात। नकद न मिले, तो बरतन और कपड़े उठा ले जाने में भी उसे संकोच न होता था। घर में शीशियाँ और बोटलें थीं, वह सब उसने एक-एक करके गुदड़ी बाजार पहुँचा दी। पुराने दिनों की कितनी चीजें घर में पड़ी थीं, उसके मारे एक भी न बची। इस कला में ऐसा दक्ष और निपुण था कि उसकी चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था। एक बार बाहर ही बाहर, केवल कार्निवॉल के सहारे अपने दो-मंजिला मकान की छत पर चढ़ गया और ऊपर ही से पीतल की एक बड़ी थाली लेकर उतर आया। घर वालों को आहट तक न मिली।

उसके पिता ठाकुर भक्तसिंह अपने कस्बे के डाकखाने के मुंशी थे। अफसरों ने उन्हें शहर का डाकखाना बड़ी दौड़-धूप करने पर दिया था; किन्तु भक्तसिंह जिन इरादों से यहाँ आये थे, उनमें से एक भी पूरा न हुआ। उलटी हानि यह हुई कि देहातों में जो भाजी-साग, उपले-ईधन मुफ्त मिल जाते थे, वे सब यहाँ बंद हो गये। यहाँ सबसे पुराना घराँव था न किसी को दबा सकते थे, न सता सकते थे। इस दुरवस्था में जगतसिंह की हथलपकियाँ बहुत अखरतीं। अन्होंने कितनी ही बार उसे बड़ी निर्दयता से पीटा। जगतसिंह भीमकाय होने पर भी चुपके में मार खा लिया करता था। अगर वह अपने पिता के हाथ पकड़ लेता, तो वह हल भी न सकते; पर जगतसिंह इतना सीनाजोर न था। हाँ, मार-पीट, घुड़की-धमकी किसी का भी उस पर असर न होता था।

जगतसिंह ज्यों ही घर में कदम रखता; चारों ओर से काँव-काँव मच जाती, माँ दुर-दुर करके दौड़ती, बहने गालियाँ देन लगती; मानो घर में कोई साँड़ घुस आया हो। घर ताले उसकी सूरत से जलते थे। इन

तिरस्कारों ने उसे निर्लज्ज बना दिया था। कष्टों के ज्ञान से वह निर्द्वन्द्व-सा हो गया था। जहाँ नींद आ जाती, वहीं पड़ रहता; जो कुछ मिल जात, वही खा लेता।

ज्यों-ज्यों घर वाले को उसकी चोर-कला के गुप्त साधनों का ज्ञान होता जाता था, वे उससे चौकन्ने होते जाते थे। यहाँ तक कि एक बार पूरे महीने-भर तक उसकी दाल न गली। चरस वाले के कई रुपये ऊपर चढ़ गये। गँजे वाले ने धुआँधार तकाजे करने शुरू किया। हलवाई कड़वी बातें सुनाने लगा। बेचारे जगत को निकलना मुश्किल हो गया। रात-दिन ताक-झाँक में रहता; पर घात न मिलत थी। आखिर एक दिन बिल्ली के भागों छीका टूटा। भक्तसिंह दोपहर को डाकखाने से चले, जो एक बीमा-रजिस्ट्री जेब में डाल ली। कौन जाने कोई हरकारा या डाकिया शरारत कर जाय; किंतु घर आये तो लिफाफे को अचकन की जेब से निकालने की सुधि न रही। जगतसिंह तो ताक लगाये हुए था ही। पैसे के लोभ से जेब टटोली, तो लिफाफा मिल गया। उस पर कई आने के टिकट लगे थे। वह कई बार टिकट चुरा कर आधे दामों पर बेच चुका था। चट लिफाफा उड़ा दिया। यदि उसे मालूम होता कि उसमें नोट हैं, तो कदाचित वह न छूता; लेकिन जब उसने लिफाफा फाड़ डाला और उसमें से नोट निक पड़े तो वह बड़े संकट में पड़ गया। वह फटा हुआ लिफाफा गला-फाड़ कर उसके दुष्कृत्य को धिक्कारने लगा। उसकी दशा उस शिकारी की-सी हो गयी, जो चिड़ियों का शिकार करने जाय और अनजान में किसी आदमी पर निशाना मार दे। उसके मन में पश्चाताप था, लज्जा थी, दुःख था, पर उसे भूल का दंड सहने की शक्ति न थी। उसने नोट लिफाफे में रख दिये और बाहर चला गया।

गरमी के दिन थे। दोपहर को सारा घर सो रहा था; पर जगत की आँखें में नींद न थी। आज उसकी बुरी तरह कुंदी होगी—इसमें संदेह न था। उसका घर पर रहना ठीक नहीं, दस-पाँच दिन के लिए उसे कहीं खिसक जाना चाहिए। तब तक लोगों का क्रोध शांत हो जाता। लेकिन कहीं दूर गये बिना काम न चलेगा। बस्ती में वह क्रोध दिन तक अज्ञातवास नहीं कर सकता। कोई न कोई जरूर ही उसका पता देगा और वह पकड़ लिया जायगा। दूर जाने के लिए कुछ न कुछ खर्च तो पास होना ही चाहिए। क्यों न वह लिफाफे में से एक नोट निकाल ले? यह तो मालूम ही हो जायगा कि उसी ने लिफाफा फाड़ा है, फिर एक नोट निकल लेने में क्या हानि है? दादा के पास रुपये तो हे ही, झक मार कर दे देंगे। यह सोचकर उसने दस रुपये का एक नोट उड़ा लिया; मगर उसी वक्त उसके मन में एक नयी कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। अगर ये सब रुपये लेकर किसी दूसरे शहर में कोई दूकान खोल ले, तो बड़ा मजा हो। फिर एक-एक पैसे के लिए उसे क्यों किसी की चोरी करनी पड़े! कुछ दिनों में वह बहुत-सा रुपया जमा करके घर आयेगा; तो लोग कितने चकित हो जायेंगे!

उसने लिफाफे को फिर निकाला। उसमें कुल दो सौ रुपए के नोट थे। दो सौ में दूध की दूकान खूब चल सकती है। आखिर मुरारी की दूकान में दो-चार कढ़ाव और दो-चार पीतल के थालों के सिवा और क्या है? लेकिन कितने ठाट से रहता है! रुपयों की चरस उड़ा देता है। एक-एक ढाँव पर दस-दस रुपए रख दतो है, नफा न होता, तो वह ठाट कहाँ से निभाता? इस आनन्द-कल्पना में वह इतना मग्न हुआ कि उसका मन उसके काबू से बाहर हो गया, जैसे प्रवाह में किसी के पाँव उखड़ जायें और वह लहरों में बह जाय।

उसी दिन शाम को वह बम्बई चल दिया। दूसरे ही दिन मुंशी भक्तसिंह पर गबन का मुकदमा दायर हो गया।

2

बम्बई के किले के मैदान में बेंड़ बज रहा था और राजपूत रेजिमेंट के सजीले सुंदर जवान कवायद कर रहे थे, जिस प्रकार हवा बादलों को नए-नए रूप में बनाती और बिगाड़ती है, उसी भाँति सेना नायक सैनिकों को नए-नए रूप में बनाती और बिगाड़ती है, उसी भाँति सेना नायक सैनिकों को नए-नए रूप में बना बिगाड़ रहा था।

जब कवायद खतम हो गयी, तो एक छरहरे डील का युवक नायक के सामने आकर खड़ा हो गया। नायक ने पूछा—क्या नाम है? सैनिक ने फौजी सलाम करके कहा—जगतसिंह?

‘क्या चाहते हो।’

‘फौज में भरती कर लीजिए।’

‘मरने से तो नहीं डरते?’

‘बिल्कुल नहीं—राजपूत हूँ।’

‘बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी।’

‘इसका भी डर नहीं।’

‘अदन जाना पड़ेगा।’

‘खुशी से जाऊँगा।’

कप्तान ने देखा, बला का हाजिर-जवाब, मनचला, हिम्मत का धनी जवान है, तुरंत फौज में भरती कर लिया। तीसरे दिन रेजिमेंट अदन को रवाना हुआ। मगर ज्यों-ज्यों जहाज आगे चलता था, जगत का दिल पीछे रह जाता था। जब तक जमीन का किनारा नजर आता रहा, वह जहाज के डेक पर खड़ा अनुरक्त नेत्रों से उसे देखता रहा। जब वह भूमि-तट जल में विलीन हो गया तो उसने एक ठंडी साँस ली और मुँह ढाँप कर रोने लगा। आज जीवन में पहली बार उसे प्रियजानों की याद आयी। वह छोटा-सा कस्बा, वह गाँजे की दूकान, वह सैर-सपाटे, वह सुहृद-मित्रों के जमघट आँखों में फिरने लगे। कौन जाने, फिर कभी उनसे भेंट होगी या नहीं। एक बार वह इतना बेचैन हुआ कि जी में आय, पानी में कूद पड़े।

3

जगतसिंह को अदन में रहते तीन महीने गुजर गए। भाँति-भाँति की नवीनताओं ने कई दिन तक उसे मुग्ध किये रखा; लेकिन पुराने संस्कार फिर जाग्रत होने लगे। अब कभी-कभी उसे स्नेहमयी माता की याद आने लगी, जो पिता के क्रोध, बहनों के धिक्कार और स्वजनों के तिरस्कार में भी उसकी रक्षा करती थी। उसे वह दिन याद आया, जब एक बार वह बीमार पड़ा था। उसके बचने की कोई आशा न थी, पर न तो पिता को उसकी कुछ चिन्ता थी, न बहनों को। केवल माता थी, जो रात की रात उसके सिरहाने बैठी अपनी मधुर, स्नेहमयी बातों से उसकी पीड़ा शांत करती रही थी। उन दिनों कितनी बार उसने उस देवी को नीव रात्रि में रोते देखा था। वह स्वयं रोगों से जीर्ण हो रही थी; लेकिन उसकी सेवा-शुश्रूषा में वह अपनी व्यथा को ऐसी भूल गयी थी, मानो उसे कोई कष्ट ही नहीं। क्या उसे माता के दर्शन फिर होंगे? वह इसी क्षोभ और नेराश्य में समुद्र-तट पर चला जाता और घण्टों अनंत जल-प्रवाह को देखा करता। कई दिनों से उसे घर पर एक पत्र भेजने की इच्छा हो रही थी, किंतु लज्जा और ग्लानिक कके कारण वह टालता जाता था। आखिर एक दिन उससे न रहा गया। उसने पत्र लिखा और अपने अपराधों के लिए क्षमा माँग। पत्र आदि से अन्त तक भक्ति से भरा हुआ था। अंत में उसने इन शब्दों में अपनी माता को आश्वासन दिया था—माता जी, मैंने बड़े-बड़े उत्पात किये हैं, आप लेग मुझसे तंग आ गयी थी, मैं उन सारी भूलों के लिए सच्चे हृदय से लज्जित हूँ और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जीता रहा, तो कुछ न कुछ करके दिखाऊँगा। तब कदाचित आपको मुझे अपना पुत्र कहने में संकोच न होगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूँ।’

यह पत्र लिखकर उसने डाकखाने में छोड़ा और उसी दिन से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा; किंतु एक महीना गुजर गया और कोई जवाब न आया। आसका जी घबड़ाने लगा। जवाब क्यों नहीं आता—कहीं माता जी बीमार तो नहीं हैं? शायद दादा ने क्रोध-वश जवाब न लिखा होगा? कोई और विपत्ति तो नहीं आ पड़ी? कैम्प में एक वृक्ष के नीचे कुछ सिपाहियों ने शालिग्राम की एक मूर्ति रख छोड़ी थी। कुछ श्रद्धालू सैनिक रोज उस प्रतिमा पर जल चढ़ाया करते थे। जगतसिंह उनकी हँसी उड़ाया करता; पर आप वह विक्षिप्तों की भाँति प्रतिमा के सम्मुख जाकर बड़ी देर तक मस्तक झुकाये बैठा रहा। वह इसी ध्यानावस्था में बैठा था कि किसी ने उसका नाम लेकर पुकार, यह दफ्तर का चपरासी था और उसके नाम की चिट्ठी लेकर आया था। जगतसिंह ने पत्र हाथ में लिया, तो उसकी सारी देह काँप उठी। ईश्वर की स्तुति करके उसने लिफाफा खोला और पत्र पढ़ा। लिखा था—‘तुम्हारे दादा को गबन के अभियोग में पाँच वर्ष की सजा हो गई। तुम्हारी माता इस शोक में मरणासन्न है। छुट्टी मिले, तो घर चले आओ।’

जगतसिंह ने उसी वक्त कप्तान के पास जाकर कह —‘हुजूर, मेरी माँ बीमार है, मुझे छुट्टी दे दीजिए।’

कप्तान ने कठोर आँखों से देखकर कहा—अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।

‘तो मेरा इस्तीफा ले लीजिए।’

‘अभी इस्तीफा नहीं लिया जा सकता।’

‘मैं अब एक क्षण भी नहीं रह सकता।’

‘रहना पड़ेगा। तुम लोगों को बहुत जल्द लाभ पर जाना पड़ेगा।’

‘लड़ाई छिड़ गयी! आह, तब मैं घर नहीं जाऊँगा? हम लोग कब तक यहाँ से जायेंगे?’

चार वर्ष बीत गए। कैप्टन जगतसिंह का-सा योद्धा उस रेजीमेंट में नहीं हैं। कठिन अवस्थाओं में उसका साहस और भी उत्तेजित हो जाता है। जिस महिम में सबकी हिम्मत जवाब दे जाती है, उसे सर करना उसी का काम है। हल्ले और धावे में वह सदैव सबसे आगे रहता है, उसकी तयोरियों पर कभी मैल नहीं आता; उसके साथ ही वह इतना विनम्र, इतना गंभीर, इतना प्रसन्नचित है कि सारे अफसर ओर मातहत उसकी बड़ाई करते हैं, उसका पुनर्जीवन-सा हो गया। उस पर अफसरों को इतना विश्वास है कि अब वे प्रत्येक विषय में उससे परामर्श करते हैं। जिससे पूछिए, वही वीर जगतसिंह की विरुदावली सुना देगा—कैसे उसने जर्मनों की मेगजीन में आग लगायी, कैसे अपने कप्तान को मशीनगनों की मार से निकाला, कैसे अपने एक मातहत सिपाही को कंधे पर लेकर निल आया। ऐसा जान पड़ता है, उसे अपने प्राणों का मोह नहीं, मानो वह काल को खोजता फिरता हो!

लेकिन नित्य रात्रि के समय, जब जगतसिंह को अवकाश मिलता है, वह अपनी छोलदारी में अकेले बैठकर घरवालों की याद कर लिया करता है—दो-चार आँसू की बँदे अवश्य गिरा देता है। वह प्रतिमास अपने वेतन का बड़ा भाग घर भेज देता है, और ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता जब कि वह माता को पत्र न लिखता हो। सबसे बड़ी चिंता उसे अपने पिता की है, जो आज उसी के दुष्कर्मों के कारण कारावास की यातना झेल रहे हैं। हाय! वह कौन दिन होगा, जब कि वह उनके चरणों पर सिर रखकर अपना अपराध क्षमा करायेगा, और वह उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देंगे?

सवा चार वर्ष बीत गए। संध्या का समय है। नैनी जेल के द्वार पर भीड़ लगी हुई है। कितने ही कैदियों की मियाद पूरी हो गयी है। उन्हें लिवा जाने के लिए उनके घरवाले आये हुए हैं; किन्तु बूढ़ा भक्तसिंह अपनी अँधेरी कोठरी में सिर झुकाये उदास बैठा हुआ है। उसकी कमर झुक कर कमान हो गयी है। देह अस्थि-पंजर-मात्र रह गयी है। ऐसा जान पड़ता है, किसी चतुर शिल्पी ने एक अकाल-पीड़ित मनुष्य की मूर्ति बनाकर रख दी है। उसकी भी मीयाद पूरी हो गयी है; लेकिन उसके घर से कोई नहीं आया। आये कौन? आने वाला था ही कौन?

एक बूढ़ा किन्तु हष्ट-पुष्ट कैदी ने आकर उसक कंधा हिलाया और बोला—कहो भगत, कोई घर से आया?

भक्तसिंह ने कंपित कंठ-स्वर से कहा—घर पर है ही कौन?

‘घर तो चलोगे ही?’

‘मेरे घर कहाँ है?’

‘तो क्या यही पड़े रहेंगे?’

‘अगर ये लोग निकाल न देंगे, तो यहीं पड़ा रहूँगा।’

आज चार साल के बाद भगतसिंह को अपने प्रताड़ित, निर्वासित पुत्र की याद आ रही थी। जिसके कारण जीतन का सर्वनाश हो गया; आबरू मिट गयी; घर बरबाद हो गया, उसकी स्मृति भी असह्य थी; किन्तु आज नैराश्य ओर दुःख के अथाह सागर में डूबते हुए उन्होंने उसी तिनके का सहार लिया न-जाने उस बेचारे की क्या दखशा हुई। लाख बुरा है, तो भी अपना लड़का है। खानदान की निशानी तो है। मरूँगा तो चार आँसू तो बहायेगा; दो चिल्लू पानी तो देगा। हाय! मैंने उसके साथ कभी प्रेम का व्यवहार नहीं किया जरा भी शरारत करता, तो यमदूत की भाँति उसकी गर्दन पर सवार हो जाता। एक बार रसोई में बिना पैर धोये चले जाने के दंड में मेने उसे उलटा लटका दिया था। कितनी बार केवल जोर से बोलने पर मैंने उस वमाचे लगाये थे। पुत्र-सा रत्न पाकर मैंने उसका आदर न किया उसी का दंड है। जहाँ प्रेम का बन्धन शिथिल हो, वहाँ परिवार की रक्षा कैसे हो सकती है?

सबेरा हुआ। आशा की सूर्य निकला। आज उसकी रश्मियाँ कितनी कोमल और मधुर थीं, वायु कितनी सुखद, आकाश कितना मनोहर, वृक्ष कितने हरे-भरे, पक्षियों का कलरव कितना मीठा! सारी प्रकृति आश के रंग में रंगी हुई थी; पर भक्तसिंह के लिए चारों ओर धरे अंधकार था।

जेल का अफसर आया। कैदी एक पंक्ति में खड़े हुए। अफसर एक-एक का नाम लेकर रिहाई का परवाना देने लगा। कैदियों के चेहरे आशा से प्रफुलित थे। जिसका नाम आता, वह खुश-खुश अफसर के पास जात, परवाना लेता, झुककर सलाम करता और तब अपने विपत्तिकाल के संगियों से गले मिलकर बाहर निकल जाता। उसके घरवाले दौड़कर उससे लिपट जाते। कोई पैसे लुटा रहा था, कहीं मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं, कहीं जेल के कर्मचारियों को इनाम दिया जा रहा था। आज नरक के पुतले विनम्रता के देवता बने हुए थे।

अन्त में भक्तसिंह का नाम आया। वह सिर झुकाये आहिस्ता-आहिस्ता जेलर के पास गये और उदासीन भाव से परवाना लेकर जेल के द्वार की ओर चले, मानो सामने कोई समुद्र लहरें मार रहा है। द्वार से बाहर निकल कर वह जमीन पर बैठ गये। कहाँ जायँ?

सहसा उन्होंने एक सैनिक अफसर को घोड़े पर सवार, जेल की ओर आते देखा। उसकी देह पर खाकी वरदी थी, सिर पर कारचोबी साफा। अजीब शान से घोड़े पर बैठा हुआ था। उसके पीछे-पीछे एक फिटन आ रही थी। जेल के सिपाहियों ने अफसर को देखते ही बन्दूकें सँभाली और लाइन में खड़े हाकर सलाम किया।

भक्तसिंह ने मन में कहा—एक भाग्यवान वह है, जिसके लिए फिटन आ रही है; ओर एक अभाग्यवान मैं हूँ, जिसका कहीं ठिकाना नहीं।

फौजी अफसर ने इधर-उधर देखा और घोड़े से उतर कर सीधे भक्तसिंह के सामने आकर खड़ा हो गया।

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंककर उठ खड़े हुए और बोले—अरे! बेटा जगतसिंह! जगतसिंह रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा।

दफ्तर का बाबू एक बेजबान जीव है। मजदूरों को आँखें दिखाओ, तो वह तयोरियाँ बदल कर खड़ा हो जायकाह। कुली को एक डॉट बताओं, तो सिर से बोझ फेंक कर अपनी राह लेगा। किसी भिखारी को दुत्कारों, तो वह तुम्हारी ओर गुस्से की निगहा से देख कर चला जायेगा। यहाँ तक कि गधा भी कभी-कभी तकलीफ पाकर दो लतियाँ झड़ने लगता है; मगर बेचारे दफ्तर के बाबू को आप चाहे आँखें दिखायें, डॉट बतायें, दुत्कारें या ठोकरें मारें, उसका चेमाथे पर बल न आयेगा। उसे अपने विकारों पर जो अधिपत्य होता है, वह शायद किसी संयमी साधु में भी न हो। संतोष का पुतला, सब्र की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी, गरज उसमें तमाम मानवी अच्छाइयाँ मौजूद होती हैं। खंडहर के भी एक दिन भग्य जाते हैं दीवाली के दिन उस पर भी रोशनी होती है, बरसात में उस पर हरियाली छाती है, प्रकृति की दिलचस्पियों में उसका भी हिस्सा है। मगर इस गरीब बाबू के नसीब कभी नहीं जागते। इसकी अँधेरी तकदीर में रोशनी का जलावा कभी नहीं दिखाई देता। इसके पीले चेहरे पर कभी मुस्कराहट की रोशनी नजर नहीं आती। इसके लिए सूखा सावन है, कभी हरा भादों नहीं। लाला फतहचंद ऐसे ही एक बेजबान जीव थे।

कहते हैं, मनुष्य पर उसके नाम का भी असर पड़ता है। फतहचंद की दशा में यह बात यथार्थ सिद्ध न हो सकी। यदि उन्हें 'हारचंद' कहा जाय तो कदाचित्त यह अत्युक्ति न होगी। दफ्तर में हार, जिंदगी में हार, मित्रों में हार, जीतन में उनके लिए चारों ओर निराशाएँ ही थीं। लड़का एक भी नहीं, लड़कियाँ ती; भाई एक भी नहीं, भौजाइयाँ दो, गाँठ में कौड़ी नहीं, मगर दिल में आया ओर मुरव्वत, सच्चा मित्र एक भी नहीं—जिससे मित्रता हुई, उसने धोखा दिया, इस पर तंदुरस्ती भी अच्छी नहीं—बत्तीस साल की अवस्था में बाल खिचड़ी हो गये थे। आँखों में ज्योति नहीं, हाजमा चौपट, चेहरा पीला, गाल चिपके, कमर झुकी हुई, न दिल में हिम्मत, न कलेजे में ताकत। नौ बजे दफ्तर जाते और छः बजे शाम को लौट कर घर आते। फिर घर से बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती। दुनिया में क्या होता है; इसकी उन्हें बिल्कुल खबर न थी। उनकी दुनिया लोक-परलोक जो कुछ था, दफ्तर था। नौकरी की खैर मनाते और जिंदगी के दिन पूरे करते थे। न धर्म से वास्ता था, न दीन से नाता। न कोई मनोरंजन था, न खेल। ताश खेले हुए भी शायद एक मुद्दत गुजर गयी थी।

2

जाड़ो के दिन थे। आकाश पर कुछ-कुछ बादल थे। फतहचंद साढ़े पाँच बजे दफ्तर से लौटें तो चिराग जल गये थे। दफ्तर से आकर वह किसी से कुछ न बोलते; चुपके से चारपाई पर लेट जाते और पंद्रह-बीस मिनट तक बिना हिले-डुले पड़े रहते तब कहीं जाकर उनके मुँह से आवाज निकलती। आज भी प्रतिदिन की तरह वे चुपचाप पड़े थे कि एक ही मिनट में बाहर से किसी ने पुकारा। छोटी लड़की ने जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि दफ्तर का चपरासी है। शारदा पति के मुँह-हाथ धाने के लिए लोटा-गिलास माँज रही थी। बोली—उससे कह दे, क्या काम है। अभी तो दफ्तर से आये ही हैं, और बुलावा आ गया है?

चपरासी ने कहा है, अभी फिर बुला लाओ। कोई बड़ा जरूरी काम है।

फतहचंद की खामोशी टूट गयी। उन्होंने सिर उठा कर पूछा—क्या बात है?

शारदा—कोई नहीं दफ्तर का चपरासी है।

फतहचंद ने सहम कर कहा—दफ्तर का चपरासी! क्या साहब ने बुलाया है?

शारदा—हाँ, कहता है, साहब बुला रहे हैं। यहाँ कैसा साहब है तुम्हारा जब देखा, बुलाया करता है? सबेरे के गए-गए अभी मकान लौटे हो, फिर भी बुलाया आ गया!

फतहचंद न सँभल कर कहा—जरा सुन लूँ, किसलिए बुलाया है। मैंने सब काम खतम कर दिया था, अभी आता हूँ।

शारदा—जरा जलपान तो करते जाओ, चपरासी से बातें करने लगोगे, तो तुम्हें अन्दर आने की याद भी न रहेंगी।

यह कह कर वह एक प्याली में थोड़ी-सी दालमोट ओर सेव लायी। फतहचंद उठ कर खड़े हो गये, किन्तु खाने की चीजें देख करह चारपाई पर बैठ गये और प्याली की ओर चाव से देख कर चारपाई पर बैठ गये और प्याली की ओर चाव से देख कर डरते हुए बोले—लड़कियों को दे दिया है न?

शारदा ने आँखें चढ़ाकर कहा—हाँ-हाँ; दे दिया है, तुम तो खाओ।

इतने में छोटी में चपरासी ने फिर पुकार—बाबू जी, हमें बड़ी देर हो रही है।

शारदा—कह क्यों नहीं दते कि इस वक्त न आयेंगे

फतहचन्द ने जल्दी-जल्दी दालमोट की दो-तीन फंक्कियाँ लगायी, एक गिलास पानी पिया और बाहर की तरफ दौड़े। शारदा पान बनाती ही रह गयी।

चपरासी ने कहा—बाबू जी! आपने बड़ी देर कर दी। अब जरा लपक ेचलिए, नहीं तो जाते ही डॉट बतायेगा।

फतहचन्द ने दो कदम दौड़ कर कहा—चलेंगे तो भाई आदमी ही की तरह चाहे डॉट लगायें या दाँत दिखायें। हमसे दौड़ा नहीं जाता। बँगले ही पर है न?

चपरासी—भला, वह दफ्तर क्यों आने लगा। बादशाह है कि दिल्लगी?

चपरासी तेज चलने का आदी था। बेचारे बाबू फतहचन्द धीरे-धीरे जाते थे। थोड़ी ही दूर चल कर हॉफ उठे। मगर मर्द तो थे ही, यह कैसे कहते कि भाई जरा और धीरे चलो। हिम्मत करके कदम उठाते जाते थे यहाँ तक कि जाँघों में दर्द होने लगा और आधा रास्ता खतम होते-होते पैरों ने उठने से इनकार कर दिया। सारा

शरीर पसीने से तर हो गया। सिर में चक्कर आ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं।

चपरासी ने ललकारा—जरा कदम बढ़ाय चलो, बाबू!

फतहचन्द बड़ी मुश्किल से बोले—तुम जाओ, मैं आता हूँ।

वे सड़क के किनारे पटरी पर बैठ गये और सिर को दोनों हाथों से थाम कर दम मारने लगे चपरासी ने इनकी यह दशा देखी, तो आगे बढ़ा। फतहचन्द डरे कि यह शैतान जाकर न-जाने साहब से क्या कह दे, तो गजब ही हो जायगा। जमीन पर हाथ टेक कर उठे और फिर चलें मगर कमजोरी से शरीर हॉफ रहा था। इस समय कोड़ू बच्चा भी उन्हें जमीन पर गिरा सकता था। बेचारे किसी तरह गिरते-पड़ते साहब बँगले पर पहुँचे। साहब बँगले पर टहल रहे थे। बार-बार फाटक की तरफ देखते थे और किसी को अतो न देख कर मन में झल्लाते थे।

चपरासी को देखते ही आँखें निकाल कर बोल—इतनी देर कहाँ था?

चपरासी ने बरामदे की सीढ़ी पर खड़े-खड़े कहा—हुजूर! जब वह आयें तब तो; मैं दौड़ा चला आ रहा हूँ।

साहब ने पेर पटक कर कहा—बाबू क्या बोला?

चपरासी—आ रहे हैं हुजूर, घंटा-भर में तो घर में से निकले।

इतने में फतहचन्द अहाते के तार के उंदर से निकल कर वहाँ आ पहुँचे और साहब को सिर झुक कर सलाम किया।

साहब ने कड़कर कहा—अब तक कहाँ था?

फतहचन्द ने साहब का तमतमाया चेहरा देखा, तो उनका खून सूख गया। बोले—हुजूर, अभी-अभी तो दफ्तर से गया हूँ, ज्यों ही चपरासी ने आवाज दी, हाजिर हुआ।

साहब—झूठ बोलता है, झूठ बोलता है, हम घंटे-भर से खड़ा है।

फतहचन्द—हुजूर, मैं झूठ नहीं बोलता। आने में जितनी देर हो गयी होस, मगर घर से चलेन में मुझे बिल्कुल देर नहीं हुई।

साहब ने हाथ की छड़ी घुमाकर कहा—चुप रह सूअर, हम घण्टा-भर से खड़ा है, अपना कान पकड़ो!

फतहचन्द ने खून की घँट पीकर कहा—हुजूर मुझे दस साल काम करते हो गए, कभी.....।

साहब—चुप रह सूअर, हम कहता है कि अपना कान पकड़ो!

फतहचन्द—जब मैंने कोई कुसूर किया हो?

साहब—चपरासी! इस सूअर का कान पकड़ो।

चपरासी ने दबी जबान से कहा—हुजूर, यह भी मेरे अफसर हैं, मैं इनका कान कैसे पकड़ूँ?

साहब—हम कहता है, इसका कान पकड़ो, नहीं हम तुमको हंटरों से मारेगा।

चपरासी—हुजूर, मे याहँ नौकरी करने आया हूँ, मार खाने नहीं। मैं भी इज्जतदार आदमी हूँ। हुजूर, अपनी नौकरी ले लें! आप जो हुक्म दें, वह बजा लाने को हाजिर हूँ, लेकिन किसी की इज्जत नहीं बिगाड़ सकता। नौकरी तो चार दिन की है। चार दिन के लिए क्यों जमाने-भर से बिगाड़ करें।

साहब अब क्रोध को न बर्दाश्त करसके। हंटर लेकर दौड़े। चपरासी ने देखा, यहाँ खड़ रहने में खैरियत नहीं है, तो भाग खड़ा हुआ। फतहचन्द अभी तक चुपचाप खड़े थे। चपरासी को न पाकर उनके पास आया और उनके दोनों कान पकड़कर हिला दिया। बोला—तुम सूअर गुस्ताखी करता है? जाकर आफिस से फाइल लाओ।

फतहचन्द ने कान हिलाते हुए कहा—कौन-सा फाइल? तुम बहरा हे सुनता नहीं? हम फाइल माँगता है।

फतहचन्द ने किसी तरह दिलेर होकर कहा—आप कौन-सा फाइल माँगते हैं?

साहब—वही फाइल जो हम माँगता है। वही फाइल लाओ। अभी लाओं वेचारे फतहचन्द को अब ओर कुछ पूछने की हिम्मत न हुई साहब बहादुर एक तो यों ही तेज-मिजाज थे, इस पर हुक्मत का घमंड ओर सबसे बढ़कर शराब का नशा। हंटर लेकर पिल पड़ते, तो बेचार क्या कर लेते? चुपके से दफ्तर की तरफ चल पड़े।

साहब ने कहा—दौड़ कर जाओ—दौड़ो।

फतहचन्द ने कहा—हुजूर, मुझसे दौड़ा नहीं जाता।

साहब—ओ, तुम बहुत सुस्त हो गया है। हम तुमको दौड़ना सिखायेगा। दौड़ो (पीछे से धक्का देकर) तुम अब भी नहीं दौड़ोगे?

यह कह कर साहब हंटर लेने चले। फतहचन्द दफ्तर के बाबू होने पर भी मनुष्य ही थे। यदि वह बलवान होते, तो उस बदमाश का खून पी जाते। अगर उनके पास कोई हथियार होता, तो उस पर परूर चला देते; लेकिन उस हालत में तो मार खाना ही उनकी तकदीर में लिखा था। वे बेतहाश भागे और फाटक से बाहर निकल कर सड़क पर आ गये।

3

फतहचन्द दफ्तर न गये। जाकर करते ही क्या? साहब ने फाइल का नाम तक न बताया। शायद नशा में भूल गया। धीरे-धीरे घर की ओर चले, मगर इस बेइज्जती ने पैरों में बेड़िया-सी डाल दी थीं। माना कि वह शारीरिक बल में साहब से कम थे, उनके हाथ में कोई चीज भी न थी, लेकिन क्या वह उसकी बातों का जवाब न दे सकते थे? उनके पैरों में जूते तो थे। क्या वह जूते से काम न ले सकते थे? फिर क्यों उन्होंने इतनी जिल्लत बर्दाश्त की?

मगर इलाज की क्या था? यदि वह क्रोध में उन्हें गोली मार देता, तो उसका क्या बिगड़ता। शायद एक-दो महीने की सादी कैद हो जाती। सम्भव है, दो-चार सौ रुपये जुर्माना हो जात। मगर इनका परिवार तो मिट्टी में मिल जाता। संसार में कौन था, जो इनके स्त्री-बच्चों की खबर लेता। वह किसके दरवाजे हाथ फैलाते? यदि उसके पास इतने रुपये होते, जिसे उनके कुटुम्ब का पालन हो जाता, तो वह आज इतनी जिल्लत न सहते। या तो मर ही जाते, या उस शैतान को कुछ सबक ही दे देते। अपनी जान का उन्हें डर न था। जिन्दगी में ऐसा कौन सुख था, जिसके लिए वह इस तरह डरते। ख्याल था सिर्फ परिवार के बरबाद हो जाने का।

आज फतहचन्द को अपनी शारीरिक कमजोरी पर जितना दुःख हुआ, उतना और कभी न हुआ था। अगर उन्होंने शुरू ही से तन्दुरुस्ती का ख्याल रखा होता, कुछ कसरत करते रहते, लकड़ी चलाना जानते होते, तो क्या इस शैतान की इतनी हिम्मत होती कि वह उनका कान पकड़ता। उसकी आँखें निकला लेते। कम से कम दन्हें घर से एक छुरी लेकर चलना था! ओर न होता, तो दो-चार हाथ जमाते ही—पीछे देखा जाता, जेल जाना ही तो होता या और कुछ?

वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों उनकी तबीयत अपनी कायरता और बोदेपन पर औरभी झल्लाती थीं अगर वह उचक कर उसके दो-चार थप्पड़ लगा देते, तो क्या होता—यही न कि साहब के खानसामें, बैरे सब उन पर पिल पड़ते ओर मारते-मारते बेदम कर देते। बाल-बच्चों के सिर पर जो कुछ पड़ती—पड़ती। साहब को इतना तो मालूम हो जाता कि गरीब को बेगुनाह जलील करना आसान नहीं। आखिर आज मैं मर जाऊँ, तो क्या हो? तब कौन मेरे बच्चों का पालन करेगा? तब उनके सिर जो कुछ पड़ेगी, वह आज ही पड़ जाती, तो क्या हर्ज था।

इस अन्तिम विचार ने फतहचन्द के हृदय में इतना जोश भर दिया कि वह लौट पड़े और साहब से जिल्लत का बदला लेने के लिए दो-चार कदम चले, मगर फिर खयाल आया, आखिर जो कुछ जिल्लत होनी थी; वह तो हो ही ली। कौन जाने, बँगले पर हो या क्लब चला गया हो। उसी समय उन्हें शारदा की बेकसी और बच्चों का बिना बाप के जाने का खयाल भी आ गया। फिर लौटे और घर चले।

4

घर में जाते ही शारदा ने पूछा—किसलिए बुलाया था, बड़ी देर हो गयी?

फतहचन्द ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—नशे की सनक थी, और क्या? शैतान ने मुझे गालियाँ दी, जलील किया बसस, यहीं रट लगाए हुए था कि देर क्यों की? निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।

शारदा ने गुस्से में आकर कहा—तुमने एक जूता उतार कर दिया नहीं सूआर को?

फतहचन्द—चपरासी बहुत शरीफ है। उसने साफ कह दिया—हुजूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्जत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।

शारदा—यही बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा?

फतहचन्द—फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी खूब सुनायी। वह छड़ी लेकर दौड़ा—मेने भी जूता सँभाला। उसने मुझे छड़ियाँ जमायीं—मैंने भी कई जूते लगाये!

शारदा ने खुश होकर कहा—सच? इतना-सा मुँह हो गया होगा उसका!

फतहचन्द—चेहरे पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी।

शारदा—बड़ा अच्छा किया तुमने ओर मारना चाहिए था। मे होती, तो बिना जान लिए न छोड़ती।

फतहचन्द—मार तो आया हूँ; लेकिन अब खैरियत नहीं है। देखो, क्या नतीजा होता है? नौकरी तो जायगी ही, शायद सजा भी काटनी पड़े।

शारदा—सजा क्यों काटनी पड़ेगी? क्या कोई इंसफ करने वाला नहीं है? उसने क्यों गालियाँ दीं, क्यों छड़ी जमायी?

फतहचन्द—उसने सामने मेरी कौन सुनेगा? अदालत भी उसी की तरफ हो जायगी।

शारदा—हो जायगी, हो जाय; मगर देख लेना अब किसी साहब की यह हिम्मत न होगी कि किसी बाबू को गालियाँ दे बैठे। तुम्हे चाहिए था कि ज्योंही उसके मुँह से गालियाँ निकली, लपक कर एक जूता रसीदद कर देते।

फतहचन्द—तो फिर इस वक्त जिंदा लौट भी न सकता। जरूर मुझे गोली मार देता।

शारदा—देखी जाती।

फतहचन्द ने मुस्करा कर कहा—फिर तुम लोग कहाँ जाती?

शारदा—जहाँ ईश्वर की मरजी होती। आदमी के लिए सबसे बड़ी चीज इज्जत है। इज्जत गवाँ कर बाल-बच्चों की परवरिश नहीं की जाती। तुम उस शैतान को मार का आये होते तो मैं करूर से फूली नहीं समाती। मार खाकर उठते, तो शायद मैं तुम्हारी सूरत से भी घृणा करती। यों जबान से चाहे कुछ न कहती, मगर दिल से तुम्हारी इज्जल जाती रहती। अब जो कुछ सिर पर आयेगी, खुशी से झेल लूँगी.....। कहाँ जाते हो, सुनो-सुनो कहाँ जाते हो?

फतहचन्द दीवाने होकर जोश में घर से निकल पड़े। शारदा पुकारती रह गयी। वह फिर साहब के बँगले की तरफ जा रहे थे। डर से सहमे हुए नहीं; बल्कि गरूर से गर्दन उठाये हुए। पक्का इरादा उनके चेहरे से झलक रहा था। उनके पैरों में वह कमजोरी, आँखें में वह बेकसी न थी। उनकी कायापलट सी हो गयी थी। वह कमजोर बदन, पीला मुखड़ा दुर्बल बदनवाला, दफ्तर के बाबू की जगह अब मर्दाना चेहरा, हिम्मत भरा हुआ, मजबूत गठा और जवान था। उन्होंने पहले एक दोस्त के घर जाकर उसक डंडा लिया और अकड़ते हुए साहब के बँगले पर जा पहुँचे।

इस वक्त नौ बजे थे। साहब खाने की मेज पर थे। मगर फतहचन्द ने आज उनके मेज पर से उठ जाने का दंतजार न किया, खानसामा कमरे से बाहर निकला और वह चिक उठा कर अंदर गए। कमरा प्रकाश से जगमगा रहा था जमीन पर ऐसी कालीन बिछी हुई थी; जैसी फतहचन्द की शादी में भी नहीं बिछी होगी।

साहब बहादुर ने उनकी तरफ क्रोधित दृष्टि से देख कर कहा—तुम क्यों आया? बाहर जाओ, क्यों अन्दर चला आया?

फतहचन्द ने खड़े-खड़े डंडा संभाल कर कहा—तुमने मुझसे अभी फाइल माँगा था, वही फाइल लेकर आया हूँ। खाना खा लो, तो दिखाऊँ। तब तक मैं बैठा हूँ। इतमीनान से खाओ, शायद वह तुम्हारा आखिरी खाना होगा। इसी कारण खूब पेट भर खा लो।

साहब सन्नाटे में आ गये। फतहचन्द की तरफ डर और क्रोध की दृष्टि से देख कर कॉप उठे। फतहचन्द के चेहरे पर पक्का इरादा झलक रहा था। साहब समझ गये, यह मनुष्य इस समय मरने-मारने के लिए तैयार होकर आया है। ताकत में फतहचन्द उनसे पासंग भी नहीं था। लेकिन यह निश्चय था कि वह ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, बल्कि लोहे से देने को तैयार है। यदि वह फतहचन्द को बुरा-भला कहते हैं, तो क्या आश्चर्य है कि वह डंडा लेकर पिल पड़े। हाथापाई करने में यद्यपि उन्हें जीतने में जरा भी संदेह नहीं था, लेकिन बैठे-बैठाये डंडे खाना भी तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। कुत्ते को आप डंडे से मारिये, ठुकराइये, जो चाहे कीजिए; मगर उसी समय तक, जब तक वह गुर्राता नहीं। एक बार गुर्रा कर दौड़ पड़े, तो फिर देखे आप हिम्मत कहाँ जाती हैं? यही हाल उस वक्त साहब बहादुर का था जब तक यकीन था कि फतहचन्द घुड़की, गाली, हंटर, ठाकर सब कुछ खामोशी से सह लेगा, तब तक आप शेर थे; अब वह तयोरियो बदले, डंडा संभाले, बिल्ली की तरह घात लगाये खड़ा है। जबान से कोई कड़ा शब्द निकला और उसने डंडा चलाया। वह अधिक से अधिक उसे बरखास्त कर सकते हैं। अगर मारते हैं, तो मार खाने का भी डर है। उस पर फौजदारी में मुकदमा दायर हो जाने का संदेश—माना कि वह अपने प्रभाव और ताकत को जेल में डलवा देगे; परन्तु परेशानी और बदनामी से किसी तरह न बच सकते थे। एक बुद्धिमान और दूरंदेश आदमी की तरह उन्होंने यह कहा—ओहो, हम समझ गया, आप हमसे नाराज हैं। हमने क्या आपको कुछ कहा है? आप क्यों हमसे नाराज हैं?

फतहचन्द ने तन करी कहा—तुमने अभी आध घंटा पहले मेरे कान पकड़े थे, और मुझसे सैकड़ों ऊल-जलूल बातें कही थीं। क्या इतनी जल्दी भूल गये?

साहब—मैंने आपका कान पकड़ा, आ-हा-हा-हा-हा! क्या मजाक है? क्या मैं पागल हूँ या दीवाना?

फतहचन्द—तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ? चपरासी गवाह है। आपके नौकर-चाकर भी देख रहे थे।

साहब—कब की बात है?

फतहचन्द—अभी-अभी, कोई आधा घण्टा हुआ, आपने मुझे बुलवाया था और बिना कारण मेरे कान पकड़े और धक्के दिये थे।

साहब—ओ बाबू जी, उस वक्त हम नशा में था। बेहरा ने हमको बहुत दे दिया था। हमको कुछ खबर नहीं, क्या हुआ माई गाड़! हमको कुछ खबर नहीं।

फतहचन्द—नशा मैं अगर तुमने गोली मार दी होती, तो क्या मैं मर न जाता? अगर तुम्हें नशा था और नशा में सब कुछ मुआफ है, तो मैं भी नशे में हूँ। सुनो मेरा फैसला, या तो अपने कान पकड़ो कि फिर कभी किसी भले आदमी के संग ऐसा बर्ताव न करोगे, या मैं आकर तुम्हारे कान पकड़ूँगा। समझ गये कि नहीं! इधर उधर हिलो नहीं, तुमने जगह छोड़ी और मैंने डंडा चलाया। फिर खोपड़ी टूट जाय, तो मेरी खता नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ, वह करते चलो; पकड़ो कान!

साहब ने बनावटी हँसी हँसकर कहा—वेल बाबू जी, आप बहुत दिल्लगी करता है। अगर हमने आपको बुरा बात कहता है, तो हम आपसे माफी माँगता है।

फतहचन्द—(डंडा तौलकर) नहीं, कान पकड़ो!

साहब आसानी से इतनी जिल्लत न सह सके। लपककर उठे और चाहा कि फतहचन्द के हाथ से लकड़ी छीन लें; लेकिन फतहचन्द गाफिल न थे। साहब मेज पर से उठने न पाये थे कि उन्होंने डंडे का भरपूर और तुला हुआ हाथ चलाया। साहब तो नंगे सिर थे ही; चोट सिर पर पड़ गई। खोपड़ी भन्ना गयी। एक मिनट तक सिर को पकड़े रहने के बाद बोले—हम तुमको बरखास्त कर देगा।

फतहचन्द—इसकी मुझे परवाह नहीं, मगर आज मैं तुमसे बिना कान पकड़ाये नहीं जाऊँगा। कसान पकड़कर वादा करो कि फिर किसी भले आदमी के साथ ऐसा बेअदबी न करोगे, नहीं तो मेरा दूसरा हाथ पडना ही चाहता है!

यह कहकर फतहचन्द ने फिर डंडा उठाया। साहब को अभी तक पहली चोट न भूली थी। अगर कहीं यह दूसरा हाथ पड़ गया, तो शायद खोपड़ी खुल जाये। कान पर हाथ रखकर बोले—अब अप खुश हुआ?

‘फिर तो कभी किसी को गाली न दोगे?’

‘कभी नहीं।’

‘अगर फिर कभी ऐसा किया, तो समझ लेना, मैं कहीं बहुत दूर नहीं हूँ।’

‘अब किसी को गाली न देगा।’

‘अच्छी बात है, अब मैं जाता हूँ, आप से मेरा इस्तीफा है। मैं कल इस्तीफा मैं यह लिखकर भेजूँगा कि तुमने मुझे गालियाँ दीं, इसलिए मैं नौकरी नहीं करना चाहता, समझ गये?’

साहब—आप इस्तीफा क्यों देता है? हम तो हम तो बरखास्त नहीं करता।

फतहचन्द—अब तुम जैसे पाजी आदमी की मातहती नहीं करूँगा।

यह कहते हुए फतहचन्द कमरे से बाहर निकले और बड़े इतमीनान से घर चले। आज उन्हें सच्ची विजय की प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उन्हें ऐसी खुशी कभी नहीं प्राप्त हुई थी। यही उनके जीवन की पहली जीत थी।

अलगयोड़ा

भोला महतो ने पहली स्त्री के मर जाने बाद दूसरी सगाई की, तो उसके लड़के रग्घू के लिए बुरे दिन आ गए। रग्घू की उम्र उस समय केवल दस वर्ष की थी। चैने से गाँव में गुल्ली-डंडा खेलता फिरता था। माँ के आते ही चक्की में जुतना पड़ा। पन्ना रुपवती स्त्री थी और रुप और गर्व में चोली-दामन का नाता है। वह अपने हाथों से कोई काम न करती। गोबर रग्घू निकालता, बैलों को सानी रग्घू देता। रग्घू ही जूठे बरतन माँजता। भोला की आँखें कुछ ऐसी फिरीं कि उसे रग्घू में सब बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ नजर आतीं। पन्ना की बातों को वह प्राचीन मर्यादानुसार आँखें बंद करके मान लेता था। रग्घू की शिकायतों की जरा परवाह न करता। नतीजा यह हुआ कि रग्घू ने शिकायत करना ही छोड़ दिया। किसके सामने रोए? बाप ही नहीं, सारा गाँव उसका दुश्मन था। बड़ा जिद्दी लड़का है, पन्ना को तो कुद समझता ही नहीं: बेचारी उसका दुलार करती है, खिलाती-पिलाती हैं यह उसी का फल है। दूसरी औरत होती, तो निबाह न होता। वह तो कहा, पन्ना इतनी सीधी-सादी है कि निबाह होता जाता है। सबल की शिकायतें सब सुनते हैं, निर्बल की फरियाद भी कोई नहीं सुनता! रग्घू का हृदय माँ की ओर से दिन-दिन फटता जाता था। यहां तक कि आठ साठ गुजर गए और एक दिन भोला के नाम भी मृत्यु का सन्देश आ पहुँचा।

पन्ना के चार बच्चे थे-तीन बेटे और एक बेटी। इतना बड़ा खर्च और कमानेवाला कोई नहीं। रग्घू अब क्यों बात पूछने लगा? यह मानी हुई बात थी। अपनी स्त्री लाएगा और अलग रहेगा। स्त्री आकर और भी आग लगाएगी। पन्ना को चारों ओर अंधेरा ही दिखाई देता था: पर कुछ भी हो, वह रग्घू की आसरेत बनकर घर में रहेगी। जिस घर में उसने राज किया, उसमें अब लौंडी न बनेगी। जिस लौंडे को अपना गुलाम समझा, उसका मुँह न ताकेगी। वह सुन्दर थीं, अवस्था अभी कुछ ऐसी ज्यादा न थी। जवानी अपनी पूरी बहार पर थी। क्या वह कोई दूसरा घर नहीं कर सकती? यहीं न होगा, लोग हँसेंगे। बला से! उसकी बिरादरी में क्या ऐसा होता नहीं? ब्राह्मण, ठाकुर थोड़ी ही थी कि नाक कट जायगी। यह तो उन्हीं ऊँची जातों में होता है कि

घर में चाहे जो कुछ करो, बाहर परदा ढका रहे। वह तो संसार को दिखाकर दूसरा घर कर सकती है, फिर वह रगधू कि दबैल बनकर क्यों रहे?

भोला को मरे एक महीना गुजर चुका था। संध्या हो गई थी। पन्ना इसी चिन्ता में पड़ हुई थी कि सहसा उसे ख्याल आया, लड़के घर में नहीं हैं। यह बैलों के लौटने की बेला है, कहीं कोई लड़का उनके नीचे न आ जाए। अब द्वार पर कौन है, जो उनकी देखभाल करेगा? रगधू को मेरे लड़के फूटी आँखों नहीं भाते। कभी हँसकर नहीं बोलता। घर से बाहर निकली, तो देखा, रगधू सामने झोपड़े में बैठा ऊख की गँडेरिया बना रहा है, लड़के उसे घेरे खड़े हैं और छोटी लड़की उसकी गर्दन में हाथ डाले उसकी पीठ पर सवार होने की चेष्टा कर रही है। पन्ना को अपनी आँखों पर विश्वास न आया। आज तो यह नई बात है। शायद दुनिया को दिखाता है कि मैं अपने भाइयों को कितना चाहता हूँ और मन में छुरी रखी हुई है। घात मिले तो जान ही ले ले! काला साँप है, काला साँप! कठोर स्वर में बोली-तुम सबके सब वहाँ क्या करते हो? घर में आओ, साँझ की बेला है, गोरु आते होंगे।

रगधू ने विनीत नेत्रों से देखकर कहा—मैं तो हूँ ही काकी, डर किस बात का है?

बड़ा लड़का केदार बोला-काकी, रगधू दादा ने हमारे लिए दो गाड़ियाँ बना दी हैं। यह देख, एक पर हम और खुन्नू बैठेंगे, दूसरी पर लछमन और झुनियाँ। दादा दोनों गाड़ियाँ खींचेंगे।

यह कहकर वह एक कोने से दो छोटी-छोटी गाड़ियाँ निकाल लाया। चार-चार पहिए लगे थे। बैठने के लिए तख्ते और रोक के लिए दोनों तरफ बाजू थे।

पन्ना ने आश्चर्य से पूछा-ये गाड़ियाँ किसने बनाई?

केदार ने चिढ़कर कहा-रगधू दादा ने बनाई हैं, और किसने! भगत के घर से बसूला और रुखानी माँग लाए और चटपट बना दीं। खूब दौड़ती हैं काकी! बैठ खुन्नू में खींचूँ।

खुन्नू गाड़ी में बैठ गया। केदार खींचने लगा। चर-चर शोर हुआ मानो गाड़ी भी इस खेल में लड़कों के साथ शरीक है।

लछमन ने दूसरी गाड़ी में बैठकर कहा-दादा, खींचो।

रगधू ने झुनियाँ को भी गाड़ी में बिठा दिया और गाड़ी खींचता हुआ दौड़ा। तीनों लड़के तालियाँ बजाने लगे। पन्ना चकित नेत्रों से यह दृश्य देख रही थी और सोच रही थी कि य वही रगधू है या कोई और।

थोड़ी देर के बाद दोनों गाड़ियाँ लौटीं: लड़के घर में जाकर इस यानयात्रा के अनुभव बयान करने लगे। कितने खुश थे सब, मानों हवाई जहाज पर बैठ आये हों।

खुन्नू ने कहा-काकी सब पेड़ दौड़ रहे थे।

लछमन-और बछियाँ कैसी भागीं, सबकी सब दौड़ीं!

केदार-काकी, रगधू दादा दोनों गाड़ियाँ एक साथ खींच ले जाते हैं।

झुनियाँ सबसे छोटी थी। उसकी व्यंजना-शक्ति उछल-कूद और नेत्रों तक परिमित थी-तालियाँ बजा-बजाकर नाच रही थी।

खुन्नू-अब हमारे घर गाय भी आ जाएगी काकी! रगधू दादा ने गिरधारी से कहा है कि हमें एक गाय ला दो। गिरधारी बोला, कल लाऊँगा।

केदार-तीन सेर दूध देती है काकी! खूब दूध पीएँगे।

इतने में रगधू भी अंदर आ गया। पन्ना ने अवहेलना की दृष्टि से देखकर पूछा-क्यों रगधू तुमने गिरधारी से कोई गाय माँगी है?

रगधू ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा-हाँ, माँगी तो है, कल लाएगा।

पन्ना-रुपये किसके घर से आएँगे, यह भी सोचा है?

रगधू-सब सोच लिया है काकी! मेरी यह मुहर नहीं है। इसके पच्चीस रुपये मिल रहे हैं, पाँच रुपये बछिया के मुजा दे दूँगा! बस, गाय अपनी हो जाएगी।

पन्ना सन्नाटे में आ गई। अब उसका अविश्वासी मन भी रगधू के प्रेम और सज्जनता को अस्वीकार न कर सका। बोली-मुहर को क्यों बेचे देते हो? गाय की अभी कौन जल्दी है? हाथ में पैसे हो जाएँ, तो ले लेना। सूना-सूना गला अच्छा न लगेगा। इतने दिनों गाय नहीं रही, तो क्या लड़के नहीं जिए?

रगधू दार्शनिक भाव से बोला-बच्चों के खाने-पीने के यही दिन हैं काकी! इस उम्र में न खाया, तो फिर क्या खाएँगे। मुहर पहनना मुझे अच्छा भी नहीं मालूम होता। लोग समझते होंगे कि बाप तो गया। इसे मुहर पहनने की सूझी है।

भोला महतो गाय की चिंता ही में चल बसे। न रुपये आए और न गाय मिली। मजबूर थे। रग्घू ने यह समस्या कितनी सुगमता से हल कर दी। आज जीवन में पहली बार पन्ना को रग्घू पर विश्वास आया, बोली-जब गहना ही बेचना है, तो अपनी मुहर क्यों बेचोगे? मेरी हँसुली ले लेना।

रग्घू-नहीं काकी! वह तुम्हारे गले में बहुत अच्छी लगती है। मर्दों को क्या, मुहर पहनें या न पहनें।

पन्ना-चल, मैं बूढ़ी हुई। अब हँसुली पहनकर क्या करना है। तू अभी लड़का है, तेरा गला अच्छा न लगेगा?

रग्घू मुस्कराकर बोला—तुम अभी से कैसे बूढ़ी हो गई? गाँव में है कौन तुम्हारे बराबर?

रग्घू की सरल आलोचना ने पन्ना को लज्जित कर दिया। उसके रुखे-मुरछाए मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गई।

2

पाँच साल गुजर गए। रग्घू का-सा मेहनती, ईमानदार, बात का धनी दूसरा किसान गाँव में न था। पन्ना की इच्छा के बिना कोई काम न करता। उसकी उम्र अब 23 साल की हो गई थी। पन्ना बार-बार कहती, भइया, बहू को बिदा करा लाओ। कब तक नैह में पड़ी रहेगी? सब लोग मुझी को बदनाम करते हैं कि यही बहू को नहीं आने देती: मगर रग्घू टाल देता था। कहता कि अभी जल्दी क्या है? उसे अपनी स्त्री के रंग-ढंग का कुछ परिचय दूसरों से मिल चुका था। ऐसी औरत को घर में लाकर वह अपनी शान्ति में बाधा नहीं डालना चाहता था।

आखिर एक दिन पन्ना ने जिद करके कहा-तो तुम न लाओगे?

‘कह दिया कि अभी कोई जल्दी नहीं।’

‘तुम्हारे लिए जल्दी न होगी, मेरे लिए तो जल्दी है। मैं आज आदमी भेजती हूँ।’

‘पछताओगी काकी, उसका मिजाज अच्छा नहीं है।’

‘तुम्हारी बला से। जब मैं उससे बोलूँगी ही नहीं, तो क्या हवा से लड़ेगी? रोटियाँ तो बना लेगी। मुझसे भीतर-बाहर का सारा काम नहीं होता, मैं आज बुलाए लेती हूँ।’

‘बुलाना चाहती हो, बुला लो: मगर फिर यह न कहना कि यह मेहरिया को ठीक नहीं करता, उसका गुलाम हो गया।’

‘न कहूँगी, जाकर दो साड़ियाँ और मिठाई ले आ।’

तीसरे दिन मुलिया मैके से आ गई। दरवाजे पर नगाड़े बजे, शहनाइयों की मधुर ध्वनि आकाश में गूँजने लगी। मुँह-दिखावे की रस्म अदा हुई। वह इस मरुभूमि में निर्मल जलधारा थी। गेहुओं रंग था, बड़ी-बड़ी नोकीली पलकें, कपोलों पर हल्की सुर्खी, आँखों में प्रबल आकर्षण। रग्घू उसे देखते ही मंत्रमुग्ध हो गया।

प्रातःकाल पानी का घड़ा लेकर चलती, तब उसका गेहुओं रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुन्दन हो जाता, मानों उषा अपनी सारी सुगंध, सारा विकास और उन्माद लिये मुस्कराती चली जाती हो।

3

मुलिया मैके से ही जली-भुनी आयी थी। मेरा शौहर छाती फाड़कर काम करे, और पन्ना रानी बनी बैठी रहे, उसके लड़े रईसजादे बने घूमें। मुलिया से यह बरदाश्त न होगा। वह किसी की गुलामी न करेगी। अपने लड़के तो अपने होते ही नहीं, भाई किसके होते हैं? जब तक पर नहीं निकते हैं, रग्घू को घरे हुए हैं। ज्यों ही जरा सयाने हुए, पर झाड़कर निकल जाएँगे, बात भी न पूछेंगे।

एक दिन उसने रग्घू से कहा—तुम्हें इस तरह गुलामी करनी हो, तो करो, मुझसे न होगी।

रग्घू—तो फिर क्या करूँ, तू ही बता? लड़के तो अभी घर का काम करने लायक भी नहीं हैं।

मुलिया—लड़के रावत के हैं, कुछ तुम्हारे नहीं हैं। यही पन्ना है, जो तुम्हें दाने-दाने को तरसाती थी। सब सुन चुकी हूँ। मैं लौंडी बनकर न रहूँगी। रुपये-पैसे का मुझे हिसाब नहीं मिलता। न जाने तुम क्या लाते हो और वह क्या करती है। तुम समझते हो, रुपये घर ही में तो हैं: मगर देख लेना, तुम्हें जो एक फूटी कौड़ी भी मिले।

रग्घू—रुपये-पैसे तेरे हाथ में देने लगूँ तो दुनिया क्या कहेगी, यह तो सोच।

मुलिया—दुनिया जो चाहे, कहे। दुनिया के हाथों बिकी नहीं हूँ। देख लेना, भाँड लीपकर हाथ काला ही रहेगा। फिर तुम अपने भाइयों के लिए मरो, मैं। क्यों मरूँ?

रगधू—ने कुछ जवाब न दिया। उसे जिस बात का भय था, वह इतनी जल्द सिर आ पड़ी। अब अगर उसने बहुत तत्थो-थंभो किया, तो साल-छःमहीने और काम चलेगा। बस, आगे यह डोंगा चलता नजर नहीं आता। बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी?

एक दिन पन्ना ने महुए का सुखावन डाला। बरसाल शुरू हो गई थी। बखार में अनाज गीला हो रहा था। मुलिया से बोली-बहू, जरा देखती रहना, मैं तालाब से नहा आऊँ?

मुलिया ने लापरवाही से कहा-मुझे नींद आ रही है, तुम बैठकर देखो। एक दिन न नहाओगी तो क्या होगा?

पन्ना ने साड़ी उतारकर रख दी, नहाने न गयी। मुलिया का वार खाली गया।

कई दिन के बाद एक शाम को पन्ना धान रोपकर लौटी, अँधेरा हो गया था। दिन-भर की भूखी थी। आशा थी, बहू ने रोटी बना रखी होगी: मगर देखा तो यहाँ चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ था, और बच्चे मारे भूख के तड़प रहे थे। मुलिया से आहिस्ता से पूछा-आज अभी चूल्हा नहीं जला?

केदार ने कहा—आज दोपहर को भी चूल्हा नहीं जला काकी! भाभी ने कुछ बनाया ही नहीं।

पन्ना—तो तुम लोगों ने खाया क्या?

केदार—कुछ नहीं, रात की रोटियाँ थीं, खुन्नू और लछमन ने खायीं। मैंने सत्तू खा लिया।

पन्ना—और बहू?

केदार—वह पड़ी सो रह है, कुछ नहीं खाया।

पन्ना ने उसी वक्त चूल्हा जलाया और खाना बनाने बैठ गई। आटा गूँधती थी और रोती थी। क्या नसीब है? दिन-भर खेत में जली, घर आई तो चूल्हे के सामने जलना पड़ा।

केदार का चौदहवाँ साल था। भाभी के रंग-ढंग देखकर सारी स्थित समझ रहा था। बोला—काकी, भाभी अब तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती।

पन्ना ने चौंककर पूछा—क्या कुछ कहती थी?

केदार—कहती कुछ नहीं थी: मगर है उसके मन में यही बात। फिर तुम क्यों नहीं उसे छोड़ देतीं? जैसे चाहे रहे, हमारा भी भगवान् है?

पन्ना ने दाँतों से जीभ दबाकर कहा—चुप, मरे सामने ऐसी बात भूलकर भी न कहना। रगधू तुम्हारा भाई नहीं, तुम्हारा बाप है। मुलिया से कभी बोलोगे तो समझ लेना, जहर खा लूँगी।

4

दशहरे का त्यौहार आया। इस गाँव से कोस-भर एक पुरवे में मेला लगता था। गाँव के सब लड़के मेला देखने चले। पन्ना भी लड़कों के साथ चलने को तैयार हुई: मगर पैसे कहाँ से आएँ? कुंजी तो मुलिया के पास थी।

रगधू ने आकर मुलिया से कहा—लड़के मेले जा रहे हैं, सबों को दो-दो पैसे दे दो।

मुलिया ने तयोरियाँ चढ़ाकर कहा—पैसे घर में नहीं हैं।

रगधू—अभी तो तेलहन बिका था, क्या इतनी जल्दी रुपये उठ गए?

मुलिया—हाँ, उठ गए?

रगधू—कहाँ उठ गए? जरा सुनूँ, आज त्योहार के दिन लड़के मेला देखने न जाएँगे?

मुलिया—अपनी काकी से कहो, पैसे निकालें, गाड़कर क्या करेंगी?

खूँटी पर कुंजी हाथ पकड़ लिया और बोली—कुंजी मुझे दे दो, नहीं तो ठीक न होगा। खाने-पहने को भी चाहिए, कागज-किताब को भी चाहिए, उस पर मेला देखने को भी चाहिए। हमारी कमाई इसलिए नहीं है कि दूसरे खाएँ और मूँछों पर ताव दें।

पन्ना ने रगधू से कहा—भइया, पैसे क्या होंगे! लड़के मेला देखने न जाएँगे।

रगधू ने झिड़ककर कहा—मेला देखने क्यों न जाएँगे? सारा गाँव जा रहा है। हमारे ही लड़के न जाएँगे?

यह कहकर रगधू ने अपना हाथ छुड़ा लिया और पैसे निकालकर लड़कों को दे दिये: मगर कुंजी जब मुलिया को देने लगा, तब उसने उसे आंगन में फेंक दिया और मुँह लपेटकर लेट गई! लड़के मेला देखने न गए।

इसके बाद दो दिन गुजर गए। मुलिया ने कुछ नहीं खाया और पन्ना भी भूखी रही रगधू कभी इसे मनाता, कभी उसे पर न यह उठती, न वह। आखिर रगधू ने हैरान होकर मुलिया से पूछा—कुछ मुँह से तो कह, चाहती क्या है?

मुलिया ने धरती को सम्बोधित करके कहा—मैं कुछ नहीं चाहती, मुझे मेरे घर पहुँचा दो।

रगधू—अच्छा उठ, बना-खा। पहुँचा दूँगा।

मुलिया ने रगधू की ओर आँखें उठाईं। रगधू उसकी सूरत देखकर डर गया। वह माधुर्य, वह मोहकता, वह लावण्य गायब हो गया था। दाँत निकल आए थे, आँखें फट गई थीं और नथुने फड़क रहे थे। अंगारे की-सी लाल आँखों से देखकर बोली—अच्छा, तो काकी ने यह सलाह दी है, यह मंत्र पढ़ाया है? तो यहाँ ऐसी कच्चे नहीं हूँ। तुम दोनों की छाती पर मूँग दलूँगी। हो किस फेर में?

रगधू—अच्छा, तो मूँग ही दल लेना। कुछ खा-पी लेगी, तभी तो मूँग दल सकेगी।

मुलिया—अब तो तभी मुँह में पानी डालूँगी, जब घर अलग हो जाएगा। बहुत झेल चुकी, अब नहीं झेला जाता।

रगधू सन्नाटे में आ गया। एक दिन तक उसके मुँह से आवाज ही न निकली। अलग होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। उसने गाँव में दो-चार परिवारों को अलग होते देखा था। वह खूब जानता था, रोटी के साथ लोगों के हृदय भी अलग हो जाते हैं। अपने हमेशा के लिए गैर हो जाते हैं। फिर उनमें वही नाता रह जाता है, जो गाँव के आदमियों में। रगधू ने मन में ठान लिया था कि इस विपत्ति को घर में न आने दूँगा: मगर होनहार के सामने उसकी एक न चली। आह! मेरे मुँह में कालिख लगेगी, दुनिया यही कहेगी कि बाप के मर जाने पर दस साल भी एक में निबाह न हो सका। फिर किससे अलग हो जाऊँ? जिनको गोद में खिलाया, जिनको बच्चों की तरह पाला, जिनके लिए तरह-तरह के कष्ट झेले, उन्हीं से अलग हो जाऊँ? अपने प्यारों को घर से निकाल बाहर करूँ? उसका गला फँस गया। काँपते हुए स्वर में बोला—तू क्या चाहती है कि मैं अपने भाइयों से अलग हो जाऊँ? भला सोच तो, कहीं मुँह दिखाने लायक रहूँगा?

मुलिया—तो मेरा इन लोगों के साथ निबाह न होगा।

रगधू—तो तू अलग हो जा। मुझे अपने साथ क्यों घसीटती है?

मुलिया—तो मुझे क्या तुम्हारे घर में मिठाई मिलती है? मेरे लिए क्या संसार में जगह नहीं है?

रगधू—तेरी जैसी मर्जी, जहाँ चाहे रह। मैं अपने घर वालों से अलग नहीं हो सकता। जिस दिन इस घर में दो चूल्हे जलेंगे, उस दिन मेरे कलेजे के दो टुकड़े हो जाएँगे। मैं यह चोट नहीं सह सकता। तुझे जो तकलीफ हो, वह मैं दूर कर सकता हूँ। माल-असबाब की मालकिन तू है ही: अनाज-पानी तेरे ही हाथ है, अब रह क्या गया है? अगर कुछ काम-धंधा करना नहीं चाहती, मत कर। भगवान ने मुझे समाई दी होती, तो मैं तुझे तिनका तक उठाने न देता। तेरे यह सुकुमार हाथ-पांव मेहनत-मजदूरी करने के लिए बनाए ही नहीं गए हैं: मगर क्या करूँ अपना कुछ बस ही नहीं है। फिर भी तेरा जी कोई काम करने को न चाहे, मत कर: मगर मुझसे अलग होने को न कह, तेरे पैरों पड़ता हूँ।

मुलिया ने सिर से अंचल खिसकाया और जरा समीप आकर बोली—मैं काम करने से नहीं डरती, न बैठे-बैठे खाना चाहती हूँ: मगर मुझ से किसी की धोंस नहीं सही जाती। तुम्हारी ही काकी घर का काम-काज करती हैं, तो अपने लिए करती हैं, अपने बाल-बच्चों के लिए करती हैं। मुझ पर कुछ एहसान नहीं करतीं, फिर मुझ पर धोंस क्यों जमाती हैं? उन्हें अपने बच्चे प्यारे होंगे, मुझे तो तुम्हारा आसरा है। मैं अपनी आँखों से यह नहीं देख सकती कि सारा घर तो चैन करे, जरा-जरा-से बच्चे तो दूध पीएँ, और जिसके बल-बूते पर गृहस्थी बनी हुई है, वह मट्ठे को तरसे। कोई उसका पूछनेवाला न हो। जरा अपना मुँह तो देखो, कैसी सूरत निकल आई है। औरों के तो चार बरस में अपने पट्ठे तैयार हो जाएँगे। तुम तो दस साल में खाट पर पड़ जाओगे। बैठ जाओ, खड़े क्यों हो? क्या मारकर भागोगे? मैं तुम्हें जबरदस्ती न बाँध लूँगी, या मालकिन का हुक्म नहीं है? सच कहूँ, तुम बड़े कठ-कलेजी हो। मैं जानती, ऐसे निर्मोहिण से पाला पड़ेगा, तो इस घर में भूल से न आती। आती भी तो मन न लगाती, मगर अब तो मन तुमसे लग गया। घर भी जाऊँ, तो मन यहाँ ही रहेगा और तुम जो हो, मेरी बात नहीं पूछते।

मुलिया की ये रसीली बातें रगधू पर कोई असर न डाल सकीं। वह उसी रुखाई से बोला—मुलिया, मुझसे यह न होगा। अलग होने का ध्यान करते ही मेरा मन न जाने कैसा हो जाता है। यह चोट मुझ से न सही जाएगी।

मुलिया ने परिहास करके कहा—तो चूड़ियाँ पहनकर अन्दर बैठो न! लाओ मैं मूँछें लगा लूँ। मैं तो समझती थी कि तुममें भी कुछ कल-बल है। अब देखती हूँ, तो निरे मिट्टी के लौंदे हो।

पन्ना दालान में खड़ी दोनों की बातचीत सुन नहीं थी। अब उससे न रहा गया। सामने आकर रगधू से बोली—जब वह अलग होने पर तुली हुई है, फिर तुम क्यों उसे जबरदस्ती मिलाए रखना चाहते हो? तुम उसे लेकर रहो, हमारे भगवान् ने निबाह दिया, तो अब क्या डर? अब तो भगवान् की दया से तीनों लड़के सयाने हो गए हैं, अब कोई चिन्ता नहीं।

रगधू ने आँसू-भरी आँखों से पन्ना को देखकर कहा—काकी, तू भी पागल हो गई है क्या? जानती नहीं, दो रोटियाँ होते ही दो मन हो जाते हैं।

पन्ना—जब वह मानती ही नहीं, तब तुम क्या करोगे? भगवान् की मरजी होगी, तो कोई क्या करेगा? परालब्ध में जितने दिन एक साथ रहना लिखा था, उतने दिन रहे। अब उसकी यही मरजी है, तो यही सही। तुमने मेरे बाल-बच्चों के लिए जो कुछ किया, वह भूल नहीं सकती। तुमने इनके सिर हाथ न रखा होता, तो आज इनकी न जाने क्या गति होती: न जाने किसके द्वार पर ठोकरें खातें होते, न जाने कहाँ-कहाँ भीख माँगते फिरते। तुम्हारा जस मरते दम तक गाऊँगी। अगर मेरी खाल तुम्हारे जूते बनाने के काम आते, तो खुशी से दे दूँ। चाहे तुमसे अलग हो जाऊँ, पर जिस घड़ी पुकारोगे, कुत्ते की तरह दौड़ी आऊँगी। यह भूलकर भी न सोचना कि तुमसे अलग होकर मैं तुम्हारा बुरा चेतूँगी। जिस दिन तुम्हारा अनभल मेरे मन में आएगा, उसी दिन विष खाकर मर जाऊँगी। भगवान् करे, तुम दूधों नहाओ, पूतों फलों! मरते दम तक यही असीस मेरे रोएँ-रोएँ से निकलती रहेगी और अगर लड़के भी अपने बाप के हैं। तो मरते दम तक तुम्हारा पोस मानेंगे।

यह कहकर पन्ना रोती हुई वहाँ से चली गई। रगधू वहीं मूर्ति की तरह बैठा रहा। आसमान की ओर टकटकी लगी थी और आँखों से आँसू बह रहे थे।

5

पन्ना की बातें सुनकर मुलिया समझ गई कि अपने पौबारह हैं। चटपट उठी, घर में झाड़ू लगाई, चूल्हा जलाया और कुएँ से पानी लाने चली। उसकी टेक पूरी हो गई थी।

गाँव में स्त्रियों के दो दल होते हैं—एक बहुओं का, दूसरा सासों का! बहुएँ सलाह और सहानुभूति के लिए अपने दल में जाती हैं, सासें अपने में। दोनों की पंचायतें अलग होती हैं। मुलिया को कुएँ पर दो-तीन बहुएँ मिल गई। एक से पूछा—आज तो तुम्हारी बुढ़िया बहुत रो-धो रही थी।

मुलिया ने विजय के गर्व से कहा—इतने दिनों से घर की मालकिन बनी हुई है, राज-पाट छोड़ते किसे अच्छा लगता है? बहन, मैं उनका बुरा नहीं चाहती: लेकिन एक आदमी की कमाई में कहाँ तक बरकत होगी। मेरे भी तो यही खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने के दिन हैं। अभी उनके पीछे मरो, फिर बाल-बच्चे हो जाएँ, उनके पीछे मरो। सारी जिन्दगी रोते ही कट जाएगी।

एक बहू-बुढ़िया यही चाहती है कि यह सब जन्म-भर लौंडी बनी रहें। मोटा-झोटा खाएं और पड़ी रहें।

दूसरी बहू—किस भरोसे पर कोई मरे—अपने लड़के तो बात नहीं पूछें पराए लड़कों का क्या भरोसा? कल इनके हाथ-पैर हो जायेंगे, फिर कौन पूछता है! अपनी-अपनी मेहरियों का मुंह देखेंगे। पहले ही से फटकार देना अच्छा है, फिर तो कोई कलक न होगा।

मुलिया पानी लेकर गयी, खाना बनाया और रगधू से बोली—जाओं, नहा आओ, रोटी तैयार है।

रगधू ने मानों सुना ही नहीं। सिर पर हाथ रखकर द्वार की तरफ ताकता रहा।

मुलिया—क्या कहती हूँ, कुछ सुनाई देता है, रोटी तैयार है, जाओ नहा आओ।

रगधू—सुन तो रहा हूँ, क्या बहरा हूँ? रोटी तैयार है तो जाकर खा ले। मुझे भूख नहीं है।

मुलिया ने फिर नहीं कहा। जाकर चूल्हा बुझा दिया, रोटियाँ उठाकर छींके पर रख दीं और मुँह ढाँककर लेट रही।

जरा देर में पन्ना आकर बोली—खाना तैयार है, नहा-धोकर खा लो! बहू भी भूखी होगी।

रगधू ने झुंझलाकर कहा—काकी तू घर में रहने देगी कि मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँ? खाना तो खाना ही है, आज न खाऊँगा, कल खाऊँगा, लेकिन अभी मुझसे न खाया जाएगा। केदार क्या अभी मदरसे से नहीं आया?

पन्ना—अभी तो नीं आया, आता ही होगा।

पन्ना समझ गई कि जब तक वह खाना बनाकर लड़कों को न खिलाएगी और खुद न खाएगी रगधू न खाएगा। इतना ही नहीं, उसे रगधू से लड़ाई करनी पड़ेगी, उसे जली-कटी सुनानी पड़ेगी। उसे यह दिखाना पड़ेगा कि मैं ही उससे अलग होना चाहती हूँ नहीं तो वह इसी चिन्ता में घुल-घुलकर प्राण दे देगा। यह सोचकर उसने अलग चूल्हा जलाया और खाना बनाने लगी। इतने में केदार और खुन्नू मदरसे से आ गए। पन्ना ने कहा—आओ बेटा, खा लो, रोटी तैयार है।

केदार ने पूछा—भइया को भी बुला लूँ न?

पन्ना—तुम आकर खा लो। उसकी रोटी बहू ने अलग बनाई है।

खुन्नू—जाकर भइया से पूछ न आऊँ?

पन्ना—जब उनका जी चाहेगा, खाएँगे। तू बैठकर खा: तुझे इन बातों से क्या मतलब? जिसका जी चाहेगा खाएगा, जिसका जी न चाहेगा, न खाएगा। जब वह और उसकी बीवी अलग रहने पर तुले हैं, तो कौन मनाए?

केदार—तो क्यों अम्माजी, क्या हम अलग घर में रहेंगे?

पन्ना—उनका जी चाहे, एक घर में रहें, जी चाहे आँगन में दीवार डाल लें।

खुन्नू ने दरवाजे पर आकर झाँका, सामने फूस की झोंपड़ी थी, वहीं खाट पर पड़ा रगधू नारियल पी रहा था।

खुन्नू—भइया तो अभी नारियल लिये बैठे हैं।

पन्ना—जब जी चाहेगा, खाएँगे।

केदार—भइया ने भाभी को डाँटा नहीं?

मुलिया अपनी कोठरी में पड़ी सुन रही थी। बाहर आकर बोली—भइया ने तो नहीं डाँटा अब तुम आकर डाँटों।

केदार के चेहरे पर रंग उड़ गया। फिर जबान न खोली। तीनों लड़कों ने खाना खाया और बाहर निकले। लू चलने लगी थी। आम के बाग में गाँव के लड़के-लड़कियाँ हवा से गिरे हुए आम चुन रहे थे। केदार ने कहा—आज हम भी आम चुनने चलें, खूब आम गिर रहे हैं।

खुन्नू—दादा जो बैठे हैं?

लक्ष्मन—मैं न जाऊँगा, दादा घुड़केंगे।

केदार—वह तो अब अलग हो गए।

लक्ष्मन—तो अब हमको कोई मारेगा, तब भी दादा न बोलेंगे?

केदार—वाह, तब क्यों न बोलेंगे?

रगधू ने तीनों लड़कों को दरवाजे पर खड़े देखा: पर कुछ बोला नहीं। पहले तो वह घर के बाहर निकलते ही उन्हें डाँट बैठता था: पर आज वह मूर्ति के समान निश्चल बैठा रहा। अब लड़कों को कुछ साहस हुआ। कुछ दूर और आगे बढ़े। रगधू अब भी न बोला, कैसे बोले? वह सोच रहा था, काकी ने लड़कों को खिला-पिला दिया, मुझसे पूछा तक नहीं। क्या उसकी आँखों पर भी परदा पड़ गया है: अगर मैंने लड़कों को पुकारा और वह न आयें तो? मैं उनको मार-पीट तो न सकूँगा। लू में सब मारे-मारे फिरेंगे। कहीं बीमार न पड़ जाएँ। उसका दिल मसोसकर रह जाता था, लेकिन मुँह से कुछ कह न सकता था। लड़कों ने देखा कि यह बिलकुल नहीं बोलते, तो निर्भय होकर चल पड़े।

सहसा मुलिया ने आकर कहा—अब तो उठोगे कि अब भी नहीं? जिनके नाम पर फाका कर रहे हो, उन्होंने मजे से लड़कों को खिलाया और आप खाया, अब आराम से सो रही है। ‘मोर पिया बात न पूछें, मोर सुहागिन नाँव।’ एक बार भी तो मुँह से न फूटा कि चलो भइया, खा लो।

रगधू को इस समय मर्मन्तक पीड़ा हो रह थी। मुलिया के इन कठोर शब्दों ने घाव पर नमक छिड़क दिया। दुःखित नेत्रों से देखकर बोला—तेरी जो मर्जी थी, वही तो हुआ। अब जा, ढोल बजा!

मुलिया—नहीं, तुम्हारे लिए थाली परोसे बैठी है।

रगधू—मुझे चिढ़ा मत। तेरे पीछे मैं भी बदनाम हो रहा हूँ। जब तू किसी की होकर नहीं रहना चाहती, तो दूसरे को क्या गरज है, जो मेरी खुशामद करे? जाकर काकी से पूछ, लड़के आम चुनने गए हैं, उन्हें पकड़ लाऊँ?

मुलिया अँगूठा दिखाकर बोली—यह जाता है। तुम्हें सौ बार गरज हो, जाकर पूछो।

इतने में पन्ना भी भीतर से निकल आयी। रग्घू ने पूछा—लड़के बगीचे में चले गए काकी, लू चल रही है।

पन्ना—अब उनका कौन पुछ्तर है? बगीचे में जाएँ, पेड़ पर चढ़ें, पानी में डूबें। मैं अकेली क्या-क्या करूँ?

रग्घू—जाकर पकड़ लाऊँ?

पन्ना—जब तुम्हें अपने मन से नहीं जाना है, तो फिर मैं जाने को क्यों कहूँ? तुम्हें रोकना होता, तो रोक न देते? तुम्हारे सामने ही तो गए होंगे?

पन्ना की बात पूरी भी न हुई थी कि रग्घू ने नारियल कोने में रख दिया और बाग की तरफ चला।

6

रग्घू लड़कों को लेकर बाग से लौटा, तो देखा मुलिया अभी तक झोंपड़े में खड़ी है। बोला—तू जाकर खा क्यों नहीं लेती? मुझे तो इस बेला भूख नहीं है।

मुलिया ऐंठकर बोली—हाँ, भूख क्यों लगेगी! भाइयों ने खाया, वह तुम्हारे पेट में पहुँच ही गया होगा।

रग्घू ने दाँत पीसकर कहा—मुझे जला मत मुलिया, नहीं अच्छा न होगा। खाना कहीं भागा नहीं जाता। एक बेला न खाऊँगा, तो मर न जाऊँगा! क्या तू समझती हैं, घर में आज कोई बात हो गई हैं? तूने घर में चूल्हा नहीं जलाया, मेरे कलेजे में आग लगाई है। मुझे घमंड था कि और चाहे कुछ हो जाए, पर मेरे घर में फूट का रोग न आने पाएगा, पर तूने घमंड चूर कर दिया। परालब्ध की बात है।

मुलिया तिनककर बोली—सारा मोह-छोह तुम्हीं को है कि और किसी को है? मैं तो किसी को तुम्हारी तरह बिसूरते नहीं देखती।

रग्घू ने ठंडी साँस खींचकर कहा—मुलिया, घाव पर नोन न छिड़क। तेरे ही कारन मेरी पीठ में धूल लग रही है। मुझे इस गृहस्थी का मोह न होगा, तो किसे होगा? मैंने ही तो इसे मर-मर जोड़ा। जिनको गोद में खेलाया, वहीं अब मेरे पट्टीदार होंगे। जिन बच्चों को मैं डाँटता था, उन्हें आज कड़ी आँखों से भी नहीं देख सकता। मैं उनके भले के लिए भी कोई बात करूँ, तो दुनिया यही कहेगी कि यह अपने भाइयों को लूटे लेता है। जा मुझे छोड़ दे, अभी मुझसे कुछ न खाया जाएगा।

मुलिया—मैं कसम रखा दूँगी, नहीं चुपके से चले चलो।

रग्घू—देख, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अपना हठ छोड़ दे।

मुलिया—हमारा ही लहू पिए, जो खाने न उठे।

रग्घू ने कानों पर हाथ रखकर कहा—यह तूने क्या किया मुलिया? मैं तो उठ ही रहा था। चल खा लूँ। नहाने-धोने कौन जाए, लेकिन इतनी कहे देता हूँ कि चाहे चार की जगह छः रोटियाँ खा जाऊँ, चाहे तू मुझे घी के मटके ही में डुबा दे: पर यह दाग मेरे दिल से न मिटेगा।

मुलिया—दाग-साग सब मिट जाएगा। पहले सबको ऐसा ही लगता है। देखते नहीं हो, उधर कैसी चैन की वंशी बज रही है, वह तो मना ही रही थीं कि किसी तरह यह सब अलग हो जाएँ। अब वह पहले की-सी चाँदी तो नहीं है कि जो कुछ घर में आवे, सब गायब! अब क्यों हमारे साथ रहने लगीं?

रग्घू ने आहत स्वर में कहा—इसी बात का तो मुझे गम है। काकी ने मुझे ऐसी आशा न थी।

रग्घू खाने बैठा, तो कौर विष के घूँट-सा लगता था। जान पड़ता था, रोटियाँ भूसी की हैं। दाल पानी-सी लगती। पानी कंठ के नीचे न उतरता था, दूध की तरफ देखा तक नहीं। दो-चार ग्रास खाकर उठ आया, जैसे किसी प्रियजन के श्राद्ध का भोजन हो।

रात का भोजन भी उसने इसी तरह किया। भोजन क्या किया, कसम पूरी की। रात-भर उसका चित्त उद्विग्न रहा। एक अज्ञात शंका उसके मन पर छाई हुई थी, जैसे भोला महतो द्वार पर बैठा रो रहा हो। वह कई बार चौंककर उठा। ऐसा जान पड़ा, भोला उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देख रहा है।

वह दोनों जून भोजन करता था: पर जैसे शत्रु के घर। भोला की शोकमग्न मूर्ति आँखों से न उतरती थी। रात को उसे नींद न आती। वह गाँव में निकलता, तो इस तरह मुँह चुराए, सिर झुकाए मानो गो-हत्या की हो।

पाँच साल गुजर गए। रग्घू अब दो लड़कों का बाप था। आँगन में दीवार खिंच गई थी, खेतों में मेड़ें डाल दी गई थीं और बैल-बछिए बाँध लिये गए थे। केदार की उम्र अब उन्नीस की हो गई थी। उसने पढ़ना छोड़ दिया था और खेती का काम करता था। खुन्नु गाय चराता था। केवल लछमन अब तक मदरसे जाता था। पन्ना और मुलिया दोनों एक-दूसरे की सूरत से जलती थीं। मुलिया के दोनों लड़के बहुधा पन्ना ही के पास रहते। वहीं उन्हें उबटन मलती, वही काजल लगाती, वही गोद में लिये फिरती: मगर मुलिया के मुँह से अनुग्रह का एक शब्द भी न निकलता। न पन्ना ही इसकी इच्छुक थी। वह जो कुछ करती निर्व्याज भाव से करती थी। उसके दो-दो लड़के अब कमाऊ हो गए थे। लड़की खाना पका लेती थी। वह खुद ऊपर का काम-काज कर लेती। इसके विरुद्ध रग्घू अपने घर का अकेला था, वह भी दुर्बल, अशक्त और जवानी में बूढ़ा। अभी आयु तीस वर्ष से अधिक न थी, लेकिन बाल खिचड़ी हो गए थे। कमर भी झुक चली थी। खॉसी ने जीर्ण कर रखा था। देखकर दया आती थी। और खेती पसीने की वस्तु है। खेती की जैसी सेवा होनी चाहिए, वह उससे न हो पाती। फिर अच्छी फसल कहाँ से आती? कुछ ऋण भी हो गया था। वह चिंता और भी मारे डालती थी। चाहिए तो यह था कि अब उसे कुछ आराम मिलता। इतने दिनों के निरन्तर परिश्रम के बाद सिर का बोझ कुछ हल्का होता, लेकिन मुलिया की स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता ने लहराती हुई खेती उजाड़ दी। अगर सब एक साथ रहते, तो वह अब तक पेन्शन पा जाता, मजे में द्वार पर बैठा हुआ नारियल पीता। भाई काम करते, वह सलाह देता। महतो बना फिरता। कहीं किसी के झगड़े चुकाता, कहीं साधु-संतों की सेवा करता: वह अवसर हाथ से निकल गया। अब तो चिंता-भार दिन-दिन बढ़ता जाता था।

आखिर उसे धीमा-धीमा ज्वर रहने लगा। हृदय-शूल, चिंता, कड़ा परिश्रम और अभाव का यही पुरस्कार है। पहले कुछ परवाह न की। समझा आप ही आप अच्छा हो जाएगा: मगर कमजोरी बढ़ने लगी, तो दवा की फिक्र हुई। जिसने जो बता दिया, खा लिया, डाक्टरों और वैद्यों के पास जाने की सामर्थ्य कहाँ? और सामर्थ्य भी होती, तो रुपये खर्च कर देने के सिवा और नतीजा ही क्या था? जीर्ण ज्वर की औषधि आराम और पुष्टिकारक भोजन है। न वह बसंत-मालती का सेवन कर सकता था और न आराम से बैठकर बलबर्धक भोजन कर सकता था। कमजोरी बढ़ती ही गई।

पन्ना को अवसर मिलता, तो वह आकर उसे तसल्ली देती: लेकिन उसके लड़के अब रग्घू से बात भी न करते थे। दवा-दारु तो क्या करते, उसका और मजाक उड़ाते। भैया समझते थे कि हम लोगों से अलग होकर सोने और ईंट रख लेंगे। भाभी भी समझती थीं, सोने से लद जाऊँगी। अब देखें कौन पूछता है? सिसक-सिसककर न मरें तो कह देना। बहुत 'हाय! हाय!' भी अच्छी नहीं होती। आदमी उतना काम करे, जितना हो सके। यह नहीं कि रुपये के लिए जान दे दे।

पन्ना कहती—रग्घू बेचारे का कौन दोष है?

केदार कहता—चल, मैं खूब समझता हूँ। भैया की जगह मैं होता, तो डंडे से बात करता। मजाक थी कि औरत यों जिद करती। यह सब भैया की चाल थी। सब सधी-बधी बात थी।

आखिर एक दिन रग्घू का टिमटिमाता हुआ जीवन-दीपक बुझ गया। मौत ने सारी चिन्ताओं का अंत कर दिया।

अंत समय उसने केदार को बुलाया था: पर केदार को ऊख में पानी देना था। डरा, कहीं दवा के लिए न भेज दें। बहाना बना दिया।

8

मुलिया का जीवन अंधकारमय हो गया। जिस भूमि पर उसने मनसूबों की दीवार खड़ी की थी, वह नीचे से खुसक गई थी। जिस खूँटे के बल पर वह उछल रही थी, वह उखड़ गया था। गाँववालों ने कहना शुरू किया, ईश्वर ने कैसा तत्काल दंड दिया। बेचारी मारे लाज के अपने दोनों बच्चों को लिये रोया करती। गाँव में किसी को मुँह दिखाने का साहस न होता। प्रत्येक प्राणी उससे यह कहता हुआ मालूम होता था—‘मारे घमण्ड के धरती पर पाँव न रखती थी: आखिर सजा मिल गई कि नहीं!’ अब इस घर में कैसे निर्वाह होगा? वह किसके सहारे रहेगी? किसके बल पर खेती होगी? बेचारा रग्घू बीमार था। दुर्बल था, पर जब तक जीता रहा, अपना काम करता रहा। मारे कमजोरी के कभी-कभी सिर पकड़कर बैठ जाता और जरा दम लेकर फिर हाथ चलाने लगता था। सारी खेती तहस-नहस हो रही थी, उसे कौन संभालेगा? अनाज की डाँठें खलिहान में पड़ी थीं, ऊख अलग सूख रही थी। वह अकेली क्या-क्या करेगी? फिर सिंचाई अकेले आदमी का तो काम

नहीं। तीन-तीन मजदूरों को कहाँ से लाए! गाँव में मजदूर थे ही कितने। आदमियों के लिए खींचा-तानी हो रही थी। क्या करें, क्या न करे।

इस तरह तेरह दिन बीत गए। क्रिया-कर्म से छुट्टी मिली। दूसरे ही दिन सवेरे मुलिया ने दोनों बालकों को गोद में उठाया और अनाज मॉड़ने चली। खलिहान में पहुंचकर उसने एक को तो पेड़ के नीचे घास के नर्म बिस्तर पर सुला दिया और दूसरे को वहीं बैठाकर अनाज मॉड़ने लगी। बैलों को हाँकती थी और रोती थी। क्या इसीलिए भगवान् ने उसको जन्म दिया था? देखते-देखते क्या वे क्या हो गया? इन्हीं दिनों पिछले साल भी अनाज मॉड़ा गया था। वह रगड़ू के लिए लोटे में शरबत और मटर की घुँघी लेकर आई थी। आज कोई उसके आगे है, न पीछे: लेकिन किसी की लौंडी तो नहीं हूँ! उसे अलग होने का अब भी पछतावा न था।

एकाएक छोटे बच्चे का रोना सुनकर उसने उधर ताका, तो बड़ा लड़का उसे चुमकारकर कह रहा था—
बैया तुप रहो, तुप रहो। धीरे-धीरे उसके मुँह पर हाथ फेरता था और चुप कराने के लिए विकल था। जब बच्चा किसी तरह न चुप न हुआ तो वह खुद उसके पास लेट गया और उसे छाती से लगाकर प्यार करने लगा: मगर जब यह प्रयत्न भी सफल न हुआ, तो वह रोने लगा।

उसी समय पन्ना दौड़ी आयी और छोटे बालक को गोद में उठाकर प्यार करती हुई बोली—लड़कों को मुझे क्यों न दे आयी बहू? हाय! हाय! बेचारा धरती पर पड़ा लोट रहा है। जब मैं मर जाऊँ तो जो चाहे करना, अभी तो जीती हूँ, अलग हो जाने से बच्चे तो नहीं अलग हो गए।

मुलिया ने कहा—तुम्हें भी तो छुट्टी नहीं थी अम्माँ, क्या करती?

पन्ना—तो तुझे यहाँ आने की ऐसी क्या जल्दी थी? डाँठ मॉड़ न जाती। तीन-तीन लड़के तो हैं, और किसी दिन काम आएँगे? केदार तो कल ही मॉड़ने को कह रहा था: पर मैंने कहा, पहले ऊख में पानी दे लो, फिर आज मॉड़ना, मँड़ाई तो दस दिन बाद भ हो सकती है, ऊख की सिंचाई न हुई तो सूख जाएगी। कल से पानी चढ़ा हुआ है, परसों तक खेत पुर जाएगा। तब मँड़ाई हो जाएगी। तुझे विश्वास न आएगा, जब से भैया मरे हैं, केदार को बड़ी चिंता हो गई है। दिन में सौ-सौ बार पूछता है, भाभी बहुत रोती तो नहीं हैं? देख, लड़के भूखे तो नहीं हैं। कोई लड़का रोता है, तो दौड़ा आता है, देख अम्माँ, क्या हुआ, बच्चा क्यों रोता है? कल रोकर बोला—अम्माँ, मैं जानता कि भैया इतनी जल्दी चले जाएँगे, तो उनकी कुछ सेवा कर लेता। कहाँ जगाए-जगाए उठता था, अब देखती हो, पहर रात से उठकर काम में लग जाता है। खुन्नू कल जरा-सा बोला, पहले हम अपनी ऊख में पानी दे लेंगे, तब भैया की ऊख में देंगे। इस पर केदार ने ऐसा डाँटा कि खुन्नू के मुँह से फिर बात न निकली। बोला, कैसी तुम्हारी और कैसी हमारी ऊख? भैया ने जिला न लिया होता, तो आज या तो मर गए होते या कहीं भीख मॉंगते होते। आज तुम बड़े ऊखवाले बने हो! यह उन्हीं का पुन-परताप है कि आज भले आदमी बने बैठे हो। परसों रोटि खाने को बुलाने गई, तो मँड़ाया मैं बैठा रो रहा था। पूछा, क्यों रोता है? तो बोला, अम्माँ, भैया इसी 'अलगयोझ' के दुख से मर गए, नहीं अभी उनकी उमिर ही क्या थी! यह उस वक्त न सूझा, नहीं उनसे क्यों बिगाड़ करते?

यह कहकर पन्ना ने मुलिया की ओर संकेतपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुम्हें वह अलग न रहने देगा बहू, कहता है, भैया हमारे लिए मर गए तो हम भी उनके बाल-बच्चों के लिए मर जाएँगे।

मुलिया की आंखों से आँसू जारी थे। पन्ना की बातों में आज सच्ची वेदना, सच्ची सान्त्वना, सच्ची चिन्ता भरी हुई थी। मुलिया का मन कभी उसकी ओर इतना आकर्षित न हुआ था। जिनसे उसे व्यंग्य और प्रतिकार का भय था, वे इतने दयालु, इतने शुभेच्छु हो गए थे।

आज पहली बार उसे अपनी स्वार्थपरता पर लज्जा आई। पहली बार आत्मा ने अलगयोझे पर धिक्कारा।

9

इस घटना को हुए पाँच साल गुजर गए। पन्ना आज बूढ़ी हो गई है। केदार घर का मालिक है। मुलिया घर की मालकिन है। खुन्नू और लछमन के विवाह हो चुके हैं: मगर केदार अभी तक क्वॉरा है। कहता हैं—मैं विवाह न करूँगा। कई जगहों से बातचीत हुई, कई सगाइयाँ आयीं: पर उसे हामी न भरी। पन्ना ने कम्पे लगाए, जाल फैलाए, पर व न फँसा। कहता—औरतों से कौन सुख? मेहरिया घर में आयी और आदमी का मिजाज बदला। फिर जो कुछ है, वह मेहरिया है। माँ-बाप, भाई-बन्धु सब पराए हैं। जब भैया जैसे आदमी का मिजाज बदल गया, तो फिर दूसरों की क्या गिनती? दो लड़के भगवान् के दिये हैं और क्या चाहिए। बिना ब्याह किए दो बेटे मिल गए, इससे बढ़कर और क्या होगा? जिसे अपना समझो, व अपना है: जिसे गैर समझो, वह गैर है।

एक दिन पन्ना ने कहा—तेरा वंश कैसे चलेगा?
 केदार—मेरा वंश तो चल रहा है। दोनों लड़कों को अपना ही समझता हूँ।
 पन्ना—समझने ही पर है, तो तू मुलिया को भी अपनी मेहरिया समझता होगा?
 केदार ने झेंपते हुए कहा—तुम तो गाली देती हो अम्माँ!
 पन्ना—गाली कैसी, तेरी भाभी ही तो है!
 केदार—मेरे जैसे लट्ठ-गँवार को वह क्यों पूछने लगी!
 पन्ना—तू करने को कह, तो मैं उससे पूछूँ?
 केदार—नहीं मेरी अम्माँ, कहीं रone-गाने न लगे।
 पन्ना—तेरा मन हो, तो मैं बातों-बातों में उसके मन की थाह लूँ?
 केदार—मैं नहीं जानता, जो चाहे कर।
 पन्ना केदार के मन की बात समझ गई। लड़के का दिल मुलिया पर आया हुआ है: पर संकोच और भय के मारे कुछ नहीं कहता।
 उसी दिन उसने मुलिया से कहा—क्या करूँ बहू, मन की लालसा मन में ही रह जाती है। केदार का घर भी बस जाता, तो मैं निश्चिन्त हो जाती।
 मुलिया—वह तो करने को ही नहीं कहते।
 पन्ना—कहता है, ऐसी औरत मिले, जो घर में मेल से रहे, तो कर लूँ।
 मुलिया—ऐसी औरत कहाँ मिलेगी? कहीं ढूँढ़ो।
 पन्ना—मैंने तो ढूँढ़ लिया है।
 मुलिया—सच, किस गाँव की है?
 पन्ना—अभी न बताऊँगी, मुदा यह जानती हूँ कि उससे केदार की सगाई हो जाए, तो घर बन जाए और केदार की जिन्दगी भी सुफल हो जाए। न जाने लड़की मानेगी कि नहीं।
 मुलिया—मानेगी क्यों नहीं अम्माँ, ऐसा सुन्दर कमाऊ, सुशील वर और कहाँ मिला जाता है? उस जनम का कोई साधु-महात्मा है, नहीं तो लड़ाई-झगड़े के डर से कौन बिन ब्याहा रहता है। कहाँ रहती है, मैं जाकर उसे मना लाऊँगी।
 पन्ना—तू चाहे, तो उसे मना ले। तेरे ही ऊपर है।
 मुलिया—मैं आज ही चली जाऊँगी, अम्मा, उसके पैरों पड़कर मना लाऊँगी।
 पन्ना—बता दूँ, वह तू ही है!
 मुलिया लजाकर बोली—तुम तो अम्माँजी, गाली देती हो।
 पन्ना—गाली कैसी, देवर ही तो है!
 मुलिया—मुझ जैसी बुढ़िया को वह क्यों पूछेंगे?
 पन्ना—वह तुझी पर दाँत लगाए बैठा है। तेरे सिवा कोई और उसे भाती ही नहीं। डर के मारे कहता नहीं: पर उसके मन की बात मैं जानती हूँ।
 वैधव्य के शौक से मुरझाया हुआ मुलिया का पीत वदन कमल की भाँति अरुण हो उठा। दस वर्षों में जो कुछ खोया था, वह इसी एक क्षण में मानों ब्याज के साथ मिल गया। वही लवण्य, वही विकास, वहीं आकर्षण, वहीं लोच।

रमजान के पूरे तीस रोजों के बाद ईद आयी है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभाव है। वृक्षों पर अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, यानी संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं हैं, पड़ोस के घर में सुई-धागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर पर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगी। तीन कोस का पेदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना, दोपहर के पहले लोटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोजा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं, लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोजे बड़े-बूढ़े के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे, आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी चिंताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवेयां खाएँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर काधन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस, बारह, उसके पास बारह पैसे हैं। मोहनसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पंद्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीजें लाएँगे—खिलौने, मिठाइयां, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या।

और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता क्या बीमारी है। कहती तो कौन सुनने वाला था? दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया, तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गए हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लहा मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई हैं, इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियमतें लेकर आएँगी, तो वह दिल से अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे।

अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन, उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता, तो क्या इसी तरह ईद आती ओर चली जाती! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को? इस घर में उसका काम नहीं, लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने के क्या मतलब? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आये, हामिद की आनंद-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिल्कुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है! उसे कैसे अकेले मेले जाने दे? उस भीड़-भाड़ से बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो? नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्ही-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे? पैर में छाले पड़ जाएँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद में ले लेती, लेकिन यहाँ सेवैयों कोन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लोटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घंटों चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे का ही तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिले थे। आठ आने पेसे मिले थे। उस उठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती? हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटुवें में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार, अल्ला ही बेड़ा पर लगाए। धोबन और नाइन ओर मेहतरानी और चुड़िहारिन सभी तो आएँगी। सभी को सेवेयाँ चाहिए और थोड़ा

किसी को आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुरायेगी? और मुँह क्यों चुराए? साल-भर का त्यौहार हैं। जिन्दगी खैरियत से रहें, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है: बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएँगे।

गाँव से मेला चला। ओर बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इंतजार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं? हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है? शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशान लगाता है। माली अंदर से गाली देता हुआ निलता है। लड़के वहाँ से एक फलॉग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को केसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लब घर है। इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे? सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच! उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे ओर क्या करेंगे इतना पढ़कर! हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिल्कुल तीन कौड़ी के। रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे ओर क्या। क्लब-घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुर्दों की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अंदर नहीं जाने देते। और वहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछो-दाढ़ी वाले। और मेमें भी खेलती हैं, सच! हमारी अम्माँ को यह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सके। घुमाते ही लुढ़क जाएँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोल—चलों, मनो आटा पीस डालती हैं। जरा-सा बैट पकड़ लेगी, तो हाथ काँपने लगेंगे! सौकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े, तो आँखों तक अँधेरी आ जाए।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन—हाँ, उछल-कूद तो नहीं सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, अम्माँ इतना तेज दौड़ी कि मैं उन्हें न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाईयों की दुकानें शुरू हुई। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता? देखो न, एक-एक दूकान पर मनो होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिल्कुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जाएँगी?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रुपये की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें चले जाएँ। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में! हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए, उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जाएँ।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते हैं?

मोहसिन—एक-एक सिर आसमान के बराबर होता है जी! जमीन पर खड़ा हो जाए तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे? कोई मुझे यह मंत्र बता दे तो एक जिनन को खुश कर लूँ।

मोहसिन—अब यह तो न जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत-से जिन्नात हैं। कोई चीज चोरी जाए चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे ओर चोर का नाम बता देंगे। जुमराती का बछ्वा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला तब झूख मारकर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरन्त बता दिया, मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबर दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबिल कवायद करते हैं। रैटन! फाय फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबिल पहरा देते हैं? तभी तुम बहुत जानते हो अजी हजरत, यह चोरी करते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जाते रहो!' पुकारते हैं। तभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामू

एक थाने में कानिसटिबिल हैं। बरस रूपया महीना पाते हैं, लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम! मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला..अरे, पागल! इन्हें कौन पकड़ेगा! पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं, लेकिन अल्लाह, इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए, मामू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे! फिरन जाने कहाँ से एक सौ कर्ज लाए तो बरतन-भाँड़े आए।

हामिद—एक सौ तो पचार से ज्यादा होते हैं?

‘कहाँ पचास, कहाँ एक सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आएँ?’

अब बस्ती घनी होने लगी। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नजर आने लगी। एक से एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते और पीछे से आर्न की आवाज होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आई। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है। नाचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजम ढिछा हुआ है। और रोजेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ जाजम भी नहीं है। नए आने वाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सबके सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं, और एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं, और एक साथ खड़े हो जाते हैं, कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बतियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएँ, और यही ग्रम चलता, रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनंतता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थीं, मानों भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए हैं।

2

नमाज खत्म हो गई। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दूकान पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला हैं एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट, छड़ों में लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन ओर नूरे ओर सम्मी इन घोड़ों ओर ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई जरा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। अधर दूकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, राज ओर वकी, भिश्ती और धोबिन और साधु। वह! कते सुन्दर खिलौने हैं। अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कंधे पर बंदूक रखे हुए, मालूम होता है, अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसंद आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए हैं मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है! शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी अड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उसके मुख पर! काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पौथा लिये हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े तो चूर-चूर हो जाए। जरा पानी पड़े तो सारा रंग घुल जाए। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के!

मोहसिन कहता है—मेरा भिश्ती रोज पानी दे जाएगा साँझ-सबेरे

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा कोई चोर आएगा, तो फौरन बंदूक से फ़ैर कर देगा।

नूरे—ओर मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी—ओर मेरी धोबिन रोज कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निंदा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरे तो चकनाचूर हो जाएँ, लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि जरा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते हैं, विशेषकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन किसी ने सोहन हलवा। मजे से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबक ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है!

हामिद को सदेह हुआ, ये केवल क्रूर विनोद हैं मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद नूरे ओर सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा, अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्लाह कसम, ले जा।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगें?

महमूद—हमसे गुलाबजामुन ले जाओ हामिद। मोहमिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिन में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद—इस समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खाएगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीजों की, कुछ गिल्ट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वे सब आगे बढ़ जाते हैं, हामिद लोहे की दुकान पर रुक जात है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे ख्याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तब से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है। अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे तो वह कितना प्रसन्न होगी! फिर उनकी ऊंगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जाएगी। खिलौने से क्या फायदा? व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। जरा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौने को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। यह तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जाएँगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तब से उतार लो, चूल्हें में सेंक लो। कोई आग माँगने आये तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुरसत है कि बाजार आएँ और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं? रोज हाथ जला लेती हैं।

हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सबके सब शर्बत पी रहे हैं। देखो, सब कतने लालची हैं। इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खाएँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही जबान चटोरी हो जाएगी। तब घर से पैसे चुराएँगे और मार खाएँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी जबान क्यों खराब होगी? अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौने पर कौन इन्हें दुआएँ देगा? बड़ों का दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरंत सुनी जाती हैं। मैं भी इनसे मिजाज क्यों सहूँ? मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाते। आखिर अब्बाजान कभी न कभी आएँगे। अम्मा भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलौने लगे? एक-एक को टोकरियाँ खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह का सलूक किया जात है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं, तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सबके सब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हंसें! मेरी बला से! उसने दुकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है?

दुकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—तुम्हारे काम का नहीं है जी!

‘बिकाऊ है कि नहीं?’

‘बिकाऊ क्यों नहीं है? और यहाँ क्यों लाद लाए हैं?’

तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?’

‘छः पैसे लगेंगे।’

हामिद का दिल बैठ गया।

‘ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।’

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ व आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दी। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानों बंदूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। जरा सुनें, सबके सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं!

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले, इसे क्या करेगा?

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटककर कहा—जरा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँ बचा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं है! अभी कन्धे पर रखा, बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएँ, मेरे चिमटे का बाल भी बँका नहीं कर सकते मेरा बहादुर शेर है चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। जरा-सा पानी लग जाए तो खत्म हो जाए। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, अब पैसे किसके पास धरे हैं? फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हा गया! दूसरे पक्ष से जा मिला, लेकिन मोहनि, महमूद और नूरे भी हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जाएँ, जो मियाँ सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागे, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुँह छिपाकर जमीन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रूस्तमे-हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी—चोटी का जारे लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता?

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डांट बताएगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमुक पहुँचाई—अगर बचा पकड़ जाएँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के पैरों पड़ेगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमें पकड़ने कौने आएगा?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बंदूकवाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रूस्तमे—हिंद को पकड़ेंगे! अच्छा लाओ, अभी जरा कुश्ती हो जाए। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे। पकड़ेंगे क्या बेचारे!

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा, लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरंत जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लैडियों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में वह काम है, जो यह रूस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।

महमूद ने एक जोर लगाया—वकील साहब कुरसी—मेज पर बैठेगे, तुम्हारा चिमटा तो बाबरचीखाने में जमीन पर पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

इस तर्क ने सम्मी औरनूरे को भी सजी कर दिया! कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने! चिमटा बाबरचीखाने में पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा, तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बाबरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुर्सी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खाल गाली-गलौज थी, लेकिन कानून को पेट में डालनेवाली बात छा गई। ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए मानो कोई धेलचा कानकौआ किसी गंडेवाले कनकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकलने वाली चीज है। उसको पेट के अन्दर डाल दिया जाना बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रूस्तमे-हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारनेवालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किए, पर कोई काम की चीज न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा? टूट-फूट जाएँगी। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों?

संधि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—जरा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए।

हामिद को इन शर्तों को मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया, और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच! यह चिमटा भला, इन खिलौनों की क्या बराबर करेगा, मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिल्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा?

महमूद—दुआ को लिय फिरते हो। उल्टे मार न पड़े। अम्मां जरूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने मिले?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की मां इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब-कुछ करना था और उन पैसों के इस उपयों पर पछतावे की बिल्कुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रूस्तमें—हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिये। महमूद ने केवल हामिद को साड़ी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

3

गया रह बजे गाँव में हलचल मच गई। मेलेवाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जा उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मार-पीट हुई। दानों खूब रोए। उसकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अंत उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर हो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में खूँटियाँ गाड़ी गई। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिदाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। आदालतों में खर की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो! कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जाएगी कि नहीं? बाँस कापंखा आया और नूरे हवा करने लगे मालूम नहीं, पंखे की हवा से या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्गलोक से मृत्युलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया! फिर बड़े जोर-शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चलें वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाए गए जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरह 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए, नूरे को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिये जमीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है।

महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिला गया है जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जावब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपांतर चाहों, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

‘यह चिमटा कहाँ था?’

‘मैंने मोल लिया है।’

‘कैसे?’

‘तीन पैसे दिये।’

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, चिमटा! ‘सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?’

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा—‘तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं, इसलिए मैंने इसे लिया।’

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना व्याग, कितना सदभाव और कितना विवेक है! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा? इतना जब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गदगद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूंदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

आज बन्दी छूटकर घर आ रहा है। करुणा ने एक दिन पहले ही घर लीप-पोत रखा था। इन तीन वर्षों में उसने कठिन तपस्या करके जो दस-पाँच रुपये जमा कर रखे थे, वह सब पति के सत्कार और स्वागत की तैयारियों में खर्च कर दिए। पति के लिए धोतियों का नया जोड़ा लाई थी, नए कुरते बनवाए थे, बच्चे के लिए नए कोट और टोपी की आयोजना की थी। बार-बार बच्चे को गले लगाती ओर प्रसन्न होती। अगर इस बच्चे ने सूर्य की भाँति उदय होकर उसके अंधेरे जीवन को प्रदीप्त न कर दिया होता, तो कदाचित् ठोकरों ने उसके जीवन का अन्त कर दिया होता। पति के कारावास-दण्ड के तीन ही महीने बाद इस बालक का जन्म हुआ। उसी का मुँह देख-देखकर करुणा ने यह तीन साल काट दिए थे। वह सोचती—जब मैं बालक को उनके सामने ले जाऊँगी, तो वह कितने प्रसन्न होंगे! उसे देखकर पहले तो चकित हो जाएँगे, फिर गोद में उठा लेंगे और कहेंगे—करुणा, तुमने यह रत्न देकर मुझे निहाल कर दिया। कैद के सारे कष्ट बालक की तोतली बातों में भूल जाएँगे, उनकी एक सरल, पवित्र, मोहक दृष्टि हृदय की सारी व्यवस्थाओं को धो डालेगी। इस कल्पना का आनन्द लेकर वह फूली न समाती थी।

वह सोच रही थी—आदित्य के साथ बहुत—से आदमी होंगे। जिस समय वह द्वार पर पहुँचेंगे, जय—जयकार की ध्वनि से आकाश गूँज उठेगा। वह कितना स्वर्गीय दृश्य होगा! उन आदमियों के बैठने के लिए करुणा ने एक फटा-सा टाट बिछा दिया था, कुछ पान बना दिए थे और बार-बार आशामय नेत्रों से द्वार की ओर ताकती थी। पति की वह सुदृढ़ उदार तेजपूर्ण मुद्रा बार-बार आँखों में फिर जाती थी। उनकी वे बातें बार-बार याद आती थीं, जो चलते समय उनके मुख से निकलती थी, उनका वह धैर्य, वह आत्मबल, जो पुलिस के प्रहारों के सामने भी अटल रहा था, वह मुस्कराहट जो उस समय भी उनके अधरों पर खेल रही थी; वह आत्मभिमान, जो उस समय भी उनके मुख से टपक रहा था, क्या करुणा के हृदय से कभी विस्मृत हो सकता था! उसका स्मरण आते ही करुणा के निस्तेज मुख पर आत्मगौरव की लालिमा छा गई। यही वह अवलम्ब था, जिसने इन तीन वर्षों की घोर यातनाओं में भी उसके हृदय को आश्वासन दिया था। कितनी ही राते फाकों से गुजरीं, बहुधा घर में दीपक जलने की नौबत भी न आती थी, पर दीनता के आँसू कभी उसकी आँखों से न गिरे। आज उन सारी विपत्तियों का अन्त हो जाएगा। पति के प्रगाढ़ आलिंगन में वह सब कुछ हँसकर झेल लेगी। वह अनंत निधि पाकर फिर उसे कोई अभिलाषा न रहेगी।

गगन-पथ का चिरगामी लपका हुआ विश्राम की ओर चला जाता था, जहाँ संध्या ने सुनहरा फर्श सजाया था और उज्ज्वल पुष्पों की सेज बिछा रखी थी। उसी समय करुणा को एक आदमी लाठी टेकता आता दिखाई दिया, मानो किसी जीर्ण मनुष्य की वेदना-ध्वनि हो। पग-पग पर रुककर खँसने लगता था। उसका सिर झुका हुआ था, करुणा उसका चेहरा न देख सकती थी, लेकिन चाल-ढाल से कोई बूढ़ा आदमी मालूम होता था; पर एक क्षण में जब वह समीप आ गया, तो करुणा पहचान गई। वह उसका प्यारा पति ही था, किन्तु शोक! उसकी सूरत कितनी बदल गई थी। वह जवानी, वह तेज, वह चपलता, वह सुगठन, सब प्रस्थान कर चुका था। केवल हड्डियों का एक ढाँचा रह गया था। न कोई संगी, न साथी, न यार, न दोस्त। करुणा उसे पहचानते ही बाहर निकल आयी, पर आलिंगन की कामना हृदय में दबाकर रह गई। सारे मनसूबे धूल में मिल गए। सारा मनोल्लास आँसुओं के प्रवाह में बह गया, विलीन हो गया।

आदित्य ने घर में कदम रखते ही मुस्कराकर करुणा को देखा। पर उस मुस्कान में वेदना का एक संसार भरा हुआ था। करुणा ऐसी शिथिल हो गई, मानो हृदय का स्पंदन रुक गया हो। वह फटी हुई आँखों से स्वामी की ओर टकटकी बाँधे खड़ी थी, मानो उसे अपनी आँखों पर अब भी विश्वास न आता हो। स्वागत या दुःख का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। बालक भी गोद में बैठा हुआ सहमी आँखें से इस कंकाल को देख रहा था और माता की गोद में चिपटा जाता था।

आखिर उसने कातर स्वर में कहा—यह तुम्हारी क्या दशा है? बिल्कुल पहचाने नहीं जाते!

आदित्य ने उसकी चिन्ता को शांत करने के लिए मुस्कराने की चेष्टा करके कहा—कुछ नहीं, जरा दुबला हो गया हूँ। तुम्हारे हाथों का भोजन पाकर फिर स्वस्थ हो जाऊँगा।

करुणा—छी! सूखकर काँटा हो गए। क्या वहाँ भरपेट भोजन नहीं मिलात? तुम कहते थे, राजनैतिक आदमियों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया जाता है और वह तुम्हारे साथी क्या हो गए जो तुम्हें आठों पहर घेरे रहते थे और तुम्हारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार रहते थे?

आदित्य की तयोरियों पर बल पड़ गए। बोले—यह बड़ा ही कटु अनुभव है करुणा! मुझे न मालूम था कि मेरे कैद होते ही लोग मेरी ओर से यों आँखें फेर लेंगे, कोई बात भी न पूछेगा। राष्ट्र के नाम पर मिटनेवालों का यही पुरस्कार है, यह मुझे न मालूम था। जनता अपने सेवकों को बहुत जल्द भूल जाती है, यह तो मैं जानता था, लेकिन अपने सहयोगी और सहायक इतने बेवफा होते हैं, इसका मुझे यह पहला ही अनुभव हुआ। लेकिन मुझे किसी से शिकायत नहीं। सेवा स्वयं अपना पुरस्कार हैं। मेरी भूल थी कि मैं इसके लिए यश और नाम चाहता था।

करुणा—तो क्या वहाँ भोजन भी न मिलता था?

आदित्य—यह न पूछो करुणा, बड़ी करुण कथा है। बस, यही गनीमत समझो कि जीता लौट आया। तुम्हारे दर्शन बदे थे, नहीं कष्ट तो ऐसे-ऐसे उठाए कि अब तक मुझे प्रस्थान कर जाना चाहिए था। मैं जरा लेटंगा। खड़ा नहीं रहा जाता। दिन-भर मैं इतनी दूर आया हूँ।

करुणा—चलकर कुछ खा लो, तो आराम से लेटो। (बालक को गोद में उठाकर) बाबूजी हैं बेटा, तुम्हारे बाबूजी। इनकी गोद में जाओ, तुम्हें प्यार करेंगे।

आदित्य ने आँसू-भरी आँखों से बालक को देखा और उनका एक-एक रोम उनका तिरस्कार करने लगा। अपनी जीर्ण दशा पर उन्हें कभी इतना दुःख न हुआ था। ईश्वर की असीम दया से यदि उनकी दशा संभल जाती, तो वह फिर कभी राष्ट्रीय आन्दोलन के समीप न जाते। इस फूल-से बच्चे को यों संसार में लाकर दरिद्रता की आग में झोंकने का उन्हें क्या अधिकार था? वह अब लक्ष्मी की उपासना करेंगे और अपना क्षुद्र जीवन बच्चे के लालन-पालन के लिए अर्पित कर देंगे। उन्हें इस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि बालक उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है, मानो कह रहा है—‘मेरे साथ आपने कौन-सा कर्तव्य-पालन किया?’ उनकी सारी कामना, सारा प्यार बालक को हृदय से लगा देने के लिए अधीर हो उठा, पर हाथ फैल न सके। हाथों में शक्ति ही न थी।

करुणा बालक को लिये हुए उठी और थाली में कुछ भोजन निकलकर लाई। आदित्य ने क्षुधापूर्ण, नेत्रों से थाली की ओर देखा, मानो आज बहुत दिनों के बाद कोई खाने की चीज सामने आई हैं। जानता था कि कई दिनों के उपवास के बाद और आरोग्य की इस गई-गुजरी दशा में उसे जबान को काबू में रखना चाहिए पर सब्र न कर सका, थाली पर टूट पड़ा और देखते-देखते थाली साफ कर दी। करुणा सशंक हो गई। उसने दोबारा किसी चीज के लिए न पूछा। थाली उठाकर चली गई, पर उसका दिल कह रहा था—इतना तो कभी न खाते थे।

करुणा बच्चे को कुछ खिला रही थी, कि एकाएक कानों में आवाज आई—करुणा!

करुणा ने आकर पूछा—क्या तुमने मुझे पुकारा है?

आदित्य का चेहरा पीला पड़ गया था और साँस जोर-जोर से चल रही थी। हाथों के सहारे वही टाट पर लेट गए थे। करुणा उनकी यह हालत देखकर घबर गई। बोली—जाकर किसी वैद्य को बुला लाऊँ?

आदित्य ने हाथ के इशारे से उसे मना करके कहा—व्यर्थ है करुणा! अब तुमसे छिपाना व्यर्थ है, मुझे तपेदिक हो गया है। कई बार मरते-मरते बच गया हूँ। तुम लोगों के दर्शन बदे थे, इसलिए प्राण न निकलते थे। देखो प्रिये, रोओ मत।

करुणा ने सिसकियों को दबाते हुए कहा—मैं वैद्य को लेकर अभी आती हूँ।

आदित्य ने फिर सिर हिलाया—नहीं करुणा, केवल मेरे पास बैठी रहो। अब किसी से कोई आशा नहीं है। डाक्टरों ने जवाब दे दिया है। मुझे तो यह आश्चर्य है कि यहाँ पहुँच कैसे गया। न जाने कौन दैवी शक्ति मुझे वहाँ से खींच लाई। कदाचित् यह इस बुझते हुए दीपक की अन्तिम झलक थी। आह! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। इसका मुझे हमेशा दुःख रहेगा! मैं तुम्हें कोई आराम न दे सका। तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। केवल सोहाग का दाग लगाकर और एक बालक के पालन का भार छोड़कर चला जा रहा हूँ। आह!

करुणा ने हृदय को दृढ़ करके कहा—तुम्हें कहीं दर्द तो नहीं है? आग बना लाऊँ? कुछ बताते क्यों नहीं?

आदित्य ने करवट बदलकर कहा—कुछ करने की जरूरत नहीं प्रिये! कहीं दर्द नहीं। बस, ऐसा मालूम हो रहा है कि दिल बैठा जाता है, जैसे पानी में डूबा जाता हूँ। जीवन की लीला समाप्त हो रही है। दीपक को बुझते हुए देख रहा हूँ। कह नहीं सकता, कब आवाज बन्द हो जाए। जो कुछ कहना है, वह कह डालना चाहता हूँ, क्यों वह लालसा ले जाऊँ। मेरे एक प्रश्न का जवाब दोगी, पूछूँ?

करुणा के मन की सारी दुर्बलता, सारा शोक, सारी वेदना मानो लुप्त हो गई और उनकी जगह उस आत्मबल का उदय हुआ, जो मृत्यु पर हँसता है और विपत्ति के साँपों से खेलता है। रत्नजटित मखमली म्यान में जैसे तेज तलवार छिपी रहती है, जल के कोमल प्रवाह में जैसे असीम शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही रमणी का कोमल हृदय साहस और धैर्य को अपनी गोद में छिपाए रहता है। क्रोध जैसे तलवार को बाहर खींच लेता है, विज्ञान जैसे जल-शक्ति का उदघाटन कर लेता है, वैसे ही प्रेम रमणी के साहस और धैर्य को प्रदीप्त कर देता है।

करुणा ने पति के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—पूछते क्यों नहीं प्यारे!

आदित्य ने करुणा के हाथों के कोमल स्पर्श का अनुभव करते हुए कहा—तुम्हारे विचार में मेरा जीवन कैसा था? बधाई के योग्य? देखो, तुमने मुझसे कभी पर्दा नहीं रखा। इस समय भी स्पष्ट कहना। तुम्हारे विचार में मुझे अपने जीवन पर हँसना चाहिए या रोना चाहिए?

करुणा ने उल्लास के साथ कहा—यह प्रश्न क्यों करते हो प्रियतम? क्या मैंने तुम्हारी उपेक्षा कभी की है? तुम्हारा जीवन देवताओं का—सा जीवन था, निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श! विघ्न-बाधाओं से तंग आकर मैंने तुम्हें कितनी ही बार संसार की ओर खींचने की चेष्टा की है; पर उस समय भी मैं मन में जानती थी कि मैं तुम्हें ऊँचे आसन से गिरा रही हूँ। अगर तुम माया-मोह में फँसे होते, तो कदाचित् मेरे मन को अधिक संतोष होता; लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता, जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े-से-बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ, तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।

यह कहते-कहते करुणा का आभाहीन मुखमंडल जयोतिर्मय हो गया, मानो उसकी आत्मा दिव्य हो गई हो। आदित्य ने सगर्व नेत्रों से करुणा को देखकर कहा बस, अब मुझे संतोष हो गया, करुणा, इस बच्चे की ओर से मुझे कोई शंका नहीं है, मैं उसे इससे अधिक कुशल हाथों में नहीं छोड़ सकता। मुझे विश्वास है कि जीवन-भर यह ऊँचा और पवित्र आदर्श सदैव तुम्हारे सामने रहेगा। अब मैं मरने को तैयार हूँ।

2

सात वर्ष बीत गए।

बालक प्रकाश अब दस साल का रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्नमुख कुमार था, बल का तेज, साहसी और मनस्वी। भय तो उसे छू भी नहीं गया था। करुणा का संतप्त हृदय उसे देखकर शीतल हो जाता। संसार करुणा को अभागिनी और दीन समझे। वह कभी भाग्य का रोना नहीं रोती। उसने उन आभूषणों को बेच डाला, जो पति के जीवन में उसे प्राणों से प्रिय थे, और उस धन से कुछ गायें और भैंसे मोल ले लीं। वह कृषक की बेटी थी, और गो-पालन उसके लिए कोई नया व्यवसाय न था। इसी को उसने अपनी जीविका का साधन बनाया। विशुद्ध दूध कहाँ मयस्सर होता है? सब दूध हाथों-हाथ बिक जाता। करुणा को पहर रात से पहर रात तक काम में लगा रहना पड़ता, पर वह प्रसन्न थी। उसके मुख पर निराशा या दीनता की छाया नहीं, संकल्प और साहस का तेज है। उसके एक-एक अंग से आत्मगौरव की ज्योति-सी निकल रही है; आँखों में एक दिव्य प्रकाश है, गंभीर, अथाह और असीम। सारी वेदनाएँ—वैधव्य का शोक और विधि का निर्मम प्रहार—सब उस प्रकाश की गहराई में विलीन हो गया है।

प्रकाश पर वह जान देती है। उसका आनंद, उसकी अभिलाषा, उसका संसार उसका स्वर्ग सब प्रकाश पर न्यौछावर है; पर यह मजाल नहीं कि प्रकाश कोई शरारत करे और करुणा आँखें बंद कर ले। नहीं, वह उसके चरित्र की बड़ी कठोरता से देख-भाल करती है। वह प्रकाश की माँ नहीं, माँ-बाप दोनों हैं। उसके पुत्र-स्नेह में माता की ममता के साथ पिता की कठोरता भी मिली हुई है। पति के अन्तिम शब्द अभी तक उसके कानों में गूँज रहे हैं। वह आत्मोल्लास, जो उनके चेहरे पर झलकने लगा था, वह गर्वमय लाली, जो उनकी आँखों में छा गई थी, अभी तक उसकी आँखों में फिर रही है। निरंतर पति-चिन्तन ने आदित्य को उसकी आँखों में प्रत्यक्ष कर दिया है। वह सदैव उनकी उपस्थिति का अनुभव किया करती है। उसे ऐसा जान पड़ता है कि आदित्य की आत्मा सदैव उसकी रक्षा करती रहती है। उसकी यही हार्दिक अभिलाषा है कि प्रकाश जवान होकर पिता का पथगामी हो।

संध्या हो गई थी। एक भिखारिन द्वार पर आकर भीख माँगने लगी। करुणा उस समय गड्ढों को पानी दे रही थी। प्रकाश बाहर खेल रहा था। बालक ही तो ठहरा! शरारत सूझी। घर में गया और कटोरे में थोड़ा-सा भूसा लेकर बाहर निकला। भिखारिन ने अबकी झोली फैला दी। प्रकाश ने भूसा उसकी झोली में डाल दिया और जोर-जोर से तालियाँ बजाता हुआ भागा।

भिखारिन ने अग्निमय नेत्रों से देखकर कहा—वाहरे लाड़ले! मुझसे हँसी करने चला है! यही माँ-बाप ने सिखाया है! तब तो खूब कुल का नाम जगाओगे!

करुणा उसकी बोली सुनकर बाहर निकल आयी और पूछा—क्या है माता? किसे कह रही हो?

भिखारिन ने प्रकाश की तरफ इशारा करके कहा—वह तुम्हारा लड़का है न। देखो, कटोरे में भूसा भरकर मेरी झोली में डाल गया है। चुटकी-भर आटा था, वह भी मिट्टी में मिल गया। कोई इस तरह दुखियों को सताता है? सबके दिन एक-से नहीं रहते! आदमी को घमंड न करना चाहिए।

करुणा ने कठोर स्वर में पुकारा—प्रकाश?

प्रकाश लज्जित न हुआ। अभिमान से सिर उठाए हुए आया और बोला—वह हमारे घर भीख क्यों माँगने आयी है? कुछ काम क्यों नहीं करती?

करुणा ने उसे समझाने की चेष्टा करके कहा—शर्म नहीं आती, उल्टे और आँख दिखाते हो।

प्रकाश—शर्म क्यों आए? यह क्यों रोज भीख माँगने आती है? हमारे यहाँ क्या कोई चीज मुफ्त आती है?

करुणा—तुम्हें कुछ न देना था तो सीधे से कह देते; जाओ। तुमने यह शरारत क्यों की?

प्रकाश—उनकी आदत कैसे छूटती?

करुणा ने बिगड़कर कहा—तुम अब पिटोंगे मेरे हाथों।

प्रकाश—पिटूँगा क्यों? आप जबरदस्ती पीटेंगी? दूसरे मुल्कों में अगर कोई भीख माँगे, तो कैद कर लिया जाए। यह नहीं कि उल्टे भिखमंगो को और शह दी जाए।

करुणा—जो अपंग है, वह कैसे काम करे?

प्रकाश—तो जाकर डूब मरे, जिन्दा क्यों रहती है?

करुणा निरुत्तर हो गई। बुढ़िया को तो उसने आटा-दाल देकर विदा किया, किन्तु प्रकाश का कुतर्क उसके हृदय में फोड़े के समान टीसता रहा। उसने यह धृष्टता, यह अविनय कहाँ सीखी? रात को भी उसे बार-बार यही खयाल सताता रहा।

आधी रात के समीप एकाएक प्रकाश की नींद टूटी। लालटेन जल रही है और करुणा बैठी रो रही है। उठ बैठा और बोला—अम्माँ, अभी तुम सोई नहीं?

करुणा ने मुँह फेरकर कहा—नींद नहीं आई। तुम कैसे जग गए? प्यास तो नहीं लगी है?

प्रकाश—नहीं अम्माँ, न जाने क्यों आँख खुल गई—मुझसे आज बड़ा अपराध हुआ, अम्माँ !

करुणा ने उसके मुख की ओर स्नेह के नेत्रों से देखा।

प्रकाश—मैंने आज बुढ़िया के साथ बड़ी नटखट की। मुझे क्षमा करो, फिर कभी ऐसी शरारत न करूँगा।

यह कहकर रोने लगा। करुणा ने स्नेहार्द्र होकर उसे गले लगा लिया और उसके कपोलों का चुम्बन करके बोली—बेटा, मुझे खुश करने के लिए यह कह रहे हो या तुम्हारे मन में सचमुच पछतावा हो रहा है?

प्रकाश ने सिसकते हुए कहा—नहीं, अम्माँ, मुझे दिल से अफसोस हो रहा है। अबकी वह बुढ़िया आएगी, तो मैं उसे बहुत-से पैसे दूँगा।

करुणा का हृदय मतवाला हो गया। ऐसा जान पड़ा, आदित्य सामने खड़े बच्चे को आशीर्वाद दे रहे हैं और कह रहे हैं, करुणा, क्षोभ मत कर, प्रकाश अपने पिता का नाम रोशन करेगा। तेरी संपूर्ण कामना पूरी हो जाएगी।

3

लेकिन प्रकाश के कर्म और वचन में मेल न था और दिनों के साथ उसके चरित्र का अंग प्रत्यक्ष होता जाता था। जहीन था ही, विश्वविद्यालय से उसे वजीफे मिलते थे, करुणा भी उसकी यथेष्ट सहायता करती थी, फिर भी उसका खर्च पूरा न पड़ता था। वह मितव्ययता और सरल जीवन पर विद्वत्ता से भरे हुए व्याख्यान दे सकता था, पर उसका रहन-सहन फैशन के अंधभक्तों से जौ-भर घटकर न था। प्रदर्शन की धुन उसे हमेशा सवार रहती थी। उसके मन और बुद्धि में निरंतर द्वन्द्व होता रहता था। मन जाति की ओर था, बुद्धि अपनी ओर। बुद्धि मन को दबाए रहती थी। उसके सामने मन की एक न चलती थी। जाति-सेवा ऊसर की खेती है, वहाँ बड़े-से-बड़ा उपहार जो मिल सकता है, वह है गौरव और यश; पर वह भी स्थायी नहीं, इतना अस्थिर कि क्षण में जीवन-भर की कमाई पर पानी फिर सकता है। अतएव उसका अन्तःकरण अनिवार्य वेग के साथ विलासमय जीवन की ओर झुकता था। यहां तक कि धीरे-धीरे उसे त्याग और निग्रह

से घृणा होने लगी। वह दुरवस्था और दरिद्रता को हेय समझता था। उसके हृदय न था, भाव न थे, केवल मस्तिष्क था। मस्तिष्क में दर्द कहाँ? वहाँ तो तर्क हैं, मनसूबे हैं।

सिन्ध में बाढ़ आई। हजारों आदमी तबाह हो गए। विद्यालय ने वहाँ एक सेवा समिति भेजी। प्रकाश के मन में द्वंद्व होने लगा—जाऊँ या न जाऊँ? इतने दिनों अगर वह परीक्षा की तैयारी करे, तो प्रथम श्रेणी में पास हो। चलते समय उसने बीमारी का बहाना कर दिया। करुणा ने लिखा, तुम सिन्ध न गये, इसका मुझे दुख है। तुम बीमार रहते हुए भी वहाँ जा सकते थे। समिति में चिकित्सक भी तो थे! प्रकाश ने पत्र का उत्तर न दिया।

उड़ीसा में अकाल पड़ा। प्रजा मक्खियों की तरह मरने लगी। कांग्रेस ने पीड़ितों के लिए एक मिशन तैयार किया। उन्हीं दिनों विद्यालयों ने इतिहास के छात्रों को ऐतिहासिक खोज के लिए लंका भेजने का निश्चय किया। करुणा ने प्रकाश को लिखा—तुम उड़ीसा जाओ। किन्तु प्रकाश लंका जाने को लालायित था। वह कई दिन इसी दुविधा में रहा। अंत को सीलोन ने उड़ीसा पर विजय पाई। करुणा ने अबकी उसे कुछ न लिखा। चुपचाप रोती रही।

सीलोन से लौटकर प्रकाश छुट्टियों में घर गया। करुणा उससे खिंची-खिंची रहीं। प्रकाश मन में लज्जित हुआ और संकल्प किया कि अबकी कोई अवसर आया, तो अम्माँ को अवश्य प्रसन्न करूँगा। यह निश्चय करके वह विद्यालय लौटा। लेकिन यहां आते ही फिर परीक्षा की फिक्र सवार हो गई। यहाँ तक कि परीक्षा के दिन आ गए; मगर इम्तहान से फुरसत पाकर भी प्रकाश घर न गया। विद्यालय के एक अध्यापक काश्मीर सैर करने जा रहे थे। प्रकाश उन्हीं के साथ काश्मीर चल खड़ा हुआ। जब परीक्षा-फल निकला और प्रकाश प्रथम आया, तब उसे घर की याद आई! उसने तुरन्त करुणा को पत्र लिखा और अपने आने की सूचना दी। माता को प्रसन्न करने के लिए उसने दो-चार शब्द जाति-सेवा के विषय में भी लिखे—अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। मैंने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य करने का निश्चय किया है इसी विचार से मैंने वह विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। हमारे नेता भी तो विद्यालयों के आचार्यों ही का सम्मान करते हैं। अभी वक इन उपाधियों के मोह से वे मुक्त नहीं हुए हैं। हमारे नेता भी योग्यता, सदुत्साह, लगन का उतना सम्मान नहीं करते, जितना उपाधियों का! अब मेरी इज्जत करेंगे और जिम्मेदारी को काम सौपेंगे, जो पहले माँगे भी न मिलता।

करुणा की आस फिर बँधी।

4

विद्यालय खुलते ही प्रकाश के नाम रजिस्ट्रार का पत्र पहुँचा। उन्होंने प्रकाश का इंग्लैंड जाकर विद्याभ्यास करने के लिए सरकारी वजीफे की मंजूरी की सूचना दी थी। प्रकाश पत्र हाथ में लिये हर्ष के उन्माद में जाकर माँ से बोला—अम्माँ, मुझे इंग्लैंड जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वजीफा मिल गया।

करुणा ने उदासीन भाव से पूछा—तो तुम्हारा क्या इरादा है?

प्रकाश—मेरा इरादा? ऐसा अवसर पाकर भला कौन छोड़ता है!

करुणा—तुम तो स्वयंसेवकों में भरती होने जा रहे थे?

प्रकाश—तो आप समझती हैं, स्वयंसेवक बन जाना ही जाति-सेवा है? मैं इंग्लैंड से आकर भी तो सेवा-कार्य कर सकता हूँ और अम्माँ, सच पूछो, तो एक मजिस्ट्रेट अपने देश का जितना उपकार कर सकता है, उतना एक हजार स्वयंसेवक मिलकर भी नहीं कर सकते। मैं तो सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठूँगा और मुझे विश्वास है कि सफल हो जाऊँगा।

करुणा ने चकित होकर पूछा—तो क्या तुम मजिस्ट्रेट हो जाओगे?

प्रकाश—सेवा-भाव रखनेवाला एक मजिस्ट्रेट कांग्रेस के एक हजार सभापतियों से ज्यादा उपकार कर सकता है। अखबारों में उसकी लम्बी-लम्बी तारीफें न छपेंगी, उसकी वक्तृताओं पर तालियाँ न बजेंगी, जनता उसके जुलूस की गाड़ी न खींचेगी और न विद्यालयों के छात्र उसको अभिनंदन-पत्र देंगे; पर सच्ची सेवा मजिस्ट्रेट ही कर सकता है।

करुणा ने आपत्ति के भाव से कहा—लेकिन यही मजिस्ट्रेट तो जाति के सेवकों को सजाएँ देते हैं, उन पर गोलियाँ चलाते हैं?

प्रकाश—अगर मजिस्ट्रेट के हृदय में परोपकार का भाव है, तो वह नरमी से वही काम करता है, जो दूसरे गोलियाँ चलाकर भी नहीं कर सकते।

करुणा—मैं यह नहीं मानूँगी। सरकार अपने नौकरों को इतनी स्वाधीनता नहीं देती। वह एक नीति बना देती है और हर एक सरकारी नौकर को उसका पालन करना पड़ता है। सरकार की पहली नीति यह है कि वह दिन-दिन अधिक संगठित और दृढ़ हों। इसके लिए स्वाधीनता के भावों का दमन करना जरूरी है; अगर कोई मजिस्ट्रेट इस नीति के विरुद्ध काम करता है, तो वह मजिस्ट्रेट न रहेगा। वह हिन्दुस्तानी था, जिसने तुम्हारे बाबूजी को जरा-सी बात पर तीन साल की सजा दे दी। इसी सजा ने उनके प्राण लिये बेटा, मेरी इतनी बात मानो। सरकारी पदों पर न गिरो। मुझे यह मंजूर है कि तुम मोटा खाकर और मोटा पहनकर देश की कुछ सेवा करो, इसके बदले कि तुम हाकिम बन जाओ और शान से जीवन बिताओ। यह समझ लो कि जिस दिन तुम हाकिम की कुरसी पर बैठोगे, उस दिन से तुम्हारा दिमाग हाकिमों का-सा हो जाएगा। तुम यही चाहोगे कि अफसरों में तुम्हारी नेकनामी और तरक्की हो। एक गँवारू मिसाल लो। लड़की जब तक मैके में क्वॉरी रहती है, वह अपने को उसी घर की समझती है, लेकिन जिस दिन ससुराल चली जाती है, वह अपने घर को दूसरे का घर समझने लगती है। माँ-बाप, भाई-बंद सब वही रहते हैं, लेकिन वह घर अपना नहीं रहता। यही दुनिया का दस्तूर है।

प्रकाश ने खीझकर कहा—तो क्या आप यही चाहती हैं कि मैं जिंदगी-भर चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूँ?

करुणा कठोर नेत्रों से देखकर बोली—अगर ठोकर खाकर आत्मा स्वाधीन रह सकती है, तो मैं कहूँगी, ठोकर खाना अच्छा है।

प्रकाश ने निश्चयात्मक भाव से पूछा—तो आपकी यही इच्छा है?

करुणा ने उसी स्वर में उत्तर दिया—हाँ, मेरी यही इच्छा है।

प्रकाश ने कुछ जवाब न दिया। उठकर बाहर चला गया और तुरन्त रजिस्ट्रार को इनकारी-पत्र लिख भेजा; मगर उसी क्षण से मानों उसके सिर पर विपत्ति ने आसन जमा लिया। विरक्त और विमन अपने कमरों में पड़ा रहता, न कहीं घूमने जाता, न किसी से मिलता। मुँह लटकाए भीतर आता और फिर बाहर चला जाता, यहाँ तक महीना गुजर गया। न चेहरे पर वह लाली रही, न वह ओज; आँखें अनाथों के मुख की भाँति याचना से भरी हुई, ओठ हँसना भूल गए, मानों उन इनकारी-पत्र के साथ उसकी सारी सजीवता, और चपलता, सारी सरलता बिदा हो गई। करुणा उसके मनोभाव समझती थी और उसके शोक को भुलाने की चेष्टा करती थी, पर रूठे देवता प्रसन्न न होते थे।

आखिर एक दिन उसने प्रकाश से कहा—बेटा, अगर तुमने विलायत जाने की ठान ही ली है, तो चले जाओ। मना न करूँगी। मुझे खेद है कि मैंने तुम्हें रोका। अगर मैं जानती कि तुम्हें इतना आघात पहुँचेगा, तो कभी न रोकती। मैंने तो केवल इस विचार से रोका था कि तुम्हें जाति-सेवा में मग्न देखकर तुम्हारे बाबूजी की आत्मा प्रसन्न होगी। उन्होंने चलते समय यही वसीयत की थी।

प्रकाश ने रूखाई से जवाब दिया—अब क्या जाऊँगा! इनकारी-खत लिख चुका। मेरे लिए कोई अब तक बैठा थोड़े ही होगा। कोई दूसरा लड़का चुन लिया होगा और फिर करना ही क्या है? जब आपकी मर्जी है कि गाँव-गाँव की खाक छानता फिरूँ, तो वही सही।

करुणा का गर्व चूर-चूर हो गया। इस अनुमति से उसने बाधा का काम लेना चाहा था; पर सफल न हुई। बोली—अभी कोई न चुना गया होगा। लिख दो, मैं जाने को तैयार हूँ।

प्रकाश ने झुंझलाकर कहा—अब कुछ नहीं हो सकता। लोग हँसी उड़ाएँगे। मैंने तय कर लिया है कि जीवन को आपकी इच्छा के अनुकूल बनाऊँगा।

करुणा—तुमने अगर शुद्ध मन से यह इरादा किया होता, तो यों न रहते। तुम मुझसे सत्याग्रह कर रहे हो; अगर मन को दबाकर, मुझे अपनी राह का काँटा समझकर तुमने मेरी इच्छा पूरी भी की, तो क्या? मैं तो जब जानती कि तुम्हारे मन में आप-ही-आप सेवा का भाव उत्पन्न होता। तुम आप ही रजिस्ट्रार साहब को पत्र लिख दो।

प्रकाश—अब मैं नहीं लिख सकता।

‘तो इसी शोक में तने बैठे रहोगे?’

‘लाचारी है।’

करुणा ने और कुछ न कहा। जरा देर में प्रकाश ने देखा कि वह कहीं जा रही है; मगर वह कुछ बोला नहीं। करुणा के लिए बाहर आना-जाना कोई असाधारण बात न थी; लेकिन जब संध्या हो गई और करुणा न आयी, तो प्रकाश को चिन्ता होने लगी। अम्मा कहाँ गयीं? यह प्रश्न बार-बार उसके मन में उठने लगा।

प्रकाश सारी रात द्वार पर बैठा रहा। भौँति-भौँति की शंकाएँ मन में उठने लगीं। उसे अब याद आया, चलते समय करुणा कितनी उदास थी; उसकी आंखें कितनी लाल थीं। यह बातें प्रकाश को उस समय क्यों न नजर आईं? वह क्यों स्वार्थ में अंधा हो गया था?

हाँ, अब प्रकाश को याद आया—माता ने साफ-सुथरे कपड़े पहने थे। उनके हाथ में छतरी भी थी। तो क्या वह कहीं बहुत दूर गयी हैं? किससे पूछे? अनिष्ट के भय से प्रकाश रोने लगा।

श्रावण की अँधेरी भयानक रात थी। आकाश में श्याम मेघमालाएँ, भीषण स्वप्न की भौँति छाई हुई थीं। प्रकाश रह-रहकर आकाश की ओर देखता था, मानो करुणा उन्हीं मेघमालाओं में छिपी बैठी है। उसने निश्चय किया, सवेरा होते ही माँ को खोजने चलूँगा और अगर....

किसी ने द्वार खटखटाया। प्रकाश ने दौड़कर खोल, तो देखा, करुणा खड़ी है। उसका मुख-मंडल इतना खोया हुआ, इतना करुण था, जैसे आज ही उसका सोहाग उठ गया है, जैसे संसार में अब उसके लिए कुछ नहीं रहा, जैसे वह नदी के किनारे खड़ी अपनी लदी हुई नाव को डूबते देख रही है और कुछ कर नहीं सकती।

प्रकाश ने अधीर होकर पूछा—अम्माँ कहाँ चली गई थीं? बहुत देर लगाई?

करुणा ने भूमि की ओर ताकते हुए जवाब दिया—एक काम से गई थी। देर हो गई।

यह कहते हुए उसने प्रकाश के सामने एक बंद लिफाफा फेंक दिया। प्रकाश ने उत्सुक होकर लिफाफा उठा लिया। ऊपर ही विद्यालय की मुहर थी। तुरन्त ही लिफाफा खोलकर पढ़ा। हलकी-सी लालिमा चेहरे पर दौड़ गयी। पूछा—यह तुम्हें कहाँ मिल गया अम्मा?

करुणा—तुम्हारे रजिस्ट्रार के पास से लाई हूँ।

‘क्या तुम वहाँ चली गई थी?’

‘और क्या करती।’

‘कल तो गाड़ी का समय न था?’

‘मोटर ले ली थी।’

प्रकाश एक क्षण तक मौन खड़ा रहा, फिर कुंठित स्वर में बोला—जब तुम्हारी इच्छा नहीं है तो मुझे क्यों भेज रही हो?

करुणा ने विरक्त भाव से कहा—इसलिए कि तुम्हारी जाने की इच्छा है। तुम्हारा यह मलिन वेश नहीं देखा जाता। अपने जीवन के बीस वर्ष तुम्हारी हितकामना पर अर्पित कर दिए; अब तुम्हारी महत्वाकांक्षा की हत्या नहीं कर सकती। तुम्हारी यात्रा सफल हो, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

करुणा का कंठ रूँध गया और कुछ न कह सकी।

5

प्रकाश उसी दिन से यात्रा की तैयारियाँ करने लगा। करुणा के पास जो कुछ था, वह सब खर्च हो गया। कुछ ऋण भी लेना पड़ा। नए सूट बने, सूटकेस लिए गए। प्रकाश अपनी धुन में मस्त था। कभी किसी चीज की फरमाइश लेकर आता, कभी किसी चीज का।

करुणा इस एक सप्ताह में इतनी दुर्बल हो गयी है, उसके बालों पर कितनी सफेदी आ गयी है, चेहरे पर कितनी झुर्रियाँ पड़ गई हैं, यह उसे कुछ न नजर आता। उसकी आँखों में इंग्लैंड के दृश्य समाये हुए थे। महत्वाकांक्षा आँखों पर परदा डाल देती है।

प्रस्थान का दिन आया। आज कई दिनों के बाद धूप निकली थी। करुणा स्वामी के पुराने कपड़ों को बाहर निकाल रही थी। उनकी गाढ़े की चादरें, खद्दर के कुरते, पाजामें और लिहाफ अभी तक सन्दूक में संचित थे। प्रतिवर्ष वे धूप में सुखाये जाते और झाड़-पोंछकर रख दिये जाते थे। करुणा ने आज फिर उन कपड़ों को निकाला, मगर सुखाकर रखने के लिए नहीं गरीबों में बाँट देने के लिए। वह आज पति से नाराज है। वह लुटिया, डोर और घड़ी, जो आदित्य की चिरसंगिनी थीं और जिनकी बीस वर्ष से करुणा ने उपासना की थी, आज निकालकर आँगन में फेंक दी गई; वह झोली जो बरसों आदित्य के कन्धों पर आरुढ़ रह चुकी थी, आप कूड़े में डाल दी गई; वह चित्र जिसके सामने बीस वर्ष से करुणा सिर झुकाती थी, आज वही निर्दयता से भूमि पर डाल दिया गया। पति का कोई स्मृति-चिन्ह वह अब अपने घर में नहीं रखना चाहती। उसका अन्तःकरण शोक और निराशा से विदीर्ण हो गया है और पति के सिवा वह किस पर क्रोध उतारे? कौन उसका अपना हैं? वह किससे अपनी व्यथा कहे? किसे अपनी छाती चीरकर दिखाए? वह होते तो क्या

आप प्रकाश दासता की जंजीर गले में डालकर फूला न समाता? उसे कौन समझाए कि आदित्य भी इस अवसर पर पछताने के सिवा और कुछ न कर सकते।

प्रकाश के मित्रों ने आज उसे विदाई का भोज दिया था। वहाँ से वह संध्या समय कई मित्रों के साथ मोटर पर लौटा। सफर का सामान मोटर पर रख दिया गया, तब वह अन्दर आकर माँ से बोला—अम्मा, जाता हूँ। बम्बई पहुँचकर पत्र लिखूँगा। तुम्हें मेरी कसम, रोंना मत और मेरे खतों का जवाब बराबर देना।

जैसे किसी लाश को बाहर निकालते समय सम्बन्धियों का धैर्य छूट जाता है, रूके हुए आँसू निकल पड़ते हैं और शोक की तरंगें उठने लगती हैं, वही दशा करुणा की हुई। कलेजे में एक हाहाकार हुआ, जिसने उसकी दुर्बल आत्मा के एक-एक अणु को कंपा दिया। मालूम हुआ, पाँव पानी में फिसल गया है और वह लहरों में बही जा रही है। उसके मुख से शोक या आर्शीवाद का एक शब्द भी न निकला। प्रकाश ने उसके चरण छुए, अश्रू-जल से माता के चरणों को पखारा, फिर बाहर चला। करुणा पाषाण मूर्ति की भाँति खड़ी थी।

सहसा ग्वाले ने आकर कहा—बहूजी, भड़या चले गए। बहुत रोते थे। तब करुणा की समाधि टूटी। देखा, सामने कोई नहीं है। घर में मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया हुआ है, और मानो हृदय की गति बन्द हो गई है।

सहसा करुणा की दृष्टि ऊपर उठ गई। उसने देखा कि आदित्य अपनी गोद में प्रकाश की निर्जीव देह लिए खड़े हो रहे हैं। करुणा पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

6

करुणा जीवित थी, पर संसार से उसका कोई नाता न था। उसका छोटा-सा संसार, जिसे उसने अपनी कल्पनाओं के हृदय में रचा था, स्वप्न की भाँति अनन्त में विलीन हो गया था। जिस प्रकाश को सामने देखकर वह जीवन की अँधेरी रात में भी हृदय में आशाओं की सम्पत्ति लिये जी रही थी, वह बुझ गया और सम्पत्ति लुट गई। अब न कोई आश्रय था और न उसकी जरूरत। जिन गठनों को वह दोनों वक्त अपने हाथों से दाना-चारा देती और सहलाती थी, वे अब खूँटे पर बँधी निराश नेत्रों से द्वार की ओर ताकती रहती थीं। बछड़ों को गले लगाकर पुचकारने वाला अब कोई न था, जिसके लिए दुध दुहे, मुट्ठा निकाले। खानेवाला कौन था? करुणा ने अपने छोटे-से संसार को अपने ही अंदर समेट लिया था।

किन्तु एक ही सप्ताह में करुणा के जीवन ने फिर रंग बदला। उसका छोटा-सा संसार फैलते-फैलते विश्वव्यापी हो गया। जिस लंगर ने नौका को तट से एक केन्द्र पर बाँध रखा था, वह उखड़ गया। अब नौका सागर के अशेष विस्तार में भ्रमण करेगी, चाहे वह उद्दाम तरंगों के वक्ष में ही क्यों न विलीन हो जाए।

करुणा द्वार पर आ बैठी और मुहल्ले-भर के लड़कों को जमा करके दूध पिलाती। दोपहर तक मक्खन निकालती और वह मक्खन मुहल्ले के लड़के खाते। फिर भाँति-भाँति के पकवान बनाती और कुत्तों को खिलाती। अब यही उसका नित्य का नियम हो गया। चिड़ियाँ, कुत्ते, बिल्लियाँ चींटे-चींटियाँ सब अपने हो गए। प्रेम का वह द्वार अब किसी के लिए बन्द न था। उस अंगुल-भर जगह में, जो प्रकाश के लिए भी काफी न थी, अब समस्त संसार समा गया था।

एक दिन प्रकाश का पत्र आया। करुणा ने उसे उठाकर फेंक दिया। फिर थोड़ी देर के बाद उसे उठाकर फाड़ डाला और चिड़ियों को दाना चुगाने लगी; मगर जब निशा-योगिनी ने अपनी धूनी जलायी और वेदनाएँ उससे वरदान माँगने के लिए विकल हो-होकर चलीं, तो करुणा की मनोवेदना भी सजग हो उठी—प्रकाश का पत्र पढ़ने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। उसने सोचा, प्रकाश मेरा कौन है? मेरा उससे क्या प्रयोजन? हाँ, प्रकाश मेरा कौन है? हाँ, प्रकाश मेरा कौन है? हृदय ने उत्तर दिया, प्रकाश तेरा सर्वस्व है, वह तेरे उस अमर प्रेम की निशानी है, जिससे तू सदैव के लिए वंचित हो गई। वह तेरे प्राण है, तेरे जीवन-दीपक का प्रकाश, तेरी वंचित कामनाओं का माधुर्य, तेरे अश्रूजल में विहार करने वाला करने वाला हंस। करुणा उस पत्र के टुकड़ों को जमा करने लगी, माना उसके प्राण बिखर गये हों। एक-एक टुकड़ा उसे अपने खोये हुए प्रेम का एक पदचिन्ह-सा मालूम होता था। जब सारे पुरजे जमा हो गए, तो करुणा दीपक के सामने बैठकर उसे जोड़ने लगी, जैसे कोई वियोगी हृदय प्रेम के टूटे हुए तारों को जोड़ रहा हो। हाय री ममता! वह अभागिन सारी रात उन पुरजों को जोड़ने में लगी रही। पत्र दोनों ओर लिखा था, इसलिए पुरजों को ठीक स्थान पर रखना और भी कठिन था। कोई शब्द, कोई वाक्य बीच में गायब हो जाता। उस एक टुकड़े को वह फिर खोजने लगती। सारी रात बीत गई, पर पत्र अभी तक अपूर्ण था।

दिन चढ़ आया, मुहल्ले के लौड़े मक्खन और दूध की चाह में एकत्र हो गए, कुत्तों ओर बिल्लियों का आगमन हुआ, चिड़ियाँ आ-आकर आंगन में फुदकने लगीं, कोई ओखली पर बैठी, कोई तुलसी के चौतरे पर, पर करुणा को सिर उठाने तक की फुरसत नहीं।

दोपहर हुआ, करुणा ने सिर न उठाया। न भूख थी, न प्यास। फिर संध्या हो गई। पर वह पत्र अभी तक अधूरा था। पत्र का आशय समझ में आ रहा था—प्रकाश का जहाज कहीं-से-कहीं जा रहा है। उसके हृदय में कुछ उठा हुआ है। क्या उठा हुआ है, यह करुणा न सोच सकी? करुणा पुत्र की लेखनी से निकले हुए एक-एक शब्द को पढ़ना और उसे हृदय पर अंकित कर लेना चाहती थी।

इस भाँति तीन दिन गूजर गए। सन्ध्या हो गई थी। तीन दिन की जागी आँखें जरा झपक गईं। करुणा ने देखा, एक लम्बा-चौड़ा कमरा है, उसमें मेजें और कुर्सियाँ लगी हुई हैं, बीच में ऊँचे मंच पर कोई आदमी बैठा हुआ है। करुणा ने ध्यान से देखा, प्रकाश था।

एक क्षण में एक कैदी उसके सामने लाया गया, उसके हाथ-पाँव में जंजीर थी, कमर झुकी हुई, यह आदित्य थे।

करुणा की आँखें खुल गईं। आँसू बहने लगे। उसने पत्र के टुकड़ों को फिर समेट लिया और उसे जलाकर राख कर डाला। राख की एक चुटकी के सिवा वहाँ कुछ न रहा, जो उसके हृदय में विदीर्ण किए डालती थी। इसी एक चुटकी राख में उसका गुड़ियोंवाला बचपन, उसका संतप्त यौवन और उसका तृष्णामय वैधव्य सब समा गया।

प्रातःकाल लोगों ने देखा, पक्षी पिंजड़े में उड़ चुका था! आदित्य का चित्र अब भी उसके शून्य हृदय से चिपटा हुआ था। भग्नहृदय पति की स्नेह-स्मृति में विश्राम कर रहा था और प्रकाश का जहाज योरप चला जा रहा था।

बेटोंवाली विधवा

पंडित अयोध्यानाथ का देहान्त हुआ तो सबने कहा, ईश्वर आदमी की ऐसी ही मौत दे। चार जवान बेटे थे, एक लड़की। चारों लड़कों के विवाह हो चुके थे, केवल लड़की क्वॉरी थी। सम्पत्ति भी काफी छोड़ी थी। एक पक्का मकान, दो बगीचे, कई हजार के गहने और बीस हजार नकद। विधवा फूलमती को शोक तो हुआ और कई दिन तक बेहाल पड़ी रही, लेकिन जवान बेटों को सामने देखकर उसे ढाढ़स हुआ। चारों लड़के एक-से-एक सुशील, चारों बहुएँ एक-से-एक बढ़कर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती, तो चारों बारी-बारी से उसके पाँव दबातीं; वह स्नान करके उठती, तो उसकी साड़ी छौंटती। सारा घर उसके इशारे पर चलता था। बड़ा लड़का कामता एक दफ्तर में 50 रु. पर नौकर था, छोटा उमानाथ डाक्टरी पास कर चुका था और कहीं औषधालय खोलने की फिक्र में था, तीसरा दयानाथ बी. ए. में फेल हो गया था और पत्रिकाओं में लेख लिखकर कुछ-न-कुछ कमा लेता था, चौथा सीतानाथ चारों में सबसे कुशाग्र बुद्धि और होनहार था और अबकी साल बी. ए. प्रथम श्रेणी में पास करके एम. ए. की तैयारी में लगा हुआ था। किसी लड़के में वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाऊपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुल-मर्यादा को डुबाता है। फूलमती घर की मालकिन थी। गोकि कुंजियाँ बड़ी बहू के पास रहती थीं – बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है; किन्तु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था।

संध्या हो गई थी। पंडित को मरे आज बारहवाँ दिन था। कल तेरहीं हैं। ब्रह्मभोज होगा। बिरादरी के लोग निमंत्रित होंगे। उसी की तैयारियाँ हो रही थीं। फूलमती अपनी कोठरी में बैठी देख रही थी, पल्लेदार बोरे में आटा लाकर रख रहे हैं। घी के टिन आ रहे हैं। शाक-भाजी के टोकरे, शक्कर की बोरियाँ, दही के मटके चले आ रहे हैं। महापात्र के लिए दान की चीजें लाई गई-बर्तन, कपड़े, पलंग, बिछावन, छाते, जूते, छड़ियाँ, लालटेन आदि; किन्तु फूलमती को कोई चीज नहीं दिखाई गई। नियमानुसार ये सब सामान उसके पास आने चाहिए थे। वह प्रत्येक वस्तु को देखती उसे पसंद करती, उसकी मात्रा में कमी-बेशी का फैसला करती; तब इन चीजों को भंडारे में रखा जाता। क्यों उसे दिखाने और उसकी राय लेने की जरूरत नहीं समझी गई? अच्छा वह आटा तीन ही बोरा क्यों आया? उसने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। घी भी पाँच ही कनस्तर है। उसने तो दस कनस्तर मँगवाए थे। इसी तरह शाक-भाजी, शक्कर, दही आदि में भी कमी की गई होगी। किसने उसके हुक्म में हस्तक्षेप किया? जब उसने एक बात तय कर दी, तब किसे उसको घटाने-बढ़ाने का अधिकार है?

आज चालीस वर्षों से घर के प्रत्येक मामले में फूलमती की बात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ खर्च किए गए, एक कहा तो एक। किसी ने मीन-मेख न की। यहाँ तक कि पं. अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न करते थे; पर आज उसकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है! इसे वह क्योंकर स्वीकार कर सकती?

कुछ देर तक तो वह जब्त किए बैठी रही; पर अंत में न रहा गया। स्वायत्त शासन उसका स्वभाव हो गया था। वह क्रोध में भरी हुई आयी और कामतानाथ से बोली-क्या आटा तीन ही बोरे लाये? मैंने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। और घी भी पाँच ही टिन मँगवाया! तुम्हें याद है, मैंने दस कनस्तर कहा था? किफायत को मैं बुरा नहीं समझती; लेकिन जिसने यह कुआँ खोदा, उसी की आत्मा पानी को तरसे, यह कितनी लज्जा की बात है!

कामतानाथ ने क्षमा-याचना न की, अपनी भूल भी स्वीकार न की, लज्जित भी नहीं हुआ। एक मिनट तो विद्रोही भाव से खड़ा रहा, फिर बोला-हम लोगों की सलाह तीन ही बोरों की हुई और तीन बोरे के लिए पाँच टिन घी काफी था। इसी हिसाब से और चीजें भी कम कर दी गई हैं।

फूलमती उग्र होकर बोली-किसकी राय से आटा कम किया गया?

‘हम लोगों की राय से।’

‘तो मेरी राय कोई चीज नहीं है?’

‘है क्यों नहीं; लेकिन अपना हानि-लाभ तो हम समझते हैं?’

फूलमती हक्की-बक्की होकर उसका मुँह ताकने लगी। इस वाक्य का आशय उसकी समझ में न आया। अपना हानि-लाभ! अपने घर में हानि-लाभ की जिम्मेदार वह आप है। दूसरों को, चाहे वे उसके पेट के जन्मे पुत्र ही क्यों न हों, उसके कामों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार? यह लौंडा तो इस ढिठाई से जवाब दे रहा है, मानो घर उसी का है, उसी ने मर-मरकर गृहस्थी जोड़ी है, मैं तो गैर हूँ! जरा इसकी हेकड़ी तो देखो।

उसने तमतमाए हुए मुख से कहा मेरे हानि-लाभ के जिम्मेदार तुम नहीं हो। मुझे अख्तियार है, जो उचित समझूँ, वह करूँ। अभी जाकर दो बोरे आटा और पाँच टिन घी और लाओ और आगे के लिए खबरदार, जो किसी ने मेरी बात काटी।

अपने विचार में उसने काफी तम्बीह कर दी थी। शायद इतनी कठोरता अनावश्यक थी। उसे अपनी उग्रता पर खेद हुआ। लड़के ही तो हैं, समझे होंगे कुछ किफायत करनी चाहिए। मुझसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्मा तो खुद हरेक काम में किफायत करती हैं। अगर इन्हें मालूम होता कि इस काम में मैं किफायत पसंद न करूँगी, तो कभी इन्हें मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता। यद्यपि कामतानाथ अब भी उसी जगह खड़ा था और उसकी भावभंगी से ऐसा ज्ञात होता था कि इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह बहुत उत्सुक नहीं, पर फूलमती निश्चिंत होकर अपनी कोठरी में चली गयी। इतनी तम्बीह पर भी किसी को अवज्ञा करने की सामर्थ्य हो सकती है, इसकी संभावना का ध्यान भी उसे न आया।

पर ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उस पर यह हकीकत खुलने लगी कि इस घर में अब उसकी वह हैसियत नहीं रही, जो दस-बारह दिन पहले थी। सम्बंधियों के यहाँ के नेवते में शक्कर, मिठाई, दही, अचार आदि आ रहे थे। बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी-भाव से सँभाल-सँभालकर रख रही थी। कोई भी उससे पूछने नहीं आता। बिरादरी के लोग जो कुछ पूछते हैं, कामतानाथ से या बड़ी बहू से। कामतानाथ कहाँ का बड़ा इंतजामकार है, रात-दिन भंग पिये पड़ा रहता है किसी तरह रो-धोकर दफ्तर चला जाता है। उसमें भी

महीने में पंद्रह नागों से कम नहीं होते। वह तो कहो, साहब पंडितजी का लिहाज करता है, नहीं अब तक कभी का निकाल देता। और बड़ी बहू जैसी फूहड़ औरत भला इन सब बातों को क्या समझेगी! अपने कपड़े-लत्ते तक तो जतन से रख नहीं सकती, चली है गृहस्थी चलाने! भद होगी और क्या। सब मिलकर कुल की नाक कटवाएँगे। वक्त पर कोई-न-कोई चीज कम हो जायेगी। इन कामों के लिए बड़ा अनुभव चाहिए। कोई चीज तो इतनी बन जाएगी कि मारी-मारी फिरेगा। कोई चीज इतनी कम बनेगी कि किसी पत्तल पर पहुँचेगी, किसी पर नहीं। आखिर इन सबों को हो क्या गया है! अच्छा, बहू तिजोरी क्यों खोल रही है? वह मेरी आज्ञा के बिना तिजोरी खोलनेवाली कौन होती है? कुंजी उसके पास है अवश्य; लेकिन जब तक मैं रुपये न निकलवाऊँ, तिजोरी नहीं खुलती। आज तो इस तरह खोल रही है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। यह मुझसे न बर्दाश्त होगा!

वह झमककर उठी और बहू के पास जाकर कठोर स्वर में बोली-तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने को नहीं कहा?

बड़ी बहू ने निस्संकोच भाव से उत्तर दिया-बाजार से सामान आया है, तो दाम न दिया जाएगा।

‘कौन चीज किस भाव में आई है और कितनी आई है, यह मुझे कुछ नहीं मालूम! जब तक हिसाब-किताब न हो जाए, रुपये कैसे दिये जाएँ?’

‘हिसाब-किताब सब हो गया है।’

‘किसने किया?’

‘अब मैं क्या जानूँ किसने किया? जाकर मरदों से पूछो! मुझे हुकम मिला, रुपये लाकर दे दो, रुपये लिये जाती हूँ!’

फूलमती खून का घूँट पीकर रह गई। इस वक्त बिगड़ने का अवसर न था। घर में मेहमान स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। अगर इस वक्त उसने लड़कों को डाँटा, तो लोग यही कहेंगे कि इनके घर में पंडितजी के मरते ही फूट पड़ गई। दिल पर पत्थर रखकर फिर अपनी कोठरी में चली गयी। जब मेहमान विदा हो जायेंगे, तब वह एक-एक की खबर लेगी। तब देखेगी, कौन उसके सामने आता है और क्या कहता है। इनकी सारी चौकड़ी भुला देगी।

किन्तु कोठरी के एकांत में भी वह निश्चिन्त न बैठी थी। सारी परिस्थिति को गिद्ध दृष्टि से देख रही थी, कहाँ सत्कार का कौन-सा नियम भंग होता है, कहाँ मर्यादाओं की उपेक्षा की जाती है। भोज आरम्भ हो गया। सारी बिरादरी एक साथ पंगत में बैठा दी गई। आँगन में मुश्किल से दो सौ आदमी बैठ सकते हैं। ये पाँच सौ आदमी इतनी-सी जगह में कैसे बैठ जायेंगे? क्या आदमी के ऊपर आदमी बिठाए जायेंगे? दो पंगतों में लोग बिठाए जाते तो क्या बुराई हो जाती? यही तो होता है कि बारह बजे की जगह भोज दो बजे समाप्त होता; मगर यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पड़ी हुई है। किसी तरह यह बला सिर से टले और चैन से सोएं! लोग कितने सटकर बैठे हुए हैं कि किसी को हिलने की भी जगह नहीं। पत्तल एक-पर-एक रखे हुए हैं। पूरियां ठंडी हो गईं। लोग गरम-गरम मॉग रहें हैं। मैदे की पूरियाँ ठंडी होकर चिमड़ी हो जाती हैं। इन्हें कौन खाएगा? रसोइए को कढ़ाव पर से न जाने क्यों उठा दिया गया? यही सब बातें नाक काटने की हैं।

सहसा शोर मचा, तरकारियों में नमक नहीं। बड़ी बहू जल्दी-जल्दी नमक पीसने लगी। फूलमती क्रोध के मारे ओ चबा रही थी, पर इस अवसर पर मुँह न खोल सकती थी। बोरे-भर नमक पिसा और पत्तलों पर डाला गया। इतने में फिर शोर मचा-पानी गरम है, ठंडा पानी लाओ! ठंडे पानी का कोई प्रबन्ध न था, बर्फ भी न मँगाई गई। आदमी बाजार दौड़ाया गया, मगर बाजार में इतनी रात गए बर्फ कहाँ? आदमी खाली हाथ लौट आया। मेहमानों को वही नल का गरम पानी पीना पड़ा। फूलमती का बस चलता, तो लड़कों का मुँह नोच लेती। ऐसी छीछालेदर उसके घर में कभी न हुई थी। उस पर सब मालिक बनने के लिए मरते हैं। बर्फ जैसी जरूरी चीज मँगवाने की भी किसी को सुधि न थी! सुधि कहाँ से रहे-जब किसी को गप लड़ाने से फुर्सत न मिले। मेहमान अपने दिल में क्या कहेंगे कि चले हैं बिरादरी को भोज देने और घर में बर्फ तक नहीं!

अच्छा, फिर यह हलचल क्यों मच गई? अरे, लोग पंगत से उठे जा रहे हैं। क्या मामला है?

फूलमती उदासीन न रह सकी। कोठरी से निकलकर बरामदे में आयी और कामतानाथ से पूछा-क्या बात हो गई लल्ला? लोग उठे क्यों जा रहे हैं? कामता ने कोई जवाब न दिया। वहाँ से खिसक गया। फूलमती झुँझलाकर रह गई। सहसा कहारिन मिल गई। फूलमती ने उससे भी यह प्रश्न किया। मालूम हुआ, किसी के शोरबे में मरी हुई चुहिया निकल आई। फूलमती चित्रलिखित-सी वहीं खड़ी रह गई। भीतर ऐसा उबाल उठा कि दीवार से सिर टकरा ले! अभागे भोज का प्रबन्ध करने चले थे। इस फूहड़पन की कोई हद है, कितने आदमियों का धर्म सत्यानाश हो गया! फिर पंगत क्यों न उठ जाए? आँखों से देखकर अपना धर्म कौन

गँवाएगा? हा! सारा किया-धरा मिट्टी में मिल गया। सैकड़ों रुपये पर पानी फिर गया! बदनामी हुई वह अलग।

मेहमान उठ चुके थे। पतलों पर खाना ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ था। चारों लड़के ऑंगन में लज्जित खड़े थे। एक दूसरे को इलजाम दे रहा था। बड़ी बहू अपनी देवरानियों पर बिगड़ रही थी। देवरानियाँ सारा दोष कुमुद के सिर डालती थीं। कुमुद खड़ी रो रही थी। उसी वक्त फूलमती झल्लाई हुई आकर बोली-मुँह में कालिख लगी कि नहीं या अभी कुछ कसर बाकी हैं? डूब मरो, सब-के-सब जाकर चिल्लू-भर पानी में! शहर में कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहे।

किसी लड़के ने जवाब न दिया।

फूलमती और भी प्रचंड होकर बोली-तुम लोगों को क्या? किसी को शर्म-हया तो है नहीं। आत्मा तो उनकी रो रही है, जिन्होंने अपनी जिन्दगी घर की मरजाद बनाने में खराब कर दी। उनकी पवित्र आत्मा को तुमने यों कलंकित किया? शहर में थुड़ी-थुड़ी हो रही है। अब कोई तुम्हारे द्वार पर पेशाब करने तो आएगा नहीं!

कामतानाथ कुछ देर तक तो चुपचाप खड़ा सुनता रहा। आखिर झुंझला कर बोला-अच्छा, अब चुप रहो अम्माँ। भूल हुई, हम सब मानते हैं, बड़ी भयंकर भूल हुई, लेकिन अब क्या उसके लिए घर के प्राणियों को हलाल-कर डालोगी? सभी से भूलें होती हैं। आदमी पछताकर रह जाता है। किसी की जान तो नहीं मारी जाती?

बड़ी बहू ने अपनी सफाई दी-हम क्या जानते थे कि बीबी (कुमुद) से इतना-सा काम भी न होगा। इन्हें चाहिए था कि देखकर तरकारी कढ़ाव में डालतीं। टोकरी उठाकर कढ़ाव में डाल दी! हमारा क्या दोष!

कामतानाथ ने पत्नी को डाँटा-इसमें न कुमुद का कसूर है, न तुम्हारा, न मेरा। संयोग की बात है। बदनामी भाग में लिखी थी, वह हुई। इतने बड़े भोज में एक-एक मुट्ठी तरकारी कढ़ाव में नहीं डाली जाती! टोकरे-के-टोकरे उड़ेल दिए जाते हैं। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना होती है। पर इसमें कैसी जग-हँसाई और कैसी नक-कटाई। तुम खामखाह जले पर नमक छिड़कती हो!

फूलमती ने दांत पीसकर कहा-शरमाते तो नहीं, उलटे और बेहयाई की बातें करते हो।

कामतानाथ ने निःसंकोच होकर कहा-शरमाऊँ क्यों, किसी की चोरी की हैं? चीनी में चींटे और आटे में घुन, यह नहीं देखे जाते। पहले हमारी निगाह न पड़ी, बस, यहीं बात बिगड़ गई। नहीं, चुपके से चुहिया निकालकर फेंक देते। किसी को खबर भी न होती।

फूलमती ने चकित होकर कहा-क्या कहता है, मरी चुहिया खिलाकर सबका धर्म बिगाड़ देता?

कामता हँसकर बोला-क्या पुराने जमाने की बातें करती हो अम्माँ। इन बातों से धर्म नहीं जाता? यह धर्मात्मा लोग जो पतल पर से उठ गए हैं, इनमें से कौन है, जो भेड़-बकरी का मांस न खाता हो? तालाब के कछुए और घोंघे तक तो किसी से बचते नहीं। जरा-सी चुहिया में क्या रखा था!

फूलमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब प्रलय आने में बहुत देर नहीं है। जब पढ़े-लिखे आदमियों के मन में ऐसे अधार्मिक भाव आने लगे, तो फिर धर्म की भगवान ही रक्षा करें। अपना-सा मुँह लेकर चली गयी।

2

दो महीने गुजर गए हैं। रात का समय है। चारों भाई दिन के काम से छुट्टी पाकर कमरे में बैठे गप-शप कर रहे हैं। बड़ी बहू भी षड्यंत्र में शरीक है। कुमुद के विवाह का प्रश्न छिड़ा हुआ है।

कामतानाथ ने मसनद पर टेक लगाते हुए कहा-दादा की बात दादा के साथ गई। पंडित विद्वान् भी हैं और कुलीन भी होंगे। लेकिन जो आदमी अपनी विद्या और कुलीनता को रूपयों पर बेचे, वह नीच है। ऐसे नीच आदमी के लड़के से हम कुमुद का विवाह सेंट में भी न करेंगे, पाँच हजार तो दूर की बात है। उसे बताओ धता और किसी दूसरे वर की तलाश करो। हमारे पास कुल बीस हजार ही तो हैं। एक-एक के हिस्से में पाँच-पाँच हजार आते हैं। पाँच हजार दहेज में दे दें, और पाँच हजार नेग-न्योछावर, बाजे-गाजे में उड़ा दें, तो फिर हमारी बधिया ही बैठ जाएगी।

उमानाथ बोले-मुझे अपना औषधालय खोलने के लिए कम-से-कम पाँच हजार की जरूरत है। मैं अपने हिस्से में से एक पाई भी नहीं दे सकता। फिर खुलते ही आमदनी तो होगी नहीं। कम-से-कम साल-भर घर से खाना पड़ेगा।

दयानाथ एक समाचार-पत्र देख रहे थे। आँखों से ऐनक उतारते हुए बोले—मेरा विचार भी एक पत्र निकालने का है। प्रेस और पत्र में कम-से-कम दस हजार का कैपिटल चाहिए। पाँच हजार मेरे रहेंगे तो कोई-न-कोई साझेदार भी मिल जाएगा। पत्रों में लेख लिखकर मेरा निर्वाह नहीं हो सकता।

कामतानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा—अजी, राम भजो, सेंट में कोई लेख छपता नहीं, रुपये कौन देता है।

दयानाथ ने प्रतिवाद किया—नहीं, यह बात तो नहीं है। मैं तो कहीं भी बिना पेशगी पुरस्कार लिये नहीं लिखता।

कामता ने जैसे अपने शब्द वापस लिये—तुम्हारी बात मैं नहीं कहता भाई। तुम तो थोड़ा-बहुत मार लेते हो, लेकिन सबको तो नहीं मिलता।

बड़ी बहू ने श्रद्धा भाव ने कहा—कन्या भग्यवान् हो तो दरिद्र घर में भी सुखी रह सकती है। अभागी हो, तो राजा के घर में भी रोएगी। यह सब नसीबों का खेल है।

कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशंसा-भाव से देखा-फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी तो करना है।

सीतानाथ सबसे छोटा था। सिर झुकाए भाइयों की स्वार्थ-भरी बातें सुन-सुनकर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था। अपना नाम सुनते ही बोला—मेरे विवाह की आप लोग चिन्ता न करें। मैं जब तक किसी धंधे में न लग जाऊँगा, विवाह का नाम भी न लूँगा; और सच पूछिए तो मैं विवाह करना ही नहीं चाहता। देश को इस समय बालकों की जरूरत नहीं, काम करने वालों की जरूरत है। मेरे हिस्से के रुपये आप कुमुद के विवाह में खर्च कर दें। सारी बातें तय हो जाने के बाद यह उचित नहीं है कि पंडित मुरारीलाल से सम्बंध तोड़ लिया जाए।

उमा ने तीव्र स्वर में कहा—दस हजार कहाँ से आएँगे?

सीता ने डरते हुए कहा—मैं तो अपने हिस्से के रुपये देने को कहता हूँ।

‘और शेष?’

‘मुरारीलाल से कहा जाए कि दहेज में कुछ कमी कर दें। वे इतने स्वार्थान्ध नहीं हैं कि इस अवसर पर कुछ बल खाने को तैयार न हो जाएँ, अगर वह तीन हजार में संतुष्ट हो जाएं तो पाँच हजार में विवाह हो सकता है।’

उमा ने कामतानाथ से कहा—सुनते हैं भाई साहब, इसकी बातें।

दयानाथ बोल उठे—तो इसमें आप लोगों का क्या नुकसान है? मुझे तो इस बात से खुशी हो रही है कि भला, हममें कोई तो त्याग करने योग्य है। इन्हें तत्काल रुपये की जरूरत नहीं है। सरकार से वजीफा पाते ही हैं। पास होने पर कहीं-न-कहीं जगह मिल जाएगी। हम लोगों की हालत तो ऐसी नहीं है।

कामतानाथ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया—नुकसान की एक ही कही। हममें से एक को कष्ट हो तो क्या और लोग बैठे देखेंगे? यह अभी लड़के हैं, इन्हें क्या मालूम, समय पर एक रुपया एक लाख का काम करता है। कौन जानता है, कल इन्हें विलायत जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वजीफा मिल जाए या सिविल सर्विस में आ जाएँ। उस वक्त सफर की तैयारियों में चार-पाँच हजार लग जाएँगे। तब किसके सामने हाथ फैलाते फिरेंगे? मैं यह नहीं चाहता कि दहेज के पीछे इनकी जिन्दगी नष्ट हो जाए।

इस तर्क ने सीतानाथ को भी तोड़ लिया। सकुचाता हुआ बोला—हाँ, यदि ऐसा हुआ तो बेशक मुझे रुपये की जरूरत होगी।

‘क्या ऐसा होना असंभव है?’

‘असंभव तो मैं नहीं समझता; लेकिन कठिन अवश्य है। वजीफे उन्हें मिलते हैं, जिनके पास सिफारिशें होती हैं, मुझे कौन पूछता है।’

‘कभी-कभी सिफारिशें धरी रह जाती हैं और बिना सिफारिश वाले बाजी मार ले जाते हैं।’

‘तो आप जैसा उचित समझें। मुझे यहाँ तक मंजूर है कि चाहे मैं विलायत न जाऊँ; पर कुमुद अच्छे घर जाए।’

कामतानाथ ने निष्ठा-भाव से कहा—अच्छा घर दहेज देने ही से नहीं मिलता भैया! जैसा तुम्हारी भाभी ने कहा, यह नसीबों का खेल है। मैं तो चाहता हूँ कि मुरारीलाल को जवाब दे दिया जाए और कोई ऐसा घर खोजा जाए, जो थोड़े में राजी हो जाए। इस विवाह में मैं एक हजार से ज्यादा नहीं खर्च कर सकता। पंडित दीनदयाल कैसे हैं?

उमा ने प्रसन्न होकर कहा—बहुत अच्छे। एम.ए., बी.ए. न सही, यजमानों से अच्छी आमदनी है।

दयानाथ ने आपत्ति की—अम्माँ से भी पूछ तो लेना चाहिए।
कामतानाथ को इसकी कोई जरूरत न मालूम हुई। बोले-उनकी तो जैसे बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई। वही पुराने युग की बातें! मुरारीलाल के नाम पर उधार खाए बैठी हैं। यह नहीं समझती कि वह जमाना नहीं रहा। उनको तो बस, कुमुद मुरारी पंडित के घर जाए, चाहे हम लोग तबाह हो जाएँ।

उमा ने एक शंका उपस्थित की—अम्माँ अपने सब गहने कुमुद को दे देंगी, देख लीजिएगा।
कामतानाथ का स्वार्थ नीति से विद्रोह न कर सका। बोले-गहनों पर उनका पूरा अधिकार है। यह उनका स्त्रीधन है। जिसे चाहें, दे सकती हैं।

उमा ने कहा—स्त्रीधन है तो क्या वह उसे लुटा देंगी। आखिर वह भी तो दादा ही की कमाई है।
‘किसी की कमाई हो। स्त्रीधन पर उनका पूरा अधिकार है!’
‘यह कानूनी गोरखधंधे हैं। बीस हजार में तो चार हिस्सेदार हों और दस हजार के गहने अम्माँ के पास रह जाएँ। देख लेना, इन्हीं के बल पर वह कुमुद का विवाह मुरारी पंडित के घर करेंगी।’

उमानाथ इतनी बड़ी रकम को इतनी आसानी से नहीं छोड़ सकता। वह कपट-नीति में कुशल है। कोई कौशल रचकर माता से सारे गहने ले लेगा। उस वक्त तक कुमुद के विवाह की चर्चा करके फूलमती को भड़काना उचित नहीं। कामतानाथ ने सिर हिलाकर कहा—भाई, मैं इन चालों को पसंद नहीं करता।

उमानाथ ने खिसियाकर कहा—गहने दस हजार से कम के न होंगे।
कामता अविचलित स्वर में बोले—कितने ही के हों; मैं अनीति में हाथ नहीं डालना चाहता।
‘तो आप अलग बैठिए। हां, बीच में भांजी न मारिएगा।’
‘मैं अलग रहूंगा।’
‘और तुम सीता?’
‘अलग रहूंगा।’

लेकिन जब दयानाथ से यही प्रश्न किया गया, तो वह उमानाथ से सहयोग करने को तैयार हो गया। दस हजार में ढाई हजार तो उसके होंगे ही। इतनी बड़ी रकम के लिए यदि कुछ कौशल भी करना पड़े तो क्षम्य है।

3

फूलमती रात को भोजन करके लेटी थी कि उमा और दया उसके पास जा कर बैठ गए। दोनों ऐसा मुँह बनाए हुए थे, मानो कोई भरी विपत्ति आ पड़ी है। फूलमती ने सशंक होकर पूछा—तुम दोनों घबड़ाए हुए मालूम होते हो?

उमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—समाचार-पत्रों में लेख लिखना बड़े जोखिम का काम है अम्मा! कितना ही बचकर लिखो, लेकिन कहीं-न-कहीं पकड़ हो ही जाती है। दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पाँच हजार की जमानत माँगी गई है। अगर कल तक जमा न कर दी गई, तो गिरफ्तार हो जाएँगे और दस साल की सजा ठुक जाएगी।

फूलमती ने सिर पीटकर कहा—ऐसी बातें क्यों लिखते हो बेटा? जानते नहीं हो, आजकल हमारे अदिन आए हुए हैं। जमानत किसी तरह टल नहीं सकती?

दयानाथ ने अपराधी—भाव से उत्तर दिया—मैंने तो अम्मा, ऐसी कोई बात नहीं लिखी थी; लेकिन किस्मत को क्या करूँ। हाकिम जिला इतना कड़ा है कि जरा भी रियायत नहीं करता। मैंने जितनी दौड़-धूप हो सकती थी, वह सब कर ली।

‘तो तुमने कामता से रुपये का प्रबन्ध करने को नहीं कहा?’
उमा ने मुँह बनाया—उनका स्वभाव तो तुम जानती हो अम्मा, उन्हें रुपये प्राणों से प्यारे हैं। इन्हें चाहे कालापानी ही हो जाए, वह एक पाई न देंगे।

दयानाथ ने समर्थन किया—मैंने तो उनसे इसका जिक्र ही नहीं किया।
फूलमती ने चारपाई से उठते हुए कहा—चलो, मैं कहती हूँ, देगा कैसे नहीं? रुपये इसी दिन के लिए होते हैं कि गाड़कर रखने के लिए?

उमानाथ ने माता को रोककर कहा—नहीं अम्मा, उनसे कुछ न कहो। रुपये तो न देंगे, उल्टे और हाय-हाय मचाएँगे। उनको अपनी नौकरी की खैरियत मनानी है, इन्हें घर में रहने भी न देंगे। अफसरों में जाकर खबर दे दें तो आश्चर्य नहीं।

फूलमती ने लाचार होकर कहा—तो फिर जमानत का क्या प्रबन्ध करोगे? मेरे पास तो कुछ नहीं है। हाँ, मेरे गहने हैं, इन्हें ले जाओ, कहीं गिरों रखकर जमानत दे दो। और आज से कान पकड़ो कि किसी पत्र में एक शब्द भी न लिखोगे।

दयानाथ कानों पर हाथ रखकर बोला—यह तो नहीं हो सकता अम्मा, कि तुम्हारे जेवर लेकर मैं अपनी जान बचाऊँ। दस-पाँच साल की कैद ही तो होगी, झेल लूँगा। यहीं बैठा-बैठा क्या कर रहा हूँ।

फूलमती छाती पीटते हुए बोली—कैसी बातें मुँह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते-जी तम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है! उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए! जब तुम्हीं न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग में झोकूँगी!

उसने पिटारी लाकर उसके सामने रख दी।

दया ने उमा की ओर जैसे फरियाद की आँखों से देखा और बोला—आपकी क्या राय है भाई साहब? इसी मारे मैं कहता था, अम्मा को बताने की जरूरत नहीं। जेल ही तो हो जाती या और कुछ?

उमा ने जैसे सिफारिश करते हुए कहा—यह कैसे हो सकता था कि इतनी बड़ी वारदात हो जाती और अम्मा को खबर न होती। मुझसे यह नहीं हो सकता था कि सुनकर पेट में डाल लेता; मगर अब करना क्या चाहिए, यह मैं खुद निर्णय नहीं कर सकता। न तो यही अच्छा लगता है कि तुम जेल जाओ और न यही अच्छा लगता है कि अम्मा के गहने गिरों रखे जाएँ।

फूलमती ने व्यथित कंठ से पूछा—क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे हैं? मैं तो प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूँ, गहनों की बिसात ही क्या है।

दया ने दृढ़ता से कहा—अम्मा, तुम्हारे गहने तो न लूँगा, चाहे मुझ पर कुछ ही क्यों न आ पड़े। जब आज तक तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, तो किस मुँह से तुम्हारे गहने उठा ले जाऊँ? मुझ जैसे कपूत को तो तुम्हारी कोख से जन्म ही न लेना चाहिए था। सदा तुम्हें कष्ट ही देता रहा।

फूलमती ने भी उतनी ही दृढ़ता से कहा—अगर यों न लोगे, तो मैं खुद जाकर इन्हें गिरों रख दूँगी और खुद हाकिम जिला के पास जाकर जमानत जमा कर आऊँगी; अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी ले लो। आँखें बंद हो जाने के बाद क्या होगा, भगवान् जानें, लेकिन जब तक जीती हूँ तुम्हारी ओर कोई तिरछी आँखों से देख नहीं सकता।

उमानाथ ने मानो माता पर एहसान रखकर कहा—अब तो तुम्हारे लिए कोई रास्ता नहीं रहा दयानाथ। क्या हरज है, ले लो; मगर याद रखो, ज्यों ही हाथ में रुपये आ जाएँ, गहने छुड़ाने पड़ेंगे। सच कहते हैं, मातृत्व दीर्घ तपस्या है। माता के सिवाय इतना स्नेह और कौन कर सकता है? हम बड़े अभागे हैं कि माता के प्रति जितनी श्रद्धा रखनी चाहिए, उसका शतांश भी नहीं रखते।

दोनों ने जैसे बड़े धर्मसंकट में पड़कर गहनों की पिटारी सँभाली और चलते बने। माता वात्सल्य-भरी आँखों से उनकी ओर देख रही थी और उसकी संपूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हें अपनी गोद में समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीने के बाद उसके भग्न मातृ-हृदय को अपना सर्वस्व अर्पण करके जैसे आनन्द की विभूति मिली। उसकी स्वामिनी कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्मसमर्पण के लिए जैसे कोई मार्ग ढूँढ़ती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गँध तक न थी। त्याग ही उसका आनन्द और त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने

प्राणों की भेंट करके वह निहाल हो गई।

4

तीन महीने और गुजर गये। माँ के गहनों पर हाथ साफ करके चारों भाई उसकी दिलजोई करने लगे थे। अपनी स्त्रियों को भी समझाते थे कि उसका दिल न दुखाएँ। अगर थोड़े-से शिष्टाचार से उसकी आत्मा को शांति मिलती है, तो इसमें क्या हानि है। चारों करते अपने मन की, पर माता से सलाह ले लेते या ऐसा जाल फैलाते कि वह सरला उनकी बातों में आ जाती और हरेक काम में सहमत हो जाती। बाग को बेचना उसे बहुत बुरा लगता था; लेकिन चारों ने ऐसी माया रची कि वह उसे बेचते पर राजी हो गई, किन्तु कुमुद के विवाह के विषय में मतैक्य न हो सका। माँ पं. पुरारीलाल पर जमी हुई थी, लड़के दीनदयाल पर अड़े हुए थे। एक दिन आपस में कलह हो गई।

फूलमती ने कहा—माँ-बाप की कमाई में बेटा का हिस्सा भी है। तुम्हें सोलह हजार का एक बाग मिला, पच्चीस हजार का एक मकान। बीस हजार नकद में क्या पाँच हजार भी कुमुद का हिस्सा नहीं है?

कामता ने नम्रता से कहा—अम्माँ, कुमुद आपकी लड़की है, तो हमारी बहन है। आप दो-चार साल में प्रस्थान कर जाएँगी; पर हमारा और उसका बहुत दिनों तक सम्बन्ध रहेगा। तब हम यथाशक्ति कोई ऐसी बात न करेंगे, जिससे उसका अमंगल हो; लेकिन हिस्से की बात कहती हो, तो कुमुद का हिस्सा कुछ नहीं। दादा जीवित थे, तब और बात थी। वह उसके विवाह में जितना चाहते, खर्च करते। कोई उनका हाथ न पकड़ सकता था; लेकिन अब तो हमें एक-एक पैसे की किफायत करनी पड़ेगी। जो काम हजार में हो जाए, उसके लिए पाँच हजार खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है?

उमानाथ से सुधारा—पाँच हजार क्यों, दस हजार कहिए।

कामता ने भवें सिकोड़कर कहा—नहीं, मैं पाँच हजार ही कहूँगा; एक विवाह में पाँच हजार खर्च करने की हमारी हैसियत नहीं है।

फूलमती ने जिद पकड़कर कहा—विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा, पाँच हजार खर्च हो, चाहे दस हजार। मेरे पति की कमाई है। मैंने मर-मरकर जोड़ा है। अपनी इच्छा से खर्च करूँगी। तुम्हीं ने मेरी कोख से नहीं जन्म लिया है। कुमुद भी उसी कोख से आयी है। मेरी आँखों में तुम सब बराबर हो। मैं किसी से कुछ माँगती नहीं। तुम बैठे तमाशा देखो, मैं सब—कुछ कर लूँगी। बीस हजार में पाँच हजार कुमुद का है।

कामतानाथ को अब कड़वे सत्य की शरण लेने के सिवा और मार्ग न रहा। बोला—अम्मा, तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिन रूपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारे नहीं हैं; तुम हमारी अनुमति के बिना उनमें से कुछ नहीं खर्च कर सकती।

फूलमती को जैसे सर्प ने डस लिया—क्या कहा! फिर तो कहना! मैं अपने ही संचे रुपये अपनी इच्छा से नहीं खर्च कर सकती?

‘वह रुपये तुम्हारे नहीं रहे, हमारे हो गए।’

‘तुम्हारे होंगे; लेकिन मेरे मरने के पीछे।’

‘नहीं, दादा के मरते ही हमारे हो गए!’

उमानाथ ने बेहयाई से कहा—अम्मा, कानून—कायदा तो जानतीं नहीं, नाहक उछलती हैं।

फूलमती क्रोध—विह्वल रोककर बोली—भाड़ में जाए तुम्हारा कानून। मैं ऐसे कानून को नहीं जानती। तुम्हारे दादा ऐसे कोई धन्नासेठ नहीं थे। मैंने ही पेट और तन काटकर यह गृहस्थी जोड़ी है, नहीं आज बैठने की छाँह न मिलती! मेरे जीते-जी तुम मेरे रुपये नहीं छू सकते। मैंने तीन भाइयों के विवाह में दस-दस हजार खर्च किए हैं। वही मैं कुमुद के विवाह में भी खर्च करूँगी।

कामतानाथ भी गर्म पड़ा—आपको कुछ भी खर्च करने का अधिकार नहीं है।

उमानाथ ने बड़े भाई को डाँटा—आप खामख्वाह अम्माँ के मुँह लगते हैं भाई साहब! मुरारीलाल को पत्र लिख दीजिए कि तुम्हारे यहाँ कुमुद का विवाह न होगा। बस, छुट्टी हुई। कायदा-कानून तो जानतीं नहीं, व्यर्थ की बहस करती हैं।

फूलमती ने संयमित स्वर में कही—अच्छा, क्या कानून है, जरा मैं भी सुनूँ।

उमा ने निरीह भाव से कहा—कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है।

फूलमती ने तड़पकर पूछा—किसने यह कानून बनाया है?

उमा शांत स्थिर स्वर में बोला—हमारे ऋषियों ने, महाराज मनु ने, और किसने?

फूलमती एक क्षण अवाक् रहकर आहत कंठ से बोली—तो इस घर में मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पड़ी हुई हूँ?

उमानाथ ने न्यायाधीश की निर्ममता से कहा—तुम जैसा समझो।

फूलमती की संपूर्ण आत्मा मानो इस वज्रपात से चीत्कार करने लगी। उसके मुख से जलती हुई चिंगारियों की भाँति यह शब्द निकल पड़े—मैंने घर बनवाया, मैंने संपत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हें जन्म दिया, पाला और आज मैं इस घर में गैर हूँ? मनु का यही कानून है? और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो? अच्छी बात है। अपना घर-द्वार लो। मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नहीं। इससे कहीं अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अंधेर! मैंने पेड़ लगाया और मैं ही उसकी छाँह में खड़ी हो सकती; अगर यही कानून है, तो इसमें आग लग जाए।

चारों युवक पर माता के इस क्रोध और आंतक का कोई असर न हुआ। कानून का फौलादी कवच उनकी रक्षा कर रहा था। इन काँटों का उन पर क्या असर हो सकता था?

जरा देर में फूलमती उठकर चली गयी। आज जीवन में पहली बार उसका वात्सल्य मग्न मातृत्व अभिशाप बनकर उसे धिक्कारने लगा। जिस मातृत्व को उसने जीवन की विभूति समझा था, जिसके चरणों पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलाषाओं और कामनाओं को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वही मातृत्व आज उसे अग्निकुंड-सा जान पड़ा, जिसमें उसका जीवन जलकर भस्म हो गया।

संध्या हो गई थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाए, निस्तब्ध खड़ा था, मानो संसार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्ताचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलवती के मातृत्व ही की भाँति अपनी चिता में जल रहा था।

5

फूलमती अपने कमरे में जाकर लेटी, तो उसे मालूम हुआ, उसकी कमर टूट गई है। पति के मरते ही अपने पेट के लड़के उसके शत्रु हो जायेंगे, उसको स्वप्न में भी अनुमान न था। जिन लड़कों को उसने अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला, वही आज उसके हृदय पर यों आघात कर रहे हैं! अब वह घर उसे काँटों की सेज हो रहा था। जहाँ उसकी कुछ कद्र नहीं, कुछ गिनती नहीं, वहाँ अनाथों की भाँति पड़ी रोटियाँ खाए, यह उसकी अभिमानी प्रकृति के लिए असह्य था।

पर उपाय ही क्या था? वह लड़कों से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी! संसार उसे थूके तो क्या, और लड़कों को थूके तो क्या; बदमानी तो उसी की है। दुनिया यही तो कहेगी कि चार जवान बेटों के होते बुढ़िया अलग पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है! जिन्हें उसने हमेशा नीच समझा, वही उस पर हँसेंगे। नहीं, वह अपमान इस अनादर से कहीं ज्यादा हृदयविदारक था। अब अपना और घर का परदा ढका रखने में ही कुशल है। हाँ, अब उसे अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ेगा। समय बदल गया है। अब तक स्वामिनी बनकर रही, अब लौंडी बनकर रहना पड़ेगा। ईश्वर की यही इच्छा है। अपने बेटों की बातें और लातें गैरों ककी बातों और लातों की अपेक्षा फिर भी गनीमत हैं।

वह बड़ी देर तक मुँह ढाँपे अपनी दशा पर रोती रही। सारी रात इसी आत्म-वेदना में कट गई। शरद् का प्रभाव डरता-डरता उषा की गोद से निकला, जैसे कोई कैदी छिपकर जेल से भाग आया हो। फूलमती अपने नियम के विरुद्ध आज लड़के ही उठी, रात-भर में उसका मानसिक परिवर्तन हो चुका था। सारा घर सो रहा था और वह आंगन में झाड़ू लगा रही थी। रात-भर ओस में भीगी हुई उसकी पक्की जमीन उसके नंगे पैरों में काँटों की तरह चुभ रही थी। पंडितजी उसे कभी इतने सवरे उठने न देते थे। शीत उसके लिए बहुत हानिकारक था। पर अब वह दिन नहीं रहे। प्रकृति उस को भी समय के साथ बदल देने का प्रयत्न कर रही थी। झाड़ू से फुरसत पाकर उसने आग जलायी और चावल-दाल की कंकड़ियाँ चुनने लगी। कुछ देर में लड़के जागे। बहुएँ उठीं। सभी ने बुढ़िया को सर्दी से सिकुड़े हुए काम करते देखा; पर किसी ने यह न कहा कि अम्माँ, क्यों हलकान होती हो? शायद सब-के-सब बुढ़िया के इस मान-मर्दन पर प्रसन्न थे।

आज से फूलमती का यही नियम हो गया कि जी तोड़कर घर का काम करना और अंतरंग नीति से अलग रहना। उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अब गहरी वेदना छायी हुई नजर आती थी। जहाँ बिजली जलती थी, वहाँ अब तेल का दिया टिमटिमा रहा था, जिसे बुझा देने के लिए हवा का एक हलका-सा झोंका काफी है।

मुरारीलाल को इनकारी-पत्र लिखने की बात पक्की हो चुकी थी। दूसरे दिन पत्र लिख दिया गया। दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया। दीनदयाल की उम्र चालीस से कुछ अधिक थी, मर्यादा में भी कुछ हेठे थे, पर रोटी-दाल से खुश थे। बिना किसी ठहराव के विवाह करने पर राजी हो गए। तिथि नियत हुई, बारात आयी, विवाह हुआ और कुमुद बिदा कर दी गई फूलमती के दिल पर क्या गुजर रही थी, इसे कौन जान सकता है; पर चारों भाई बहुत प्रसन्न थे, मानो उनके हृदय का काँटा निकल गया हो। ऊँचे कुल की कन्या, मुँह कैसे खोलती? भाग्य में सुख भोगना लिखा होगा, सुख भोगेगी; दुख भोगना लिखा होगा, दुख झेलेगी। हरि-इच्छा बेकसों का अंतिम अवलम्ब है। घरवालों ने जिससे विवाह कर दिया, उसमें हजार ऐब हों, तो भी वह उसका उपास्य, उसका स्वामी है। प्रतिरोध उसकी कल्पना से परे था।

फूलमती ने किसी काम में दखल न दिया। कुमुद को क्या दिया गया, मेहमानों का कैसा सत्कार किया गया, किसके यहाँ से नेवते में क्या आया, किसी बात से भी उसे सरोकार न था। उससे कोई सलाह भी ली गई तो यही-बेटा, तुम लोग जो करते हो, अच्छा ही करते हो। मुझसे क्या पूछते हो!

जब कुमुद के लिए द्वार पर डोली आ गई और कुमुद माँ के गले लिपटकर रोने लगी, तो वह बेटा को अपनी कोठरी में ले गयी और जो कुछ सौ पचास रुपये और दो-चार मामूली गहने उसके पास बच रहे थे, बेटा की अंचल में डालकर बोली—बेटा, मेरी तो मन की मन में रह गई, नहीं तो क्या आज तुम्हारा विवाह इस तरह होता और तुम इस तरह विदा की जाती!

आज तक फूलमती ने अपने गहनों की बात किसी से न कही थी। लड़कों ने उसके साथ जो कपट-व्यवहार किया था, इसे चाहे अब तक न समझी हो, लेकिन इतना जानती थी कि गहने फिर न मिलेंगे और मनोमालिन्य बढ़ने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा; लेकिन इस अवसर पर उसे अपनी सफाई देने की जरूरत मालूम हुई। कुमुद यह भाव मन में लेकर जाए कि अम्मा ने अपने गहने बहुओं के लिए रख छोड़े, इसे वह किसी तरह न सह सकती थी, इसलिए वह उसे अपनी कोठरी में ले गयी थी। लेकिन कुमुद को पहले ही इस कौशल की टोह मिल चुकी थी; उसने गहने और रुपये अंचल से निकालकर माता के चरणों में रख दिए और बोली-अम्मा, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद लाखों रूपयों के बराबर है। तुम इन चीजों को अपने पास रखो। न जाने अभी तुम्हें किन विपत्तियों को सामना करना पड़े।

फूलमती कुछ कहना ही चाहती थी कि उमानाथ ने आकर कहा—क्या कर रही है कुमुद? चल, जल्दी कर। साइत टली जाती है। वह लोग हाय-हाय कर रहे हैं, फिर तो दो-चार महीने में आएगी ही, जो कुछ लेना-देना हो, ले लेना।

फूलमती के घाव पर जैसे मानो नमक पड़ गया। बोली-मेरे पास अब क्या है भैया, जो इसे मैं दूँगी? जाओ बेटा, भगवान् तुम्हारा सोहाग अमर करें।

कुमुद विदा हो गई। फूलमती पछाड़ गिर पड़ी। जीवन की लालसा नष्ट हो गई।

6

एक साल बीत गया।

फूलमती का कमरा घर में सब कमरों से बड़ा और हवादार था। कई महीनों से उसने बड़ी बहू के लिए खाली कर दिया था और खुद एक छोटी-सी कोठरी में रहने लगी, जैसे कोई भिखारिन हो। बेटों और बहुओं से अब उसे जरा भी स्नेह न था, वह अब घर की लौंडी थी। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसंग से उसे प्रयोजन न था। वह केवल इसलिए जीती थी कि मौत न आती थी। सुख या दुःख का अब उसे लेशमात्र भी ज्ञान न था।

उमानाथ का औषधालय खुला, मित्रों की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलसा हुआ। सीतानाथ को वजीफा मिला और विलायत गया, फिर उत्सव हुआ। कामतानाथ के बड़े लड़के का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, फिर धूम-धाम हुई; लेकिन फूलमती के मुख पर आनंद की छाया तक न आई! कामताप्रसाद टाइफाइड में महीने-भर बीमार रहा और मरकर उठा। दयानाथ ने अबकी अपने पत्र का प्रचार बढ़ाने के लिए वास्तव में एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छः महीने की सजा पायी। उमानाथ ने एक फौजदारी के मामले में रिश्वत लेकर गलत रिपोर्ट लिखी और उसकी सनद छीन ली गई; पर फूलमती के चेहरे पर रंज की परछाई तक न पड़ी। उसके जीवन में अब कोई आशा, कोई दिलचस्पी, कोई चिन्ता न थी। बस, पशुओं की तरह काम करना और खाना, यही उसकी जिन्दगी के दो काम थे। जानवर मारने से काम करता है; पर खाता है मन से। फूलमती बेकहे काम करती थी; पर खाती थी विष के कौर की तरह। महीनों सिर में तेल न पड़ता, महीनों कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नहीं। चेतनाशून्य हो गई थी।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। मलेरिया फैल रहा था। आकाश में मटियाले बादल थे, जमीन पर मटियाला पानी। आर्द्र वायु शीत-ज्वर और श्वास का वितरणा करती फिरती थी। घर की महरी बीमार पड़ गई। फूलमती ने घर के सारे बरतन माँजे, पानी में भीग-भीगकर सारा काम किया। फिर आग जलायी और चूल्हे पर पत्तिलियाँ चढ़ा दीं। लड़कों को समय पर भोजन मिलना चाहिए। सहसा उसे याद आया, कामतानाथ नल का पानी नहीं पीते। उसी वर्षा में गंगाजल लाने चली।

कामतानाथ ने पलंग पर लेटे-लेटे कहा-रहने दो अम्मा, मैं पानी भर लाऊँगा, आज महरी खूब बैठ रही।

फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देखकर कहा—तुम भीग जाओगे बेटा, सर्दी हो जायगी।

कामतानाथ बोले—तुम भी तो भीग रही हो। कहीं बीमार न पड़ जाओ।

फूलमती निर्मम भाव से बोली—मैं बीमार न पड़ूँगी। मुझे भगवान् ने अमर कर दिया है।

उमानाथ भी वहीं बैठा हुआ था। उसके औषधालय में कुछ आमदनी न होती थी, इसलिए बहुत चिन्तित था। भाई-भवाज की मुँहदेखी करता रहता था। बोला—जाने भी दो भैया! बहुत दिनों बहुओं पर राज कर चुकी है, उसका प्रायश्चित्त तो करने दो।

गंगा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज के सामने के कूल से मिला हुआ था। किनारों के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गई थीं। घाट ऊपर तक पानी में डूब गए थे। फूलमती कलसा लिये नीचे उतरी, पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पाँव फिसला। सँभल न सकी। पानी में गिर पड़ी। पल-भर हाथ-पाँव चलाये, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गईं। किनारे पर दो-चार पंडे चिल्लाए—‘अरे दौड़ो, बुढ़िया डूबी जाती है।’ दो-चार आदमी दौड़े भी लेकिन फूलमती लहरों में समा गई थी, उन बल खाती हुई लहरों में, जिन्हें देखकर ही हृदय काँप उठता था।

एक ने पूछा—यह कौन बुढ़िया थी?

‘अरे, वही पंडित अयोध्यानाथ की विधवा है।’

‘अयोध्यानाथ तो बड़े आदमी थे?’

‘हाँ थे तो, पर इसके भाग्य में ठोकर खाना लिखा था।’

‘उनके तो कई लड़के बड़े-बड़े हैं और सब कमाते हैं?’

‘हाँ, सब हैं भाई; मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है!’

मेरे भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे, लेकिन तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्व के मामले में वह जल्दीबाजी से काम लेना पसंद न करते थे। इस भवन कि बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पाएदार बने।

मैं छोटा था, वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल कि, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुकम को कानून समझूँ।

वह स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुन्दर अक्षर से नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य! मसलन एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी-स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दर-असल, भाई-भाई, राघेश्याम, श्रीयुत राघेश्याम, एक घंटे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूँ; लेकिन असफल रहा और उसने पूछने का साहस न हुआ। वह नवी जमात में थे, मैं पाँचवी में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुंह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिल्कुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियां उछालता, कभी कागज कि तितलियाँ उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया तो पूछना ही क्या कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं, कभी फाटक पर वार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं। लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का रौद्र रूप देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता-‘कहां थे?’ हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मुंह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

‘इस तरह अंग्रेजी पढ़ोगे, तो जिन्दगी-भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आएगा। अँगरेजी पढ़ना कोई हंसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं, ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा सभी अंग्रेजी कि विद्धान हो जाते। यहां रात-दिन आंखे फोड़नी पड़ती है और खून जलाना पड़ता है, जब कही यह विधा आती है। और आती क्या है, हां, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्धान भी शुद्ध अंग्रेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूं, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूं, तुम अपनी आंखो देखते हो, अगर नहीं देखते, जो यह तुम्हारी आंखो का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है, रोज ही क्रिकेट और हाकी मैच होते हैं। मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहा हूं, उस पर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूं फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कुद में वक्त गंवाकर पास हो जाओगे? मुझे तो दो-ही-तीन साल लगते हैं, तुम उम्र-भर इसी दरजे में पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गंवानी है, तो बंहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाड़ी कमाई के रुपये क्यों बरबाद करते हो?’

मैं यह लताड़ सुनकर आंसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था। अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे? भाई साहब उपदेश कि कला मैं निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-बाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत छूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने कि शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा मे जरा देर के लिए मैं सोचने लगता-क्यों न घर चला जाऊँ। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमे हाथ डालकर क्यों अपनी जिन्दगी खराब करूं। मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था; लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था। लेकिन घंटे-दो घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढ़ूंगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाए, बिना कोई स्किम तैयार किए काम कैसे शुरू करूं? टाइम-टेबिल में, खेल-कूद कि मद

बिलकुल उड जाती। प्रातःकाल उठना, छः बजे मुंह-हाथ धो, नाश्ता कर पढ़ने बैठ जाना। छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घण्टा आराम, चार से पांच तक भूगोल, पांच से छः तक ग्रांमर, आधा घंटा होस्टल के सामने टहलना, साढ़े छः से सात तक अंग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी, दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोके, फुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के वह दांव-घात, वाली-बाल की वह तेजी और फुरती मुझे अज्ञात और अनिर्वाय रूप से खींच ले जाती और वहां जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम-टेबिल, वह आंखफोड़ पुस्तकें किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साथे से भागता, उनकी आंखों से दूर रहने की चेष्टा करता। कमरे में इस तरह दबे पांव आता कि उन्हें खबर न हो। उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बंधन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

2

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गए, मैं पास हो गया और दरजे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच केवल दो साल का अन्तर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़ें हाथों लूँ—आपकी वह घोर तपस्या कहाँ गई? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दरजे में अक्वल भी हूँ। लेकिन वह इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिल्ली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हां, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा भाई साहब का वहराब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूँगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दरजे में अक्वल आ गया। जबावसेयह हेकड़ी जताने कासाहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आतंक अब मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भाँप लिया—उनकी ससहसत बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहब ने मानो तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े-देखता हूँ, इस साल पास हो गए और दरजे में अक्वल आ गए, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमंड तो बड़े-बड़े का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है, इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या यो ही पढ़ गए? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंगरेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है, पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते। संसार में अनेकों राष्ट्र अंगरेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अंत क्या हुआ, घमंड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चिल्लू पानी देनेवाला भी न बचा। आदमी जो कुकर्म चाहे करे; पर अभिमान न करे, इतराए नहीं। अभिमान किया और दीन-दुनिया से गया।

शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अनुमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अन्त में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख मांग-मांगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दरजा पास किया है और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अन्धे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं। कभी-कभी गुल्ली-डंडे में भी अंधा चोट निशाना पड़ जाता है। उससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशान खाली न जाए।

मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतो पसीना आयगा। जब अलजबरा और जामेंट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा! बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी को गुजरे हैं कौन-सा कांड किस हेनरी के समय हुआ, क्या यह याद कर लेना

आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट। सिर्फ भी न मिलगा, सिफर भी! हो किस ख्याल में! दरजनो तो जेम्स हुए हैं, दरजनो विलियम, कोडियों चार्ल्स दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागो को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, तेयम, चहारम, पंचम नगाते चले गए। मुछसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता।

और जामेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमताहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है और व्यर्थकी बात के लिए क्यों छात्रो का खून करते हो दाल-भात-रोटी खायी या भात-दाल-रोटी खायी, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षको को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लडके अक्षर-अक्षर रट डाले। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ने से क्या फायदा?

इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नहीं, चौगुना हो जाए, या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया-‘समय की पाबंदी’ पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिये, उसके नाम को रोड़िए।

कौन नहीं जानता कि समय की पाबन्दी बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरो का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके करोबार में उन्नति होती है; जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्ने में लिखने की जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूं। यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूस दिया। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रंगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिए और पन्ने भी पूरे फुल्सकेप आकार के। यह छात्रो पर अत्याचार नहीं तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबन्दी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक! संक्षेप में चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िए और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापको को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दरजे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दरजे में अक्वल आ गए हो, वो जमीन पर पांव नहीं रखते इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूँ, लेकिन तुमसे बड़ा हूँ, संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूँ, उसे गिरह बांधिए नहीं पछताएँगे।

स्कूल का समय निकट था, नहीं इश्वर जाने, यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्स्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए जाएं। भाई साहब ने अपने दरजे की पढाई का जो भयंकर चित्र खींचा था; उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यो-कि-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम। बस, इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाए और दरजे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरो का-सा जीवन कटने लगा।

3

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत न की पर न जाने, कैसे दरजे में अक्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गये थे; दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उभर, छः से साढ़े नौ तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने वाली खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले?

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दरजे का अन्तर और रह गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जाएँ, तो मैं उनके बराबर हो जाऊँ,

फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वह मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डांटते हैं। मुझे उस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनानंद पास होता जाता हूँ और इतने अच्छे नम्बरों से।

अबकी भाई साहब बहुत-कुछ नर्म पड़ गए थे। कई बार मुझे डांटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वह खुद समझने लगे थे कि मुझे डांटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा; या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छंदता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं तो पास ही हो जाऊंगा, पढ़ या न पढ़ मेरी तकदीर बलवान् है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा-बहुत बढ़ लिया करता था, वह भी बंद हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी ही की भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। मांझा देना, कन्ने बांधना, पतंग टूर्नामेंट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ अब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरो से कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बंताशा दौड़ा जा रहा था। आंखे आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मंद गति से झूमता पतन की ओर चला जा रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नए संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झड़दार बांस लिये उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहाँ सब कुछ समतल है, न मोटरकारे है, न ट्राम, न गाड़ियाँ।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वही मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्रभाव से बोले-इन बाजारी लोंडों के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमात में आ गये हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का खयाल करना चाहिए। एक जमाना था कि कि लोग आठवां दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडलचियों को जानता हूँ, जो आज अव्वल दरजे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिंटेंडेंट हैं। कितने ही आठवीं जमाअत वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक हैं। बड़ें-बड़ें विद्वान उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दरजे में आकर बाजारी लोंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं; लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिन में समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दर्जा नीचे हूँ और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी ही जमाअत में आ जाओ-और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्संदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद तुम मुझसे आगे निकल जाओ-लेकिन मुझमें और जो पांच साल का अन्तर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिन्दगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम. ए., डी. फिल. और डी. लिट. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती है। हमारी अम्मा ने कोई दरजा पास नहीं किया, और दादा भी शायद पांचवीं जमाअत के आगे नहीं गये, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विधा पढ़ ले, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा जतरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस जरह कि राज्य-व्यवस्था है और आठवे हेनरी ने कितने विवाह किये और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बाते चाहे उन्हें न मालूम हो, लेकिन हजारों ऐसी आते हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है।

दैव न करें, आज मैं बीमार हो आऊँ, तो तुम्हारे हाथ-पांव फूल जाएंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेंगा; लेकिन तुम्हारी जगह पर दादा हो, तो किसी को तार न दें, न घबराएं, न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें सफल न हुए, तो किसी डॉक्टर को बुलायेंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने-भर का महीने-भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं और पैसे-पैसे को मोहताज हो जाते हैं। नाश्ता बंद हो जाता है,

धोबी और नाई से मुंह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुम्ब का पालन किया है, जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो। एम. ए. हैं कि नहीं, और यहाँ के एम. ए. नहीं, आक्स्फोर्ड के। एक हजार रुपये पाते हैं, लेकिन उनके घर इंतजाम कौन करता है? उनकी बूढ़ी माँ। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहाँ बेकार हो गई। पहले खुद घर का इंतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माताजी ने प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह जरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गये हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते तुम बेराह नहीं चल पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे, तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं।

मैं उनकी इस नई युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे तम में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा-हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिल्कुल सच है और आपको कहने का अधिकार है।

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बाल-कनकाए उड़ान को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन क्या करूँ, खुद बेराह चलूँ तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर पर है।

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लंबे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होटल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

स्वर्गीय देवनाथ मेरे अभिन्न मित्रों में थे। आज भी जब उनकी याद आती है, तो वह रंगरेलियां आंखों में फिर जाती हैं, और कहीं एकांत में जाकर जरा रो लेता हूं। हमारे देर रो लेता हूं। हमारे बीच में दो-ढाई सौ मील का अंतर था। मैं लखनऊ में था, वह दिल्ली में; लेकिन ऐसा शायद ही कोई महीना जाता हो कि हम आपस में न मिल पाते हों। वह स्वच्छन्द प्रकृति के विनोदप्रिय, सहृदय, उदार और मित्रों पर प्राण देनेवाला आदमी थे, जिन्होंने अपने और पराए में कभी भेद नहीं किया। संसार क्या है और यहां लौकिक व्यवहार का कैसा निर्वाह होता है, यह उस व्यक्ति ने कभी न जानने की चेष्टा की। उनकी जीवन में ऐसे कई अवसर आए, जब उन्हें आगे के लिए होशियार हो जाना चाहिए था।

मित्रों ने उनकी निष्कपटता से अनुचित लाभ उठाया, और कई बार उन्हें लज्जित भी होना पड़ा; लेकिन उस भले आदमी ने जीवन से कोई सबक लेने की कसम खा ली थी। उनके व्यवहार ज्यों के त्यों रहे— 'जैसे भोलानाथ जिए, वैसे ही भोलानाथ मरे, जिस दुनिया में वह रहते थे वह निराली दुनिया थी, जिसमें संदेह, चालाकी और कपट के लिए स्थान न था— सब अपने थे, कोई गैर न था। मैंने बार-बार उन्हें सचेत करना चाहा, पर इसका परिणाम आशा के विरुद्ध हुआ। मुझे कभी-कभी चिंता होती थी कि उन्होंने इसे बंद न किया, तो नतीजा क्या होगा? लेकिन विडंबना यह थी कि उनकी स्त्री गोपा भी कुछ उसी सांचे में ढली हुई थी। हमारी देवियों में जो एक चातुरी होती है, जो सदैव ऐसे उड़ाऊ पुरुषों की असावधानियों पर 'ब्रेक का काम करती है, उससे वह वंचित थी। यहां तक कि वस्त्राभूषण में भी उसे विशेष रुचि न थी। अतएव जब मुझे देवनाथ के स्वर्गारोहण का समाचार मिला और मैं भागा हुआ दिल्ली गया, तो घर में बरतन भांडे और मकान के सिवा और कोई संपत्ति न थी। और अभी उनकी उम्र ही क्या थी, जो संचय की चिंता करते चालीस भी तो पूरे न हुए थे। यों तो लड़पन उनके स्वभाव में ही था; लेकिन इस उम्र में प्रायः सभी लोग कुछ बेफ्रिक रहते हैं। पहले एक लड़की हुई थी, इसके बाद दो लड़के हुए। दोनों लड़के तो बचपन में ही दगा दे गए थे। लड़की बच रही थी, और यही इस नाटक का सबसे करुण दृश्य था। जिस तरह का इनका जीवन था उसको देखते इस छोटे से परिवार के लिए दो सौ रुपये महीने की जरूरत थी। दो-तीन साल में लड़की का विवाह भी करना होगा। कैसे क्या होगा, मेरी बुद्धि कुछ काम न करती थी।

इस अवसर पर मुझे यह बहुमूल्य अनुभव हुआ कि जो लोग सेवा भाव रखते हैं और जो स्वार्थ-सिद्धि को जीवन का लक्ष्य नहीं बनाते, उनके परिवार को आड़ देनेवालों की कमी नहीं रहती। यह कोई नियम नहीं है, क्योंकि मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है, जिन्होंने जीवन में बहुतों के साथ अच्छे सलूक किए; पर उनके पीछे उनके बाल-बच्चे की किसी ने बात तक न पूछी। लेकिन चाहे कुछ हो, देवनाथ के मित्रों ने प्रशंसनीय औदार्य से काम लिया और गोपा के निर्वाह के लिए स्थाई धन जमा करने का प्रस्ताव किया। दो-एक सज्जन जो रंडुवे थे, उससे विवाह करने को तैयार थे, किंतु गोपा ने भी उसी स्वाभिमान का परिचय दिया, जो महारी देवियों का जौहर है और इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। मकान बहुत बड़ा था। उसका एक भाग किराए पर उठा दिया। इस तरह उसको 50 रु महावार मिलने लगे। वह इतने में ही अपना निर्वाह कर लेगी। जो कुछ खर्च था, वह सुन्नी की जात से था। गोपा के लिए तो जीवन में अब कोई अनुराग ही न था।

2

इसके एक महीने बाद मुझे कारोबार के सिलसिले में विदेश जाना पड़ा और वहां मेरे अनुमान से कहीं अधिक—दो साल-लग गए। गोपा के पत्र बराबर जाते रहते थे, जिससे मालूम होता था, वे आराम से हैं, कोई चिंता की बात नहीं है। मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि गोपा ने मुझे भी गैर समझा और वास्तविक स्थिति छिपाती रही।

विदेश से लौटकर मैं सीधा दिल्ली पहुँचा। द्वार पर पहुंचते ही मुझे भी रोना आ गया। मृत्यु की प्रतिध्वनि-सी छापी हुई थी। जिस कमरे में मित्रों के जमघट रहते थे उनके द्वार बंद थे, मकड़ियों ने चारों ओर जाले तान रखे थे। देवनाथ के साथ वह श्री लुप्त हो गई थी। पहली नजर में मुझे तो ऐसा भ्रम हुआ कि देवनाथ द्वार पर खड़े मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं। मैं मिथ्यावादी नहीं हूँ और आत्मा की दैहिकता में मुझे संदेह है, लेकिन उस वक्त एक बार मैं चौंक जरूर पड़ा हृदय में एक कम्पन-सा उठा; लेकिन दूसरी नजर में प्रतिमा मिट चुकी थी।

द्वार खुला। गोपा के सिवा खोलनेवाला ही कौन था। मैंने उसे देखकर दिल थाम लिया। उसे मेरे आने की सूचना थी और मेरे स्वागत की प्रतीक्षा में उसने नई साड़ी पहन ली थी और शायद बाल भी गुंथा लिए थे; पर इन दो वर्षों के समय ने उस पर जो आघात किए थे, उन्हें क्या करती? नारियों के जीवन में यह वह अवस्था है, जब रूप लावण्य अपने पूरे विकास पर होता है, जब उसमें अल्हड़पन चंचलता और अभिमान की जगह आकर्षण, माधुर्य और रसिकता आ जाती है; लेकिन गोपा का यौवन बीत चुका था उसके मुख पर झुर्रियां और विषाद की रेखाएं अंकित थीं, जिन्हें उसकी प्रयत्नशील प्रसन्नता भी न मिटा सकती थी। केशों पर सफेदी दौड़ चली थी और एक एक अंग बूढ़ा हो रहा था।

मैंने करुण स्वर में पूछा क्या तुम बीमार थीं गोपा।

गोपा ने आंसू पीकर कहा नहीं तो, मुझे कभी सिर दर्द भी नहीं हुआ। 'तो तुम्हारी यह क्या दशा है? बिल्कुल बूढ़ी हो गई हो।'

'तो जवानी लेकर करना ही क्या है? मेरी उम्र तो पैंतीस के ऊपर हो गई।'

'पैंतीस की उम्र तो बहुत नहीं होती।'

'हाँ उनके लिए जो बहुत दिन जीना चाहते हैं। मैं तो चाहती हूँ जितनी जल्द हो सके, जीवन का अंत हो जाए। बस सुन्न के ब्याह की चिंता है। इससे छुट्टी पाऊँ; मुझे जिन्दगी की परवाह न रहेगी।'

अब मालूम हुआ कि जो सज्जन इस मकान में किराएदार हुए थे, वह थोड़े दिनों के बाद तबदील होकर चले गए और तब से कोई दूसरा किरायेदार न आया। मेरे हृदय में बरछी-सी चुभ गई। इतने दिनों इन बेचारों का निर्वाह कैसे हुआ, यह कल्पना ही दुःखद थी।

मैंने विरक्त मन से कहा—लेकिन तुमने मुझे सूचना क्यों न दी? क्या मैं बिल्कुल गैर हूँ?

गोपा ने लज्जित होकर कहा नहीं नहीं यह बात नहीं है। तुम्हें गैर समझूँगी तो अपना किसे समझूँगी? मैंने समझा परदेश में तुम खुद अपने झमेले में पड़े होगे, तुम्हें क्यों सताऊँ? किसी न किसी तरह दिन कट ही गये। घर में और कुछ न था, तो थोड़े—से गहने तो थे ही। अब सुनीता के विवाह की चिंता है। पहले मैंने सोचा था, इस मकान को निकाल दूँगी, बीस-बाइस हजार मिल जाएँगे। विवाह भी हो जाएगा और कुछ मेरे लिए बचा भी रहेगा; लेकिन बाद को मालूम हुआ कि मकान पहले ही रेहन हो चुका है और सूद मिलाकर उस पर बीस हजार हो गए हैं। महाजन ने इतनी ही दया क्या कम की, कि मुझे घर से निकाल न दिया। इधर से तो अब कोई आशा नहीं है। बहुत हाथ पांव जोड़ने पर संभव है, महाजन से दो ढाई हजार मिल जाए। इतने में क्या होगा? इसी फिक्र में घुली जा रही हूँ। लेकिन मैं भी इतनी मतलबी हूँ, न तुम्हें हाथ मुंह धोने को पानी दिया, न कुछ जलपान लायी और अपना दुखड़ा ले बैठी। अब आप कपड़े उतारिए और आराम से बैठिए। कुछ खाने को लाऊँ, खा लीजिए, तब बातें हों। घर पर तो सब कुशल है?

मैंने कहा—मैं तो सीधे बम्बई से यहां आ रहा हूँ। घर कहाँ गया।

गोपा ने मुझे तिरस्कार—भरी आंखों से देखा, पर उस तिरस्कार की आड़ में घनिष्ठ आत्मीयता बैठी झांक रही थी। मुझे ऐसा जान पड़ा, उसके मुख की झुर्रियां मिट गई हैं। पीछे मुख पर हल्की—सी लाली दौड़ गई। उसने कहा—इसका फल यह होगा कि तुम्हारी देवीजी तुम्हें कभी यहां न आने देंगी।

'मैं किसी का गुलाम नहीं हूँ।'

'किसी को अपना गुलाम बनाने के लिए पहले खुद भी उसका गुलाम बनना पड़ता है।'

शीतकाल की संध्या देखते ही देखते दीपक जलाने लगी। सुन्नी लालटेन लेकर कमरे में आयी। दो साल पहले की अबोध और कृशतनु बालिका रूपवती युवती हो गई थी, जिसकी हर एक चितवन, हर एक बात उसकी गौरवशील प्रकृति का पता दे रही थी। जिसे मैं गोद में उठाकर प्यार करता था, उसकी तरफ आज आंखें न उठा सका और वह जो मेरे गले से लिपटकर प्रसन्न होती थी, आज मेरे सामने खड़ी भी न रह सकी। जैसे मुझसे वस्तु छिपाना चाहती है, और जैसे मैं उस वस्तु को छिपाने का अवसर दे रहा हूँ।

मैंने पूछा—अब तुम किस दर्जे में पहुँची सुन्नी?

उसने सिर झुकाए हुए जवाब दिया—दसवें में हूँ।

'घर का भ कुछ काम-काज करती हो।'

'अम्मा जब करने भी दें।'

गोपा बोली—मैं नहीं करने देती या खुद किसी काम के नगीच नहीं जाती?

सुन्नी मुंह फेरकर हंसती हुई चली गई। मां की दुलारी लड़की थी। जिस दिन वह गहस्थी का काम करती, उस दिन शायद गोपा रो रोकर आंखें फोड़ लेती। वह खुद लड़की को कोई काम न करने देती थी, मगर

सबसे शिकायत करती थी कि वह कोई काम नहीं करती। यह शिकायत भी उसके प्यार का ही एक करिश्मा था। हमारी मर्यादा हमारे बाद भी जीवित रहती है।

मैं तो भोजन करके लेटा, तो गोपा ने फिर सुन्नी के विवाह की तैयारियों की चर्चा छेड़ दी। इसके सिवा उसके पास और बात ही क्या थी। लड़के तो बहुत मिलते हैं, लेकिन कुछ हैसियत भी तो हो। लड़की को यह सोचने का अवसर क्यों मिले कि दादा होते हुए तो शायद मेरे लिए इससे अच्छा घर वर ढूँढते। फिर गोपा ने डरते डरते लाला मदारीलाल के लड़के का जिक्र किया।

मैंने चकित होकर उसकी तरफ देखा। मदारीलाल पहले इंजीनियर थे, अब पेंशन पाते थे। लाखों रुपया जमा कर लिए थे, पर अब तक उनके लोभ की भूख न बुझी थी। गोपा ने घर भी वह छांटा, जहां उसकी रसाई कठिन थी।

मैंने आपत्ति की—मदारीलाल तो बड़ा दुर्जन मनुष्य है।

गोपा ने दांतों तले जीभ दबाकर कहा—अरे नहीं भैया, तुमने उन्हें पहचाना न होगा। मेरे उपर बड़े दयालु हैं। कभी-कभी आकर कुशल—समाचार पूछ जाते हैं। लड़का ऐसा होनहार है कि मैं तुमसे क्या कहूं। फिर उनके यहां कमी किस बात की है? यह ठीक है कि पहले वह खूब रिश्वत लेते थे; लेकिन यहां धर्मात्मा कौन है? कौन अवसर पाकर छोड़ देता है? मदारीलाल ने तो यहां तक कह दिया कि वह मुझसे दहेज नहीं चाहते, केवल कन्या चाहते हैं। सुन्नी उनके मन में बैठ गई है।

मुझे गोपा की सरलता पर दया आयी; लेकिन मैंने सोचा क्यों इसके मन में किसी के प्रति अविश्वास उत्पन्न करूं। संभव है मदारीलाल वह न रहे हों, चित का भावनाएं बदलती भी रहती हैं।

मैंने अर्ध सहमत होकर कहा—मगर यह तो सोचो, उनमें और तुममें कितना अंतर है। शायद अपना सर्वस्व अर्पण करके भी उनका मुंह नीचा न कर सको।

लेकिन गोपा के मन में बात जम गई थी। सुन्नी को वह ऐसे घर में चाहती थी, जहां वह रानी बरकर रहे।

दूसरे दिन प्रातः काल मैं मदारीलाल के पास गया और उनसे मेरी जो बातचीत हुई, उसने मुझे मुग्ध कर दिया। किसी समय वह लोभी रहे होंगे, इस समय तो मैंने उन्हें बहुत ही सहृदय उदार और विनयशील पाया। बोले भाई साहब, मैं देवनाथ जी से परिचित हूं। आदमियों में रत्न थे। उनकी लड़की मेरे घर आये, यह मेरा सौभाग्य है। आप उनकी मां से कह दें, मदारीलाल उनसे किसी चीज की इच्छा नहीं रखता। ईश्वर का दिया हुआ मेरे घर में सब कुछ है, मैं उन्हें जेरबार नहीं करना चाहता।

3

ये चार महीने गोपा ने विवाह की तैयारियों में काटे। मैं महीने में एक बार अवश्य उससे मिल आता था; पर हर बार खिन्न होकर लौटता। गोपा ने अपनी कुल मर्यादा का न जाने कितना महान आदर्श अपने सामने रख लिया था। पगली इस भ्रम में पड़ी हुई थी कि उसका उत्साह नगर में अपनी यादगार छोड़ता जाएगा। यह न जानती थी कि यहां ऐसे तमाशे रोज होते हैं और आये दिन भुला दिए जाते हैं। शायद वह संसार से यह श्रेय लेना चाहती थी कि इस गई—बीती दशा में भी, लुटा हुआ हाथी नौ लाख का है। पग-पग पर उसे देवनाथ की याद आती। वह होते तो यह काम यों न होता, यों होता, और तब रोती।

मदारीलाल सज्जन हैं, यह सत्य है, लेकिन गोपा का अपनी कन्या के प्रति भी कुछ धर्म है। कौन उसके दस पांच लड़कियां बैठी हुई हैं। वह तो दिल खोलकर अरमान निकालेगी! सुन्नी के लिए उसने जितने गहने और जोड़े बनवाए थे, उन्हें देखकर मुझे आश्चर्य होता था। जब देखो कुछ-न-कुछ सी रही है, कभी सुनारों की दुकान पर बैठी हुई है, कभी मेहमानों के आदर-सत्कार का आयोजन कर रही है। मुहल्ले में ऐसा बिरला ही कोई सम्पन्न मनुष्य होगा, जिससे उसने कुछ कर्ज न लिया हो। वह इसे कर्ज समझती थी, पर देने वाले दान समझकर देते थे। सारा मुहल्ला उसका सहायक था। सुन्नी अब मुहल्ले की लड़की थी। गोपा की इज्जत सबकी इज्जत है और गोपा के लिए तो नींद और आराम हराम था। दर्द से सिर फटा जा रहा है, आधी रात हो गई मगर वह बैठी कुछ-न-कुछ सी रही है, या इस कोठी का धान उस कोठी कर रही है। कितनी वात्सल्य से भरी अकांक्षा थी, जो कि देखने वालों में श्रद्धा उत्पन्न कर देती थी।

अकेली औरत और वह भी आधी जान की। क्या क्या करे। जो काम दूसरों पर छोड़ देती है, उसी में कुछ न कुछ कसर रह जाती है, पर उसकी हिम्मत है कि किसी तरह हार नहीं मानती।

पिछली बार उसकी दशा देखकर मुझे रहा न गया। बोला—गोपा देवी, अगर मरना ही चाहती हो, तो विवाह हो जाने के बाद मरो। मुझे भय है कि तुम उसके पहले ही न चल दो।

गोपा का मुरझाया हुआ मुख प्रमुदित हो उठा। बोली उसकी चिंता न करो भैया विधवा की आयु बहुत लंबी होती है। तुमने सुना नहीं, रॉड मरे न खंडहर ढहे। लेकिन मेरी कामना यही है कि सुन्नी का ठिकाना लगाकर मैं भी चल दूं। अब और जीकर क्या करूंगी, सोचो। क्या करूं, अगर किसी तरह का विघ्न पड़ गया तो किसकी बदनामी होगी। इन चार महीनों में मुश्किल से घंटा भर सोती हूंगी। नींद ही नहीं आती, पर मेरा चित प्रसन्न है। मैं मरूं या जीऊँ मुझे यह संतोष तो होगा कि सुन्नी के लिए उसका बाप जो कर सकता था, वह मैंने कर दिया। मदारीलाल ने अपन सज्जनता दिखाय, तो मुझे भी तो अपनी नाक रखनी है।

एक देवी ने आकर कहा बहन, जरा चलकर देख चाशनी ठीक हो गई है या नहीं। गोपा उसके साथ चाशनी की परीक्षा करने गयीं और एक क्षण के बाद आकर बोली जी चाहता है, सिर पीट लूं। तुमसे जरा बात करने लगी, उधर चाशनी इतनी कड़ी हो गई कि लड्डू दोंतों से लड़ेंगे। किससे क्या कहूं।

मैंने चिढ़कर कहा तुम व्यर्थ का झंझट कर रही हो। क्यों नहीं किसी हलवाई को बुलाकर मिठाइयां का ठेका दे देती। फिर तुम्हारे यहां मेहमान ही कितने आएंगे, जिनके लिए यह तूमार बांध रही हो। दस पांच की मिठाई उनके लिए बहुत होगी।

गोपा ने व्यथित नेत्रों से मेर ओर देखा। मेर यह आलोचना उसे बुर लग। इन दिनों उसे बात बात पर क्रोध आ जाता था। बोली भैया, तुम ये बातें न समझोगे। तुम्हें न मां बनने का अवसर मिला, न पत्नि बनने का। सुन्नी के पिता का कितना नाम था, कितने आदमी उनके दम से जीते थे, क्या यह तुम नहीं जानते, वह पगड़ी मेरे ही सिर तो बंधी है। तुम्हें विश्वास न आएगा नास्तिक जो ठहरे, पर मैं तो उन्हें सदैव अपने अंदर बैठा पाती हूं, जो कुछ कर रहे हैं वह कर रहे हैं। मैं मंदबुद्धि स्त्री भला अकेली क्या कर देती। वही मेरे सहायक हैं वही मेरे प्रकाश हैं। यह समझ लो कि यह देह मेरी है पर इसके अंदर जो आत्मा है वह उनकी है। जो कुछ हो रहा है उनके पुण्य आदेश से हो रहा है तुम उनके मित्र हो। तुमने अपने सैकड़ों रुपये खर्च किए और इतना हैरान हो रहे हो। मैं तो उनकी सहगामिनी हूं, लोक में भी, परलोक में भी।

मैं अपना सा मुह लेकर रह गया।

4

जून में विवाह हो गया। गोपा ने बहुत कुछ दिया और अपनी हैसियत से बहुत ज्यादा दिया, लेकिन फिर भी, उसे संतोष न हुआ। आज सुन्नी के पिता होते तो न जाने क्या करते। बराबर रोती रही।

जाड़ों में मैं फिर दिल्ली गया। मैंने समझा कि अब गोपा सुखी होगी। लड़की का घर और वर दोनों आदर्श हैं। गोपा को इसके सिवा और क्या चाहिए। लेकिन सुख उसके भाग्य में ही न था।

अभी कपड़े भी न उतारने पाया था कि उसने अपना दुखड़ा शुरू—कर दिया भैया, घर द्वार सब अच्छा है, सास-ससुर भी अच्छे हैं, लेकिन जमाई निकम्मा निकला। सुन्नी बेचारी रो-रोकर दिन काट रही है। तुम उसे देखो, तो पहचान न सको। उसकी परछाई मात्र रह गई है। अभी कई दिन हुए, आयी हुई थी, उसकी दशा देखकर छाती फटती थी। जैसे जीवन में अपना पथ खो बैठी हो। न तन बदन की सुध है न कपड़े-लते की। मेरी सुन्नी की दुर्गत होगी, यह तो स्वप्न में भी न सोचा था। बिल्कुल गुम सुम हो गई है। कितना पूछा बेटी तुमसे वह क्यों नहीं बोलता किस बात पर नाराज है, लेकिन कुछ जवाब ही नहीं देती। बस, आंखों से आंसू बहते हैं, मेरी सुन्न कुएं में गिर गई।

मैंने कहा तुमने उसके घर वालों से पता नहीं लगाया।

‘लगाया क्यों नहीं भैया, सब हाल मालूम हो गया। लौंडा चाहता है, मैं चाहे जिस राह जाऊँ, सुन्नी मेरी पूरा करती रहे। सुन्नी भला इसे क्यों सहने लगी? उसे तो तुम जानते हो, कितनी अभिमानी है। वह उन स्त्रियों में नहीं है, जो पति को देवता समझती है और उसका दुर्व्यवहार सहती रहती है। उसने सदैव दुलार और प्यार पाया है। बाप भी उस पर जान देता था। मैं आंख की पुतली समझती थी। पति मिला छैला, जो आधी आधी रात तक मारा मारा फिरता है। दोनों में क्या बात हुई यह कौन जान सकता है, लेकिन दोनों में कोई गांठ पड़ गई है। न सुन्नी की परवाह करता है, न सुन्न उसकी परवाह करती है, मगर वह तो अपने रंग में मस्त है, सुन्न प्राण दिये देती है। उसके लिए सुन्नी की जगह मुन्नी है, सुन्न के लिए उसकी अपेक्षा है और रुदन है।’

मैंने कहा—लेकिन तुमने सुन्नी को समझाया नहीं। उस लौंडे का क्या बिगड़ेगा? इसकी तो जिन्दगी खराब हो जाएगी।

गोपा की आंखों में आंसू भर आए, बोली—भैया-किस दिल से समझाऊँ? सुन्नी को देखकर तो मेर छाती फटने लगती है। बस यही जी चाहता है कि इसे अपने कलेजे में ऐसे रख लूं, कि इसे कोई कड़ी आंख से देख भी न सके। सुन्नी फूहड़ होती, कटु भाषिणी होती, आरामतलब होती, तो समझती भी। क्या यह समझाऊँ कि तेरा पति गली गली मुँह काला करता फिरे, फिर भी तू उसकी पूजा किया कर? मैं तो खुद यह अपमान न सह सकती। स्त्री पुरुष में विवाह की पहली शर्त यह है कि दोनों सोलहों आने एक-दूसरे के हो जाएं। ऐसे पुरुष तो कम हैं, जो स्त्री को जौ-भर विचलित होते देखकर शांत रह सकें, पर ऐसी स्त्रियां बहुत हैं, जो पति को स्वच्छंद समझती हैं। सुन्न उन स्त्रियों में नहीं है। वह अगर आत्मसमर्पण करती है तो आत्मसमर्पण चाहती भी है, और यदि पति में यह बात न हुई, तो वह उसमें कोई संपर्क न रखेगी, चाहे उसका सारा जीवन रोते कट जाए।

यह कहकर गोपा भीतर गई और एक सिंगारदान लाकर उसके अंदर के आभूषण दिखाती हुई बोली सुन्नी इसे अब की यहीं छोड़ गई। इसीलिए आयी थी। ये वे गहने हैं जो मैंने न जाने कितना कष्ट सहकर बनवाए थे। इसके पीछे महीनों मारी मारी फिरी थी। यों कहो कि भीख मांगकर जमा किये थे। सुन्नी अब इसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखती! पहने तो किसके लिए? सिंगार करे तो किस पर? पांच संदूक कपडों के दिए थे। कपडे सीते-सीते मेरी आंखें फूट गई। यह सब कपडे उठाती लायी। इन चीजों से उसे घृणा हो गई है। बस, कलाई में दो चूडियां और एक उजली साड़ी; यही उसका सिंगार है।

मैंने गोपा को सांत्वना दी—मैं जाकर केदारनाथ से मिलूंगा। देखूं तो, वह किस रंग ढंग का आदमी है।

गोपा ने हाथ जोड़कर कहा—नहीं भरेया, भूलकर भी न जाना; सुन्नी सुनेगी तो प्राण ही दे देगी। अभिमान की पुतली ही समझो उसे। रस्सी समझ लो, जिसके जल जाने पर भी बल नहीं जाते। जिन पैरों से उसे ठुकरा दिया है, उन्हें वह कभी न सहलाएगी। उसे अपना बनाकर कोई चाहे तो लौंडी बना ले, लेकिन शासन तो उसने मेरा न सहा, दूसरों का क्या सहेगी।

मैंने गोपा से उस वक्त कुछ न कहा, लेकिन अवसर पाते ही लाला मदारीलाल से मिला। मैं रहस्य का पता लगाना चाहता था। संयोग से पिता और पुत्र, दोनों ही एक जगह पर मिल गए। मुझे देखते ही केदार ने इस तरह झुककर मेरे चरण छुए कि मैं उसकी शालीनता पर मुग्ध हो गया। तुरंत भीतर गया और चाय, मुरब्बा और मिठाइयां लाया। इतना सौम्य, इतना सुशील, इतना विनम्र युवक मैंने न देखा था। यह भावना ही न हो सकती थी कि इसके भीतर और बाहर में कोई अंतर हो सकता है। जब तक रहा सिर झुकाए बैठा रहा। उच्छृंखलता तो उसे छू भी नहीं गई थी।

जब केदार टेनिस खेलने गया, तो मैंने मदारीलाल से कहा केदार बाबू तो बहुत सच्चरित्र जान पड़ते हैं, फिर स्त्री पुरुष में इतना मनोमालिन्य क्यों हो गया है।

मदारीलाल ने एक क्षण विचार करके कहा इसका कारण इसके सिवा और क्या बताऊँ कि दोनों अपने माँ-बाप के लाड़ले हैं, और प्यार लड़कों को अपने मन का बना देता है। मेरा सारा जीवन संघर्ष में कटा। अब जाकर जरा शांति मिली है। भोग-विलास का कभी अवसर ही न मिला। दिन भर परिश्रम करता था, संध्या को पड़कर सो जाता था। स्वास्थ्य भी अच्छा न था, इसलिए बार-बार यह चिंता सवार रहती थी कि संचय कर लूं। ऐसा न हो कि मेरे पीछे बाल बच्चे भीख मांगते फिरे। नतीजा यह हुआ कि इन महाशय को मुफ्त का धन मिला। सनक सवार हो गई। शराब उड़ने लगी। फिर ड्रामा खेलने का शौक हुआ। धन की कमी थी ही नहीं, उस पर माँ-बाप अकेले बेटे। उनकी प्रसन्नता ही हमारे जीवन को स्वर्ग था। पढ़ना-लिखना तो दूर रहा, विलास की इच्छा बढ़ती गई। रंग और गहरा हुआ, अपने जीवन का ड्रामा खेलने लगे। मैंने यह रंग देखा तो मुझे चिंता हुई। सोचा, ब्याह कर दूं ठीक हो जाएगा। गोपा देवी का पैगाम आया, तो मैंने तुरंत स्वीकार कर लिया। मैं सुन्नी को देख चुका था। सोचा, ऐसा रूपवती पत्नी पाकर इनका मन स्थिर हो जाएगा, पर वह भी लाड़ली लड़की थी—हठीली, अबोध, आदर्शवादिनी। सहिष्णुता तो उसने सीखी ही न थी। समझौते का जीवन में क्या मूल्य है, इसका उसे खबर ही नहीं। लोहा लोहे से लड़ गया। वह अभन से पराजित करना चाहती है या उपेक्षा से, यही रहस्य है। और साहब मैं तो बहू को ही अधिक दोषी समझता हूं। लड़के प्रायः मनचले होते हैं। लड़कियां स्वाभाव से ही सुशील होती हैं और अपनी जिम्मेदारी समझती हैं। उसमें ये गुण हैं नहीं। डोंगा कैसे पार होगा ईश्वर ही जाने।

सहसा सुन्नी अंदर से आ गई। बिल्कुल अपने चित्र की रेखा सी, मानो मनोहर संगीत की प्रतिध्वनि हो। कुंदन तपकर भस्म हो गया था। मिटी हुई आशाओं का इससे अच्छा चित्र नहीं हो सकता। उलाहना देती हुई बोली—आप जानें कब से बैठे हुए हैं, मुझे खबर तक नहीं और शायद आप बाहर ही बाहर चले भी जाते?

मैंने आंसुओं के वेग को रोकते हुए कहा नहीं सुन्नी, यह कैसे हो सकता था तुम्हारे पास आ ही रहा था कि तुम स्वयं आ गई।

मदारीलाल कमरे के बाहर अपनी कार की सफाई करने लगे। शायद मुझे सुन्नी से बात करने का अवसर देना चाहते थे।

सुन्नी ने पूछा—अम्मां तो अच्छी तरह हैं?

‘हां अच्छी हैं। तुमने अपनी यह क्या गत बना रखी है।’

‘मैं अच्छी तरह से हूं।’

‘यह बात क्या है? तुम लोगों में यह क्या अनबन है। गोपा देवी प्राण दिये डालती हैं। तुम खुद मरने की तैयारी कर रही हो। कुछ तो विचार से काम लो।’

सुन्नी के माथे पर बल पड़ गए—आपने नाहक यह विषय छेड़ दिया चाचा जी! मैंने तो यह सोचकर अपने मन को समझा लिया कि मैं अभागिन हूं। बस, उसका निवारण मेरे बूते से बाहर है। मैं उस जीवन से मृत्यु को कहीं अच्छा समझती हूं, जहां अपनी कदर न हो। मैं व्रत के बदले में व्रत चाहती हूं। जीवन का कोई दूसरा रूप मेरी समझ में नहीं आता। इस विषय में किसी तरह का समझौता करना मेरे लिए असंभव है। नतीजे भी मैं परवाह नहीं करती।

‘लेकिन...’

‘नहीं चाचाजी, इस विषय में अब कुछ न कहिए, नहीं तो मैं चली जाऊंगी।’

‘आखिर सोचो तो...’

‘मैं सब सोच चुकी और तय कर चुकी। पशु को मनुष्य बनाना मेरी शक्ति से बाहर है।’

इसके बाद मेरे लिए अपना मुंह बंद करने के सिवा और क्या रह गया था?

5

मई का महीना था। मैं मंसूर गया हुआ था कि गोपा का तार पहुंचा तुरंत आओ, जरूरी काम है। मैं घबरा तो गया लेकिन इतना निश्चित था कि कोई दुर्घटना नहीं हुई है। दूसरे दिन दिल्ली जा पहुंचा। गोपा मेरे सामने आकर खड़ी हो गई, निस्पंद, मूक, निष्प्राण, जैसे तपेदिक की रोगी हो।

‘मैंने पूछा कुशल तो है, मैं तो घबरा उठा।’

‘उसने बुझी हुई आंखों से देखा और बोल सच।’

‘सुन्नी तो कुशल से है।’

‘हां अच्छी तरह है।’

‘और केदारनाथ?’

‘वह भी अच्छी तरह हैं।’

‘तो फिर माजरा क्या है?’

‘कुछ तो नहीं।’

‘तुमने तार दिया और कहती हो कुछ तो नहीं।’

‘दिल तो घबरा रहा था, इससे तुम्हें बुला लिया। सुन्नी को किसी तरह समझाकर यहां लाना है। मैं तो सब कुछ करके हार गई।’

‘क्या इधर कोई नई बात हो गई।’

‘नयी तो नहीं है, लेकिन एक तरह में नयी ही समझो, केदार एक ऐक्ट्रेस के साथ कहीं भाग गया। एक सप्ताह से उसका कहीं पता नहीं है। सुन्नी से कह गया है—जब तक तुम रहोगी घर में नहीं आऊंगा। सारा घर सुन्नी का शत्रु हो रहा है, लेकिन वह वहां से टलने का नाम नहीं लेता। सुना है केदार अपने बाप के दस्तखत बनाकर कई हजार रुपये बैंक से ले गया है।’

‘तुम सुन्नी से मिली थीं?’

‘हां, तीन दिन से बराबर जा रही हूं।’

‘वह नहीं आना चाहती, तो रहने क्यों नहीं देती।’

‘वहां घुट घुटकर मर जाएगी।’

‘मैं उन्हीं पैरों लाला मदारीलाल के घर चला। हालांकि मैं जानता था कि सुन्नी किसी तरह न आएगी, मगर वहां पहुंचा तो देखा कुहराम मचा हुआ है। मेरा कलेजा धक से रह गया। वहां तो अर्थी सज रही थी। मुहल्ले के सैकड़ों आदमी जमा थे। घर में से ‘हाय! हाय!’ की क्रंदन-ध्वनि आ रही थी। यह सुन्नी का शव था।

मदारीलाल मुझे देखते ही मुझसे उन्मत्त की भांति लिपट गए और बोले:

‘भाई साहब, मैं तो लुट गया। लड़का भी गया, बहू भी गयी, जिन्दगी ही गारत हो गई।’

मालूम हुआ कि जब से केदार गायब हो गया था, सुन्नी और भी ज्यादा उदास रहने लगी थी। उसने उसी दिन अपनी चूड़ियां तोड़ डाली थीं और मांग का सिंदूर पोंछ डाला था। सास ने जब आपत्ति की, तो उनको अपशब्द कहे। मदारीलाल ने समझाना चाहा तो उन्हें भी जली-कटी सुनायी। ऐसा अनुमान होता था—उन्माद हो गया है। लोगों ने उससे बोलना छोड़ दिया था। आज प्रातःकाल यमुना स्नान करने गयी। अंधेरा था, सारा घर सो रहा था, किसी को नहीं जगाया। जब दिन चढ़ गया और बहू घर में न मिली, तो उसकी तलाश होने लगी। दोपहर को पता लगा कि यमुना गयी है। लोग उधर भागे। वहां उसकी लाश मिली। पुलिस आयी, शव की परीक्षा हुई। अब जाकर शव मिला है। मैं कलेजा थामकर बैठ गया। हाय, अभी थोड़े दिन पहले जो सुन्दरी पालकी पर सवार होकर आयी थी, आज वह चार के कंधे पर जा रही है!

मैं अर्थी के साथ हो लिया और वहां से लौटा, तो रात के दस बज गये थे। मेरे पांव कांप रहे थे। मालूम नहीं, यह खबर पाकर गोपा की क्या दशा होगी। प्राणांत न हो जाए, मुझे यही भय हो रहा था। सुन्नी उसकी प्राण थी। उसकी जीवन का केन्द्र थी। उस दुखिया के उद्यान में यही पौधा बच रहा था। उसे वह हृदय रक्त से सींच-सींचकर पाल रही थी। उसके वसंत का सुनहरा स्वप्न ही उसका जीवन था उसमें कोपलें निकलेंगी, फूल खिलेंगे, फल लगेंगे, चिड़िया उसकी डाली पर बैठकर अपने सुहाने राग गाएंगी, किन्तु आज निष्ठुर नियति ने उस जीवन सूत्र को उखाड़कर फेंक दिया। और अब उसके जीवन का कोई आधार न था। वह बिन्दु ही मिट गया था, जिस पर जीवन की सारी रेखाएँ आकर एकत्र हो जाती थीं।

दिल को दोनों हाथों से थामे, मैंने जंजीर खटखटायी। गोपा एक लालटेन लिए निकली। मैंने गोपा के मुख पर एक नए आनंद की झलक देखी।

मेरी शोक मुद्रा देखकर उसने मातृवत् प्रेम से मेरा हाथ पकड़ तलया और बोली आज तो तुम्हारा सारा दिन रोते ही कटा; अर्थी के साथ बहुत से आदमी रहे होंगे। मेरे जी में भी आया कि चलकर सुन्नी के अंतिम दर्शन कर लूं। लेकिन मैंने सोचा, जब सुन्न ही न रही, तो उसकी लाश में क्या रखा है! न गयी।

मैं विस्मय से गोपा का मुहँ देखने लगा। तो इसे यह शोक-समाचार मिल चुका है। फिर भी वह शांति और अविचल धैर्य! बोला अच्छा-किया, न गयी रोना ही तो था।

‘हां, और क्या? रोयी यहां भी, लेकिन तुमसे सचव कहती हूं, दिल से नहीं रोयी। न जाने कैसे आंसू निकल आए। मुझे तो सुन्नी की मौत से प्रसन्नता हुई। दुखिया अपनी मान मर्यादा लिए संसार से विदा हो गई, नहीं तो न जाने क्या क्या देखना पड़ता। इसलिए और भी प्रसन्न हूं कि उसने अपनी आन निभा दी। स्त्री के जीवन में प्यार न मिले तो उसका अंत हो जाना ही अच्छा। तुमने सुन्नी की मुद्रा देखी थी? लोग कहते हैं, ऐसा जान पड़ता था—मुस्करा रही है। मेरी सुन्नी सचमुच देवी थी। भैया, आदमी इसलिए थोड़े ही जीना चाहता है कि रोता रहे। जब मालूम हो गया कि जीवन में दुःख के सिवा कुछ नहीं है, तो आदमी जीकर क्या करे। किसलिए जिए? खाने और सोने और मर जाने के लिए? यह मैं नहीं चाहती कि मुझे सुन्नी की याद न आएगी और मैं उसे याद करके रोऊंगी नहीं। लेकिन वह शोक के आंसू न होंगे। बहादुर बेटे की मां उसकी वीरगति पर प्रसन्न होती है। सुन्नी की मौत में क्या कुछ कम गौरव है? मैं आंसू बहाकर उस गौरव का अनादर कैसे करूं? वह जानती है, और चाहे सारा संसार उसकी निंदा करे, उसकी माता सराहना ही करेगी। उसकी आत्मा से यह आनंद भी छीन लूं? लेकिन अब रात ज्यादा हो गई है। ऊपर जाकर सो रहो। मैंने तुम्हारी चारपाई बिछा दी है, मगर देखे, अकेले पड़े-पड़े रोना नहीं। सुन्नी ने वही किया, जो उसे करना चाहिए था। उसके पिता होते, तो आज सुन्नी की प्रतिमा बनाकर पूजते।’

मैं ऊपर जाकर लेटा, तो मेरे दिल का बोझ बहुत हल्का हो गया था, किन्तु रह-रहकर यह संदेह हो जाता था कि गोपा की यह शांति उसकी अपार व्यथा का ही रूप तो नहीं है?

ईश्वरी एक बड़े जमींदार का लड़का था और मैं गरीब क्लर्क था, जिसके पास मेहनत-मजूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं। मैं जमींदारी की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और खून चूसने वाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलने वाला बंझा कहता। वह जमींदारों का पक्ष लेता, पर स्वभावतः उसका पहलू कुछ कमजोर होता था, क्योंकि उसके पास जमींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। वह कहता कि सभी मनुष्य बराबर नहीं हाते, छोटे-बड़े हमेशा होते रहेंगे। लचर दलील थी। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद-विवाद की गर्मी-गर्मी में अक्सर तेज हो जाता और लगने वाली बात कह जाता, लेकिन ईश्वरी हारकर भी मुस्कराता रहता था मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमजोरी समझता था।

नौकरों से वह सीधे मुंह बात नहीं करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दण्टा होती है, इसमें उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकर ने बिस्तर लगाने में जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठंडा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीजी उसे जरा भी बरदाश्त न थी, पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा हुआ होता था। शायद उसकी जगह में होता, तो मुझसे भी वहीं कठोरताएं पैदा हो जातीं, जो उसमें थीं, क्योंकि मेरा लोकप्रेम सिद्धांतों पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था, लेकिन वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से ही विलासी और ऐश्वर्य-प्रिय था।

अबकी दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊंगा। मेरे पास किराए के लिए रुपये न थे और न घरवालों को तकलीफ देना चाहता था। मैं जानता हूं, वे मुझे जो कुछ देते हैं, वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा है, उसके साथ ही परीक्षा का खयाल था। अभी बहुत कुछ पढ़ना है, बोर्डिंग हाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। इसलिए जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर का नेवता दिया, तो मैं बिना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जाएगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने उसके साथ ही कहा-लेकिन भाई, एक बात का खयाल रखना। वहाँ अगर जमींदारों की निंदा की, तो मुआमिला बिगड़ जाएगा और मेरे घरवालों को बुरा लगेगा। वह लोग तो आसामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने आसामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। असामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारों का कहीं पता न लगे।

मैंने कहा-तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहां जाकर कुछ और हो जाऊंगा?

‘हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।’

‘तुम गलत समझते हो।’

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया। और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता, तो मैं भी जिद पकड़ लेता।

2

सेकंड क्लास तो क्या, मैंने कभी इंटर क्लास में भी सफर न किया था। अब की सेकंड क्लास में सफर का सौभाग्य प्राइज़ हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी, पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को स्टेशन जा पहुंचे। कुछ देर इधर-उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेंट-रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेश-भूषा और रंग-ढंग से पारखी खानसामों को यह पहचानने में देर न लगी कि मालिक कौन है और पिछलग्गू कौन; लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी की जेब से गए। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामों को इनाम-इकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ही ने दी। फिर भी मैं उन सभी से उसी तत्परता और विनय की अपेक्षा करता था, जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे। क्यों ईश्वरी के हुक्म पर सब-के-सब दौड़ते हैं, लेकिन मैं कोई चीज मांगता हूँ, तो उतना उत्साह नहीं दिखाते! मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। यह भेद मेरे ध्यान को सम्पूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आयी, हम दोनों सवार हुए। खानसामों ने ईश्वरी को सलाम किया। मेरी ओर देखा भी नहीं। ईश्वरी ने कहा—कितने तमीजदार हैं ये सब? एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढंग नहीं। मैंने खट्टे मन से कहा—इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो, तो शायद इनसे ज्यादा तमीजदार हो जाएं।

‘तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच से इतना अदब करते हैं।’

‘जी नहीं, कदापित नहीं! तमीज और अदब तो इनके रक्त में मिल गया है।’

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयास से चली तो प्रतापगढ़ जाकर रूकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरंत चिल्ला उठा, दूसरा दरजा है—सेकंड क्लास है।

उस मुसाफिर ने डिब्बे के अन्दर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा—जी हां, सेवक इतना समझता है, और बीच वाले बर्थडे पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आई, कह नहीं सकता।

भोर होते-होते हम लोग मुरादाबाद पहुंचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे। पांच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे-पीछे चले। एक मुसलमान था रियासत अली, दूसरा ब्राह्मण था रामहरख। दोनों ने मेरी ओर परिचित नेत्रों से देखा, मानो कह रहे हैं, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे?

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा—यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं?

ईश्वरी ने जवाब दिया—हाँ, साथ पढ़ते भी हैं और साथ रहते भी हैं। यों कहिए कि आप ही की बदौलत मैं इलाहाबाद पड़ा हुआ हूँ, नहीं कब का लखनऊ चला आया होता। अब की मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे, मगर मैंने इनकारी-जवाब दिलवा दिए। आखिरी तार तो अर्जेंट था, जिसकी फीस चार आने प्रति शब्द है, पर यहां से उनका भी जवाब इनकारी ही था।

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतंकित हो जाने की चेष्टा करते जान पड़े।

रियासत अली ने अर्द्धशंका के स्वर में कहा—लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं।

ईश्वरी ने शंका निवारण की—महात्मा गांधी के भक्त हैं साहब। खद्दर के सिवा कुछ पहने ही नहीं। पुराने सारे कपड़े जला डाले। यों कहा कि राजा हैं। ढाई लाख सालाना की रियासत है, पर आपकी सूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़कर आये हैं।

रामहरख बोले—अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भॉप ही नहीं सकता।

रियासत अली ने समर्थन किया—आपने महाराजा चाँगली को देखा होता तो दाँतों तले उंगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरौंधे जूते पहने बाजारों में घूमा करते थे। सुनते हैं, एक बार बेगार में पकड़े गए थे और उन्हीं ने दस लाख से कालेज खोल दिया।

मैं मन में कटा जा रहा था; पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मानों मैं उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हाँ, लड़कपन में कई बार लद्दू घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहां देखा तो दो कलॉ-रास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गई। सवार तो हुआ, पर बोटियाँ कॉप रहीं थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़े को तेज न किया, वरना शायद मैं हाथ-पाँर तुड़वाकर लौटता। संभव है, ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में है।

3

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का—सा फाटक, द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई सिसाब नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के जमींदार, लाखों का मुनाफा, मगर पुलिस कान्सटेबिल को अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर-हुजूर कहने लगे!

जब जरा एकान्त हुआ, तौ मैंने ईश्वरी से कहा—तुम बड़े शैतान हो यार, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो?

ईश्वरी ने दृढ़ मुस्कान के साथ कहा—इन गधों के सामने यही चाल जरूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।

जरा देर के बाद नाई हमारे पांव दबाने आया। कुंवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गए होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा—पहले कुंवर साहब के पांव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन में ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पांव दबाए हों। मैं इसे अमीरों के चोचले, रईसों का गधापन और बड़े आदमियों की मुट्ठमरती और जाने क्या-क्या कहकर ईश्वरी का परिहास किया करता और आज मैं पोतड़ों का रईस बनने का स्वांग भर रहा था।

इतने में दस बज गए। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नयी रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुंच पायी थी। अंदर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छांट लिया करता हूँ; मगर यहाँ मैंने ईश्वरी की ही भांति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने हाथों अपनी धोती छांटते शर्म आ रही थी। अंदर भोजन करने चले। होस्टल में जूते पहले मेज पर जा डटते थे। यहाँ पाँव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिये खड़ा था। ईश्वरी ने पाँव बढ़ा दिए। कहार ने उसके पाँव धोए। मैंने भी पाँव बढ़ा दिए। कहार ने मेरे पाँव भी धोए। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

4

सोचा था, वहाँ देहात में एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे, पर यहाँ सारा दिन सैर-सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं, कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं, कहीं शतरंज पर जमें हैं। ईश्वरी खूब अंडे मँगवाता और कमरे में 'स्टोव' पर आमलेट बनते। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाँथ-पाँव हिलाने की कोई जरूरत नहीं। केवल जबान हिला देना काफी है। नहाने बैठो तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटो तो आदमी पंखा झलने को खड़े।

महात्मा गांधी का कुंवर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक थी। नाश्ते में जरा भी देर न होने पाए, कहीं कुंवर साहब नाराज न हो जाएँ; बिछावन ठीक समय पर लग जाए, कुंवर साहब के सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग बन गया था या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछाले लेकिन कुंवर मेहमान अपने हाथों कैसेट अपना बिछावन बिछा सकते हैं! उनकी महानता में बट्टा लग जाएगा।

एक दिन सचमुच यही बात हो गई। ईश्वरी घर में था। शायद अपनी माता से कुछ बातचीत करने में देर हो गई। यहाँ दस बज गए। मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं, मगर बिस्तर कैसेट लगाऊँ? कुंवर जो ठहरा। कोई साढ़े ग्यारह बजे महरा आया। बड़ा मुंह लगा नौकर था। घर के धंधों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुधि ही न रही। अब जो याद आई, तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डाँट बताई कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डाँट सुनकर बाहर निकल आया और बोला—तुमने बहुत अच्छा किया। यह सब हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गई, मगर लैम्प मेज पर रखा हुआ था। दियासलाई भी थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प नहीं जलाता था। फिर कुंवर साहब कैसे जलाएँ? मैं झुंझला रहा था। समाचार-पत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था, पर लैम्प नदारद। दैवयोग से उसी वक्त मुंशी रियासत अली आ निकले। मैं उन्हीं पर उबल पड़ा, ऐसी फटकार बताई कि बेचारा उल्लू हो गया—तुम लोगों को इतनी फिक्र भी नहीं कि लैम्प तो जलवा दो! मालूम नहीं, ऐसे कामचोर आदमियों का यहाँ कैसे गुजर होता है। मेरे यहाँ घंटे-भर निर्वाह न हो। रियासत अली ने काँपते हुए हाथों से लैम्प जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था, महात्मा गांधी का परम भक्त। मुझे महात्माजी का चेला समझकर मेरा बड़ा लिहाज करता था; पर मुझसे कुछ पूछते संकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बांधकर बोला—सरकार तो गांधी बाबा के चेले हैं न? लोग कहते हैं कि यह सुराज हो जाएगा तो जमींदार न रहेंगे।

मैंने शान जमाई—जमींदारों के रहने की जरूरत ही क्या है? यह लोग गरीबों का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं?

ठाकुर ने पिर पूछा—तो क्यों, सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जाएगी। मैंने कहा-बहुत-से लोग तो खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे, उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तो तैयार बैठे हुए हैं। ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने इलाके असामियों के नाम हिबा कर देंगे।

मैं कुरसी पर पाँव लटकाए बैठा था। ठाकुर मेरे पाँव दबाने लगा। फिर बोला—आजकल जमींदार लोग बड़ा जुलूम करते हैं सरकार! हमें भी हुजूर, अपने इलाके में थोड़ी-सी जमीन दे दें, तो चलकर वहीं आपकी सेवा में रहें।

मैंने कहा—अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है भाई; लेकिन ज्यों ही अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलाऊंगा। तुम्हें मोटर-डाइवरी सिखा कर अपना डाइवर बना लूंगा।

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भंग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गाँव महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया।

5

छुट्टी इस तरह तमाम हुई और हम फिर प्रयाग चले। गाँव के बहुत-से लोग हम लोगों को पहुंचाने आये। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुबेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हरेक हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था, हरेक नौकर को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन वह सामर्थ्य कहाँ थी? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था; पर गाड़ी गायी तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गापूजा की छुट्टियाँ भोगकर सभी लोग लौट रहे थे। सेकंड क्लास में तिल रखने की जगह नहीं। इंटरव्यू क्लास की हालत उससे भी बदतर। यह आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दरजे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहाँ अपना रंग जमा लिया, मगर मुझे उसमें बैठना बुरा लग रहा था। आये थे आराम से लेटे-लेटे, जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह न थी।

कई आदमी पढ़े-लिखे भी थे! वे आपस में अंगरेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले—ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे-बड़े सब बराबर। राजा भी किसी पर अन्याय करे, तो अदालत उसकी गर्दन दबा देती है।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया—अरे साहब, आप खुद बादशाह पर दावा कर सकते हैं। अदालत में बादशाह पर डिग्री हो जाती है।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने की जगह न मिलती थी। पीठ पर बँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार-बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा हुआ था। उसका बार-बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों ही कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना, मानो मेरा गला दबाना था। मैं कुछ देर तक जब्त किए बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़कर पीछे ठेल दिया और दो तमाचे जोर-जोर से लगाए।

उसने आँखें निकालकर कहा—क्यों मारते हो बाबूजी, हमने भी किराया दिया है!

मैंने उठकर दो-तीन तमाचे और जड़ दिए।

गाड़ी में तूफान आ गया। चारों ओर से मुझ पर बौछार पड़ने लगी।

‘अगर इतने नाजुक मिजाज हो, तो अक्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे।’

‘कोई बड़ा आदमी होगा, तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते तो दिखा देता।’

‘क्या कसूर किया था बेचारे ने। गाड़ी में साँस लेने की जगह नहीं, खिड़की पर जरा साँस लेने खड़ा हो गया, तो उस पर इतना क्रोध! अमीर होकर क्या आदमी अपनी इन्सानियत बिल्कुल खो देता है।’

‘यह भी अंगरेजी राज है, जिसका आप बखान कर रहे थे।’

एक ग्रामीण बोला—दफ्तर में घुस पावत नहीं, उस पै इत्ता मिजाज।

ईश्वरी ने अंगरेजी में कहा—What an idiot you are, Bir!

और मेरा नशा अब कुछ-कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।